जहाँ उसने भुवन की कुहनी को छुआ था, वहीं यह अद्भुत, अपूर्वपरिचित चुनचुनाहट हो रही थी—उस की कुहनी मे, जो सदा अपने साथियों पर हँसता आया है कि उन्हे स्त्री का सान्निध्य सहन नहीं होता, वे उसे सहज भाव से न ले पा कर उत्तेजित या अस्थिर हो उठते है—उसने यहाँ तक देखा है कि किसी स्त्री द्वारा चाय का प्याला दिया जाने पर लोगों के हाथ ऐसे काँपने लगे कि चाय छलक जाय।

और : आज एक स्त्री के सहज भाव से ठेल कर गाडी पर सवार करा दिये जाने पर उस की कुहनी मे स्पर्शित स्थल पर चुनचुनाहट होने लगी है और वह यह रूमानी कल्पना कर रहा है कि रेखा ने वास्तव मे उसे ठेला नही बल्कि खीचा था .. भुवन बाबू, यों हक्के-बक्के अपने हाथ की ओर ताकते और अपनी कुहनी को पहचानते न खडे रहिए, आखिर आपको हुआ क्या है?...

पीछे किसी ने चिडचिडे स्वर मे कहा, "अजी साहब, फुटबोर्ड पर क्यों लटके खडे हैं, भीतर चले आइये और दरवाजा बन्द कर दीजिए।"

चिडचिडापन वाजिब था; क्योंकि इंटर क्लास ही सही, रात को सोते सब हैं, और तडके तीन बजे दरवाजा खोल कर खडे हो जाना दूसरे मुसाफिरों को न सुहाये तो अचम्भा नहीं होना चाहिए।

भुवन ने भीतर प्रवेश कर के दरवाजा बन्द किया और एक सीट पर सिमट कर बैठ गया। उस के विस्मय की जडता कुछ कम हुई तो उस की स्मृति धीरे-धीरे पिछले कुछ घंटो की दृश्यावली के पन्ने उलटने लगी।

रेखा से उस का परिचय लम्बा नही था। बल्कि परिचय कहलाने लायक भी नहीं था, क्योंकि एक सप्ताह पहले ही अपने मित्र चन्द्रमाधव के घर पर एक छोटी चाय-पार्टी में इन की पहली भेट हुई थी। और उस के बाद दो-तीन बार हजरतगंज के कोने पर या काफी हाउस मे, उन का कुछ वार्त्तालाप हुआ था। भुवन को लखनऊ से इलाहाबाद जाना था, रेखा किसी परिचित परिवार के पास कुछ दिन बिताने प्रतापगढ जाने वाली थी; बातचीत के सिलसिले मे यह जान कर कि दोनो एक ही दिन एक ही गाडी से

जा रहे है, चन्द्रमाधव की सलाह से यह निश्चय हुआ था कि तीनो साथ हजरतगंज मे कही भोजन कर के स्टेशन पहुँच जावेगे और दोनो को गाडी पर सवार करा कर चन्द्रमाधव लौट जायगा—भुवन का सामान तो चन्द्रमाधव का नौकर ले जायगा, और रेखा का सामान उनके आतिथेय का चपरासी पहुँचा आयेगा।

यह तो बिलकुल साधारण बात थी। लेकिन गाडी मे भीड बहुत थी; पहले यह सोचा गया कि दोनो अलग-अलग स्थान खोजे, क्योकि शायद जनाने डिब्बे में कुछ अधिक जगह हो तो रेखा क्यो अधिक कष्ट उठाये? चन्द्रमाधव उसे बिठाने जनाने डिब्बे की ओर गया, और भुवन अपने लिए स्थान खोजने निकला। कोई पन्द्रह मिनट मे, अनेक डिब्बो का मुआइना कर के, आँखो-आँखो से प्रत्येक मे मिल सकने वाली जगह के घनइंच और वर्ग इंच का हिसाब लगाने के बाद जब भुवन ने एक डिब्बे मे खिडकी के रास्ते अपना छोटा-सा बक्स और संक्षिप्त बिस्तर अन्दर ठेल दिया और तय कर लिया कि किवाड के आगे लगे सामान के ढेर के कारण उधर से न जा सकने पर भी खिडकी के रास्ते घुस सकेगा, वह यह देखने लौटा कि रेखा पर कैसी बीत रही है। मन ही मन उसने यह भी सोचा, इसी गाडी मे जाना ऐसा क्या जरूरी है? एक दिन देर भी हो सकती है। इलाहाबाद पहुँचना कोई ऐसा जरूरी तो है नही, मुफ्त मे तकलीफ का सफर क्यो? क्यो न कल पर टाल दिया जाय? यही सोचते-सोचते वह वहाँ पहुँचा जहाँ चन्द्रमाधव एक खिडकी के पास खडा था। रेखा डिब्बे के भीतर तो पहुँच गयी थी, पर डिब्बा अपना यह देसी नाम इतना सार्थक कर रहा था कि जहाँ वह खडी थी वहाँ उसे इधर-उधर मुडने लायक भी स्थान नहीं था. वह खडी थी तो बस, जैसे खडी थी वैसे खड़ी रह सकती थी।

भुवन ने मुस्कराते हुए पुकार कर अंग्रेजी मे पूछा, "रेखाजी, कैसा चल रहा है?"

रेखा ने जरा गर्दन उन की ओर मोड कर, हँसते हुए कहा, "स्विमि-

ग्ली ! मै जैसे सागर की मछली हूँ, ज़मीन से पैर उठा लूँ तो भी गिरूँगी नही, तैरती रह जाऊँगी !"

भुवन ने चन्द्रमाधव से कहा, "चन्द्र, रेखाजी का इसी गाडी से जाना क्या ऐसा जरूरी है ?"

चन्द्र ने फौरन शह लेते हुए आवाज दी, "रेखाजी, अब भी सोच लीजिए, आज जाना क्या जरूरी है ? मेरा कल के शो का निमन्त्रण अभी ज्यो-का-त्यो है—अब भी लौट चलिए, कल रात चली जाइयेगा।"

रेखा ने भुवन की ओर उन्मुख होने की चेष्टा करते हुए पूछा, "आप को कैसी जगह मिली ?"

"सामान तो भीतर पहुँच गया है। यो तो खिडकियो से रास्ता है—अभी तो हवा भी मजे मे आ-जा सकती है।"

"तो आप का क्या मत है ?"

"मैं तो चन्द्र से बिल्कुल सहमत हूँ। आप और एक दिन रुक जाइये—कल चली जाइयेगा—"

रेखा के चेहरे पर विकल्प की हल्की-सी रेखा पहचान कर चन्द्र ने जोर दिया। "हॉ, हॉ, आइये, बस ! बल्कि अभी तो आज रात का शो भी देखा जा सकता है—" और वह खिडकी मे से भीतर झुक कर रेखा का सूटकेस पकडने लगा।

रेखा उतर आयी। उतर कर भुवन से बोली, "और आप ?" फिर चन्द्र की ओर उन्मुख हो कर: "मिस्टर चन्द्र, अपने मित्र को भी रोक लीजिए न ?"

चन्द्र ने कहा, "इन्हे जाने कौन देता है। आप रुक जायेंगी तो यह नहीं जा सकेंगे, इतने अनगैलेंट यह नहीं हो सकते—क्या हुआ प्रोफेसर हैं तो ! क्यो भुवन ? कहॉ है तुम्हारा सामान ?"

भुवन ने आनाकानी की। स्वय उसने सफर एक दिन टाल जाने की बात सोची थी, पर रेखा को वैसा करते देख न जाने क्यो एक प्रतीप-भाव उस के मन मे उमड़ आया—कि जो निश्चय किया सो किया, अब बदलना

ढुलमुलपन है और ढुलमुलपन बुरी चीज़ है, आदमी की संकल्प-शक्ति दृढ़ होनी चाहिए, ऐसी दृढ कि बस फौलाद !

रेखा ने कहा, "हॉ, डाक्टर भुवन, आप भी रह जाइये न ? छुट्टी तो आप की अभी कई दिन और है—"

"लेकिन—"

"बस अब लेकिन-वेकिन कुछ नही," चन्द्र ने डपट कर कहा । "चलो आगे, बताओ सामान कहॉ रखा है ।" और जिस कुली ने रेखा का सामान उठाया था, उसी को आगे कर के वह भुवन के डिब्बे की ओर बढ़ चला ।

स्मृति के पन्ने उलटते हुए भुवन ने सोचा, यहॉ तक भी ठीक था, रुक जाना कोई असाधारण बात नही हुई थी, और दोनो के रुक जाने मे भी कोई वात नही थी, अगर उसे इलाहाबाद मे जरूरी काम नही था तो रेखा को प्रतापगढ मे और भी कम काम था, वह घूमती हुई और एक जगह कुछ दिन बिताने जा रही थी । और चन्द्र दोनो का मित्र था, और खासा दिल-चस्प आदमी, उस के आग्रह का असर होना स्वाभाविक था ।

और इस प्रकार दोनो रुक गये थे, और अगली शाम को उसी प्रकार उसी गाड़ी के लिए पहुँचे थे ।

फिर भीड थी, पर उतनी नही, फिर अलग-अलग डिब्बो मे सवार हुआ गया—रेखा को जनाने डिब्बे मे बैठने लायक स्थान मिल गया यद्यपि बिल्कुल दरवाजे के पास, और भुवन ने भी अपना बक्स जमा कर अपने बैठने लायक सीट बना ली । विदा-नमस्ते कर के सीटी के साथ वह अपने डिब्बे की ओर चला और सवार हो गया ।

यहॉ तक भी ठीक था । और अगर बीच मे थोडी-थोडी देर बाद गाडी के रुकने पर वह रेखा के डिब्बे तक जा कर उस से एक-आध बात कर आता रहा, तो यह भी कोई ऐसी असाधारण बात नही थी; यह साधारण शिष्टा-चार ही है, और अगर रात दस बजे के बाद भी हुआ तो भी अधिक-से-अधिक कोई यह कह सकता है कि शिष्टाचार मे कुछ अनावश्यक मुस्तैदी थी, या दिखावा था । वह स्वयं यही जानता था कि रेखा बडी मेधावी स्त्री है

और उस से बातचीत विचारोत्तेजक है और मानसिक स्फूर्ति देती है, बस। बातें भी वे ऐसी ही करते आये थे, और प्रतापगढ से जब रेखा उतर गयी और भुवन ने कहा, "आप से भेंट कर के बहुत प्रसन्नता हुई—मेरा लखनऊ प्रवास बडा सुखद रहा," तो उसने अपने स्वर मे शिष्टाचार से—यद्यपि हार्दिक शिष्टाचार, निरी औपचारिक शिष्टता नही—अधिक कुछ नही पाया था। रेखा ने भी वैसे ही अव्यक्तिक पर सच्चे विनय से कहा था, "मै आप की बडी कृतज्ञ हूँ—और आप ने तो इस वापसी की यात्रा को भी प्रीतिकर बना दिया—"

तब ?

और फिर भुवन ने अपने हाथ और कुहनी की ओर देखा, फिर उसे लगा कि वह चुनचुनाहट अभी गयी नही है, वह अपनी कुहनी पर अब भी रेखा के स्पर्श का दबाव अनुभव कर सकता है, और वह दबाव ढकेलने का नही है, खीचने का है।

तब ?

स्पष्ट ही केवल यात्रा का प्रत्यवलोकन काफी नही है; थोडा और पीछे देखना होगा। और पीछे देखने—मे या क्रम से विश्लेषणपूर्वक देखने मे—उसे झिझक क्यो है, वह अनमना क्यो है ? सप्ताह-भर से कम का सामान्य सामाजिक परिचय—कौन उसमे ऐसे छायावेष्टित रहःस्थल है जिनमे जिज्ञासा की किरण के पहुँचने से वहाँ पलती कोई छुई-मुई अनुरागानुभूति मर जायगी।

आग की लौ आलोक देती है : उस से हम आलोक विकीरित हुआ देखते है और व्यक्ति की तुलना लौ से करे तो यही ध्वनित होता है कि उस से कुछ उत्सृष्ट हो कर फैलता है। लेकिन रेखा मानो एक शीतल आलोक से घिरी हुई, उस के आवेष्टन मे सँची हुई, अलग, दूर और अस्पृश्य खडी थी।

भुवन ने एक बार सिर से पैर तक उसे देखा। घूरना इस बीसवीं सदी मे भी अशिष्ट है, लेकिन एक ऐसी पारखी दृष्टि भी होती है जिसे घूरना नहीं कहा जा सकता और जो न केवल अशिष्ट नही है बल्कि सौन्दर्य का नैवेद्य मानी जाती है। तब मन-ही-मन भुवन ने कहा, यो ही नही रेखा देवी की इतनी चर्चा होती। उनमे कुछ है जिस का उन्मेष जीवन का उन्मेष है और जिसे जान सकना ही एक महान अनुभूति होगी—फिर वह जानना सुखद हो, दुःखद हो।

और उसने मुड कर रेखा की सुनाई मे आ सकने वाले विनय के स्वर मे अपने साथी से पूछा, "क्यो मिस्टर चन्द्रमाधव, रेखाजी काफी पीती है—हम लोग काफी हाउस चलें?"

इस परोक्ष निमन्त्रण का उतना ही परोक्ष उत्तर देते हुए रेखा ने कहा, "हॉ, चन्द्र, तुम बहुत बार काफी पिला चुके हो मुझे, आज मेरा निमन्त्रण रहा, और—तुम्हारे मित्र भी आवे।"

चन्द्रमाधव ने कहा, "वाह, यह नही हो सकता, मै तो स्थायी मेजबान हूँ।"

तब भुवन ने कुछ साहस बटोर कर कहा, "रेखा देवी, अगर आज मुझे ही मेजबान होने का गौरव प्रदान करे तो—"

रेखा ने कुछ मुस्करा कर छद्मविनय से कहा, "आप की प्रार्थना स्वीकार की जाती है।"

हजरतगंज का कोना युक्तप्रान्त के नागरिक जीवन की धुरी है। यह दूसरी बात है कि जीवन वहॉ जिया नही जाता, वहॉ केवल जीवन से विश्रान्ति की व्यवस्था है। तथापि जो लोग उस जीवन का संचालन और नियमन करते रहे है उन का एक स्वाभाविक संगम वह कोना है। इसी लिए भुवन जब से लखनऊ आया है तब से रोज चन्द्र के साथ काफी हाउस आता है: दिन मे एक बार तो अवश्य, कभी-कभी दो-दो तीन-तीन बार—और उस रूप-रस-गन्ध-सिक्त मानव-प्रवाह को किनारे से देख कर मन-ही-मन यह समझता चला जाता है कि वह भी जीवन के प्रवाह के बीच मे है, कि जीवन

का तीव्र स्पन्दन जिस नाड़ी मे हो रहा है, उसे वह पकड़े है, और चाहे तो दबा कर रुद्ध भी कर दे सकता है!

लखनऊ आये उसे कुल तीन दिन हुए है। चन्द्रमाधव उस का कालेज का सहपाठी और मित्र, स्थानीय पायनियर का विशेष सम्वाददाता है और लखनऊ से परिचित है, यो भी बहुधन्धी आदमी है। उस के साथ रहने-घूमने से जीवन के प्रवाह को अनुशासित कर सकने का यह भ्रम सहज ही हो जा सकता है। इस से क्या कि कालेज के बाद से चन्द्रमाधव निरन्तर सनसनी की खोज मे दौड़ा किया है—अफ्रीका, अबीसीनिया, इटली, जर्मनी चीन, कोरिया—और वह चार-छः वर्ष वैज्ञानिक खोज और देशाटन मे लगा कर, पहले से भी कुछ अन्तमुखी और तटस्थ हो कर एक कस्बे के कालेज मे लेक्चरर हो गया है जो कि यो ही दुनिया के प्रवाह से बहुत दूर रहता है? यह जीवन की धमनी को पकडे रहने का भ्रम बडा ही लुभावना और अहं को पुष्ट करने वाला है...

और इस से क्या कि चन्द्र का कहना है, वह जीवन के निरन्तर दबाव से बच कर दो मिनट चैन से बिताने के लिए ही काफी हाउस आता है? शायद उस के वही भ्रम लुभा सकता हो...

और रेखा?

भुवन को याद आया, तीन दिन पहले चन्द्र के यहाँ उसने पहली बार रेखा को देखा था। परिचय के समय उसने लक्ष्य किया था कि रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है, किन्तु बुद्धि मानो तीव्र सवेदना के साथ गुँथी हुई है और रूप एक अदृश्य, अस्पृश्य कवच-सा पहने हुए है, पर इस आरम्भिक धारणा को उसने तूल नही दिया था। प्रचलित धारणा है कि बुद्धिजीवी स्त्री के आवेग शिथिल होते है, और अगर किसी को चट से 'फ्रिजिड वूमन' का बिल्ला दे दिया जा सकता हो तो उसे ले कर माथा-पच्ची कौन करे? फलत. परिचय के साधारण शिष्टाचार के बाद भुवन अपने मे खिंच गया था और रेखा चन्द्र के यहाँ जुटे हुए बुद्धिप्राण मानव-जीवो के गिरोह मे खो गयी थी—चन्द्र ने भुवन को मिलाने के लिए

लखनऊ का साहित्यिक समाज इकट्ठा किया था ..

किन्तु उपेक्षा की जिस पिटारी मे भुवन ने उसे डाल दिया था, उसे हठात् झकझोर कर रेखा बाहर निकल आयी थी। बैठक के दौरान मे भुवन ने दो-एक बार उडती नज़र से रेखा के चेहरे पर क्लान्ति और खेद के चिह्न देखे थे; जब साहित्य-चर्चा ने जोर पकड़ा और वातावरण मे गर्मी आयी तो भुवन की दृष्टि कौतूहलवश फिर रेखा को खोजती हुई गयी और सहसा टिटक गयी।

रेखा कमरे की एक ओर शून्य के एक छोटे से वृत्त के बीचोबीच कुरसी पर बैठी थी। उस का सिर कुरसी की पीठ पर टिका था, पलके बन्द थीं। वह बिजली के प्रकाश से कुछ बच कर बैठी थी, अतः उस का माथा और आँखे अंधेरे मे थी, बाकी चेहरे पर आडा प्रकाश पड रहा था जिस से नाक, ओठ और ठोड़ी की आकार-रेखा सुनहली हो कर उभर आयी थी। और इसी स्वर्णाभ निश्चलता पर भुवन का कौतूहल आ कर टिक गया था।

कहते है कि आँखे आत्मा के झरोखे है। झरोखे बन्द भी हो सकते हैं, पर ओठो की कोर एक ऐसा सूचक है कि कभी चूकता नही, और इन्हीं की ओर भुवन अपलक देखता रहा। वह कुछ क्षणो की तन्द्रा मानो रेखा को उस कमरे से दूर अलग कहीं ले गयी थी, जहाँ ओठो की कोरो का कसाव, बिना तनिक-सा काँपे भी, जैसे अनजाने कुछ नरम पड गया था, मुँह के आसपास की असख्य शिराओ का अदृश्य तनाव कुछ ढीला हो गया था और जीवन का अदम्य लचकीलापन जैसे फिर उभर कर एक स्निग्ध लहर बन गया था। जहाँ तक भुवन जान पाया, किसी और ने यह परिवर्तन नही लक्ष्य किया था, पर उस क्षण के सहज शैथिल्य के द्वारा मानो रेखा ने अपनी सारी क्लान्त शक्तियो को विश्राम देकर पुनरुद्दीपित कर लिया था। वैसे ही जैसे नास्तिको की भीड मे कोई भक्त अनदेखे क्षण-भर आँख बन्द कर के अपने आराध्य का ध्यान कर ले और उस के द्वारा नये विश्वास से भर कर कर्म-रत हो जाय। रेखा जैसी आधुनिका के लिए भक्त की उपमा शायद ठीक न हो पर उस तुलना के द्वारा रेखा का पार्थक्य

और उभर आता था, और यह बात बार-बार भुवन के सामने आती थी कि रेखा मे एक दूरी है, एक अलगाव है, कि वह जिस समाज से घिरी है और जिस का केन्द्र है उस से अछूती भी है—यद्यपि कहाँ, अस्तित्व के कोने से स्तर पर वह विभाजन-रेखा है जो दोनों को अलग रखती है इस की कल्पना वह नही कर सकता था...

काफी पीते-पीते ये सब बाते चलच्चित्र-सी उस के आगे घूम गयी। और जैसे रेखा की रहस्यमयता उसे चुनौती देने लगी। यो व्यक्तित्व की चुनौती की प्रतिक्रिया भुवन मे प्रायः सर्वदा नकारात्मक ही होती है—वह अपने को समझा लेता है कि चुनौती के उत्तर मे किसी व्यक्तित्व मे पैठना चाहना अनधिकार-चेष्टा है, टॉग अड़ाना है, क्योकि व्यक्तित्वों का सम्मिलन या परिचय तो फूल के खिलने की तरह एक सहज क्रिया होना चाहिए। पर रेखा के व्यक्तित्व की चुनौती को उसने इस प्रकार नहीं टाला। टालने की बात ही उस के मन मे नही आयी, रहस्यमयता की चुनौती स्वीकार करना तो और भी अधिक 'टॉग अड़ाना' है—क्योकि किसी का रहस्य उद्घाटित करना चाहने वाला कोई कौन होता है?—यह भी उसने नहीं सोचा। पर अनधिकार हस्तक्षेप की भावना भी उस के मन मे नहीं थी। यह जो जन-समुदाय से घिरे रह कर भी उस से अलग जा कर, किसी अलक्षित शक्ति के स्पर्श से दीप्त हो उठने जैसी बात उसने देखी थी, रह-रह कर वही भुवन को झकझोर जाती थी, जैसे किसी बड़े चौड़े पाट वाली नदी मे एक छोटे-से द्वीप का तरु-पल्लवित मुकुट किसी को अपनी अनपेक्षितता से चौंका जाय। या कि अँधेरे मे किसी शीतल चमकती चीज़ को देख कर बार-बार उसे छू कर देखने को मन चाहे—कहाँ से, किस रहस्यमय रासायनिक क्रिया से यह ठंडा आलोक उत्पन्न होता है?

रेखा को देखते और इस ढंग की बात सोचते हुए भुवन कदाचित् अन-मना हो गया था, क्योकि उसने सहसा जाना, चन्द्र और रेखा मे यह बहस चल रही है कि सत्य क्या है, और कब कैसे यह आरम्भ हो गयी उसने लक्ष्य नही किया था।

चन्द्र कह रहा था, "सत्य सभी कुछ है—सभी कुछ जो है। होना ही सत्य की एकमात्र कसौटी है।"

रेखा ने टोका, "लेकिन होने को तो झूठ भी है, छल भी है, भ्रम भी है—क्या वह सब भी सत्य है? या कि आप होने की कुछ दूसरी परिभाषा करेंगे—पर यह कहना तो यही हुआ कि सत्य वह है जो सत्य है।"

"नही, सभी कुछ जो है। यानी उस मे मिथ्या भी शामिल है, भ्रम भी। मुझे अगर भ्रम है, तो उस का होना भी होना है, और इस लिए वह भी सत्य है। और मुझे भूत दीखते है, तो भूत सत्य है, यो चाहे होते हो या न होते हो। यो कह ले कि भूत मेरा सत्य है, दूसरो का चाहे न हो।"

"तो सत्य बिल्कुल मुझ पर आश्रित है—व्यक्ति-सापेक्ष्य है? निरपेक्ष सत्य कुछ है ही नहीं?" रेखा ने आपत्ति के स्वर मे कहा, "क्यो डाक्टर भुवन, आप भी ऐसा ही मानते है?"

भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही चन्द्र ने कहा, "हाँ। सत्य सापेक्ष्य ही है। निरपेक्ष वह हो ही कैसे सकता है? निरपेक्ष तो चीजे हैं—पदार्थ। पदार्थ सत्य नही है, निरा पदार्थ। सत्य तो पदार्थ का हमारा बोध है—और बोध व्यक्तिगत है।"

भुवन ने कहा, "मुझे तो लगता है कि हम सत्य और वस्तु का भेद भूल रहे है। भूत हो या न हो, अगर मेरे लिए है तो है—यानी यथार्थ है। पर सत्य—सत्य तो दूसरी बात है। यो चन्द्र जो पदार्थ और सत्य मे भेद कर रहे है वह मै मानता हूँ, पर वह अधूरी बात लगती है।"

"क्यो? आगे और क्या है?"

"पदार्थ वास्तव का एक अंश है। वास्तव मे और भी बहुत कुछ आता है। विचार, कल्पनाएँ, घटनाएं, परिस्थितियाँ—ये सब भी वास्तव के अग है जिन्हे पदार्थ नही कहा जा सकता—"

"मै कब कहता हूँ। लेकिन सत्य तो कहा जा सकता है?" चन्द्र ने विजय के स्वर मे कहा, "यही तो मै कह रहा था।"

"नहीं। मैं वास्तव मे और सत्य मे भेद करना चाहता हूँ। या कहिए कि सापेक्ष्य और निरपेक्ष सत्य के प्रश्न को दूसरी तरह देखना चाहता हूँ।" भुवन क्षण भर रुका। "एक उदाहरण लीजिए: दो और दो चार होते है, इस बात को आप क्या कहेगे?"

"सत्य। और क्या?"

"लेकिन मैं नही कहूँगा। मै कहूँगा कि यह तथ्य है। और इस तरह के सब 'सत्य' केवल तथ्य है। सत्य की संज्ञा उन्हे तब मिल सकती है जब उन के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो। यानी जो तथ्य हमारे भाव-जगत् की यथार्थता है, वह सत्य है, जो निरे वस्तु-जगत् की है, वह तथ्य है, वास्तविकता है, यथार्थता है, जो कह लीजिए, पर सत्य से वह ऊनी पड़ती है।"

क्षण भर सब चुप रहे। फिर रेखा ने, कुछ इस बात को स्वीकार करते हुए और कुछ विषयान्तर करते हुए से, कहा, "सत्य को कटु क्यो कहते हैं, कटु वह कैसे हो सकता है? अंग्रेज़ी मे भी कहते हैं पेनफुल ट्रूथ— अगर हम उसे सत्य मानते हैं, जानते हैं, तो वह पेनफुल क्यो होता है?"

भुवन ने कहा, "मै तो कहूँगा कि सत्य मात्र पेनफुल है, रागात्मक सम्बन्ध का यह मोल हमे चुकाना पड़ता है। सत्य, तथ्य का रचनात्मक, सृजनात्मक रूप है, और सृजन सब पेनफुल होता है: 'अपने ताप की तपन मे सब कुछ उसने रचा'—रचना के सत्य का कितना सुन्दर वर्णन है इस वाक्य मे।"

रेखा ने कहा, "यह सचमुच बड़ी सुन्दर बात है। पर पेनफुल ट्रूथ की बात इस से हल नहीं हुई—मुझे तो नहीं लगता कि हल हो गयी।"

"शायद नहीं हुई। पेनफुल सत्य का एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है। उन का प्रेम एक तथ्य है: आप बड़ी आसानी से कह सकते हैं कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है—आप का अपना कोई लगाव 'क' 'ख' से नहीं है इसी लिए। अब कल्पना कीजिए उस स्थिति की जिस मे अपनी ओर से यह बात कहनी हो। 'क' 'ख' से

प्रेम करता है यह कह देना कितना आसान है, और 'मै तुम से प्रेम करता हूँ' यह कह पाना कितना कठिन—कितना पेनफुल। क्योंकि एक तथ्य है, दूसरा सत्य—और सत्य न कहना आसान है, न सहना आसान है।" भुवन साँस लेने के लिए तनिक-सा रुका और फिर बोला, "अंग्रेज़ी की कविता है, 'द पेन आफ लविंग यू इज़ ऑल्मोस्ट मोर दैन आइ कैन बेयर'—तुम्हारे प्रेम की व्यथा दुस्सह है। बड़ी सच बात है, जरूर दुस्सह होगी, और जरूर व्यथा होगी—अगर सचमुच प्रेम है।"

चन्द्र ने कुछ ठट्ठे के स्वर मे कहा, "तब तो सत्य भी खतरनाक चीज है, और प्रेम भी। लेकिन ऋषि लोग सत्य को साध्य बता गये, प्रेम को धोखा –"

रेखा ने कहा, "वे लोग कदाचित् ऋषि न रहे होगे मिस्टर चन्द्र; प्रेम को धोखा रोमांटिकों ने बताया है, और आप कितने भी ऋषि-भक्त क्यो न हों, रोमांटिक ऋषि को नही पसन्द करेंगे। मै तो यही जानती थी कि ऋषियों ने प्रेम और सत्य को एक माना है क्योंकि दोनो को ईश्वर का रूप माना है।"

"क्योंकि दोनो स्रष्टा है," भुवन ने जोड दिया। और फिर सहसा न जाने क्यों, उसे अपने बोलने पर और सारी बातचीत पर एक अजब-सी झिझक की भावना हुई : वह कैसे इतना बोल गया, और सो भी प्रेम का विषय ले कर? उसे याद आया, अंग्रेजी का जो काव्य-पद उसने सुनाया था, वह वास्तव मे यों आरम्भ होता था, 'डीयरेस्ट, द पेन आफ लविंग यू', पर वह उद्धरण देते समय पहला सम्बोधन शब्द छोड गया था—अवश्य ही जान-बूझ कर और संकोचवश, यद्यपि उस समय उसे यह भी ध्यान न हुआ था कि वह कोई शब्द छोड़ रहा है। सत्य की चर्चा में प्रेम की बात ले आना और ऐसे सन्दर्भ देना—रेखा क्या सोचेगी कि इन प्रोफेसर साहब के दिमाग में प्रेम भरा हुआ है। और प्रेम और सृजन—क्या-क्या बक गया वह...

बातचीत का सिलसिला टूट गया। तीनों चुपचाप काफी पीते रहे।

चन्द्र के साथ तो भुवन टिका ही था, रेखा से भी उस के बाद प्रतिदिन भेंट होती रही। यों तो चन्द्र के नित्यप्रति काफी हाउस जाने के प्रोग्राम मे शामिल हो जाना ही काफी था—वहीं भेंट हो जाती थी और चन्द्र का विश्वास था कि अच्छे पत्रकार के लिए काफी हाउस मे घण्टो बिताना आवश्यक है—'शहर मे क्या हुआ है, क्या होने वाला है, क्या हो रहा है, सब काफी हाउस का वातावरण सूँघ लेने भर से भॉप लिया जा सकता है।' भुवन अनुभव करता था कि दूसरे पत्रकार भी ऐसा मानते है, क्योंकि वहॉ प्रायः उन का जमाव रहता था और सब वहॉ ऐसे कर्म-रत भाव से निठल्ले बैठ कर, ऐसे अर्थ-भरे भाव से व्यर्थ की बाते किया करते थे कि वह चकित हो जाता था। लेकिन पत्रकार साहित्यकार नही है, यह वह समझता था, साहित्यकार जो क्षणिक है उस मे से सनातन की छाप को, या जो सनातन है उस की तात्क्षणिक प्रासंगिकता को खोजता और उस से उलझता है, पर पत्रकार के लिए क्षणिक की क्षणिक प्रासंगिकता ही सनातन है; और जहॉ वह उस प्रासंगिकता को तत्काल नही पहचानता वहॉ उस का आरोप करता चलता है लेकिन बीच में एक दिन वह अकेला भी गया था। चन्द्र को किसी मन्त्री से आवश्यक भेंट के लिए कौंसिल हाउस जाना था, दिन मे अपने को सूना पाकर भुवन हजरतगंज की ओर चल दिया था और एक पटरी पर चलते-चलते सहसा उसने देखा था, दूसरी पटरी पर दूसरी ओर से आती हुई रेखा सड़क पार करने के लिए ठिठक कर इधर-उधर देख रही है कि मोटरे न आ रही हो। वह रुक कर उसे देखने लगा था। रेखा ने बिना किनारे की सफेद रेशमी साडी पहन रखी थी और वैसा ही सादा ब्लाउज, रेशम की सफेदी मे एक स्निग्धता होती है जैसे हाथी दॉत के रंग मे, और उस पर रेखा का सॉवला रंग बहुत भला लग रहा था। आभरण-अलंकार कोई नही था, केवल उस के एक ओर मुडने पर भुवन ने लक्ष्य किया था कि जूडे मे एक फूल है।

रेखा के इस पार पहुँचते ही भुवन ने बढ कर नमस्कार करते हुए पूछा, "क्या काफी हाउस चल कर बैठना अच्छा न रहेगा? आप मालूम होता

है काफी देर से घूमती रही है—लाइये, एक-आध बंडल मुझे दे दीजिए" क्योंकि रेखा के हाथ मे कई एक पुलिन्दे थे।

"धन्यवाद," मै अपना बोझा स्वयं ढोने की आदी हूँ।' कहते-कहते भी मुस्कराती रेखा ने दो-तीन पैकेट उसे दे दिये। "मै उपहार देने के लिए कुछ चीजे खरीद रही थी, उपहार देना यो भी अच्छा लगता है और मैं तो इतना आतिथ्य पाती हूँ कि चाहिए भी। लेकिन आज काफी हाउस का निमन्त्रण मेरा है—"

"निमन्त्रण तो—अगर आप न्याय करे तो—मेरा ही था।" भुवन ने हल्के प्रतिवाद के स्वर मे कहा।

रेखा केवल हँस दी।

"काफी हाउस का भी एक चस्का है," रेखा ने कहा, "काफी के चस्के से शायद ज्यादा गहरा वही है।"

"हाँ, चन्द्र ही को देखिए, अपने जीवन का छठा अंश वह यहाँ बिताता है या बिताना चाहता है—हालाँकि अच्छी और बुरी काफी की पहचान भी शायद उसे नहीं है।"

"आप को कैसा लगता है?"

भुवन ने सीधे उत्तर न दे कर कहा, "चन्द्र का विचार है कि जीवन से तटस्थ हो कर दो मिनट बैठने के लिए ऐसी अच्छी जगह दूसरी नहीं—तटस्थ भी हो और देखते भी चले, यह यहाँ का लाभ है।"

"पर आप तो ऐसा न मानते होगे—आप तो यो ही इतने तटस्थ जान पडते है—" रेखा थोडा हँस दी—"कि दो मिनट की तटस्थता का आप के लिए क्या आकर्षण होगा।"

भुवन उस की तीखी दृष्टि पर कुछ चौंका, पर सहज भाव से ही बोला, "हाँ, मै तो आता हूँ कि थोड़ी देर के लिए जीवन के भरपूर प्रवाह मे अपने को डाल सकूँ—मुझे तो हमेशा यह डर रहता है कि कहीं तटस्थता के नाम पर मै उस से बिल्कुल दूर ही न जा पड़ूँ। यहाँ बैठ कर अपने को मानवता

का अंग मान सकता हूँ—उस के समूचे जीवन का स्पन्दन अनुभव कर सकता हूँ—"

"लेकिन, डाक्टर भुवन, काफी हाउस मे मानवता का जो अंश आता है उस का जीवन मानवता का जीवन नही है। वह तो—वह तो—"रेखा के स्वर मे थोड़ा-सा आवेश आ गया—"वह तो केवल एक भँवर है, वह भी बहुत छोटा-सा, और जीवन का प्रवाह—" वह सहसा चुप हो गयी, फिर बोली, "और मानवता क्या है ? मुझे तो लगता है, जब आप मानव से हट कर मानवता की बात सोचने लगते है, तभी आप जीवन से दूर चले जाते है, क्योंकि जीवन मानव का है, मानव यथार्थ है, मानवता केवल एक उद्‌भावना—एक युक्ति-सत्य—"

भुवन ने कुछ सकुचित हो कर कहा, "आप शायद ठीक कहती है। लेकिन मानवता न सही, जीवन की बात जब मै कहता हूँ, तब अपने जीवन से बड़े एक सयुक्त, व्यापक, समष्टिगत जीवन की बात सोचता हूँ—उसी से एक होना चाहता हूँ—अगर वह बहुत बडा प्रवाह है, तो उस की धारा को बॉहो से घेर लेना चाहता हूँ—या वह छोटे मुँह बड़ी बात लगे तो कहूँ कि उस पर एक पुल बॉधना चाहता हूँ चाहे क्षण-भर के लिए—" यहॉ वह रुक गया, क्योंकि उसे लगा कि वह बडी-बडी बाते कर रहा है, और रेखा के चेहरे पर भी उसने एक हल्की-सी आमोद की मुस्कराहट देखी। "आप हँसती है ? बात भी शायद हँसी की है—काफी हाउस मे बैठ कर जीवन की नदी पर पुल बॉधने की बात तो अफीमची की पिनक की बात है।"

"नही, डाक्टर भुवन, सच कहूँ तो मुझे आप पर थोड़ी ईर्ष्या ही हो रही थी। काफी हाउस की तो बात खैर छोडिए, वह तो एक प्रतीक बन गया, जिस के सहारे हम जीवन ही के प्रति अपने दृष्टिकोण व्यक्त कर रहे हैं। इसलिए यह तो मुझे नहीं लगता कि हम यो ही बड़ी बाते कर रहे हैं। पर—पर जीवन की नदी पर सेतु बॉधने की कल्पना कर सकना ही इतनी बडी बात है कि मुझे ईर्ष्या होती है।"

भुवन ने कहा, "हॉं, यो सेतु बनना चाहता है बडी मूर्खता—क्योंकि

सेतु दोनो ओर से केवल रौंदा ही जाता है।"

"हाँ, मगर सचमुच सेतु बन सके तो दोनो ओर से रौंदे जाने मे भी सुख है, और रौंदे जा कर टूट कर प्रवाह मे गिर पडने मे भी सिद्धि। पर मै तो कह रही हूँ कि मै तो उतनी कल्पना भी नही कर पाती—मै तो समझती हूँ, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह मे छोटे-छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उस से कटे हुए भी; भूमि से बँधे और स्थिर भी, पर प्रवाह मे सर्वदा असहाय भी—न जाने कब प्रवाह की एक स्वैरिणी लहर आ कर मिटा दे, बहा ले जाय, फिर चाहे द्वीप का फूल-पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यो न रहा हो।"

भुवन तनिक विस्मय से रेखा की ओर देखता रहा। उस के शब्दो मे, उस की वाणी मे, चित्रो को उभार कर सामने रख देने की अद्भुत शक्ति थी। भुवन अपनी आँखो के सामन स्पष्ट देख सकता था—एक दिगन्तस्पर्शी प्रवाह, उस मे छोटे-छोटे द्वीप—मानो तैरते दीप—और एक बडी अँधेरी रवहीन तरंग—नहीं, नही, नही! उसने अपने को सँभाल कर कहा, "रेखा जी, आप क्यों काफी हाउस आती है?"

"मै? मै!" एक ही शब्द की दो प्रकार के स्वरो मे आवृत्ति—बिना कुछ कहे भी रेखा कितना कुछ कह सकती थी। थोडी देर बाद उसने कहा, "मै तो—आप मानिए!—काफी पीने ही आती हूँ। थक कर आती हूँ, पर विश्राम के लिए नहीं, काफी पी कर फिर चल पडने के लिए। जैसे इंजन ईंधन झोकने या पानी लेने रुकता है। या फिर साथ के लिए आती हूँ—कुछ लोगो से मिलने, बात करने—और यहाँ इस लिए कि यहाँ वे सहज भाव से मिलते है। और मानव और मानव का सहज भाव से साक्षात्—वही हमारा मानव जीवन से और मानवता के जीवन से एक मात्र सम्पर्क हो सकता है। नही तो मानवता—यानी हमारी कल्पना—एक विशाल मरु-भूमि है!"

बात कुछ अतिरिक्त गम्भीर हो गयी थी। दोनों सहसा चुप हो कर सोचते रहे। थोडी देर बाद भुवन ने कहा, "क्या हम लोग एक ही बात

या दृष्टिकोण को समान्तर ढंग से नहीं कह रहे हैं ? आप जिसे व्यक्तियों का सहज साक्षात् कहती हैं, मैं उसे—"

"नहीं, डाक्टर भुवन, आप एक और सम्पूर्ण की बात कहते हैं, मैं एक और दूसरे एक की। सम्पूर्ण मेरे लिए केवल युक्ति-सत्य है—अपने-आप में कुछ नहीं, केवल एक और एक की अन्तहीन आवृत्ति से पाया हुआ एक काल्पनिक योगफल। आप की मानवता एक विशाल मरु-भूमि है। और मेरे ये सहज साक्षात् छोटे-छोटे हरे ओएसिस—न एक हरियाली से सम्पूर्ण मरु की कल्पना हो सकती है, न असख्य हरियालियों को जोड़ देने से एक मरुभूमि बनती है। ये चीजें ही अलग हैं—"

भुवन ने जैसे मौका पा कर कहा, "ठीक। असंख्य हरियालियों से एक मरु नहीं बनता। तो यह क्यों न मानिए कि वह मरु नहीं है, सम्पूर्ण जो है, वह जीवन का उद्यान है ?"

रेखा थोड़ी देर स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही। फिर सहसा खिल कर बोली, "इसी लिए तो मैं कहती हूँ, डाक्टर भुवन, मुझे आप से ईर्ष्या है। मैं एक-एक ओएसिस से ही इतनी अभिभूत हूँ कि दो को जोड नहीं सकती, और जोडना चाहती भी नहीं। कहिए कि इतनी पंगु हूँ कि अगर ओए-सिस है तो मरु है ही ऐसा मानना जरूरी समझती हूँ—जब कि आप बिना मरु के भी बल्कि बिना मरु के ही, ओएसिस का अस्तित्व मानते हैं। आप भाग्यवान् हैं—"

भुवन समझ रहा था कि रेखा यों बात टाल रही है—या कि उसे फिर गम्भीर से उतार कर साधारण के तल पर ला रही है—काफी हाउस के उपयुक्त तल पर। पर वह आग्रह कर के बात आगे चलाना चाहता था, यद्यपि यह उसे लग रहा था कि अगर रेखा बात आगे चलाने को राजी न होगी तो उस के किये कुछ न होगा। मगर इतने में ही कुछ दूर से चन्द्र का स्वर आया, "भाग्यवान् मैं हूँ, रेखा देवी, कि आप दोनों को यहाँ पा लिया। लेकिन भुवन को किस बात पर आप बधाई दे रही हैं—क्यों भुवन, कुछ नोबेल पुरस्कार मिलने की बात है क्या ?"

रेखा ने सहसा एक और ही स्तर पर आ कर कहा, "हाँ आप तो सब से अधिक भाग्यवान् है—आप तो बिना ओएसिस के मरुभूमि में ही खुश हैं !"

"अगर उस मे आप लोगो का साथ हो, और अच्छी काफी मिल जाय।" चन्द्र ने बैठते हुए कहा, और पुकारा, "बेयरा !"

भुवन को विस्मय हुआ। रेखा की बात बिल्कुल चिकनी और साफ़ थी, और हल्की हँसी उस वातावरण के बिल्कुल अनुकूल, पर क्या उस मे कहीं गहरे में एक विद्रूप का भाव नहीं था—विद्रूप और, हाँ, एक अस्वीकार का, तिरस्कार का? रेखा और चन्द्रमाधव मित्र हैं, इतना ही वह जानता था, लेकिन—लेकिन—...

"रेखा देवी, आप तो और काफी लेगी न—और भुवन तुम ?"

भुवन ने सँभल कर कहा, "हूँ—हाँ। बेयरा, तीन काफी और ले आओ, एक क्रीम।" बेयरा गया तो उसने पूछा, "चन्द्र, तुम्हारा इंटरव्यू कैसा रहा? भेंट हुई तो ?"

"बताता हूँ, जरा काफी आने दो—उन की बातचीत का जायका धो लूँ—"

उस विषय की ओर फिर लौटना नहीं हुआ।

जिस दिन पहली बार स्टेशन जाने का निश्चय हुआ था, उस दिन भोजन के लिए बाहर जाने से पहले रेखा चन्द्रमाधव के यहाँ भी आयी थी, तय हुआ था कि वहीं से साथ बाहर चला जायगा। पर पर अधिक बातचीत नहीं हुई, क्योंकि भुवन सामान ठीक-ठाक करने में कुछ व्यस्त था, और चन्द्र को डिनर के लिए तैयारी करनी थी। डिनर उस ने कार्लटन में ठीक किया था, और वहाँ जाने के लिए उस का कहना था कि वेश की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यों उसे कपड़ों की कोई परवाह नहीं है, पर प्रमुख दैनिक के विशेष संवाददाता के नाते उसे सब करना ही पड़ता

है—यों लोग पत्रकार को कुछ नहीं बताते पर उस के रंग-ढंग से यह लगे कि उस की अच्छे समाज में पहुँच है, तो बहुत से लोग इसी लिए कुछ बताने को राजी बल्कि आतुर हो जाते है कि किसी दूसरे ने तो बताया ही होगा। और अच्छे जर्नलिस्ट का काम यही है कि सब को यह इम्प्रेशन दे कि आप जो बता रहे है, वह वास्तव मे दूसरो से उसे पता लग चुका है, फिर भी आप का बताना और चीज़ है। क्यो और चीज है, उस के अलग कारण हो सकते है—एक तो यह पत्रकार पर आप के विश्वास का सूचक है—और वह कृतज्ञ है कि आपने उसे विश्वास दिया, या वह प्रसन्न है कि आप ने उस की पात्रता को पहचाना। दूसरे बात जानना एक चीज है और प्रामाणिक ढंग से जानना दूसरी चीज़—आप के बताने मे वह प्रामाणिकता है। प्रश्न सारा यही है कि किस व्यक्ति को कितना 'फ्लैटर' करना उचित है—आज उस का जो पद है उसे ध्यान मे रखते हुए, या कल उस से जो काम निकालना है उसे देखते हुए। 'पम्प' कर के बात निकालने के लिए उसी अनुपात में पम्प 'फूँक भरना' भी तो होगा—यह पजाबी मुहावरा कितना मौजूँ है। और आप की चाटुकारिता को कोई कितना सीरियसली ले, यह आप की पोशाक पर निर्भर है—अगर आप अच्छे कपडे पहने हैं तो आप की की हुई प्रशसा ठीक है और स्वीकार्य है, आप पारखी पत्र-प्रतिनिधि हैं; अगर रद्दी कपडे पहने हैं तो वह काम निकालने के लिए की गयी झूठी खुशामद है, आप टुटपुँजिये रिपोर्टर हैं और तिरस्कार के पात्र। भुवन ने पत्रकारिता का पूरा नुस्खा सुन लिया था। बल्कि इसी में पैकिंग मे उसे देर हुई। फिर भी वह जैसे-तैसे आ कर रेखा के पास बैठ गया था।

"आप मेरी चिन्ता न कीजिए; मै प्रतीक्षा करने की आदी हूँ और यहाँ तो बहुत-सी दिलचस्प चीजे बिखरी हैं—" रेखा ने एक पुस्तक उठाते हुए कहा, "पीटर चेनी मैंने पढ़ा नही, सुना है बडी दिलचस्प कहानियाँ लिखता है।"

"जी हाँ। चन्द्र से सुना होगा आपने। या कि आप फौजदारी अदालत की रिपोर्टरी की उम्मीदवार है ?"

रेखा ने हँस कर किताब रख दी। भीतर से चन्द्रमाधव ने पुकारा, "मेरी साहित्यिक रुचि की बुराई कर रहे हो, भुवन ? लेकिन पीटर चेनी क्यो बुरा है ? और पीटर चेनी पढने वाले कम से कम दूसरो की नुकताचीनी तो नही करते, अपने खुश रहते है। और तुम्हारे साहित्य पढने वाले सुपीरियर लोग—सब को हिकारत की नज़र से देखते है। दोनो मे कौन अच्छा है, रेखा देवी ? कौन-सा दृष्टिकोण स्वस्थ है ?"

"ठीक है, मिस्टर चन्द्र, आप का दृष्टिकोण कलाकार का दृष्टिकोण है—सर्वस्वीकारी। आप के मित्र अलोचक है—आलोचना तो रचनाशक्ति की मृत्यु का दूसरा नाम है।"

भुवन ने फिर चौक कर रेखा की ओर देखा। क्या वह चन्द्रमाधव पर हँस रही है ? क्यों ? या कि दोनो पर ही हँस रही है ? रेखा ने उस की भौंचक मुद्रा को लक्ष्य किया और सहसा हँस दी। "आप ठीक सोच रहे है डाक्टर भुवन; मैं सिर्फ हँसी कर रही थी।"

भुवन ने पूछना चाहा, लेकिन किस की ? या किस-किस की ? पर कुछ बोला नही।

चन्द्रमाधव ने बाहर आ कर टाई सीधी करते हुए कहा, "अब मैं सब तरह तैयार हूँ—रेडीफॉर एनीथिंग।"

रेखा ने फिर चमकती आँखो से कहा, "हाँ, पीटर चेनी के एक दृश्य के लिए भी।"

चन्द्रमाधव ने बिना झेंपते हुए कहा, "हाँ।"

" 'सेटिंग, कार्लटन होटल का डाइनिंग रूम। भोजन करते-करते रेखा देवी औंधे-मुँह सूप प्लेट पर गिर गयी—हत्या के कारण का कोई अनुमान नहीं हो सका। लखनऊ के स्टार पत्रकार चन्द्रमाधव पड़ताल कर रहे हैं! प्रोफेसर भुवन भी घटनास्थल पर मौजूद थे'—लेकिन क्या सचमुच ? या कि तटस्थता से—"

"क्या कह रही हैं आप, रेखा देवी? ऐसी मनहूस कल्पना मत कीजिए।"

"मैं कहाँ? यह तो पीटर चेनी—"

"पीटर चेनी के लायक पात्र कार्लटन में ढेरों और हैं, आप को वह कष्ट नहीं देगा।"

रेखा ने कृत्रिम निराशा का भाव दर्शाते कहा, "तो मैं पीटर चेनी के लायक भी नहीं—"

भुवन अतिरिक्त सजगता से रेखा को देखने लगा था। मन ही मन उसने सहमत होते हुए कहा, "पीटर चेनी के लायक तो कदापि नहीं।" पर फिर किस के? हार्डी के? हाँ, ऐसी कठपुतली पा कर भाग्य भी अपना भाग्य सराहेगा। पर रेखा उतनी भोली नहीं है: उसमें एक बुनियादी दृढ़ता है जो—...दोस्तोएव्स्की? लेकिन क्या उस की चेतना वैसी विभाजित है—क्या उस में वह अतिमानवी तर्क-संगति है जो वास्तव में पागलपन का ही एक रूप है? प्राचीन ग्रीक ट्रैजेडीकार—एक अनाम समूचा देव-वर्ग... लेकिन रेखा में उतना अहं क्या है कि देवता उसे चुनें—कि वह चुनी जा कर कष्ट पावे? तब मार्त्र—क्षण की असीमता, यातना के क्षण की असीमता...निस्सन्देह असीम सहिष्णुता उस में है—व्यथा पाने की असीम अन्तःसामर्थ्य, लेकिन वह इसी लिए कि आनन्द की असीम क्षमता उस में है.. आनन्द की परा सीमा, यातना की परा सीमा—चुन सकते हैं उसे देवता, क्यों कि परा सीमाएँ उस में सोती हैं, नभाकांक्षी मानव, मृत्कामी देवता—ट्रैजेडी के सहज यान—इकेरस के पंख, प्रमाथ्यु की आग... ग्रीक ट्रैजेडी केवल अहं की ट्रैजेडी तो नहीं है, वह मानव की सम्भावनाओं की ट्रैजेडी है...

कुछ-कुछ यह अनुभव करते हुए कि बात बहुत देर से कही जा रही है और कदाचित् नहीं कहनी चाहिए, उसने कहा ही, "रेखा जी, चेनी के या किसी भी लेखक के पात्र होना क्यों चाहा जाय? हर किसी का अपना जीवन अद्वितीय होता है—"

"सो तो है। हम कदम-कदम पर अपनी अनुभूतियों की तुलना साहित्य के पात्रों से करते चलते हैं, पर हैं वे अद्वितीय और अद्वितीयता में ही वे हमारे निकट मूल्यवान् हैं। नहीं तो आदमी ऐसा अभागा भी हो जा सकता है कि किताबी पात्रों का जीवन ही जिये, उन्हीं की अनुभूतियाँ भोगे—ऐसे छायाजीवी भी होते हैं।"

न जाने क्यों, भुवन ने एक बार फिर चन्द्र की ओर देखा; उसने सहसा जाना कि वह चन्द्र को ध्यान से देख रहा है, मानो उस की रेखाओं से पूछ रहा है, "जिस अनुभूति की तुम रेखाएं हो, वह क्या सच है, मौलिक है, या कि छाया?" कोई शीशा आसपास नहीं था, नहीं तो कदाचित् वह अपना चेहरा भी देखने लगता।

रेखा ने पूछा, "कार्लटन में आर्केस्ट्रा भी होगा?" भुवन ने लक्ष्य किया कि विषय बदल दिया गया है।

उस रात स्टेशन से गाडी जान बूझ कर छोड आने के बाद, भुवन को अपने पर हल्की-सी खीझ आयी थी। क्यों वह गाडी छोड कर लौट आया? कुछ काम की क्षति नहीं हुई, ठीक है, पर एक निश्चय निश्चय होता है, अकारण बदलने से इच्छाशक्ति क्षीण होती है। यों क्षण की प्रेरणाओं पर अपने को छोड देने से आदमी शीघ्र ही आँधी पर उड़ता तिनका बन जाता है—क्योंकि प्रत्येक बार संकल्प शक्ति कुछ क्षीणतर हो जाती है और सहज प्रेरणा की मन्द हवा कुछ तेज हो कर आँधी-सी . . क्यों नहीं वह चला गया? रेखा न जाती तो न जाती—रेखा से उसे क्या?

और अपने कमरे में टहलते-टहलते वह सहसा निकल कर चन्द्रमाधव के कमरे में चला गया था। चन्द्र लेट गया था और सोने की तैयारी कर रहा था, पर भुवन ने बिना भूमिका के पूछा था, "चन्द्र, यह रेखा देवी कौन है, क्या है—मुझे उस की बात और बताओ, जो तुम्हें मालूम हो।"

चन्द्र ने एक लम्बे क्षण तक उस की ओर देखा। फिर कुछ मुस्करा

कर कहा था, "क्यों, ठेस खा गये, दोस्त? रेखा तुम्हारी केमिस्ट्री की इक्वेशन नहीं जो झट हल कर लोगे—बड़ा पेचीदा मामला है।"

"बकवास मत करो। मुझे उस से कोई मतलब नहीं है। सिर्फ एक दिलचस्प चरित्र है—मुझे बौद्धिक कौतूहल है, बस। बौद्धिकता से तुम्हारा छत्तीस का नाता है, यह जानता हूँ, पर तुम जैसा ढिलफेक स्वभाव मुझे नहीं मिला तो नहीं मिला, मैं क्या करूँ?"

"तैश में मत आओ, दोस्त," चन्द्र ने उठ कर बैठने हुए कहा था, "वह कुरसी खींच लो और बैठ जाओ।" भुवन के बैठ जाने पर, "हाँ, अब पूछो, क्या जानना चाहते हो?"

"जो बता दो : वह कौन है, क्या है, कहाँ की है, क्या करती रही है, क्या करती है, अकेली क्यों घूमती है—"

"रुको। इतना पहले बता लूँ तो और पूछना; नहीं तो मेरा सिर चकरा जायगा।"

लेकिन बता कर क्या बताया जा सकता है? स्वयं वही जब कहता है कि तथ्य और सत्य में अन्तर है, तब निरे तथ्य जान कर सत्य तक पहुँचने की व्यर्थ कोशिश वह क्यों कर रहा है? "सत्य अपने अन्तर की पीड़ा में जाना जाता है।" वही मानते हो, तो ठीक है; वही क्यों न परीक्षा कर के देखो?

तथ्य कुछ अधिक थे भी नहीं।

रेखा की आयु यही सत्ताईस के लगभग होगी; वह विवाहिता है, विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के दो-एक वर्ष बाद ही पति-पत्नी अलग हो गये थे। कारण कोई ठीक नहीं जानता, और रेखा से पूछने का साहस किसे है? कोई कहते हैं, विवाह से पहले रेखा का किसी से प्रेम था पर उस से विवाह हो नहीं सकता था; उसने बाद में दूसरा विवाह कर लिया तो मर्माहत रेखा ने उस के माता-पिता ने जो वर ठीक किया उसे चुपचाप स्वीकार कर लिया पर उसे वह दे न सकी जो पति को देना चाहिए; कोई यह कहते हैं कि पति की ही आदतें शुरू से खराब थीं और वह पत्नी

के प्रति अत्यन्त उदासीन था, मित्रों को ला कर घर छोड़ जाया करता था और स्वयं न जाने कहाँ-कहाँ जा रहता था—सच क्या है भगवान् जाने, पर छः वर्ष से दोनों अलग हैं, और तीन-चार वर्ष हुए पति एक विदेशी रबर कम्पनी में अच्छी नौकरी स्वीकार कर के मलय चला गया है; वहाँ उस के साथ मलय या एंग्लो-मलय या यूरोपियन-मलय मिश्र रक्त की कोई स्त्री भी रहती है। रेखा नौकरी करती है; पढ़ाती रहती है, फिर किसी रियासत में राजकुमारियों की गवर्नेस थी, वहाँ से हाल में अस्तीफा दे कर आयी है। अभी कुछ नहीं कर रही है लेकिन नौकरी की तलाश में है।

"और घर कहाँ है? माता-पिता हैं?"

"नहीं। पिता बड़े नामी डाक्टर थे; माँ भक्त थीं और मरीं तो बहुत-सी सम्पत्ति रामकृष्ण मिशन को छोड़ गयीं। वैसे शायद कश्मीरी हैं, पर दादा कलकत्ते में आ बसे थे और तब से तीसरी पीढ़ी बंगाली ही अधिक है—रेखा हिन्दी और बंगला दोनों बोलती है और बंगला संगीत में उस की अच्छी पहुँच है।"

"अच्छा? और?"

चन्द्रमाधव ने कहा, "और क्या? जो तुम पूछो सो बताऊँ?"

"तुम से परिचय कब से, और कैसे हुआ?"

"मुझ से!" चन्द्र ने तकिये के पास से टटोल कर सिगरेट का पैकेट निकाला, सिगरेट सुलगा कर, उठते हुए बोला, "मुझसे? तुम तो जानते हो, पत्रकार का परिचय हर किसी से होता है। समझ लो वैसे ही।"

"बनो मत! और ये सब बातें तुम्हें कैसे मालूम हुईं?"

"मैं पहले से जानता था। बल्कि सुन रखी थीं, इसी लिए कौतूहल अधिक था, जब भेंट हुई तो सोचा इस अद्भुत स्त्री से अवश्य परिचय करना चाहिए।"

"क्यों? और वह अद्भुत क्यों है?"

"यह मुझसे पूछते हो? देख कर ही नहीं छाप पड़ती कि यह स्त्री कुछ भिन्न है—असाधारण है? और क्यों की भली पूछी। जिस स्त्री का

इतिहास होता है, उस में किसे नहीं दिलचस्पी होती ?"

भुवन ने तनिक रुखाई से कहा, "हाँ जर्नलिस्ट को तो जरूर होनी चाहिए—"

"जर्नलिस्ट ही क्यों, हर किसी को होती है। तुम्हीं क्यों इतना जानने को उत्सुक हो ?"

"मैं तो जानने से पहले ही उत्सुक था, इतिहास जान कर तो नहीं हुआ—"

"मानते हो न ? तभी तो कहता हूँ वह असाधारण स्त्री है। तुम भी मानते हो, नहीं तो पूछते क्यों ? तुम्हें किसी स्त्री में दिलचस्पी हो, यह तो कभी देखा-सुना नहीं, कालेज में भी तुम गऊ प्रसिद्ध थे।" चन्द्र ज़ोर से हँस दिया।

भुवन ने अन्तिम बात को अनसुनी करते हुए कहा, "और क्यों दिलचस्पी है ? और यह जो इतिहास वाली बात है, उस का आकर्षण क्या निरी लोलुपता नहीं होती—अगर पहले से इतिहास है तो एक अध्याय शायद हम भी जोड़ लें, ऐसा कुछ लोभ ?'

"हो सकता है। आधुनिक समाज में कोई समझदार विवाहित से नहीं उलझता यह तो तुम जानते हो—उस में खतरा बहुत होता है। हाँ, विवाहिता मगर वियुक्ता की बात और है—उस में दोनों ओर के लाभ हैं। और यह जो लोभ की बात—"

"छिः, चन्द्र, क्या बात तुम करते हो ! यह आधुनिक समाज की नहीं, अठारहवीं सदी के यूरोप के समाज की मनोवृत्ति है—बल्कि उस समय के भी दरबारी समाज की।"

"अच्छा, अच्छा, गरम मत होओ मेरे दोस्त। और मुझे छिः-छिः कहने से क्या लाभ है—मैं तो हर किसी की बात कह रहा था, अपनी थोड़े ही ?"

"क्यों, तुमने अपनी दिलचस्पी की बात नहीं कही थी अभी ?"

"कही थी। पर वह बात और है। मैं तो रेखादेवी का बहुत सम्मान

करता हूँ। बल्कि वैसी स्त्री—" सहसा चन्द्र बात अधूरी छोड कर चुप हो गया।

"कहो, कहो—वैसी स्त्री क्या?"

"कुछ नही!" कह कर चन्द्र ने चुप लगा ली, और फिर भुवन के बहुत पूछने पर भी कुछ नही बोला।

अन्तिम दिन वे तीनों सिनेमा गये थे। यों शाम के शो मे भी जाया जा सकता था, पर एक बजे काफी हाउस मे मिलने की ठहरी थी और भुवन का प्रस्ताव था कि वहाँ से तीन बजे के शो मे चला जाय—ताकि शाम को थोडा घूमने का समय मिल सके।

/अंग्रेजी चित्र था, जिस मे एक दुर्घटना में नायक का स्मृतिलोप हो जाता है, और वह अपनी गृहस्थी की बात भूल कर पुनः प्रेम करने लगता है; नया संसार खडा कर लेता है, और फिर एक वैसी ही दुर्घटना देख कर उस की पहली स्मृति लौट आती है और नया स्मृति-संचय मिट जाता है।/ कहानी भी मार्मिक थी और अभिनय भी भावोद्रेलक, पर उसे ध्यान से देखते हुए भी भुवन मन-ही-मन सोचता जाता था कि इस की रेखा पर क्या प्रतिक्रिया हो रही होगी। क्योंकि सम्पूर्ण तटस्थ भाव से तो कुछ देखा नहीं जाता, हम अनजाने कथावस्तु पर अपना आरोप करते चलते हैं, या फिर अपने पर ही कथा की घटनाएं घटित करते चलते हैं—और मन की यह भी एक शक्ति है कि जरा से भी साम्य के सहारे वह सहज ही सम्पूर्ण लयकारी सम्बन्ध जोड लेता है। क्या रेखा अपने को अमुक स्थिति में देख रही है? क्या...बीच-बीच में वह खीझ कर अपने को झकझोर लेता कि नहीं, रेखा की बात वह नहीं सोचेगा, पर फिर थोडी देर मे वैसा ही प्रश्न उस के मन में उठ आता—अगर रेखा का पति—...

बाहर आ कर तीनों टहलते हुए गोमती की ओर निकल गये थे। पुल के पास घाट की सीढियों पर तीनों बैठ गये थे। चलते-चलते चित्र के विषय

से कुछ बात हुई थी, पर "अच्छा है" से अधिक रेखा ने कोई मत व्यक्त नही किया था; वह स्पष्ट ही कुछ अनमनी थी।

सहसा भुवन ने पूछा, "रेखा जी, आप गाती नहीं ?"

"गाती नहीं, यह तो नही कह सकती, पर गाना जानती नहीं हूँ।"

चन्द्र ने साभिप्राय भुवन की ओर देखा।

"आप की मातृभाषा तो बँगला है न ?"

रेखा ने एक बार दृष्टि उठा कर भुवन से मिलायी। उस मे बड़ा हल्का-सा अचम्भा था, और कुछ यह भाव कि आपने पूछा है तो उत्तर दे देती हूँ, पर अपने बारे मे प्रश्नो का उत्तर देने का मुझे अभ्यास नही। फिर उसने कहा, "उँ—हाँ, वही मेरी भाषा है।"

"तो बँगला मे ही एक गाना गा दीजिए न—मेरा यह आग्रह गुस्ताखी तो न होगा ?"

रेखा थोडी देर चुप रही। फिर धीरे-धीरे बोली, "नदी का किनारा है गान यहाँ होना ही चाहिए— आप की मान्यताएँ भी इतनी रोमांटिक होंगी ऐसा नही समझती थी।"

भुवन ने आहत भाव से प्रतिवाद करना चाहा, पर बोला नही। चन्द्र मानो आँखो से कह रहा था, "तुम हो दुस्साहसी, पर देखें तुम्हारी बात सुनती है कि नहीं—मेरी तो कभी नही सुनी।"

सहसा दोनो निश्चल हो गये, क्योंकि रेखा कुछ गुनगुना रही थी। फिर उसने धीमे किन्तु स्पष्ट स्वर मे गाना शुरू किया :

आमार रात पोहालो शारद प्राते—
आमार रात पोहालो।
बाशी तोमाय दिये जावो काहार हाते—
आमार रात पोहालो।
तोमार बूके बाजलो धुनि, विदाय गाँथा आगमनि,
कत ये फाल्गुणे श्रावणे कत प्रभाते राते—
आमार रात पोहालो।

ये कथा रय प्राणेर भीतर अगोचरे
गाने-गाने निये छिले चूरि करे।
समय ये तार हल गत, निशि शेषे तारार मत,
तारे शेष करे दाओ शिउलि फूलेर मरण साथे—
आमार रात पोहालो!

अन्तिम पंक्ति गाते-गाते ही वह उठी और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगी, अन्तिम स्वर उस बढ़ती हुई दूरी में ही खो गये और ठीक पता न लगा कि गान पहले बन्द हुआ कि सुनना। नीचे पहुँच कर रेखा पानी के निकट खड़ी हो गयी, एक बार मानो हाथ से पानी हिलाने के लिए झुकी, पर फिर इरादा बदल कर सीधी हो गयी। भुवन और चन्द्र दोनों ऊपर बैठे रहे। पुल के ऊपर दो-तीन बन्दर आ कर बैठ गये और कौतूहल से दोनों की ओर देखने लगे। घिरती साँझ के आकाश के पट पर बन्दरों के आकार अजब लग रहे थे। चन्द्र ने पुकारा, "रेखा जी, अब चला जाय?"

रेखा ने घूमते हुए आवाज दी, "आयी।" और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आपने हमें यह कहने का मौका ही नहीं दिया कि आप बहुत अच्छा गाती हैं—"

"तो आप को आभार मानना चाहिए कि अनावश्यक शिष्टाचार से मैंने आप को बचा लिया! जैसा गाती हूँ, वह मैं जानती हूँ। सीखना जरूर चाहती थी, पर—" हाथों की एक अस्पष्ट मुद्रा ने बाकी वाक्य का स्थान ले लिया।

उस के बाद स्टेशन पहुँचने तक एक अजब-सा दुराव सब के बीच में आ गया था। सभी चुप रहे थे; चलने से कुछ पहले भुवन सामान देखने का बहाना कर के अलग हट गया था कि उस की वजह से वह खिंचाव हो तो दूर हो जाय; पर जब वह बाहर घूम-घाम कर सीढ़ी पर पैर पटकता हुआ लौटा, तब भी दोनों चुपचाप ही बैठे थे, बल्कि तनाव कुछ अधिक ही जान पड़ रहा था— चन्द्र के चेहरे पर कुंठित-सा भाव था, और रेखा के चेहरे

पर एक अनमनापन, आँखों में एक असीम दूरी, मानो वह बहुत, बहुत दूर कहीं पर हो...

भुवन ने कुछ ऊँचे स्वर से कहा, "और आज भी भीड़ हुई तो? मैं तो जैसे-तैसे जाऊँगा ही—चाहे फुटबोर्ड पर लटकते हुए ही—"

रेखा ने कहा, "नहीं, आज मैं आप को रोकने का आग्रह नहीं करूँगी—कल भी आप रुक गये इस के लिए बहुत कृतज्ञ हूँ।"

भुवन ने मन-ही-मन सोचा, "कल भी आपने कौन-सा आग्रह किया था—" पर प्रत्यक्ष उसने नहीं कहा। बोला, "कृतज्ञ मुझे—हम दोनों को होना चाहिए कि आप रुक गयीं—"

चन्द्र ने प्रकृतस्थ हो कर कहा, "हाँ, और नहीं तो क्या। बल्कि मुझे आप दोनों का—"

"चलिए, हम सब के सब कृतज्ञ हैं।" रेखा मुस्करा दी। "अब चलें—राह में मेरा सामान लेते चलेंगे—"

भुवन अपने कमरे की ओर सामान उठाने चला। पीछे उसने सुना, रेखा पूछ रही है, "आप के मित्र को इलाहाबाद में बहुत जरूरी काम है? या घर पहुँचने की जल्दी है—बीवी—"

वह सहसा ठिठक गया। चन्द्र ठठा कर हँसा। "अरे, भुवन तो निबरा है, उसे कहाँ पहुँचने की जल्दी नहीं है।" भुवन आगे बढ़ गया। रेखा ने फिर कहा, "अकेले हैं, तभी लीक पकड़ कर चलते हैं।"

इस वाक्य का कुछ भी अभिप्राय भुवन नहीं समझ सका—कोई भी अर्थ न उस पर लागू होता था, न रेखा या चन्द्र पर ही किसी तरह लगाया जा सकता था। चन्द्र ने फिर क्या कहा, यह उसने नहीं सुना।

दस बजे रात के गाड़ी लखनऊ से छूटी थी। रेखा के डिब्बे के सामने ही उस ने चन्द्रमाधव से विदा ली थी, और उसे वहीं छोड़ कर अपने डिब्बे की ओर चला गया था। रेखा का डिब्बा आगे की ओर था; गाड़ी जब चली तब प्लेटफार्म पर खड़ा चन्द्र फिर उस के सामने आ गया और उस ने हाथ हिला कर फिर विदा माँग ली।

उस के बाद अगर वह ऊँघता रहता, और प्रतापगढ़ तक फिर रेखा को देखने न जाता, तो कोई असाधारण बात न होती—वैसा कुछ उस से अपेक्षित नहीं हो सकता था। बल्कि प्रतापगढ़ में भी अगर न उतरता, तो बहुत अधिक चूक न होती, चाहे रेखा ही उसे वहाँ देख कर नमस्कार करती हुई चली जाती। रेखा की यात्रा का या उस यात्रा में उस की सुरक्षा या सुविधा का कोई दायित्व भुवन पर कैसे था?

पर गाड़ी पैसेंजर थी, हर स्टेशन पर रुकती थी। ऊँघने की चेष्टा बेकार थी—यों भुवन ने उधर ध्यान भी नहीं दिया। पहले ही स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो वह रेखा के डिब्बे पर पहुँच गया; दरवाजे के पास ही रेखा बैठी थी और उस की आँखें बिल्कुल सजग थीं और शायद बाहर अन्धकार की ओर देखती रही थीं।

भुवन ने कहा, "आप काफी सफर करती हैं?"

"हाँ, अधिक सफर ही करती हूँ। इधर के बहुत कम वेटिंग रूम हैं जो मेरे अपरिचित होंगे। जब मुसाफिर नहीं होती तब मेहमान होती हूँ—और दोनों में कौन अधिक उखड़ा है यह कभी तय नहीं कर पायी!"

"लेकिन उखड़ापन तो भावना की बात है, रेखा जी! मानने से होता है। व्यक्ति की जड़ें घरों में नहीं होतीं—समाज-जीवन में होती हैं—नहीं? और यायावरों का भी अपना समाज होता है—"

"तो समझ लीजिए कि मैं ज्ञान के तरु की तरह हूँ—ऊर्ध्व-मूल—मेरी जड़ें आकाश में खोयी फिरती हैं! लेकिन यह न समझिए कि मैं शिकायत कर रही हूँ—"

गाड़ी चल दी थी। अगले स्टेशन पर भुवन ने फिर कहा था, "आप जैसा व्यक्ति भटकता है तो यही मानना चाहिए कि स्वेच्छा से, पसन्द से भटकता है—लाचारी तो समझ में नहीं आती। और स्वेच्छा का भटकना तो भीतरी शक्ति का द्योतक है।"

रेखा हँस पड़ी। "भटकने से ही शक्ति आती है, डाक्टर भुवन! क्योंकि जब मिट्टी में बाँधने वाली जड़ें नहीं रहतीं, तब हवा पर उड़ते हुए जीने के

लिए कहीं-न-कहीं से और साधन जुटाने पडते है। स्वेच्छा से भटकना ? हाँ, इस अर्थ मे जरूर स्वेच्छा है कि पडा-पडा पिस क्यो नही जाता, अँधेरे गर्त मे धँस क्यो नहीं जाता, हाथ-पैर क्यो पटकता है ?"

"मै आप-को क्लेश पहुँचाना नहीं चाहता था, रेखा जी—मेरा मतलब था—व्यक्तित्व जडे तो फेंकने लगता है बिल्कुल बचपन से और—और—" वह कुछ झिझका, "आप का भटकना—"

"कह डालिए न, आप का भटकना पाँच-छः वर्ष का ही है; आप जानते तो होंगे कि मेरा विवाह हुए आठ वर्ष हो गये और विवाह के दो वर्ष बाद से—"

भुवन चुप रह गया।

"आप की बात ठीक है। कुछ सम्बन्ध बने भी रह सकते थे, और उन्हे काट कर वह निकलना स्वेच्छा से ही हुआ। पर—जडो का ही रूपक लिये चले तो—यह आप नही मानते कि कुछ जड़े वास्तव मे जीवन का आधार होती हैं और सतही जडों का बहुत बडा जाल भी एक गहरी जड़ की बराबरी नही करता ?"

"हाँ—"

"तब एक जड़ के कट जाने से भी पेड़ मर सकता है—और मरे नही तो भी निराधार तो हो ही सकता है। मै मरी नहीं—"

गाडी फिर चल दी। इस समय शायद भुवन को गाडी के चल देने से तसल्ली ही हुई, क्योंकि ऐसे मे क्या कहे वह सोच नहीं सकता था।

बात ज्यो-ज्यो आगे चलती थी, अगले स्टेशन पर फिर न जा पहुँचना उतना ही अनुचित जान पडता था; अनुचित ही नहीं, भुवन स्वयं भी बात आगे सुनने को उत्सुक था।

अगले स्टेशन पर रेखा ने कहा, "डाक्टर भुवन, मै अपनी बात के लिए क्षमा चाहती हूँ। इस तरह की बात करने की मैं बिल्कुल आदी नहीं हूँ, आप मानें। पर रेल का सफर शायद इस तरह के आत्म-प्रकाशन को सहज बनाता है—चलती गाडी मे हम अजनबी को भी बहुत-सी ऐसी निजी

बातें कह देते हैं जो अपने ठिकाने पर घनिष्ठ मित्रों से भी न कहें।" वह कुछ रुकी। फिर बोली, "यह भी शायद जड़ों वाली बात का एक पहलू है, चलती गाड़ी में मुझ-से व्यक्ति को एक स्वच्छन्दता का बोध होता है जब कि स्थिरता की सूचक किसी जगह में मुझे अपना बेमेलपन ही अखरता रहता और मैं गूँगी हो जाती। इस लिए मेरी बात पर ध्यान न दें—यह चलती बात है।" अपने श्लेष पर वह स्वयं हँस दी। भुवन ही नहीं हँस सका।

रेखा ने फिर कहा, "यों भी शायद मैं एग्जैजरेट कर रही हूँ—उतना गहरा आघात शायद वह नहीं था। वैसा कहना दोतरफा अन्याय है। असल में जहाँ मैं आ पहुँची हूँ, उस का कोई एक कारण नहीं है। मेरा सारा जीवन ही कारण है। और यह कहने से कुछ बात नहीं बनती—क्योंकि 'जीवन का सारा जीवन ही कारण है' यह कहने के क्या मानी हैं?"

"मानी हैं," भुवन इतना ही कह पाया; गाड़ी फिर चल दी। और अगले स्टेशन पर उसने देखा कि रेखा का चेहरा इतना बदला हुआ है कि बात का सूत्र फिर उठाने का साहस ही उसे नहीं हुआ।

रेखा ने कहा, "एक बात पूछूँ, डाक्टर भुवन? बुरा तो न मानोगे? आपने शादी क्यों नहीं की?"

भुवन अचकचा गया। पैंतरा काटता हुआ बोला, "पहले तो डाक्टर कहना आवश्यक नहीं है रेखा जी; नहीं तो मुझे लगेगा कि श्रीमती रेखा देवी न कहने में मुझ से शुरू से चूक होती रही है। दूसरे—कोई काम न करने के लिए क्यों कारण ढूँढा जाय? कारण तो कुछ करने के लिए होना चाहिए, न करना तो स्वयंसिद्ध है।"

"हाँ, यों तो ठीक है, पर शादी के बारे में नहीं। वह तो धर्म है न—शास्त्रोक्त भी, स्वाभाविक भी—"

"रात के दो बजे शास्त्रार्थ करने लायक ज्ञान तो मुझ में है नहीं। और कहीं अस्वाभाविकता अपने जीवन में अखरी हो, ऐसा भी नहीं है—"

"अरे हाँ, मैं भी कैसा अत्याचार कर रही हूँ यह—बस अब अगले स्टेशन पर आप नहीं आवेंगे। मैं प्रतापगढ़ स्वयं उतर जाऊँगी। आप जा

कर आराम कीजिए डाक्टर—भुवन जी !"

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप ने जिसे अनावश्यक शिष्टाचार कहा था, उस के अन्तर्गत क्या यह बात भी नहीं आती ?"

अगला स्टेशन प्रतापगढ था। यहाँ तो दस बारह मिनट गाड़ी ठहरेगी। भुवन लपक कर पहुँचा कि सामान उतरवा दे; पर यहाँ तक आते डिब्बे की सब मुसाफिरों पर ऐसी शिथिलता छा गयी थी कि सब अपने-अपने स्थान पर पोटलियाँ-सी पडी थीं, और ऊपर की बर्थ से सामान उतार लेने में कोई अडचन या झिझक नहीं हो सकती थी। भुवन के पहुँचने तक रेखा ने सामान उतार लिया था, एक कुली भी आ गया था।

रेखा ने कहा, "इस स्टेशन पर तो आप के न आने की बात थी ?"

"न आता तो आप 'मिस' न करतीं, यह जानता हूँ; समझ लीजिए कि यह भी फालतू शिष्टाचार है—"

"जो आप अपने सौजन्य के साथ रूँगे में दे रहे हैं।" रेखा हँसी।

कुली ने सामान उठा लिया था। रेखा ने कहा, "वेटिंगरूम में ले चलो, हम आते हैं।" कुली चला गया।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप से भेंट कर के मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा लखनऊ का प्रवास बड़ा सुखद रहा। इस बात को आप शिष्टाचार ही न मानें—" फिर तनिक-सा रुक कर, "सुखद शायद ठीक शब्द नहीं है—किन्तु ठीक शब्द तत्काल मिल नहीं रहा है, सोच कर शायद ढूँढ निकालूँ।"

रेखा ने गम्भीर हो कर कहा, "भुवनजी, मैं भी आप की कृतज्ञ हूँ। आपने इस वापसी की यात्रा को भी प्रीतिकर बना दिया। बल्कि मैं सोचती हूँ, यह यात्रा कुछ और लम्बी हो सकती थी।" फिर कुछ मुस्करा कर, "बात-चीत का यह इंटरमिटेंट तरीका कुछ बुरा नहीं है—ये बीच-बीच में ब्रेक अपने-आप में एक तटस्थता दे देने वाले हैं, फिर चाहे बात-चीत कोई कैसी ही करे। मैं सोचती हूँ मुझे कभी ईसाइयों की तरह कनफेशन करना हो तो गिरजे में जा कर नहीं, रेलगाड़ी में ही करूँ।"

भुवन ने भी हँस कर कहा, "और कनफेसर मैं होऊँ—मुझे विश्वास है कि मेरा काम बहुत हल्का रहे। आपने ऐसे बहुत अधिक कर्म किये होंगे जिन का आत्मा पर बोझ हो, ऐसा नहीं लगता।"

रेखा जोर से हँस दी। अँग्रेज़ी में उसने एक पंक्ति कही, जिस का अर्थ था 'कितना छल-रूपी होना है पापी!' फिर सहसा स्वर बदल कर गम्भीर हो कर उसने पूछा, "अच्छा सच बताइये, मैंने आप के इलाहबाद जाने में जो एक दिन देर कर दी, उस के लिए आप नाराज़ तो नहीं हैं न?"

अब भुवन हँसा। "वह बात अभी तक आप को याद ही है। मुझे कहीं पहुँचना नहीं था, और एक दिन जो अधिक रह गया वह और भी अच्छा बीता—नाराजी का प्रश्न ही कैसे उठता है? कृतज्ञ—"

"नहीं, मुझे बहुत डर लगा रहता है। जो रास्ते वाले हैं उन्हें रास्ते से एक इन्च भी इधर-उधर नहीं ले जाना चाहिए—मेरी बात तो दूसरी है, मेरे आगे रास्ता ही नहीं है।"

भुवन ने कहा, "स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं? आप समर्थ हैं, रास्ता बनाती चलती हैं, हम दूसरों की बनायी हुई लीकें पीटते हैं—"

रेखा ने जोर दे कर कहा, "नहीं, यह मेरा आशय बिल्कुल नहीं था।"

भुवन को रेखा की शाम को कही हुई बात याद आ गयी—"अकेले हैं, तभी लीक पकड़ कर चलते हैं।" उसने चाहा, अभी पूछ ले कि रेखा का क्या अभिप्राय था। पर वह बात उसे नहीं. चन्द्रमाधव को कही गयी थी, उसे सुननी भी नहीं चाहिए थी। उसने पूछा, "तब कुछ स्पष्ट कर के कहिए न?"

"कुछ नहीं। दूसरों की बनायी हुई लीकों की बात मैं नहीं सोच रही थी। व्यक्तित्व की अपनी लीकें होती हैं—एक रुझान होता है। और उस के आगे, व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में जो समझता है, जो कल्पना करता है, मनसूबे बाँधता है, उन से भी तो एक लीक बनती है—लीक कहिए, चौखटा कहिए, ढाँचा कहिए। या कह लीजिए दुनिया में अपना एक स्थान। मेरा यही मतलब था। आप के सामने—ऐसा मेरा

अनुमान है—भविष्य का एक चित्र है, कहाँ मंजिल है, ठिकाना है। इस लिए रास्ता भी है—"

"रास्ते तो कई हो सकते हैं, और शार्टकट होते नहीं—"

"शार्टकट नहीं होते, पर कई रास्ते वाला तर्क बड़ा खतरनाक होता है, भुवन जी; आप के सामने एक रास्ता है, वह जिस पर आप हैं। दूसरे रास्ते हो सकते है पर चलता रास्ता एक ही है—जिस पर आप हैं। चलना तभी सम्भव है।"

गार्ड ने सीटी दे दी थी। गाडी भी सीटी दे चुकी थी। भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप के व्यक्तित्व को देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि आप के सामने रास्ता नहीं है—आप का ऐसा स्पष्ट सुनिश्चित, रूपाकार-युक्त व्यक्तित्व है कि—" वह शब्दों के लिए कुछ अटका, तो रेखा ने कहा, "आप चल कर गाडी पर सवार हो जाइये, फिर आगे बात होगी।"

भुवन ने कहा, "अभी चलने में बहुत देर है।" फिर कुछ शरारत से एलियट की पंक्तियाँ दुहरा दी;

"बिट्वीन् द आइडिया
एंड द रिएलिटी
बिट्वीन द मोशन
एंड द एक्ट
फाल्स द शैडो
फार दाइन इज द किंग्डम्—"

रेखा हँसी, कुछ बोली नहीं। भुवन ने कहा, "लेकिन मेरा सवाल बीच ही में रह जाता है—आप के पास ऐसी स्पष्ट प्रखर दृष्टि है—"

"कि मुझे सब रास्ते एक साथ दीखते हैं।" रेखा बात काट कर हँस पड़ी। "और हर रास्ते के आगे एक मंजिल भी दीखती है, जिसे मरीचिका मानना कठिन है।" वह तनिक रुकी, फिर गम्भीर हो कर उस ने कहा, "और इसी लिए सब मंजिलें झूठ हो जाती हैं, और कोई रास्ता नहीं रहता। मैं सचमुच कहीं भी पहुँचना नहीं चाहती—चाहना ही नहीं

चाहती। मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नहीं है, केवल क्षण और क्षण और क्षण का योगफल है—मानवता की तरह ही काल-प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति-सत्य है, वास्तविकता क्षण ही की है। क्षण सनातन है।"

भुवन चुपचाप रेखा का मुँह ताकता रहा। रेखा जैसे दूर कहीं से कुछ गुनगुना उठी, भुवन ने कान दे कर सुना, वह लॉरेंस की कुछ पंक्तियाँ दुहरा रही थी।

"डार्क ग्रासेज अंडर माइ फीट
सीम टु डैव्ल् इन मी
लाइक ग्रासेज इन ए ब्रुक।
ओः, एंड इट इज स्वीट टु बी
आल दीज थिंग्स, नॉट टु बी
एनी मोर माइसेल्फ,
फार लुक
आई एम वेयरी आफ माइसेल्फ!"

रेखा का स्वर भुवन स्पष्ट नहीं सुन सकता था और शब्द छूट जाते थे, पर कविता उस की पढ़ी हुई थी और वह बिना पूरा सुने भी साथ गुनगुना सका; लेकिन रेखा के पढ़ने में कितनी एकात्मक थी उन पंक्तियों के आशय के साथ—मानो सचमुच ही भुवन देख सकता, वहाँ रेखा नहीं, घास की झूमती हुई पत्तियाँ हैं—पत्तियाँ भी नहीं, पानी में पड़ी हुई पत्तियों की परछाइयाँ...उसे और किसी कवि की कविता याद आयी जिसने कहा है, 'सरोवर के पानी में झाँक कर जो घास और शैवाल देखता है, वह भगवान् का मुँह देखता है, और जो अपनी परछाईं देखता है वह एक मूर्ख का मुँह देखता है'—और उसने सोचा, इस समय निस्सन्देह रेखा मूर्ख का मुँह नहीं देख रही है, यद्यपि भगवान् का साक्षात् वह कर रही है या नहीं, वह—

ठीक इसी समय रेखा ने उस की कुहनी पकड कर उसे ठेलते हुए कहा था, "अरे, आप की गाडी तो जा रही है—" और उसने मुड कर देखा था कि सचमुच, पर उस का डिब्बा, जो पीछे था, अभी जहाँ वे खडे थे वहाँ से गुजरा नही था; उसने कहा था, "आप चिन्ता न करें—" और सवार हो गया था, कब रेखा ने उस की कुहनी छोडी थी इस का उसे ठीक पता नही था—तत्काल ही, या जब उसने डिब्बे का हैंडल पकड कर पटरी पर पैर रखा था और गाडी की गति ने उसे खींच लिया था तब, उसने यही देखा था कि रेखा का हाथ अभी वैसा ही ऊपर उठा हुआ है, उँगलियो की स्थिति वैसी ही अनिश्चित है जैसे किसी एक क्रिया के पूरी होने के बाद दूसरी क्रिया के आरम्भ होने से पहले होती है—सकल्प-शक्ति की उस जड़ अन्तरावस्था में।

और ठीक उस के बाद उस ने सहसा जाना था कि वह भीतर कहीं विचलित है, और उस की कुहनी चुनचुना रही है, और उस का हाथ उसका अपना अवयव नहीं है, और सब पर्याय विपर्यय है और आसपास सब कुछ एक गोरखधन्धा है जिस का हल, कम-से-कम उस समय, उसे भूल गया है—और गोरखधन्धे का हल न जानने मे उतनी छटपटाहट नही होती जितनी जानते हुए भी उस तक न पा सकने मे......

पटरी के मोड़ पर रेखा गाड़ी की ओट हो गयी थी; भुवन अपना हाथ देखता रह गया था। तभी एक चिडचिड़े स्वर ने उसे वापस, ठोस धरती पर ला गिराया था।

क्षितिज मे फीका-सा रग भरने लगा था; सप्ताह भर की घटनाओं का —यदि घटना उन्हे कहा जा सकता है—पर्यवलोकन कर के भुवन फिर वहीं का वहीं आ गया था। 'तथ्य और सत्य : सत्य वह तथ्य है जिस से रागात्मक लगाव—' उँह, सब बाते हैं, तथ्य कि सत्य यह कि फाफामऊ स्टेशन आ रहा है, आगे गंगा है जिस का पट इस धुँधली रोशनी में मुकुर-सा चमकता होगा—गंगा, प्रयाग की गंगा—

भुवन ने एक लम्बी साँस ली, फिर अपनी चढ़ी हुई आस्तीन नीचे

ली—चाहे हल्की-सी ठंड से बचने से लिए, चाहे कुहनी पर की
ो छिपा या मिटा देने के लिए। खडे हो कर उसने एक अँगडाई
इलाहाबाद वह नही ठहरेगा, वापस चला जायगा; छुट्टी के दो-चार
ाकी हैं तो क्या हुआ।
ा कि और कही हो आये—बनारस, सारनाथ—मथुरा-आगरा-दिल्ली;
मे कई मित्र हैं, गौरा के माता-पिता है, उस के प्रोफेसर भी आज-
—
नहीं, क्या होगा कहीं जा कर, इलाहाबाद से सीधे वापस, अपनी
सी जगह अच्छी है, कुछ पढना-लिखना होगा—
"अकेले है न, तभी लीक पकड कर चलते है।"
खडखडाहट—यह गंगा का पुल आ गया। दूर कहीं पर अभी दीखते
धुँधले-से भोर के दीप ?
एक दिगन्तदरशी प्रवाह, उस मे छोटे-छोटे द्वीप—मानो तैरते दीप—
एक बडी, अँधेरी, रवहीन तरग—नही, नहीं, नही !

चन्द्रमाधव

स्टेशन से चन्द्रमाधव की घर जाने की इच्छा नही हुई। हजरत-गंज की सडक पर टहला जा सकता था, और रात के दस बजे वहाँ चहलकदमी करते नजर आना बुरा नहीं है, उस से प्रतिष्ठा बढती ही है—पर अकेले टहलना चन्द्र की समझ में कभी नहीं आया—कोई बात है भला! अकेले टहलते है वह जो किसी की ताक में रहते हैं—बल्कि वे भी अकेले नहीं टहलते, जैसे कि जिन की ताक मे वे डोलते है वे भी अकेली कम ही नजर आती हैं। अकेले टहलते है पागल—या कवि, जो असल में पागल ही होते है पर रेस्पेक्टेबल होने के लिए जीनियस का ढोंग रचते है। शब्दों पर अधिकार—रचना–हुँह, वह अधिकार तो पत्रकार का है, वही असल रचियता है, स्रष्टा है। कुछ बात ले कर बात बनाना भी कोई बात है भला? कला वह जो न-कुछ को ले कर बतगड़ खडा कर दे, सनसनी फैला दे, दंगे-बलवे-इनकलाब करवा दे! कभी किसी कवि ने, कलाकार ने इनकलाब नहीं कराया, जर्नलिस्ट ही अपनी मुट्ठी मे इनकलाब किये फिरता है। चन्द्र ने मन-ही-मन जरा सुर से कहा, 'मैं मुट्ठी मे इन्क्लाब लिये फिरता हूँ'–और फिर अवज्ञा मे अपने को ही मुँह बिचका दिया। फिर उसने सोचा, मैं बराबर ही अपने को ही मुँह बिचकाता आता हूँ—दुनिया मेरे बनाये या चाहे ढंग से नहीं चलती तो दुनिया मुझे मुँह बिचका कर चली जाती है, मै भला क्यों अपने को मुँह बिचकाता हूँ? उस ने जेब टटोला, हाँ सिगरेट थे अभी; एक

सिगरेट सुलगा कर लम्बा कश खींचा, मुँह गोल कर धुएँ की पिचकारी छोड़ी—यह धुआँ अगर वैसा ही जमा-का-जमा तीर-सा जाता, हवा को छेद देता, तो उसे कुछ सन्तोष होता, पर वह बिखर गया, कमबख्त उड़ कर उसी की आँखों मे आ कर चुभने लगा। चन्द्र ने रिक्शावाले से कहा "सिनेमा ले चलो।"

"कौन से सिनेमा, हुजूर? मेफ़ेयर?"

"हाँ।" चन्द्रमाधव बिना सोचे कह गया।

फिर सहसा उसे याद आया, मेफ़ेयर मे तो वह आज ही मेटिनी देख कर गया है, बोला, "नहीं, मेफ़ेयर तो हम दिन मे गये थे। और कहीं ले चलो—"

रिक्शावाले ने कहा, "एल्फ़िन्स्टन मे 'जवानी की रीत' लगा है—वहाँ जाइयेगा?"

"अच्छा वहीं चलो।"

रिक्शावाला बढ़ चला। धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाता वह पैडल फेंकता चला जा रहा था, उस की गति कुछ तेज हो गयी थी। चन्द्र ने सोचा, सिनेमा मैं जा रहा हूँ, मस्त यह हो रहा है। इसी तरह लोग दूसरों के मजे में मस्त दिन काटते चले जाते हैं—क्या जिन्दगी है! जैसे दूसरे के घर से सवेरे अस्तव्यस्त निकली अलसाती सुन्दरी को देख कर कोई खुश हो ले। उस का मुँह कड़ुवा हो आया—हुँह, सीला हुआ सिगरेट है! उसने सिगरेट निकाल कर फेंक दिया, एक ओर झुक कर जोर से थूका।

पुराने जमाने में प्रतिनिधियों की मारफ़त शादी हो जाती थी—वर जहाँ खुद नहीं जा सकता था प्रतिनिधि भेज देता था। क्या बेहूदगी है। प्रातिनिधिक शादी हो सकती है तो प्रातिनिधिक सुहागरात—! पर यहाँ भी तो राजा लोग अपनी रानियों को नियोग के लिए भेजा करते थे ऋषियों के पास—वह भी तो प्रातिनिधिक— ..उसे असल मे ऋषि होना चाहिए था—पुराने जमाने का; पर कमबख्त नये जमाने का महन्त भी तो न हुआ—हो गया स्पेशल रेप्रेज़ेंटेटिव एक अखबार का। जाट के कोटे की

तरह 'माँगा था नीचे, दे दिया ऊपर !' दुनिया मे इतना कुछ होता है, उसी के साथ कुछ नहीं होता; वह केवल खबरें पाता और देता है, टिप्पणी करता है—टिप्पणी भी नहीं, दूसरो की टिप्पणियो का सग्रह करता है—

रिक्शा रुक गया। सामने एल्फिन्स्टन की रंगीन बत्तियाँ थी, एक बड़े भारी पोस्टर पर वही परिचित तिरछी खडी कोई 'लड़की', वही परिचित कन्धे पर से झाँकता हुआ 'लड़का'—पोस्टर मे नहीं आया, लेकिन दाहने को जरूर एक पेड़ की शाख होगी, जिस पर बडा-सा मैग्नोलिया का फूल होगा शायद कागज़ का, या दो शाखो पर दो फूल भी हो सकते हैं, और लडकी-लड़के के तुक-ताल बँधे फ्लर्टेशन में बीच-बीच मे दोनो पास-पास लाये जायेंगे और फिर दूर हट जायेगे, छुएँगे नही, क्योंकि सेंसर के नियम मे चुम्बन अभारतीय है, चाहे मुँह से सटा और न्योतता मुँह पाँच मिनट तक स्क्रीन पर स्थिर खड़ा रहे, और चवन्नी वाले सिटकारियाँ मारते और फब्तियाँ कसते रहे !

चन्द्रमाधव ने जेब मे हाथ डाल कर पैसे निकालते हुए बडे रूखे स्वर मे रिक्शावाले से कहा, "लो !"

उस की रुखाई से रिक्शावाले ने समझा कि बाबू साहब थोडे पैसे दे रहे होंगे, पर हथेली पर एक-एक रुपये के दो नोट देख कर वह चौंक गया; फिर तत्परता से हाथ उठा कर बोला, "सलाम हुजूर !" उदारता के लिए धन्यवाद देने का और तरीका ही उसे नहीं आता था।

पर चन्द्रमाधव में उदारता नहीं थी। उसने जवाब मे गुर्रा कर कहा, "हूँ !" मानो कह रहा हो, 'जा, माले, तू भी प्रातिनिधिक फ्लर्टेशन कर ले—और क्या तेरे भाग्य मे बदा है !'

फिर वह सिनेमा के पोर्च के अन्दर घुस गया।

तथ्य और सत्य के बारे मे चन्द्रमाधव और भुवन की राय नहीं मिलती। कालेज ही से इस बात को ले कर उन मे बहस होती आयी है। रागात्मक

लगाव की बात तो दूर रही—तथ्य ही लोगों के अलग-अलग होते हैं। इतिहास की घटनाओं से तो हमारा रागात्मक सम्बन्ध नहीं होता—फिर क्यों दो इतिहासकार दो इतिहास लिखते हैं ? इस लिए कि दोनों भिन्न-भिन्न तथ्य चुनते हैं। रागात्मक लगाव वाली बात मान लें, तो जो सत्य है, वही झूठ है, क्योंकि वह पूर्वग्रह-युक्त तथ्य है—और ऐतिहासिक तथ्यों पर पूर्वग्रह लादना ही सारे झूठ की जड़ है और ऐसे झूठे इतिहासों ने ही दुनिया में फूट और लड़ाई के विष-बीज बोये हैं—...

चन्द्रमाधव के जीवन के ही तथ्य ले लें। भुवन को यही दीखता है कि अच्छी तरह पास कर के वह विदेश चला गया था, विदेशों में बहुत घूमा है और सदा सनसनी की खोज में—भुवन के मत से उस का सारा जीवन सनसनी की एक लम्बी खोज है, और वह यह भी जरूर सोचता होगा कि निरी सनसनी की खोज से व्यक्ति की सूक्ष्मतर संवेदनाएँ भोंड़ी हो जाती हैं और वह सिवाय तीखी उत्तेजना के कुछ समझता ही नहीं, लिहाजा चन्द्रमाधव भी एक तरह का नशेबाज है और जीवन की महत्वपूर्ण चीजों को नहीं पहचान सकता। भुवन का दुःख-पूजा का एक सिद्धान्त है। पीड़ा से दृष्टि मिलती है। इस लिए आत्म-पीडन ही आत्म-दर्शन का माध्यम है ? क्या दलील है!

भुवन अकेला है; घर-गिरस्ती की चिन्ताएँ उसने जानी नहीं, दुःख की दूर से रोमांटिक कल्पना की है, इसी लिए बातें बना सकता है। अगर सचमुच दुःख उस ने जाना होता—दुःख कैसे तोड़ कर, चूर-चूर कर के रख देता है, दृष्टि देना तो क्या, आँखों को अन्धा कर के, पपोटे निकाल कर उन में कीचड़ भर देता है, यह देखा होता—तो उस की जबान ऐंठ जाती..

चन्द्रमाधव ने सनसनी खोजी है ? असल में उस ने जीवन खोजा है, तीव्र बहता हुआ, प्लावनकारी जीवन, और वह उसे मिला कहाँ है ? मिली हैं वह छोटी-छोटी टुची अनुभूतियाँ, चुटकियाँ और चिकोटियाँ—और उस के किस दोष के कारण ? प्यार नहीं, बीवी-बच्चे। स्वातन्त्र्य ? नहीं, तनख्वाह। जीवनानन्द ? नहीं, महसूलियत, घर, जेब-खर्च, सिनेमा, पान-सिगरेट, मित्रों की हिर्स— ...

कालेज छोड़ने के अगले वर्ष उस की शादी हो गयी थी। लड़की साधारण पढ़ी थी— मैट्रिक और भूषण पास, साधारण सुन्दरी थी—साफ रंग, अच्छे नख-शिख, साधारण बुद्धिमती थी—घर सँभाल लेती थी, साथ घूम लेती थी, मित्रों-मेहमानों से निबाह लेती थी और पढ़े-लिखों की बातचीत में आत्म-विश्वास नहीं खोती थी। पत्नी ने उस से कुछ अधिक माँगा नहीं था, साधारण गिरस्ती की जो माँगें होती हैं बस; कुछ अधिक दिया भी नहीं था, साधारण गिरस्ती जो देती है, बस। दो बच्चे, साफ-सुथरा घर, बिना झंझट के खाना-सोना, छोटा-सा बैंक बैलेंस, दिल-बहलाव की साधारण सहूलियतें।

मध्यवर्गीय मानदंडों में उस के सब कुछ था—और कोई क्या चाह सकता है? पर दूसरे बच्चे—पहली सन्तान लड़की थी, दूसरी लड़का—के बाद वह गिरस्ती से टूट गया था; कोई झगड़ा हुआ हो, शिकायत हो, ऐसी बात नहीं थी, बस यों ही तबियत उचट गयी थी, और वह पत्नी और बच्चों को छोड़ आया था। खर्चा भेज देता था, कभी-कबार चिट्ठी लिख देता था, बस इस से अधिक उलझन नहीं थी न वह चाहता था। बच्चे बड़े होंगे तब पढ़ाई-बढ़ाई का प्रश्न उठेगा, अभी तो कोई चिन्ता नहीं, और पहले दो-चार बरस तो माँ ही देख-भाल लेगी—फिर बड़ी तो लड़की है, उसकी पढ़ाई की कौन इतनी चिन्ता है, लड़के की शुरू से फिक्र होती है...

अकेले रहना बुरा नहीं था। गिरस्ती का अनुभव हो जाने के बाद तो वह प्रीतिकर भी था—उस में एक आजादी और आत्म-निर्भरता थी जिस का मूल्य शायद बिना गिरस्ती के अनुभव के समझा ही नहीं जा सकता था। और वह जो काफी हाउस का उस के जीवन में एक स्थान बन गया है, यह भी एक चीज है। उसे समझने के लिए भी वैसा बैकग्राउंड चाहिए। बिना भोगे कोई इस स्थिति को नहीं समझ सकता है।

बिना भोगे। लेकिन बिना क्या भोगे? क्या उसी ने कोई कष्ट भोगा है, दुःख जाना है? बराबर ही तो साधारण सहूलियत का जीवन उसने बिताया है—बड़े पैमाने पर ऐश नहीं की तो दरिद्र हो कर दुःखों को भी तो

नहीं तरसा—ऐसे में दुःख भी अगर हो तो उसी स्केल पर तो होगा, साधारण छोटा दुःख ! पर यही तो असल बात है—यह साधरणपन ही तो असली खा जाने वाला घुन है, यह तो सब से बडा, सब से चुभने वाला, अकिञ्चनता की कसक से बराबर सालते रहने वाला दुःख है ! 'तुम्हें साधरण से बडा दुःख नहीं होगा'—यही तो बडे आनन्द की, बडे सुख की, विराट् की अनुभूति की मौत का परवाना है—'तुम्हें साधारण से बडा कुछ नहीं होगा !'

लेकिन—क्या वह द्राविड प्राणायाम से भुवन वाले नतीजे पर पहुँचा है ? क्या वह भी बडे दुःख की पूजा कर रहा है ? नहीं, दुःख अपने-आप मे इष्ट है यह वह कहाँ मानता है ? लेकिन बडा दुःख बडी सम्भावना का तो द्योतक तो है, सम्भावना हो, अनुभूति की सामर्थ्य हो, तभी तो बड़ी अनुभूति होगी...

पर क्या भुवन दुःख को इष्ट मानता है ? क्या रेखा भी वैसा मानती है ? विराट् अनुभूति के प्रति खुले रहने का ही क्या वे अनुमोदन नहीं करते —विराट् के प्रति समर्पित होने का ?

रेखा । रेखा क्षण ही के प्रति समर्पित होने की बात करती है । क्षण ही को विराट् मानती है ।

लेकिन क्या सचमुच मानती है ? क्या जब भी क्षण के प्रति आत्म-समर्पण का अवसर आया है, उसने इनकार नहीं किया है ? वह अपने को सँजो-सँजो कर रखती है, कोई असूर्यम्पश्या भी इस तरह बचा-बचा कर कदम न रखती होगी—और बात करती है क्षण के प्रति समर्पण की । जैसे भुवन अनुभूति से बचता है, और विराट् अनुभूति के प्रति समर्पण की बात करता है । असल में सब सिद्धान्त क्षतिपूरक होते हैं . आप जो है, जैसे है, उस से ठीक उल्टा सिद्धान्त गढ कर उस का प्रचार करते फिरते हैं । इस से एक तो आप अपने लिए एक सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं, दूसरे औरो को गलत लीक पर डाल देते है ताकि आप को ठीक-ठीक कोई पकड़ न पा सके । रेखा ही कहती है कि मैं कुछ नहीं हूँ, जीवन के प्रवाह में एक अणु हूँ—पर कितना अहं है उस में, कि .

चन्द्रमाधव का रेखा से परिचय पुराना था। रेखा के पति को भी वह थोड़ा जानता था; विवाह के कुछ समय बाद ही दोनों से उस की पहले-पहल भेंट हुई थी। यद्यपि कोई घनिष्टता किसी से नहीं थी, तथापि तब से वह उन मे रेखा के पति का ही परिचित गिना जाता था, और उन के विच्छेद के बाद जब वह रेखा से मिला, तब पहले रेखा ने उस से पति के मित्र के अनुकूल ही व्यवहार किया था—शिष्ट, विनीत, पर बिल्कुल असम्पृक्त और दूर। उन के विच्छेद की बात सहसा नहीं फैली थी, क्योंकि दोनो के दुराव को लोगो ने धीरे-धीरे ही जाना था: पति के मलय चले जाने के बाद भी लोग यही समझते रहे थे कि वह नौकरी के लिए ही गया है, और बहुधा रेखा से उस का हाल-चाल भी पूछ लेते थे। इतना ही अचम्भा उन्हे होता था कि वह पत्नी को साथ क्यो नही ले गया। पीछे जब रेखा ने अलग नौकरी कर ली, और यह भी खुल गया कि मलय में उस के पति के साथ कोई और स्त्री रहती है, तभी लोगो को उन के दुराव का पूरा पता लगा। और ऐसे मे जैसा होता है, लोगों को पहले इसी बात का गुस्सा आया कि वे इतने दिनों तक भुलावे मे ही क्यो रहे—या रखे गये। पति तो दूर चला गया था, रेखा पर यह गुस्सा भरपूर प्रकट हुआ। एक के बाद एक कई नौकरियाँ उसे छोड़नी पडीं; और उस के साथ-साथ यह भी बात बन चली कि वह कहीं टिकती नहीं, दो-चार महीने बाद काम छोड़ देती है, जिस से आगे नौकरी मिलने मे क्रमशः कठिनाई बढती गयी।

इसी बीच चन्द्रमाधव फिर उस से मिला था। उस की स्थिति पर सहानुभूति प्रकट कर के, कुछ शिकायत भी की थी कि रेखा ने उसे क्यों न याद किया, वह जरूर कुछ सहायता करता। रेखा ने सहज विस्मय से कुछ झिझकते हुए कहा था, "आप तो—उन के मित्र हैं; मैं समझती थी कि आप जानते होंगे—और आप से सहानुभूति की आशा भी कैसे कर सकती थी!" चन्द्र इस बात से कट गया था, पर उसने प्रकट नहीं होने दिया था, और सहायता करने और काम दिलाने का वचन दिया था।

वह उसने किया भी था। कई जगह उसने बात की थी; फिर एक

जगह नौकरी मिल भी गयी थी। चन्द्र बीच-बीच में आ कर उस से मिल भी जाता था।

लेकिन यह नौकरी भी और नौकरियों की तरह छूट गयी थी। बल्कि, रेखा चाहे न जानती हो, उस के छूट जाने में चन्द्र का भी हाथ था। उस के बार-बार मिलने आने पर स्कूल की कमेटी के एक सदस्य ने उस से पूछा था तो उस ने कहा था कि रेखा के पति के मित्र के नाते वह अभिभावक है; पर रेखा, जिसे यों भी छिपाव पसन्द नहीं था और जो जानती थी कि छिपाना है भी व्यर्थ, लोग जान तो जावेंगे ही, कमेटी को पहले बता चुकी थी कि पति से उस का वर्षों से कोई सम्बन्ध नहीं है। बात समिति तक गयी थी, और उन्होंने रेखा को—यद्यपि बड़े शिष्ट ढंग से—नोटिस दे दिया था।

इस के बाद रियासत में गवर्नेस का पद दिलाने में भी चन्द्रमाधव ने सहायता की थी। पत्र-प्रतिनिधि के नाते रियासतों में उस की वाकफियत भी काफी थी, आतंक भी कुछ था—राष्ट्रीय उत्तेजना के उस ज़माने में रियासतों का पत्रकारों से डरना स्वाभाविक ही था!

यहाँ भी चन्द्र बराबर मिलने आता था। एक बार दो-एक दिन ठहर भी गया। दुबारा जब आ कर ठहरने की बात उस ने की तो रेखा के उत्तर से वह भाँप सका कि वह नहीं चाहती, और तड़ाक से पूछ बैठा, "रेखा देवी, अब मेरे आने पर आप को आपत्ति है?"

रेखा ने धीरे-से कहा, "मैं आप की बहुत कृतज्ञ हूँ, मिस्टर चन्द्रमाधव! आप ज़रूर आइये—और अब की बार अपनी पत्नी को भी साथ लाइये—उन्हें कभी क्यों नहीं लाते आप?"

चन्द्रमाधव थोड़ी देर सन्न रह गया, मानों किसी ने उसे चपत मार दिया हो। फिर उसने कहा, "तो आप को मुझ पर विश्वास नहीं है—आप मुझ से डरती हैं।"

"विश्वास की बात नहीं है, मिस्टर चन्द्र। पर वह शोभन है। और मैं उन से भेंट करना भी चाहती हूँ।"

चन्द्रमाधव उठ कर थोड़ी देर कमरे में टहलता रहा। टहलते-टहलते

उसने एक बड़ा निश्चय किया। बोला, "रेखा जी, आप शायद मेरे बारे में बहुत कम जानती हैं। मैं अपनी जीवन-कहानी आप को सुनाना चाहता हूँ। सुनेंगी?"

रेखा ने झिझकते स्वर में कहा, "आप सुनाना चाहते हैं, तो जरूर सुनूँगी। पर कहानी जितनी अपने-आप कह जाय, उतनी ही ठीक होती है। जो सुनायी जाती है, उस पर पीछे अनुताप भी हो सकता है और मैं नहीं चाहती कि आप ऐसा कुछ करें जिस से पीछे अनुताप हो—मेरे कारण ऐसा करेंगे तो मेरा बोझ—"

"नहीं, आप को सुनना होगा। क्योंकि आपने अभी जो बात मुझे कही, वह दुबारा कहें, ऐसा मौका मैं नहीं आने देना चाहता।"

जितनी देर चन्द्रमाधव बोलता रहा, रेखा एक शब्द नहीं बोली। न उसने चन्द्र की ओर देखा ही। बल्कि जब कहते-कहते चन्द्र का स्वर कुछ भर्रा आया, तब उसने नीरव पैरों से उठ कर बड़े टेबल लैम्प का प्रकाश मन्दा कर दिया, और फिर अपनी जगह आ कर बैठ गयी। खिड़की के बाहर एक शेफाली का छोटा पेड़ था, उस की ओर देखती रही।

चन्द्र चुप हो गया। रेखा तब भी नहीं बोली। देर तक दोनों चुप रहे। फिर चन्द्र ने धीरे से कहा, "रेखा जी।" उस का स्वर अभी आविष्ट था।

रेखा ने धीमे, किन्तु साफ और ठंडे स्वर में पूछा, "यह सब आप मुझे क्यों बताते हैं?"

चन्द्र सहसा खड़ा हो गया। नये आवेश से बोला, "अब भी मुझ से यह पूछ सकती हो, रेखा! रेखा!"

रेखा सहसा खड़ी हो गयी, यद्यपि अपने स्थान से हिली नहीं, न शेफाली की ओर से उसने मुँह फेरा। केवल उस का हाथ तनिक-सा मुड़ कर ऊँचा हो गया, उँगलियों में एक हल्का-सा निषेध या वर्जना का भाव आ गया।

चन्द्र ने फिर कहा, "तुम कैसे यह पूछ सकती हो, रेखा!" एक

अधूरा कदम उस ने रेखा की ओर बढ़ाया, पर ठिठक गया; रेखा की विमुख निष्कम्प देह-वल्ली को उसने एक बार सिर से पैर तक देखा, फिर उस के उस मुड़े हुए हाथ को; फिर बोला, "रेखा ! रेखा देवी ! मुझे क्षमा कीजिए रेखा देवी—" और जल्दी से बाहर चला गया।

लौट कर उसने एक क्षमा-याचना का पत्र भी लिखा। दो-तीन दिन बाद ही रेखा का उत्तर आया, उस में सारी घटना का कोई उल्लेख ही नहीं था, यही लिखा था कि चन्द्रमाधव को बार-बार वहाँ आने में कष्ट होता है, अब की बार वही मिलने आवेगी। उस के ठहरने के लिए चन्द्र को कष्ट नहीं करना होगा, रियासत वालों का एक गेस्ट हाउस लखनऊ में है और वहीं उसे ठहरने की अनुमति मिल गयी है। बच्चे रानी के साथ ननिहाल जा रहे हैं अतः उसे कुछ दिन की छुट्टी है।

भुवन से जब रेखा की भेंट हुई, उस से पहले भी एकाधिक बार रेखा लखनऊ आ कर रह गयी थी। अकसर वह रियासत के गेस्ट हाउस में ही रहती थी, एक-आध बार लड़कियों के कालेज के होस्टल में भी किसी परिचिता के पास रह गयी थी। चन्द्रमाधव से वह बराबर मिलती, पर अपने ठिकाने पर उसे कभी नहीं ले गयी थी, चन्द्र पहुँचाने जाता तो फाटक पर ही उसे विदा कर के भीतर चली जाती। एक बार चन्द्र ने कहा भी था, "आप अपने पास किसी को आने नहीं देतीं, जैसे—"

रेखा ने तुरन्त हँस कर कहा था, "मेरे आसपास दुर्भाग्य का एक मंडल जो रहता है, उस के भीतर किसी को नहीं आने देती कि छूत न लग जाय!"

पर अगर उसने यह कहा होता कि 'मेरे आसपास एक प्रभा मंडल है जो किसी के छूने से मैला हो जायगा', तो चन्द्र को लगता कि उसने अपने मन के अधिक निकट की बात कही है।

अपनी जीवन-कहानी कह देने के बाद से फिर कभी चन्द्र से घनिष्टता

की कोई चेष्टा नही की थी। रेखा ने भी कभी उस की याद नहीं दिलायी; उस के व्यवहार मे कोई मैल या दुराव नही था न कोई अधिक समीपता ही थी, पर उस का स्वर पहले से कुछ अधिक नरम रहता था और चन्द्र को कभी-कभी लगता था कि उस की आँखो मे एक करुणा भी है। कभी-कभी वह चन्द्र को 'तुम' भी कहने लगी थी; उसने भी सोचा था कि उसे 'तुम' कहे, पर उस दिन के अपने विस्फोट की बात याद कर के रह जाता था—रेखा ही जब उसे कहेगी तभी कहेगा अब..

बड़े दिनो की छुट्टियो मे जब रेखा आयी, तब अपनी संरक्षित कुमारियो के साथ ही आयी थी—रानी भी आयी थीं, और सब गेस्ट हाउस मे ही ठहरे थे। आने के तीसरे दिन तक वह चन्द्रमाधव से मिलने नहीं गयी; जा ही नहीं सकी क्योंकि रानी के अनुरोध से बच्चों को ले कर घुमाती रही। तीसरे दिन शाम के लगभग वह चन्द्रमाधव के घर गयी तो देखा, वह अगीठी मे आग जलाये उस के निकट झुका बैठा है, घुटनो पर कुहनियाँ हथेलियो पर ठोड़ी टेके, निर्निमेष दृष्टि से आग को देख रहा है। उस की झुकी हुई पीठ, शिथिल पैर, माथे पर लटके हुए बाल, उदासी की उस मूर्ति को देख कर रेखा मे सहसा करुणा उमड आयी, उसने द्वार से ही पुकारा, "चन्द्र—क्या बात है चन्द्र?"

चन्द्र नही बोला।

रेखा ने फिर कहा, "अच्छे तो हो, चन्द्र? बोलते क्यो नही?"

चन्द्र फिर नही बोला। रेखा ने उस के कन्धे पर हल्का हाथ रख कर कहा, "अगर मैं डिस्टर्ब कर रही हूँ तो चली जाऊँ? सबेरे फिर आ जाऊँगी—"

चन्द्र ने बिना हिले कहा, "आप को मिल गयी फुरसत इधर आने की? अभी शाम को आने की क्या जल्दी थी—कल ही आ सकती थीं—

रेखा को धक्का लगा। पर साथ ही तसल्ली भी हुई, क्योंकि बात उस की समझ में आ गयी।

"चन्द्र, मैं रानी साहिबा और बच्चों के साथ आयी हूँ, उन्होंने

छोड़ा नही। अभी थोडी फुरसत मिली है—वे सब किसी पार्टी में गये है—"

"आप को नहीं ले गये? आप भी जातीं—"

"चन्द्र, मैं सचमुच पहले आ सकती तो आती—परसो से आयी हुई हूँ—"

"परसो से? मैने तो कल—नहीं, मैं कौन होता हूँ, मेरी ओर से तो आप अभी आयी है—"

रेखा ने मुस्कराहट दबा कर पूछा, "तुमने कब जाना—देखा था?"

"और नही तो। बच्चो को लिये बनारसीबाग के फाटक पर मूँगफली खरीद रही थी–वहाँ से यह स्थान कुछ भी दूर नही है—"

"अच्छा, आज सुबह! तुम ने देखा था तो तुम्ही आ जाते–"

चन्द्र ने फिर तुनुक कर कहा, "जहाँ जरूरत न हो, वहाँ जा घुमने की आदत मेरी नही है।"

रेखा ने कहा, "बहुत अच्छी आदत है तुम्हारी। अच्छा उठो, घूमने चलना है, फिर काफी पियेंगे। फिर मुझे ठिकाने तक छोड आना। और सर्दी है, कोट पहन लो।"

चन्द्र अनमना उठ खड़ा हुआ।

बाहर घूमते हुए उसे लगा, रेखा ने न केवल उसे क्षमा कर दिया है बल्कि उस के निकट भी आ गयी है। उसे अचम्भा भी नहीं हुआ, क्योंकि स्त्रियो मे यह होता ही है, जब बहुत अधिक दुत्कार देती हैं तब भीतर द्रवित भी हो जाती हैं। रेखा लाख असाधारण हो, पर स्त्री तो है? उस का बुझा हुआ मन धीरे-धीरे खिलने लगा। उसने कहा, "रेखा जी, मेरे इन मूड्स का बुरा तो नहीं मानतीं?"

रेखा ने मानो किसी दूसरी विचार-तरंग में उत्तर दिया—बल्कि प्रश्न पूछा, "चन्द्र, तुम्हें अपना बचपन याद है?"

"हाँ तो; क्यों?"

"यों ही। अच्छे दिन होते हैं बचपन के।"

चन्द्र उस की बात ठीक-ठीक नहीं समझा। "मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ, फिर आ सकते तो—आप को कभी लगता है कि फिर आ सकते तो कितना अच्छा होता ?"

"स्त्रियाँ बड़ी व्यावहारिक होती हैं—वह किसी तरह नहीं भूल सकतीं कि बीते दिन फिर नहीं आते और असम्भव कभी माँगती नहीं। यों भी—मुझे निरन्तर बड़े होते चलना अच्छा लगता है—"

"बड़े होना—यानी बूढ़े होना! आप ऐसी बात कैसे कह सकती हैं ?"

"जो क्षण में जीता है, क्षण को स्वीकार कर लेता है, वह बूढ़ा होता ही नहीं। यों अगर मैं कहूँ कि पुरुष की तुलना में स्त्री हमेशा बूढ़ी होती है तो आप समझ लेंगे मेरी बात ?"

चन्द्र ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "रेखाजी, आप पर यह बात बिल्कुल लागू नहीं होती। आप -" पर फिर झिझक कर रुक गया - मुँह से कुछ ऐसी-वैसी बात निकल गयी तो फिर नाराज हो जायगी...सँभल कर बोला, "आप की बात ठीक है, क्षण को मान लेने वाला कभी बूढ़ा नहीं होता, आप इस की ज्वलन्त प्रमाण हैं।" इस ढंग से कह देने में तो कोई आपत्ति हो नहीं सकती

रेखा ने कहा, "उस का मैं प्रमाण हूँ या नहीं, नहीं जानती, पर इस का आप जरूर हैं कि पुरुष की तुलना में स्त्री हमेशा बूढ़ी होती है—" फिर सहसा विषय बदल कर बोली, "आप शामें कैसे बिताते हैं ?"

चन्द्र ने कहा, "मैं कहाँ बिताता हूँ। अपने-आप न जाने कैसे बीतती हैं। पहले काफी हाउस जाता था, पर अब—अब आप के साथ जाने की आदत पड़ गयी है और अच्छा नहीं लगता। रेखा जी, आप—यू आर वेरी गुड कम्पनी-"

रेखा ने भी अंग्रेजी में, पर हल्के स्वर में कहा, "एंड दैट्स ए वेरी नाइस काम्प्लिमेंट!" फिर कुछ गम्भीर हो कर, "मगर चन्द्र, तुम कभी अपने बारे में नहीं सोचते—कभी खूब गम्भीर हो कर नहीं सोचते कि जीवन—जीवन नहीं, तुम्हारा जीवन, एक, विशेष और अद्वितीय—क्या है,

क्यो है, कहाँ जा रहा है ? कि उस का क्या बनाना चाहिए, वह कहाँ जा रहा है या जा सकता है ? मैं तो कभी तुम्हारी बात सोचती हूँ तो अचम्भे में ही रह जाती हूँ ।"

"आप मेरी बात सोचती है ?" चन्द्र को परितोष हुआ । "मै तो समझता था कोई नही सोचता, इसी लिए मै भी नहीं सोचता था । और सोचने को है भी क्या ? पीछे देखता हूँ तो—लेकिन वह तो मै आप को बता चुका हूँ। कभी सोचता हूँ कि अतीत के प्रति कोई बहुत बड़ी ग्रीवेंस होती तो वह भी कुछ बात होती—उसी की कड़वाहट एक सहारा हो जाती, एक उत्पीडित मसीहा की तरह मै चल निकलता । बहुत से लोग इस उत्पीडन के आक्रोश के सहारे ही जीते है—उस मे से बडे-बड़े जीवन-सिद्धान्त भी निकालते हैं और दूसरो का उत्पीडन करने का जस्टिफ़िकेशन भी । पर ग्रीवेंस मुझे क्या है—यही तो कि ग्रीवेंस के लायक भी कुछ नही मिला । वर्त्तमान जो है सो आप देख ही रही हैं—उस मे आप ही एक रोशनी हैं नही तो...और फिर भविष्य की बात मै क्या सोचूँ ? मैं तो ऐसा फेटलिस्ट हो गया हूँ कि सोचता हूँ, मेरा भविष्य और कोई बना दे तो बना दे—मेरे बस का नहीं ।"

रेखा ने कहा, "मेरा वश होता, और भविष्य बने-बनाये मिलते, तो मै आप को एक ऐसा सुन्दर भविष्य ला देती कि बस । उस के चार पाये चार इन्द्रधनुष होते, और फूलो पर पड़ी हुई चाँदनी का उस का ऊपर होता, तितलियो के पंखों से रंग ले कर उसे रँगा जाता और—"

चन्द्र ने कुछ हँस कर कहा, और उस चाँदनी की कुरसी पर जब मै बैठता तो चारो इन्द्र धनुषो के बीच मे चित हो जाता—क्योकि चाँदनी किस का बोझ सहार सकती है ? पर, जोकिंग एपार्ट, रेखा जी, आप सचमुच मेरा भविष्य बना सकती हैं—"

"मैं ?" रेखा ने अतिरिक्त सन्देह से कहा : उसने अनुभव किया कि बात-चीत फिर एक कँटीले स्तर पर चल रही है । "अन्धे क्या रास्ता दिखायेंगे ? मैंने भविष्य मानना ही छोड़ दिया है । भविष्य हुई नहीं, एक निरन्तर विकासमान वर्त्तमान ही सब कुछ है । आपने कभी पानी के फव्वारे

पर टिकी हुई गेंद देखी है? बस जीवन वैसा ही है, क्षणों की धारा पर उछलता हुआ—जब तक धारा है तब तक बिल्कुल सुरक्षित, सुस्थापित, नहीं तो पानी पर टिके होने से अधिक बेपाया क्या चीज होगी!"

"रेखा जी, आप की कल्पना बडी सुन्दर है। लेकिन आप उस जीवन को अरक्षित समझें, है असल में वह एक्स्टेसी का जीवन, और एक्स्टेसी क्षणिक भी हो तो ग्राह्य—उस पर सौ सेक्योर जीवन निछावर है।"

रेखा चुप रही। वह बात का रुख बिल्कुल बदल देना चाहती थी, पर चन्द्र को क्लेश भी नहीं पहुँचाना चाहती थी। चन्द्र ने ही फिर कहा, "रेखा जी, आप को कभी छुट्टियाँ नहीं होतीं?"

"क्यों? अब की हों तो चलिए न, कहीं पहाड़ चला जाय? आप भी तो बहुत दिन से न गयी होंगी?"

"गयी तो नहीं। पर अब की बार शायद नौकरी पर ही जाना पडेगा—"

"कहाँ?"

"शायद मसूरी—"

"अरे नहीं। वह भी कोई जगह है, इतना भीड-भड़क्का! यों तो खैर अच्छी भी है, रौनक रहती है, ऐसा भी क्या पहाड़ कि बिल्कुल मनहूसियत छायी रहे—पर नहीं, दूर किसी पहाड़ पर चलिए—हिमालय की भीतरी किसी शृंखला में—कुलू चलिए या कालिम्पोंग या ऐसी किसी जगह—"

"मेरा जाना तो पराधीन है—"

"छुट्टी ले लीजिए न? नहीं तो फिर जाना ही क्या हुआ अगर अर्दल में ही रहना पड़े तो—"

रेखा हँस दी, मानो टाल रही हो कि अभी तो जाने का कोई प्रश्न नहीं है, जब सम्भावना होगी तो देखा जायगा।

चन्द्र ने आग्रह किया। "चलिए न। अच्छा, यही रहे कि अगर आप को छुट्टी हो तो चलेंगी।" फिर कुछ रुक कर, "चाहे और किसी को, जिसे आप चाहे ले चलिए—हाँ मेरा एक मित्र है, कालेज में पढ़ाता है, उसे मैं

निमन्त्रित कर सकता हूँ—यों आप का टाइप तो नहीं है, किताबी जीव है, पर कम-से-कम न्युसेंस नहीं होगा, और बात-चीत मे कभी जोश मे आ जाय तो दिलचस्प भी हो सकता है।"

रेखा ने कहा, "मै भविष्य ही नहीं मानती, और आप भविष्य बाँधना चाहते है। देखा जायगा—"

"तब तो आप के लिए वायदा कर देना और भी आसान होना चाहिए। न होगा तो न जाइयेगा—पर जाने की बात रहे इस मे आप को एतराज है? मै सोच-सोच कर ही खुश हो लूँगा—"

रेखा ने कहना चाहा, "यही तो खतरा है," पर सहसा कह न सकी। बोली, "अच्छा, रहा।"

चन्द्र ने कहा, "मै भुवन को निमन्त्रित भी कर देता हूँ—अब की छुट्टी मे आ जाय। होली-ईस्टर जो हो। आप भी आवेंगी न?"

"देखो—शायद—होली मे छुट्टी तो होगी पर होली मे कोई लखनऊ क्या आवेगा।"

चन्द्र ने उत्साह से अंग्रेजी मे कहा, "इट्स ए डेट।"

•

लेकिन चन्द्रमाधव ने भुवन को पत्र लिखने मे लगभग एक महीने की देर कर दी थी। और जब लिखा था, तब रेखा का कोई उल्लेख नहीं किया था। वह जानता था कि किसी स्त्री से भेंट कराने की बात से ही भुवन बिदक जायगा, फिर वह परिचय कराना ठीक चाहता ही था यह कहना भी कठिन है। भुवन से उस की पुरानी मैत्री थी, ठीक है, पर मैत्री-मैत्री मे भी फर्क होता है, और रेखा के साथ भुवन की बात वह कभी सोच ही न सकता अगर उसे यह ध्यान न आता कि वैसे शान्त-गम्भीर 'सूफियाना' तबीयत के आदमी की उपस्थिति शायद रेखा की दृष्टि से उपयोगी हो, नहीं तो अकेले चन्द्र के साथ तो वह पहाड़ कभी नहीं जा सकती...दोनो का परिचय वह उतना ही चाहता था जिस से रेखा की तसल्ली हो जाय, पर भुवन की मन-

हूसियत उस पर हावी न हो जाय !

लेकिन ईस्टर की छुट्टियों में भुवन के लखनऊ में बिताये हुए एक सप्ताह का ठीक वही असर हुआ, यह उसे नही लगा। बल्कि उसे अचम्भा, निराशा —और कुछ खीझ भी हुई, कि न तो भुवन उतना गब्दू ही साबित हुआ जितना वह जानता (और चाहता) था, और न उस की उपस्थिति से चन्द्र की ब्रिलियेंस का वह प्रभाव ही रेखा पर पड़ा जिस की उसने आशा की थी। जिस मुहावरे में सोचने का वह आदी था उस में भुवन उस से 'बाजी ले गया' था, स्पष्ट ही रेखा उस की बातों से प्रभावित हुई थी, और उस की अप्रगल्भ गहराई के प्रति एक सम्मान का भाव उस में आ गया था—मानो अप्रगल्भता ही गहराई हो। 'तावदेव शोभते—', पर भुवन बोला तो काफी था, प्रभाव उस की चुप्पी का नहीं था भुवन पढ़ता-बढ़ता रहता है, कोटेशन भी उसे बहुत याद है; और यह जो बारीक-बारीक भेद करने की बात है, उस का प्रभाव भी शायद स्त्रियों पर बहुत पड़ता है—वे खुद जो मोटी-मोटी व्यावहारिक बातें सोचती हैं। यों रेखा भी सोचने वाली है, पर एक बात यह भी है कि पुरुष की उदासीनता का अपना एक आकर्षण होता है —खास कर उस स्त्री के लिए, जो बराबर पुरुषों का अटेंशन पाती रही हो. .रेखा सुन्दर है—अपने यू० पी०-पंजाब के स्टैंडर्ड में चाहे न हो जहाँ गोरा-चिट्टा होना ही रूप है, या चाहे चीनी का खिलौना हो, या कि रंगीन गोएँदार इल्ली जैसी तितली निकलने से पहले होती है—पर वैसे अत्यन्त रूपवती है, और उस का रूप एक सप्राण, तेजोमय पर्सनेलिटी के प्रकाश से भीतर से दीप्त है, भले ही एक कड़ा रिजर्व उस प्रकाश को भी घेरे है—चन्द्र को एक बड़ी-सी चन्द्रकान्त मणि का ध्यान आता, जो बाहर चिकनी सफेद होती है, अन्दर बिखरे में इन्द्र-धनु के रंग लिये, पर एकदम भीतर कहीं एक सुलगती आग का लाल आलोक—और पत्थरों का 'पानी' देखा जाता है, पर चन्द्रकान्त में 'आग' से ही उस का मोल आँका जाता है. . .और ऐसी मणि आज कई बरस से पारखी की खोज में भटकती फिर रही है !—तो क्या निरन्तर ही एडमायरर उसे न घेरे रहते होंगे ? यही वह देखता है,

उसी के यहाँ रेखा को जिसने आते-जाते देखा है, उस के बारे मे पूछे बिना नहीं रह सका है, और जिसने पूछा है, उस की मानो दीठ से ही टपकती लार का लिसलिसापन वह अनुभव कर सका है...जब से रेखा उस के यहाँ आती-जाती है, तब से उस के मित्र भी मानो बढ गये है। और काफी हाउस मे भी लोग 'हेलो' करने आ जाते हैं, और काफी पिलाने का आग्रह करते है...और ऐसे मे एक आदमी आये जिस के लिए स्त्री और एक रासायनिक फार्मूला एक बराबर है कि देखा और हल कर के एक तरफ रख दिया—

पर भुवन के आकर्षण का अपने लिए सन्तोषजनक कारण पा लेना तो काफी नही था, वह तो मानव-सम्बन्धो का अध्ययन करने नहीं बैठा है, वह जिन्दगी का तमाशाई नहीं है, वह खिलाड़ी है, नायक है, वह जिन्दगी को अंगूर के गुच्छे की तरह तोड़ कर उस का रस निचोड लेगा, लता को झँझोड़ डालेगा, कुंज में आग लगा देगा, वह आराम से नही बैठेगा ! एक पैनी ईर्ष्या की नोक उसे सालने लगी : भुवन को रेखा ने देख लिया है, भुवन जायगा तो वह पहाड़ चलने को राजी हो जायगी, पर चन्द्र को भुवन और रेखा के साथ नहीं जाना है, भुवन को चन्द्र और रेखा के साथ जाना है; क्योंकि एक ओट के रूप मे उस की उपयोगिता है। भुवन को बुलाया तो जायगा, पर उसे ठीक जगह रखने की भी व्यवस्था करनी होगी। और जल्दी ही कुछ करना होगा—रेखा को छुट्टी की अड़चन अब न हो, यह तो पक्का हुआ; पर और भी कई कुछ अभी बाकी है...

छुट्टी की अड़चन न हो, इस की व्यवस्था से वह अपने पर खुश था। रेखा के जाने के कुछ समय बाद लखनऊ में रियासती प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई थी, बातचीत के सिलसिले में चन्द्र ने एक उच्च अधिकारी से अमुक रियासत की राजकुमारियो की गवर्नेस की कुछ चर्चा कर दी थी। फिर पूछे जाने पर उस की नेकी, सच्चरित्रता और लगन की बड़ी प्रशसा की थी। 'क्या वह उसे काफी देर मे जानता है ?' 'हाँ, उसे ही नहीं, उस के पति को भी जानता है, उस के दो-एक प्रेमिकों को भी—रेखा देवी बडी समझदार और सावधान स्त्री है, कभी अपने पर आँच नहीं आने देती, न कभी किसी

को संकट मे डालती है; उस से कभी किसी की बुराई नही सुनी गयी।'... यों आजकल ऋषि-मुनियो का जमाना थोड़े ही है; अच्छा वह जिस के नाम पर कोई धब्बा न हो, इस से आगे किसी के निजी जीवन को कुरेदना भी नही चाहिए। 'मैं रेखा देवी को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ—जी हॉ, इतना कि मै चाहूँ तो—...अपनी बात कहनी नहीं चाहिए, पर वहाँ उन्हे नौकरी भी मैने ही दिलायी थी—' और चन्द्र कुछ ऐसे ढंग से मुस्कराया था, कि रेखा को जानने मे, और उसे नौकरी दिलाने की लाचारी में, कोई सम्बन्ध हो—और चन्द्रमाधव जैसा उत्तरदायी आदमी जिसे अपने निकट लेता है, उस का ध्यान रखता है—उस की उचित व्यवस्था करता है...

चन्द्र के सामने कोई स्पष्ट योजना रही हो, ऐसा नही था, कुछ तो शेखी मे वह बात करता था, कुछ इस प्रकार रेखा को अहसान से बॉधने की नीयत से, और कुछ शायद यह भी था कि रेखा की चर्चा से रियासत मे लोगों की ऑखे उस की ओर जायेंगी, कुछ तनाव पैदा होगा और रेखा फिर उस से साहाय्य चाहेगी...यही हुआ भी, क्यों कि ये अफ़सर लौट कर रेखा से मिले, रेखा को पार्टी पर निमन्त्रित किया; रेखा नहीं गयी, पर उन के निमन्त्रण के बाद और भी निमन्त्रण उसे मिले, लोग उस के घर पर मिलने भी आये। वह जो सदा किसी की ऑखो के आगे होने से बचती थी, सहसा अपने को इस हलचल का केन्द्र पा कर समझ न सकी कि मामला क्या है। रानी ने भी दो-एक बार हल्की-सी चुटकी ली, यद्यपि उस में नापसन्दी या आलोचना की भावना बिल्कुल न थी। तब एक दिन सहसा रेखा ने अस्तीफा दे दिया—कारण उसने यही बताया कि उस का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है और वह विश्राम चाहती है। रानी ने वास्तविक अनिच्छा से उसे छोड़ दिया, यह भी कहा कि वह चाहे तो लम्बी छुट्टी ले ले और फिर लौट आये, और जब रेखा ने नहीं माना तो यह भी कहा कि भविष्य मे जब भी वह पुनः आना चाहे आ सकती है, उन्हे हर्ष ही होगा। कभी उन की सहायता की जरूरत हो तो वह निस्संकोच उन्हे लिखे।

इस प्रकार, सर्वथा सद्भाव के साथ, रेखा नौकरी छोड आयी। स्थिति-

परिवर्तन का कारण उसे ज्ञात न था। चन्द्र को उसने पत्र लिख कर सूचना दे दी, कारण ठीक-ठीक लिख दिया कि रियासत के कर्मचारियों को उस में आवश्यकता से अधिक दिलचस्पी है। चन्द्र मन-ही-मन मुस्कराया, फिर उसने लिखा कि रेखा लखनऊ आ जाय, दो-एक और नौकरियाँ उस की निगाह में है पर रेखा के आने से उस की सलाह से प्रबन्ध करेगा।

रेखा तत्काल नहीं आयी थी, आते-आते ईस्टर निकट आ गया था और लखनऊ से वह एक परिचित परिवार के यहाँ कुछ दिन बिताने प्रतापगढ़ जाने को वचनबद्ध हो आयी थी।

चन्द्र ने समवेदना बना कर यह भी प्रस्ताव किया था कि अब गर्मी के बाद ही रेखा नया काम करे—कुछ घूम-घाम ले और पहाड़ भी हो आये। और इस सिलसिले में जाड़ों की बात की याद भी दिला दी थी, पर आग्रह नहीं किया था। ईस्टर में भुवन आवेगा, यह भी बता दिया था।

भीड़ के साथ सिनेमाघर से बाहर निकला, तब चन्द्रमाधव की मानसिक स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। एक खीझ अब भी उस के मन में भरी थी; पर खीझ जैसे केवल विमुख करती है, वैसा भाव उस में नहीं था। खीझ में एक अन्तर्धारा किसी गोपन आशंका की थी, मानो एक चिन्ता उसे खा रही हो कि कुछ जल्दी करना है नहीं तो न जाने क्या एक शोचनीय बात हो जायगी। न उस शंकनीय बात को, न उस काम को जो करना होगा, वह कोई नाम दे सकता था, या देना चाहता था; पर खीझ के भीतर से उसे इस चाबुक की प्रेरणा उसे हाँक रही थी। उसने रिक्शा नहीं लिया, पैदल ही तेज़ चाल से घर की ओर चल पड़ा। सिनेमा से छूटी हुई भीड़ क्रमशः फैलती और छँटती गयी, नरही वाले मोड़ पर बचे-खुचे लोग भी मुड़ गये और वह रास्ते पर अकेला रह गया। हवा बहुत तेज चल रही थी, धूल उस इलाके में अधिक नहीं फिर भी कभी-कभी कोई नुकीला कण आ कर उस के गाल पर चिनगी-सा चुभ जाता—हवा इतनी तेज़ न होती तो शायद

इस रास्ते पर नींबू के फूलों का सौरभ पाया जा सकता, पर अब तो कोई गन्ध नहीं है, उसी के कपड़ों में से सिगरेट के सीले हुए धुँए की महक आ रही है जो सिनेमा घरों की विशेष देन है—दूसरों की धूमिल साँसों की बासी गन्ध . बहुत से लोग इसी से तंग आ कर सिगरेट पीना शुरू कर देते होंगे—दूसरों की गन्ध से हरदम दम घुटता रहे, इस से अच्छा है कि स्वयं अपना दम घोट लो—अपने जहर से साँप नहीं मरता। चन्द्र और भी तेज चलने लगा। अपना जहर...नहीं, वह भुवन को निमन्त्रित करेगा ही, और इतना ही नहीं, रेखा को लिखेगा कि वह भी भुवन को निमन्त्रित करे, दोनों के निमन्त्रण से भुवन अवश्य आ जावेगा, और फिर रेखा को आना ही होगा—उसी के निमन्त्रण पर भुवन आवे और फिर वह रह जाय य कैसे हो सकता है? भीतर से रेखा इन औपचारिक बातों को जितना ही नगण्य मानती है, बाहर से उन के निर्वाह में उतनी ही सतर्क रहती है ..

घर पहुँच कर उसने सब से पहले सब खिड़कियाँ बन्द कीं, सहसा स्तब्ध हो गये वातावरण में उसने कपड़े बदले, बालों को उँगलियों से थोड़ा मसल कर, हाथों में थोड़ा कोलोन-जल डाल कर माथे पर और पपोटों पर मल लिया, फिर कंघी से बाल सँवारे और टेबल लैम्प जला कर पत्र लिखने बैठ गया।

भुवन को जो पत्र लिखा गया वह छोटा ही था। भुवन के जाने के तत्काल बाद क्यों पत्र लिखा जा रहा है, इस की सफाई देते हुए उसने लिखा कि 'यह बात वह बहुत दिनों से कहना चाह रहा था पर कुछ झिझक ही रही क्योंकि भुवन एक तो अपने वैज्ञानिक कार्यों और पढ़ाई में व्यस्त रहता है, दूसरे चन्द्र को यह भी डर रहता है कि वह कहीं खाहमखाह भुवन के स्वायत्त, स्वतःसम्पूर्ण जीवन में टाँग न अड़ा रहा हो। उस की बहुत दिनों से इच्छा है कि भुवन के साथ कहीं पहाड़ की यात्रा करे, पर कभी मौका नहीं बना है, क्या अब की छुट्टियों में वह सम्भव हो सकेगा? यदि भुवन चलने को राजी हो तो वह भी एक महीने की छुट्टी ले रखेगा—उस के काम में तो पहले से छुट्टी का प्रबन्ध कर रखना नितान्त आवश्यक है, और

इसी लिए वह इतना पहले पूछ रहा है। और जाने के लिए वह तो कुलू की बात सोच रहा है, पर भुवन की जहाँ इच्छा हो वहाँ जाया जा सकता है; उसे भरोसा है कि भुवन अच्छी ही जगह चुनेगा क्योंकि वह तो और भी अधिक शान्त-एकान्त जगह चाहता है।'

फिर 'पुनश्च' कर के उसने जोड़ दिया था : 'रेखा देवी ने भी पहाड़ जाने की इच्छा प्रकट की थी, और कुलू या वैसे ही किसी एकान्त स्थल की। पर तुम जानते हो, उस के साथ अकेले मेरा जाना कैसा लगेगा; वह तो सर्वथा मुक्त विहंगम है, पर मेरी तुम समझ सकते हो कि कैसी स्थिति होगी—मेरे काम मे एक विशेष प्रकार की प्रतिष्ठा की बड़ी आवश्यकता है, क्यो कि जर्नलिस्ट को यों ही लफंगा समझ लिया जाता है और इस लिए उस के लिए दामन बचा कर चलने की विशेष आवश्यकता है। अगर तुम भी साथ चलो, तो आपत्ति की कोई बात न होगी, तुम्हारा उत्तर आने पर मैं रेखा देवी को सूचना दे दूँगा। आशा है कि तुम्हें उस के साथ पर आपत्ति न होगी।'

रेखा को उसने लिखा : 'आप को यह बताना भूल गया कि इस बार भुवन ने स्वय कहीं पहाड़ चलने की बात की थी। मेरा विचार है कि अब की गर्मियो में चलने का प्रोग्राम बनाया जाये तो वह सहर्ष चलेगा। यह नहीं कह सकता कि उस का साथ आप को कैसा लगेगा : है तो वह बिल्कुल किताबी दुनिया का जीव, पर यो दिल का भला है; सामाजिक पालिश उस में नहीं है पर पहाड-जंगल में उस के अनगढपन को कौन देखेगा, उस का सामीप्य कोई कठिनाई नहीं पैदा कर सकता। आप का विचार हो, तो हो न हो आप भी उसे एक पत्र लिख दीजिए—मैंने अभी तक तो नहीं कहा कि आप भी चलेंगी पर आप स्वयं लिखें तो बहुत अच्छा होगा। आप काम के विषय में चिन्तित होंगी; मैं उस के लिए दत्तचित्त हूँ और शीघ्र ही कुछ कर सकने की आशा करता हूँ। पर मेरी राय यही है कि आप गर्मियों के बाद ही कार्यारम्भ करें; वही ठीक सीजन है और उस समय अच्छा काम मिलने की सम्भावना होती है, गर्मियो में तो ऐसे लोग काम देते हैं जो

वेतन दे कर खरीदने और खून चूसने के आदी होते हैं...'

फिर नये पैरा मे उसने उसी रात देखे हुए फिल्म का वर्णन किया था। रेखा के चले जाने के बाद उस का जी नही लगा, मन बहलाने वह सिनेमा चला गया था। 'रेखा नही जानती है, पर उस के लखनऊ मे बिताये हुए दिन चन्द्रमाधव के लिए एक सुनहली धूप के दिन होते हैं : उन की मधुर गरमाई देर तक उसे अभिभूत किये रहती है पर साथ ही एक कसक भी छोड़ जाती है क्योंकि तुलना मे और दिन फीके और एक अजीब कुहासे से मिनरालोक-से जान पड़ते है।

यहाँ पर पृष्ठ समाप्त कर के चन्द्र कुछ देर रुक गया था। इतना भी उसने अटक-अटक कर लिखा था, इस के बाद उसने अपने सामने एक नया पन्ना रखा और थोड़ी देर लैम्प के छादन की ओर सूनी दृष्टि से ताकता हुआ बैठा रहा। ऑत के बने हुए उस छादन पर एक काली छायाकृति ऑकी हुई थी—दोनो हाथ ऊँचे उठाये एक नंगी स्त्री-आकृति, हाथों में कमल के आकार के फूल... अनमने से भाव से उसने लैम्प को घुमा दिया; दूसरी ओर वैसी ही एक आकृति घुटने टेके आगे को झुकी हुईथी। आगे बढ़े हुए हाथो मे फूल थे; कुहनी और घुटनो के बीच मे कुचों को कुछ अतिरिक्त प्रशस्तता दे दी गयी थी—उन का नुकीलापन बाकी आकार की प्रवहमान गोलाई को एक नया लचकीलापन दे देता था। सहसा आगे झुक कर चन्द्रमाधव ने जल्दी-जल्दी लिखना शुरू किया। बड़े डाकघर के घड़ियाल ने दो खड़काये तब वह अभी लिख रहा था, कई पन्ने रंग कर उसने एक ओर को गिरा दिये थे। रुक कर उसने उन्हे सँवारा और अनुक्रम मे रखा, फिर संख्या दी—३, ४, ५, ६,...१३, १४, १५। फिर पन्ना उलट कर उसने १६ लिखने को हाथ बढ़ाया और खींच लिया; सारे कागज एक साथ उठाये और दो-एक बार उलटे-पलटे, फिर सब फाड़ कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ बन कर रद्दी की टोकरी में डाल दीं और उठ कर टहलने लगा। थोड़ी देर बाद आ कर उसने पहले के दो पन्ने उठाये और उन्हे शुरू से अन्त तक पढ़ डाला, बैठ कर फिर नया पन्ना लिया और दो-तीन पंक्तियाँ जोड़

कर पत्र समाप्त कर दिया। दोनों पत्र लिफाफो मे डाल कर बन्द किये, पते लिख कर मेज़ के एक कोने मे रख दिये, ऊपर दाब के लिए आलपीनदान रख दिया। फिर वह टहलने लगा।

अनन्तर रात मे उसने फिर पैड सामने खींच कर कलम हाथ में साधा, थोड़ी देर कागज को देखते रह कर वह उठा, मेज़ पर जितने कागज़, किताबें, पुराने पत्र, कलमदान, फूलदान, अखबार के कटिंग वगैरह थे, सब समेट कर उठाये और ले जा कर मैंटल पर रख दिये, दुबारा आ कर ताज़े लिखे हुए दोनों पत्र भी उठाये और अन्य सब चीज़ों के ऊपर उसी प्रकार दाब दे कर रख दिये। सूनी मेज़ पर रह गया केवल पैड, कलम, और टेबल लैम्प। उसे भी चन्द्र ने घुमा कर ऐसे रखा कि दोनों ओर की कोई आकृति उसे न दीखे, केवल बीच का अन्तराल, ओॅत के मैले पीले रंग में से पार का आलोक मद्धिम हो कर आता था और उस से छादन मे जहाँ ओॅत का जोड था वहाँ एक धुँधली-सी, कहीं आलोकित और कहीं घनी टेढी-तिरछी लकीर झलक उठी थी, जैसे पहाडी प्रदेश के नकशों में कोई नाला आँका गया हो। एक सन्तुष्ट दृष्टि पूरे पैड पर डाल कर उसने फिर लिखा : 'प्रिय गोरा'।

यह पत्र समाप्त कर के वह जब उठा, तब भोर का आकारहीन फीकापन क्षितिज पर छा गया था। डाकघर का गजर खड़कता रहा कि नहीं, चन्द्र-माधव ने नहीं सुना।

मैंटल पर रखे हुए पत्रों मे से भुवन वाला पत्र उसने फिर उठाया, और सावधानी से खोल लिया। 'पुनश्च' के नीचे लिखा : 'दूसरी बार पुनश्च : गौरा आजकल कहाँ है? उस से तुम्हारा पत्र-व्यवहार होता है? उसे पत्र लिखो, तो मेरा नमस्कार भी लिखना, और लिखना कि उन का कुशल समाचार पा कर मैं अपने को धन्य मानूँगा। शायद मैं भी उसे लिखूँ।'

पत्र फिर बन्द कर के उसने पूर्ववत् रखा, बत्ती बुझा दी, और बिछौने पर धम से लेट गया। बाहर क्षितिज कुछ स्पष्ट होने लगा था; एक बार खिड़कियों पर चढ़े चेहरे से चन्द्र ने उधर ताका, फिर औंधा हो कर तकिये में

मुँह छिपा लिया, जरा हिल-डुल कर शरीर को ढीला किया, नाक के सामने से तकिये को दबा कर साँस की सुविधा की, फिर बाँह मोड कर चेहरे को उस की ओट दे दी और अधखुली मुट्ठी सिर पर ऐसी लगने लगी मानो चोट से बचने को ओट की गयी हो।

दो-तीन मिनट बाद ही उस की साँस नियमित चलने लगी—उस नियम से जो हमारी संकल्पना का नही, उस से निरपेक्ष प्रकृति का अनुशासित है, और उस के औंधे शरीर की सब रेखाओं मे एक बेबस शिथिलता आ गयी।

गौरा से भुवन का परिचय यों तो चौदह-पन्द्रह वर्ष का गिना जा सकता है, जब वह पाँच-छः वर्ष की थी और दो चोटियाँ गूँथ कर फ्राक पहने स्कूल जाया करती थी—वह चित्र भुवन को याद है, यह भी याद है कि कभी-कभी वह भुवन को खिझाने के लिए बड़ी तीखी किलकारी मारा करती थी—'बच्चों को यों भी किलकारी मारने में आनन्द मिलता है।' पर भुवन तीखी आवाज़ सह नहीं सकता यह जान कर ही वह उस के पास आकर किलकारती थी और भाग जाती थी; भुवन का सारा शरीर झनझना जाता था और तब वह दौड़ कर हँसती हुई गौरा को पकड़ कर उठा लेता और डराने के लिए उछाल देता था। डर कर गौरा और भी किलकती थी और उस के गले से चिपट जाती थी; उस के रूखे बालों की सोंधी गन्ध भुवन के नासा-पुटों में भर जाती थी, तब वह यह कह कर कि "ठहरो, तुम्हारे बाल सुलझा दूँ," उस की दोनों चोटियाँ पकड़ कर सिर के ऊपर गाँठ बाँध देता था और हँसता था। गौरा झल्लाती थी और फिर किलकारने की धमकी देती थी, पर भुवन 'सुलह' कर लेता था और गौरा उसे 'माफ़' कर देती थी। चोटियाँ सिर पर बाँधे उस का नयी धूप-सा खिला बाल-मुखड़ा भुवन को इतना सुन्दर जान पड़ता था कि वह प्रायः कहता, "तुम्हारा नाम जुगनू है: गौरा भी कोई नाम होता है भला?" और गौरा कहती, "धत्! जुगनू तो सीली-सड़ी जगह में होते हैं!" या "गौरा तो देवी पार्वती का नाम है,

हिमालय की चोटी पर रहती है वह।" भुवन कहता, "नहीं, गौरा सरस्वती का नाम है, वही उजली होती है और उजले कपडे पहनती है। तुम तो—" फिर सहसा दुष्टता से भर कर, "हाँ, हिडिम्बा हो, हिडिम्बा !

मगर वह तो बहुत पहले की बात है, उस के बाद कई वर्षों का अन्तराल था इस लिए उसे नहीं भी गिना जा सकता है। अतः कहना चाहिए कि परिचय आरम्भ हुआ १६३२ मे, जब उसने मैट्रिक के लिए जम कर तैयारी करनी शुरू की। भुवन तब नया-नया एम० एस-सी० कर के चुका था, रिसर्च के लिए छात्रवृत्ति मिलेगी या नही यह अनिश्चित था और वह कुछ छोटे-मोटे काम की ताक मे था जिस से मन भी लगा रहे और कुछ आय भी हो। आय की दृष्टि से तो गौरा को पढाने का महत्व नही था—भुवन ने ही गौरा के पिता का वह प्रस्ताव टाल दिया था—पर मन लगने के लिए यह अच्छा था, गौरा ने स्वयं उस से पढने को बात उठायी थी और उस का कालेज का रेकार्ड तो उस की पात्रता का प्रमाण था ही। भुवन ने उसे पढाना आरम्भ कर दिया था, और आय के लिए एक आई० सी० एस० अधिकारी के बिगड़े हुए और पढाई के प्रति उदासीन लडके की ट्यूशन भी स्वीकार कर ली थी जिस से उसे सवा सौ मासिक मिल जाता था।

गौरा पढने मे तेज थी। विज्ञान यद्यपि उस के लिये हुए विषयो मे गौण ही स्थान रखता था—मैट्रिक का साइंस होता ही क्या है?—पर भुवन को साहित्य आदि मे भी यथेष्ट रुचि रही थी और इस लिए उस की पढाई गौरा के लिए जितनी उपयोगी थी उस के लिए भी उतनी ही रुचिकर। पहले ही दिन तेरह वर्ष की इस लम्बी, कृशतनु, गम्भीर गौरा को देख कर वह थोड़ी देर देखता रहा था, फिर उसने पूछा था, "सुना है, तुमने स्वयं मुझे मास्टर चुना है—क्यो।"

गौरा ने आँखे नीची किये ही सिर हिला दिया था, "हाँ।"

"क्यों? मै तो बड़ी कस कर पढाई करूँगा—उतनी मेहनत करोगी?"

गौरा ने फिर वैसे ही सिर हिला दिया था।

गम्भीरता को तोड़ने के लिए भुवन ने पूछा था, "और अगर मेरे कान मे किलकारी मारी तो ?"

एक अवश मुस्कान सहसा उस के चेहरे पर बिखर गयी थी, उस का चेहरा ईषत् लाल हो आया था। उस शब्दहीन खिलखिलाहट मे भुवन ने सात-आठ वर्ष पहले की बालिका को पहचान लिया था। फिर तत्काल ही गौरा ने आँचल से मुँह चाँप कर हँसी दबा ली थी, थोडी देर बाद पहले सी गम्भीर मुद्रा बना कर कहा था, "आप हिडिम्बा कहेगे ?"

भुवन ने कुछ पसीज कर कहा था, "नही, लेकिन समझौता कर लो कि गौरा पार्वती का नही, सरस्वती का नाम है। तभी विद्या आयेगी।"

तब से वह परिचय बना ही हुआ था। दो वर्ष बाद गौरा ने मैट्रिक कर लिया था। प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हो कर कालेज मे भर्ती हो गयी थी। उस के बाद पढाई तो बन्द हो गयी थी, पर परिचय बढता रहा था, क्योकि गौरा कालेज मे भी जब-तब उस से न केवल विज्ञान बल्कि साहित्य के विषय में बहुत कुछ पूछती रहती थी, और भुवन जब यह कह कर अपनी अपात्रता जताता था कि "भई, मेरा विषय तो विज्ञान है, वह भी भौतिक विज्ञान, ये बाते तो तुम्हारे प्रोफेसर ही बतायेगे," तब वह आग्रह कर के कहती थी, "इसी लिए तो आप ठीक बतायेंगे। उन का जो विषय है वे लोग किताबो में से बताते हैं, आप रुचि से बताते हैं, आप की बात ज्यादा सच होती है और मेरी समझ मे जल्दी आ जाती है।" भुवन हँसी में कहता, "इस का मतलब है कि विज्ञान पढने तुम उन के पास जाओगी ? अच्छी बात है, अब विज्ञान अपने अंग्रेजी के प्रोफेसर से पूछना, खबरदार मुझ से कभी कोई प्रश्न पूछा जो !" पर साथ ही मन लगा कर उस की जिज्ञासाओ का उत्तर भी देता। कभी-कभी इस मे स्वयं उसे काफी परिश्रम करना पड़ता; पर वह मानता था कि अध्यापन का श्रेष्ठ सम्बन्ध वही होता है जिस मे अध्यापक भी कुछ सीखता है, और इस परिश्रम में कोताही नही करता था। बल्कि इस तरह अपने साहित्य-ज्ञान के विकास मे उसे अतिरिक्त आनन्द मिलता था।

गौरा ने विधिवत् संगीत सीखना भी आरम्भ कर दिया था, और कालेज

की नाटक आदि अन्य कार्रवाइयों में हिस्सा लेना भी। इस के लिए भी वह बहुधा भुवन से परामर्श लेती, भुवन इन मामलों में बिल्कुल कोरा होने की दुहाई देता तो वह कहती, "और सब भी तो कोरे है—आप कुछ ढूँढ दीजिए न, या सोच कर बताइये न।" और उस के आग्रह की प्रेरणा से भुवन तरह-तरह की पुस्तकें पढ़ता, खोज करता, अनुमान भिड़ाता और उन की पुष्टि के लिए फिर और पढ़ता या कभी दूर-दूर के विशेषज्ञों से पत्र-व्यवहार करता। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों की शोध में, उन के असमान सम्बन्ध में क्रमशः परिवर्तन होता गया था, 'मास्टर जी' से वह क्रमशः 'भुवन मास्टर जी' हो कर 'भुवन दा' हो गया था और एक नया, समान प्रीतिकर सख्य भाव उन में आ गया था।

जाड़ों में एक दिन गौरा ने आ कर सहसा कहा, "भुवन दा, आप हमें मालविकाग्निमित्र का एक रूपान्तर कर देंगे। बड़े दिनों में हम नाटक खेलना चाहते हैं और किसी ने सुझाया है।"

भुवन ने अचकचा कर कहा, "क्या?"

"जी। मालविकाग्निमित्र। शायद संस्कृत के प्रोफेसर साहब की राय थी—"

"तुम्हारा दिमाग खराब है क्या? मैंने तो पढ़ा भी नहीं—इतना जानता हूँ कि कालिदास का नाटक है, मालविका के नृत्य का एक चित्र भी कहीं देखा है, बस—"

"तो क्या हुआ, पढ़ लीजिए न? कितनी देर लगती है? कहानी तो मैं अभी बता देती हूँ—"

"यह खूब रही। अरे भई, एडेप्टेशन किसी जानकार का काम है, मैं कैसे कर सकता हूँ? और तुम क्या मालविका का पार्ट करोगी? नाचना आता है?"

गौरा कुछ सकपका गयी। फिर बोली "सीखना तो शुरू किया है।"

"अच्छा! तब तो और मुसीबत हुई। कल को मुझ से त-त-थेई और त्राम्-त्राम् के मतलब पूछोगी—"

"नही भुवन दा, ये तो कथक के बोल हैं, मालविका तो भारत ना
रेगी।"

"हाँ तो। पर उस के बोल कैसे होते हैं यह तो मुझे नही मालूम न।
रे लिए तो बाम्-बाम् ही है।"

"आप पढ तो लीजिए न। मैं साथ लायी हूँ। संस्कृत भी, एक
ंग्रेजी अनुवाद भी।"

"बाप रे! तुम्हारी एफिशेंसी तो वैज्ञानिक की है। काश कि बुद्धि भी
सी होती। हो तुम निरी—"

"देखिए भुवन दा! चिढाइये मत्! नही तो मैं भी वैसा ही जवाब
ंगी—"

सहसा वह सकपका कर चुप हो गयी और उस का चेहरा तमतमा
या, क्योंकि साथ के दूसरे कमरे से एक व्यक्ति ने बाहर निकल कर कहा,
भुवन, मेरा इंटरपशन माफ करना, मैं थोडी देर बाहर जा रहा हूँ।"
ौर फिर गौरा की ओर तनिक कौतुक-भरी दृष्टि से देख कर फिर भुवन की
ोर मुड़ कर पलकें उठायी, मानो कहता हो, "यह कौन है, परिचय—"

भुवन ने कहा, "ओह, गौरा जी, यह है मेरे मित्र और पुराने सहपाठी
न्द्रमाधव, विलायत जाने वाले हैं, आज ही यहाँ आये हैं। चन्द्र; यह
गौरा जी, कालेज मे पढती है—पहले कुछ दिन मैंने भी पढाया था—"

"तुम्हारी पढाई के लक्षण तो देख ही रहा हूँ!" चन्द्र ने दबी दुष्टता
साथ कहा, "मिस गौरा, आप से मिल कर बडी प्रसन्नता हुई, इस लिए
ौर भी अधिक, कि भुवन के परिचितो मे कोई ऐसा भी है जिसे साहित्यिक
चि है—भुवन तो विज्ञान मे गर्क हो गया है।"

गौरा ने कुछ दूर से कहा, "मास्टर साहब से मैंने साहित्य भी पढा है।"

"सो तो है, सो तो है। साहित्य ही क्यों, देखता हूँ कि मेरे साथ के
ाद से उन्हें नाटक, संगीत, नृत्य बहुत से विषयो मे रुचि हो गयी है, बल्कि
हुच भी रखते हैं अब—"

भुवन ने कहा, "रहने दो चन्द्र, गौरा जी के सामने उन के मास्टर क मजाक बनाना क्या उचित है ?"

"आइ एम सॉरी, आइ बेग योर पार्डन, गौरा जी। मुझे इजाज़ दीजिए—ज़रा बाहर जाना है। मुझे आशा है आप का नाटक सफल होगा मै तो समझता हूँ, भुवन उस मे अभिनय भी करे तो—"

भुवन ने थोडा झुड़क कर कहा, "फिर ?"

चन्द्र चला गया तो गौरा ने पूछा, "आप ने बताया क्यों नहीं ?"

भुवन ने हँस कर पूछा, "क्या ?"

"आप बहुत बुरे है। मुझे क्या मालूम था कि दूसरे कमरे में वह हैं नही तो मै कभी ऐसी बात न करती। आप भी—"

"तो हुआ क्या ? ऐसी कौन-सी बात थी ?"

"नहीं, मेरे मास्टर जी का मजाक बनाने वाला कोई कौन होता है और मैने ही उस मे मदद दी—"

भुवन जोर से हँस दिया। बोला, "अच्छा, मालविकाग्निमित्र छो जाओ, पढ डालूँगा। कल फिर सलाह करेंगे।"

दूसरे दिन गौरा ने आ कर बड़े अदब से नमस्कार किया। फिर चारों ओर एक नजर दौड़ा कर कहा, "भुवन मास्टर साहब, आप ने पुस्तक पढ़ ली ? अब बताइये—"

भुवन ने हँस कर कहा, "इतने तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं, गौरा, चन्द्रमाधव बाहर गया है।"

"हाँ तो भुवन दा, आप की क्या राय है ?"

"मेरी राय तो यही है कि यह नाटक तुम न खेलो। क्यों नहीं कोई आधुनिक हिन्दी नाटक लेतीं ?"

"जैसे ?"

" 'प्रसाद' का कोई छोटा नाटक, 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी'—"

"वे मैंने नहीं पढ़े—"

भुवन ने हँस कर कहा, "तो यह थी एफिशेसी की पोल! खु
गयी न?"

गौरा ने थोड़ा रूठ कर कहा, "सर्वज्ञ तो सिर्फ वैज्ञानिक होता है। फिर मै तो वैसे ही अनपढ हूँ। क्या करूँ, आपने कुछ पढाया ही नही—"

"ठीक है। तो लो, अब प्रायश्चित करता हूँ। तुम कल तक दोनों नाटक पढ कर आओ—"

"और अगर उन मे भी कुछ हेर-फेर करना पड़ा तो? आप करेगे न?"

"देखा जायगा," भुवन हँसा, "तुम्हारी बात तो ऐसी है मानो नाटक से उस का एडेप्टेशन ही ज़्यादा महत्व का हो।"

"हाँ, मेरे काम मे आप का भाग जरूरी है, भुवन दा!" कह कर गौरा कुछ रुक गयी। "आप के मित्र तो कहते थे, आप अभिनय भी कर सकते है, तो"—

"एक वह पागल है और एक तुम!" भुवन कुछ और कहने जा रहा था पर रुक गया। "पुस्तके तुम्हे मिल जायेगी न?"

"जरूर।"

बाहर शब्द सुनाई दिया। "लो, चन्द्रमाधव भी आ गये। नाटको के बारे मे तो इन से पूछो—यह साहित्य और कला के विद्यार्थी हैं—"

"हलो, गौरा जी। क्या बात है—आप के अभिनय की क्या बात ठहरी? भुवन तो रात सोये नही, आप की दी हुई पुस्तकें पढते रहे।"

गौरा जल्दी चली गयी। चन्द्र ने कहा, "यार, अपनी इस विद्यार्थिन की कुछ बात तो बताओ। लडकी तो तेज मालूम होती है तुम्हारे साथ कैसे उलझ गयी?"

भुवन ने गम्भीर हो कर कहा, "हाँ, मैने दो वर्ष उसे पढया था। अच्छी पास हुई है। और उस मे जीवन है, जीवन की लालसा है—ऐसी जो उसे कई दिशाओं मे अन्वेषण को प्रेरणा देती है। पढने मे बहुत अच्छी है, लेकिन सोचता हूँ, आगे क्या? तो खेद होता है कि हमारे देश में लडकी के लिए सिवाय मास्टरी के या इधर कुछ-कुछ डाक्टरी के और कोई

केरीयर ही खुला नहीं है। और ये दोनों गौरा के लिए नहीं है। उस का व्यक्तित्व बहुत कोमल भी है, बहुत सम्पन्न भी, उस की अभिव्यक्ति उन मे नहीं है। वह कोई रचनात्मक एक्सप्रेशन चाहता है, न जाने क्या।"

"क्यों? भारतीय नारी का जो सब से पहला केरीयर है—गृहस्थी—वह तुम ठीक नहीं समझते?"

"उसे बेठीक कैसे समझा जा सकता है। और एक प्रकार की रचनात्मक अभिव्यक्ति उस मे भी हो सकती है, मैं मानता हूँ, पर—"

"पर गौरा के लिए तुम वह ठीक नहीं समझते।"

"नहीं यह नहीं, मै समझता हूँ कि उस दृष्टि से तो वह आदमी बहुत भाग्यवान् होगा जिसे गौरा जैसी पत्नी मिलेगी। पर सोच यह भी तो सकता हूँ कि उसे पा कर गौरा भी भाग्यवती होगी या नहीं? और वैसा कौन होगा, यह सोच नहीं सकता।"

चन्द्र ने कुछ चिढाते हुए कहा, "यह सोच गौरा पर छोड देना क्या उचित न होगा?"

"आफ कोर्स, आफ़ कोर्स।" भुवन थोड़ा-सा झेंप गया। "हर मामले मे सलाह देते-देते कुछ आदत पड़ गयी है कि सब सवालो के जवाब पहले से सोच रखूँ।" वह हँस दिया।

"तो क्या यह सवाल जल्दी उठने वाला है?"

"अभी तो कोई लक्षण नहीं है। लेकिन क्या मालूम। लड़की जब हुई परायी थाती, तब कभी भी सौंपने का सवाल उठ सकता है; सौंप देने का नहीं तो कम-से-कम छूट देने का तो जरूर—"

"हूँ।"

भुवन ने विषय बदलने को कहा, "सुनो, चन्द्र, तुम तो नाटक-वाटक खेलते रहे हो; तुम क्यों नहीं उसे कुछ सलाह देते? 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी' का एडेप्टेशन कर दो न—"

"अरे, हिन्दी! राम-राम। हिन्दी नाटक में नहीं छूने का—"

"यही तो मुश्किल है। कोई छूता नहीं, हर साल सब कालेज-वालेज

अंग्रेजी नाटक खेलते हैं; हिन्दी मे भी अंग्रेजी नाटक अनुवाद कर के—"

"सो तो होगा। वे खेले जा सकते है, खेलने के लिए लिखे जाते है। हिन्दी नाटक तो पढना भी टार्चर है। एक तो जबान ही ऐसी होती है—"

"लेकिन तुम अगर रूसी के अंग्रेजी अनुवाद के हिन्दी अनुवाद की भाषा अपने अनुकूल बना कर उसे खेल सकते हो, तो क्या सीधे हिन्दी की भाषा नही ठीक कर सकते?" कालेज मे चन्द्रमाधव ने चेखोफ के 'चेरी आर्चर्ड' के अभिनय में भाग लिया था, उसी की ओर भुवन का इशारा था।

"यही तो बात है। रूसी दूर है। उन के लिखे को उलट-पलट लो, कोई कुछ नहीं कहेगा। लेकिन अपने देश के लेखक का एक वाक्य इधर-उधर कर तो लो—जान को आजायेंगे सब। हमारे यहाँ कोई नाटक थोडे ही लिखता है? सब शास्तर लिखा जाता है; सब लेखक ऋषि होते है—'आर्षवाक्य प्रमाणम्', और तुम झख मारते रहो। शेक्सपियर भी स्टेज पर जा कर एक्टरो से सीख कर अपने डायलाग बदलता था, लेकिन यहाँ सब सीखे-सिखाये कोख से निकलते है।"

"तुम्हारी बात मे सार है, मै मानता हूँ। लेकिन दूसरा पक्ष भी कुछ हो सकता है। एडेप्ट कर के अपने देश-काल मे ले आना हमेशा ठीक नही होता, खुद भी दूसरे देश-काल मे जा सकना चाहिए। अगर आज 'शाकुन्तल' ज्यो का त्यो स्वाभाविक नही, तो जरूरी नही है कि शकुन्तला को ड्राइगरूम हिरोइन बनाया जाय; हमी क्यो न कण्व के आश्रम मे जा सके? ग्रीक नाटक तक तो हम चले जाते है—"

"वह दूसरी बात है। लेकिन हमारे देश मे न स्टेज है, नये एक्टर है, न नाटक है, फिर नाटक-लेखक ऐंठे किस बात पर रहते है? सब कुछ हमी को सीखना है, उन्हे कुछ नही सीखना है?"

"ऐंठ का जवाब ऐंठ हो भी सकता है, पर उस से स्थिति नही बदलती। हिन्दी नाटक ले कर कुछ कर के दिखाओगे, तभी तो आगे कुछ होगा, नहीं तो आगे भी यही स्थिति रहेगी—न स्टेज, न एक्टर, न नाटक।"

"हाँ, तो मेरी ओर मे रहे। खुदाई खिदमतगारी का शौक तुम्हे है,

तुम करो। मैं तो दुनिया की जैसी है वैसी ले कर चलता हूँ।"

भुवन ने कहा, "तो जाने दो।" बात समाप्त हो गयी।

लेकिन शाम को चन्द्रमाधव घूमने गया, तो दोनो नाटक लेता आया। रात मे पढ़ डाले, फिर पेंसिल ले कर बहुत से निशान लगाये, हाशिये में नोट लिखे, क्या अंश छोडा जा सकता है, क्या हेर-फेर हो सकता है, वाचिक मे क्या परिवर्तन अपेक्षित है, इत्यादि। बीच-बीच मे शब्दो पर वह झल्लाता, फि रेखाकित कर के हाशिये मे दूसरे शब्द या पद लिख देता जिन से वार्ताला अधिक सहज और स्वाभाविक बन सके।

दूसरे दिन गौरा आयी तो चन्द्रमाधव मौजूद था। दोनों को नमस्का कर के गौरा ने कहा, "मास्टर साहब, मैंने नाटक पढ लिये, और भी दो एक लड़कियो से सलाह कर ली। हम 'ध्रुवस्वामिनी' खेलेंगे, लेकिन—"

"लेकिन यह कि मुझे मेहनत करनी होगी; यही न?"

"हाँ।"

यहाँ पर चन्द्रमाधव ने कहा, "मेरी बात टाँग अड़ाना न समझी जाय तो निवेदन करूँ कि मैंने 'ध्रुवस्वामिनी' पर कुछ नोट लिये है; अगर कुछ काम आ सके—"

भुवन ने कुछ विस्मय से भँवे ऊँची की, लेकिन तुरत सँभल कर बोला "गुड फेलो! लाओ देखें—"

चन्द्रमाधव उठ कर भीतर गया तो गौरा ने घने उलाहने से भरी आँखें भुवन पर टिका दी, और एकटक उसे देखती रही। वह चितवन भुवन तक पहुँची, पर उसने जान-बूझ कर उसे न देख कर सम स्वर से कहा, "लो तुम्हारा काम आसान हो गया।"

"मेरा क्या, आप का कहिए। आप ने क्यों—"

वाक्य अधूरा रह गया। चन्द्रमाधव पुस्तक ले आया, भुवन ने पन्ने उलट पलट कर देखे और कहा, "ठीक तो है।" फिर पुस्तक गौरा को दे दी। गौ

ने अनिच्छुक भाव से उसे लिया, इधर-उधर देखा; फिर मानो कर्तव्य का ध्यान कर के सधे शब्दों मे कहा, "आप के मित्र ने बहुत परिश्रम किया है, मैं उन की बडी कृतज्ञ हूँ।" फिर चन्द्रमाधव की ओर मुड़ कर कहा, "आप का बहुत-बहुत धन्यवाद। बल्कि मास्टर साहब की ओर से भी, जिन का कष्ट बचाने के लिए आप को मेहनत करनी पड़ी।" कहते-कहते उसने कनखियो से भुवन की ओर देखा, कि यह चोट ठीक बैठी है कि नहीं।

चन्द्रमाधव ने सफेद झूठ बोलते हुए कहा, "नहीं मिस गौरा, मुझे धन्यवाद देने की कोई बात नहीं है—मास्टर साहब की ओर से भी नही, क्योकि ये नोट तो मेरे पहले के है। पिछले साल एक बार हमने अभिनय करने की सोची थी, तब के। तब स्टेज की दृष्टि से भी विचार किया था—"

भुवन ने भँवे उठा कर स्थिर दृष्टि से चन्द्रमाधव को देखा, एक बहुत दबी मुस्कान उस के ओठो की कोर मे ही खो गयी। फिर उसने गौरा की ओर मुड़ कर कहा, "लीजिए, मेरा एलिबाई पक्का है न? मेरे लिए चन्द्र ने वह नहीं किया, अपने ही लिए किया है।"

गौरा ने आँखे सकोच कर उस की ओर क्षण-भर देखा, मानो कहती हो, "जाइये!" फिर चन्द्रमाधव से पूछा, "तो आपने पोशाको की बात भी सोची होगी?"

"जरूर—"

"अच्छा, हमारी ड्रेस रिहर्सल तक अगर आप यहाँ ठहरे तो एक बार आइयेगा।" फिर भुवन की ओर मुड़ कर, "मास्टर साहब, उस दिन आप इन्हे भी साथ लाइयेगा, मैं कह दूँगी—"

"यानी?"

"यानी यह कि निर्देशन आप करेंगे—आप को रोज़ आना पड़ेगा।" गौरा ने स्थिर दृष्टि से उसे देखा, फिर कहा, "हाँ-आँ!"

भुवन हँस दिया। चन्द्र ने कहा, "मैं अधिक तो ठहर नही रहा, अभी एक-आध दिन आ सकता हूँ, फिर पीछे मास्टर साहब निर्देशन करते ही रहेगे।"

"अच्छा देखिए, तय हो जाय—"

गौरा चली गयी तो चन्द्र ने कहा, "अब बताओ, कास्ट्यूम का क्या होगा ?"

भुवन ने कहा, "वह तुम जानो, तुमने तो पहले से सोच रखा है न, पिछले साल से ?"

"मैंने तुम्हारी इज़्ज़त बचा ली है। अब—"

"ओह, तो इज़्ज़त के बदले इज़्ज़त चाहिए। लेकिन मैंने तो ऐसा सौदा नहीं किया ?"

"मै नही जानता, मै तुम पर टाल दूँगा।"

दो-एक दिन चन्द्रमाधव कालेज जा कर गौरा और अन्य अभिनेताओं से मिल आया। इधर-उधर की कई बाते उसने की, पोशाक का प्रश्न उठने पर उसने कहा कि उसने अपने नोट सब भुवन को दे दिये हैं, उन से पूरा निर्देश मिल जायगा।

चन्द्रमाधव को स्टेशन छोडने भुवन के साथ गौरा भी गयी थी, उस की दो-एक और सहपाठिनियाँ भी। चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, आप के नाटक के कोई फोटो लिये जायें तो एक-आध मुझे भी भेजिएगा, मुझे बहुत दिलचस्पी रहेगी।"

गौरा ने कहा, "मास्टर साहब अगर खिंचवा देंगे तो होगी। तब आप उन्हीं से मँगा भी लीजिएगा।"

चन्द्र नहीं समझ सका कि इस मे केवल भुवन के प्रति सहज सम्मान है, या भुवन को ही कोई अस्पष्ट उलहना; या कि चन्द्र के आत्मीयता प्रकाशन की ही परोक्ष अवहेलना—'आप का परिचय मुझ से नहीं, भुवन से है, उन्हीं की मारफत मैं...'। उसने कहा, "विलायत से मैं पत्र लिखूँ तो उत्तर देंगी न ?" फिर गौरा के चेहरे को देख कर उस के कुछ उत्तर देने से पहले ही उसने जोड़ दिया, "मेरे मित्र बहुत थोड़े है, और भुवन मास्टर साहब तो शायद पत्र लिखना ही गवारा न करें; उन की ओर से ही आप—"

गौरा ने कहा, "अच्छा; मास्टर साहब को भी मैं कोंच दिया करूँगी"—और हँस दी।

"थैंक यू।"

लेकिन भुवन को कोंचने के अवसर गौरा को अधिक न मिले, अगले सेशन में भुवन को रिसर्च के लिए एक वृत्ति मिल गयी और वह बंगलोर चला गया। वहाँ दो वर्ष में अपना प्रायोगिक काम पूरा कर के उसने फिर नौकरी कर ली : थीसिस वह वहाँ से भी लिख कर भेज सकेगा इस की सुविधा उसे थी। छः महीने का काम उस के लिए अपेक्षित था : उस के बाद थीसिस तो अगले वर्ष ही जायगा, इस लिए काम कर लेना ही अच्छा है... गौरा से पत्र-व्यवहार भी उस का बहुत अनियमित था, गौरा के पत्रों में भी उस हठीले उत्साह का स्थान एक गाम्भीर्य ले रहा था और भुवन तो यों ही कम लिखता था। उस की धारणा थी कि अच्छा पत्र-व्यवहार कभी नियमित हो ही नहीं सकता, जीवन में जब-तब ही पत्र लिखे जायें तभी अच्छे होते हैं।

चन्द्रमाधव से गौरा का पत्र-व्यवहार भी अनियमित चलता रहा। चन्द्र उसे जब-तब पुस्तकें या चित्र भेज देता, पत्र में ऐसे स्थलों के वर्णन भी जिन में गौरा को दिलचस्पी हो सके—इंग्लैंड में शेक्सपियर के घर का, ताल-प्रदेश का जहाँ वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज की काव्य-प्रतिभा मुखरित हुई, फ्रांस में ह्यूगो के स्मारक का, नोत्रदाम का, लूव्र संग्रहालय का, जर्मनी में गयटे के घर का, ओबरामरगाउ के ईसा के जीवन-नाटक का... दो-एक अपने फोटो भी उसने भेजे थे, पहले अव्यक्त आशा में कि गौरा भी उसे अपना फोटो भेजेगी, फिर इस स्पष्ट प्रार्थना के साथ। गौरा ने अपना कोई फोटो नहीं भेजा था, पर दो-तीन पत्रों के आग्रह के बाद 'ध्रुवस्वामिनी' का एक ग्रुप भेज दिया था जिस में अभिनेतृ-समुदाय के साथ भुवन भी था। पत्रों में वह प्रायः भुवन के समाचार ही अधिक देती, अपने विषय में कम लिखती या लिखती तो कालेज की 'एक्टिविटीज़' का वर्णन कर देती। चन्द्र के पत्रों में व्यक्तिगत अधिक होता, विदेशों में मिले लोगों और विशेष कर स्त्रियों की बातें होतीं, और निरन्तर वहाँ की स्वाधीनता और यहाँ के बन्धनों की तुलना और उस पर एक आक्रोश का स्वर उस के पत्रों में पाया जाता। गौरा ने

एक बार लिखा, "स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नहीं है। वह एक दृष्टि-कोण है, व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है। हम कहते हैं कि समाज हमें स्वाधीनता नहीं देता, पर समाज दे कैसे? हमीं तो अपने दृष्टिकोण से समाज बनाते है। मै अपने-आप को बद्ध नहीं मानती हूँ, और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ। सफलता की बात नहीं जानती, उतनी शक्ति मेरे भीतर होगी तो क्यों नहीं होऊँगी सफल? और मैं सोचती हूँ कि सब लोग यत्नपूर्वक अपने को स्वाधीनता के लिए ट्रेन करे तो शायद हमारा समाज भी स्वाधीन हो सके।"

चन्द्र ने उत्तर मे उसे बधाई देते हुए लिखा था, "आप ऐसा मान सकती हैं, और ट्रेनिंग की सुविधा पा सकती है, क्योंकि आप का जीवन संरक्षित है, उसे छत्रच्छाया मिली है। उन की सोचिए जो जीवन के अपार सागर पर फेंक दिये जाते है एक खाली टीन के डिब्बे की तरह: क्या वे भी स्वाधीन हैं, अपने को ट्रेन कर सकते है? जीवन वैसा ही है—और हम सब बह रहे हैं, बह रहे हैं, खाली डिब्बा ऊब-डूब करता है तो समझता है कि मै स्वाधीन हूँ, और सागर पर सवार हूँ, पर कहाँ छोर है, कब वह जा लगेगा या कि राह मे डूब जायगा—क्या वह जानता है? या उस के बारे में कुछ कर सकता है? नहीं गौरा जी, हमे जिस को जहाँ जितना थोड़ा-सा सुख मिल रहा है, उतना ही हमें आतुर और कृतज्ञ हाथों से ले लेना चाहिए—उसी का नाम स्वाधीनता है, बाकी सब संघर्ष है, संघर्ष, अन्तहीन आशाहीन संघर्ष..."

और गौरा ने: "शायद हम अलग-अलग दुनिया मे रहते हैं, अलग-अलग मुहावरे बोलते हैं। आप को यूरोप के समकालीन निराशावाद ने पकड़ लिया है—है न? इस यूरोप के लिए आशा नहीं है। यह तो मैं भी मानती ही। पर क्या एक दूसरा यूरोप नहीं उठेगा? नहीं, ऊब-डूब करते डिब्बे-सा यूरोप नहीं, फिर एक स्वाधीन यूरोप, लेकिन जिस की स्वाधीनता नये और दृढ़तर पायों पर टिकी हो? मैं तो समझती हूँ, हम यहाँ हिन्दुस्तान में न केवल अपनी वरन् यूरोप की भी स्वाधीनता का उद्योग कर सकते हैं:

कोई हर जगह सारे विश्व की स्वाधीनता की लड़ाई लड़ सकता है क्योंकि अविभाजित और अविभाज्य स्वाधीनता ही स्वाधीनता है, जब तक वह नहीं तब तक स्वाधीनता हो कर भी अधूरी और अरक्षित है।"

दो-एक ऐसे पत्रों के बाद चन्द्रमाधव विषय को छोड़ देता था और फिर बिल्कुल व्यक्तिगत बातों पर आ जाता था, उस में से फिर कोई साधारण छत्र उठाकर गौरा दूर हट जाती थी।

जो डूबने-उतराने को मानता है, वह डूबता-उतराता है, जो स्वाधीनता के लिए साधना करता है, वह—

यो यो या यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम्॥

मैत्री, सख्य, प्रेम—इन का विकास धीरे-धीरे होता है ऐसा हम मानते हैं; 'प्रथम दर्शन से ही प्रेम' की सम्भावना स्वीकार कर लेने से भी इस में कोई अन्तर नहीं आता। पर धीरे-धीरे होता हुआ भी वह सम गति से बढ़ने वाला विकास नहीं होता, सीढ़ियों की तरह बढ़ने वाली उस की गति होती है, क्रमशः नये-नये उच्चतर स्तर पर पहुँचने वाली। कली का प्रस्फुटन उस की ठीक उपमा नहीं है, जिस का क्रम-विकास हम अनुक्षण देख सकें: धीरे-धीरे रंग भरता है, पखुड़ियाँ खिलती हैं, सौरभ संचित होता है, और डोलती हवाएँ रूप को निखार देती जाती हैं। ठीक उपमा शायद साँझ का आकाश है: एक क्षण सूना, कि सहसा हम देखते हैं, अरे, वह तारा! और जब तक हम चौंक कर सोचें कि यह हमने क्षण-भर पहले क्यों न देखा—क्या तब नहीं था? तब तक इधर-उधर, आगे, ऊपर कितने ही तारे खिल आये, तारे ही नहीं, राशि-राशि नक्षत्र-मंडल, धूमिल उल्का-कुल, मुक्त-प्रवाहिनी नभ-पयस्विनी—अरे, आकाश सूना कहाँ है, यह तो भरा हुआ है रहस्यों से जो हमारे आगे उद्घाटित हैं...प्यार भी ऐसा ही है, एक समोन्नत ढलान नहीं, परिचिति के, आध्यात्मिक संस्पर्श के, नये-नये स्तरों का

उन्मेष...उस की गति तीव्र हो या मन्द, प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, वांछित हो या वांछातीत। आकाश चन्दोवा नहीं है कि चाहे तो तान दें, वह है तो है, और है तो तारों-भरा है, नहीं है तो शून्य-शून्य ही है जो सब-कुछ को धारण करता हुआ रिक्त बना रहता है...

गौरा से भुवन का चौदह वर्ष का—या कि सात-आठ वर्ष का—परिचय भी ऐसा ही था। इस लम्बे अन्तराल के बाद जो नया परिचय हुआ था, वह पहले परिचय से बिल्कुल भिन्न स्तर पर था; दूसरे स्तर पर वह सम गति से चल रहा था कि सहसा एक झोंके से वह एक स्तर और उठा—या गहरे में चला गया।

भुवन को कालेज की नौकरी करते एक वर्ष हुआ था। थीसिस भी उसने भेज दिया था, वर्ष-भर के अन्दर उसे परिणाम की सूचना मिलेगी और, जैसा कि उसे पूरा विश्वास है, अगर उसे डाक्टर की उपाधि मिल जायगी तो कालेज में उन्नति तो होगी ही, आगे काम की सुविधा भी मिलेगी, शायद विश्वविद्यालय में भी कुछ कर सके। एक स्थिरता उस के मानसिक जीवन में आ गयी थी जो गतिहीनता नहीं थी, सधी हुई, निर्दिष्ट गति की सूचक थी।

गौरा ने बी० ए० की परीक्षा दे दी थी, साथ ही संगीत की एक परीक्षा भी दी थी। भुवन ने उसे एक उत्साह-वर्धक पत्र लिखा था, और लिखा था कि वह आशा करता है कि गौरा अच्छी तरह पास होगी क्योंकि वह चाहता है कि गौरा जो कुछ करे अच्छी तरह करे, पर साथ ही उस की यह भी धारणा है कि गौरा में जो कलात्मक संवेदना है उस की अभिव्यक्ति और निष्पत्ति बी० ए०-एम० ए० की डिगरियों में नहीं, रचनात्मक कर्म में है, अपनी प्रतिभा का उपयोग न करना, प्रस्फुटित होने का मार्ग न देना, उसे जीवनानन्द की शोध में न लगाना निष्क्रिय आत्म-हनन है, अन्धकार को आत्म-समर्पण है जब कि गौरा को हमेशा एक उजली और दौड़ती हुई धूप के रूप में ही देखता है: वह पहाड़ पर बदली में से फूटी हुई किरण जैसे धन-खेतों पर लहरती दौड़ती चली जाती है, वैसी ही।

उस के पत्र के उत्तर मे देर हुई थी। जब आया था, तब जो आया था, उस के लिए वह बिल्कुल तैयार नहीं था। उस में उस के पत्र की किसी बात का कोई उल्लेख नहीं था, बहुत छोटे पत्र मे इतना ही लिखा था :

भुवन दा,

आप क्या दो-चार दिन के लिए भी नहीं आ सकते! मुझे आगे मार्ग नहीं दीखता है, और मैं अँधेरे मे डूबना नहीं चाहती, नही चाहती। जल्दी आइये

आप की
गौरा

भुवन की समझ मे कुछ भी न आया। उसे ध्यान आया, गौरा का परीक्षा-फल निकल गया होगा : गौरा ने लिखा क्यो नही? कहीं फेल तो नही हो गयी—पर असम्भव! उसने रजिस्ट्रार को जवाबी तार दे कर परीक्षा फल माँगा, उसी रात उत्तर आ गया : "प्रथम श्रेणी, दूसरा स्थान।" हाँ, यही हो सकता था, फेल होने की कल्पना भी क्यो उस के मन मे आयी? पर बात क्या है? गौरा को वह क्या उत्तर दे? क्या चला जाय? लेकिन क्यो—पहले जाने तो कि बात क्या है?

और तब, सहसा, आकाश मे एक तारा फूट आया था। तो गौरा के विवाह का प्रश्न उठा है। आखिर उठा ही... और वह आगे मार्ग नही देख पा रही है, और भुवन . हाँ, भुवन उसे जानता है, बहुत निकट से जानता है—आज अगर गौरा जीवन के इतने बड़े निर्णय के सामने उस की राय पूछ रही है और उसी पर चल पड़ेगी, इतना बडा दायित्व उस पर थोप रही है तो क्यो? क्योकि उसने पहले देखा है जो भुवन को पहले देखना चाहिए था : कि भुवन उसे, उस की सम्भावनाओ को, उस से भी अच्छी तरह पहचानता है।

और आकाश तारों से भर गया था। भुवन तटस्थ है, पर गौरा के भविष्य में उसे गहरी दिलचस्पी है; वह क्या करती है या नहीं करती है—उस का क्या होता है—यह भुवन के लिए अत्यन्त महत्व रखता है...क्यों? क्योंकि वह उस की भूतपूर्व शिष्या है? नहीं, यद्यपि हाँ, वह भी—उस नाते वह किसी हद तक उस के भविष्य का उत्तरदायी है...पर मुख्यतया इस लिए कि वह कुछ है जो जीवन से भुवन ने पाया है और जिस के सहारे उसने स्वयं अपने को अधिक पाया है...सहसा उस का अन्तर गौरा के प्रति स्नेह ही नहीं, एक अद्भुत कृतज्ञता से द्रवित हो आया। 'अच्छा अध्यापन वही है जिस में अध्यापक भी सीखता जाय' इतना ही नहीं, वह स्थायी सम्बन्ध है जिस का आलोक भविष्य में भी दोनों का मार्ग उज्ज्वल करता है...

भुवन ने गौरा को लिखा :

गौरा,

तुम्हारा पत्र मिला है। तुम्हारे स्नेह का दावा मुझ पर सदैव रहा है; पर इतनी दूर से तुम सहसा बिना कारण बताये बुला भेजोगी, यह नहीं सोचा था। मेरे पत्र की किसी बात का उत्तर तुमने नहीं दिया; और परीक्षा-फल तक नहीं सूचित किया—क्या मैंने कभी कल्पना की थी कि तुम्हारा परीक्षा-फल रजिस्ट्रार को तार दे कर मँगाना पड़ेगा? पर तुम्हारे कारण न देने से ही शायद मैं कारण का ठीक-ठीक अनुमान लगा सका हूँ। और तुम्हारे मौन से मुझे आलोक मिला है शक्ति मिली है—जिस के सहारे मैं दो-एक बातें लिखने बैठ गया हूँ जो कदाचित् तुम्हारे कुछ काम आवें।

गौरा, कोई किसी के जीवन का निर्देशन करे, यह मैं सदा से गलत मानता आया हूँ तुम जानती हो। दिशा-निर्देश भीतर का आलोक ही कर सकता है, वही स्वाधीन नैतिक जीवन है, बाकी सब गुलामी है। दूसरे यही कर सकते हैं कि उस आलोक को अधिक द्युतिमान बनाने में भरसक सहायता दें। वही मैंने जब-तब करना चाहा है, और इस प्रयत्न में स्वयं भी आलोक

पा सका हूँ, यह मैं कह ही चुका। तुम्हारे भीतर स्वयं तीव्र संवेदना के साथ मानो का एक बोध भी रहा है जो नीति का मूल है, तुम्हे मै क्या निर्देश देता ?

अभी किस प्रश्न को ले कर तुम चिन्तित हो, यह शायद मै समझ सका हूँ। पर उस प्रश्न मे सहसा इतनी चिन्त्य तात्कालिकता क्यो आ गयी कि तुम ने मुझे बुला भेजा, यह तुम्हारी ओर से किसी सूचना की अनुपस्थिति मे कैसे जानूँ ? यह प्रश्न आगे-पीछे उठता ही, मै समझता हूँ कि परीक्षा-फल के साथ-साथ ही भविष्य-निर्णय का प्रश्न तुम्हारे माता-पिता के सामने उठा होगा। यह भी हो सकता है कि उन्होंने पहले से कुछ सोच रखा हो—चाहे कह भी रखा हो—और अब, जब उन की समझ मे तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गयी और वय भी हो गयी, तब तुम्हे पूछा या बताया हो। उन पर मेरी श्रद्धा है और मैं समझता हूँ कि तुम्हारा अहित उन से नही होगा, इतना ही नही, मै यह भी समझता हूँ कि तुम्हारे हिताहित के विषय मे तुम्हारी धारणा को वे अमान्य नहीं करेगे—उस से क्लेश होगा तब भी नहीं। एक बार तुम्हारे पिता ने मुझ से कहा था : "सन्तान को पढा-लिखा कर फिर अपनी इच्छा पर चलाना चाहने का मतलब है स्वयं अपनी दी हुई शिक्षा-दीक्षा को अमान्य करना, अपने को अमान्य करना, क्योकि बीस बरस मे माँ-बाप सन्तान को स्वतन्त्र विचार करना भी न सिखा सके तो उन्होंने क्या सिखाया ?" जो व्यक्ति ऐसी बात मान सकता है, उस के विचार-परिपाटी के बुनियादी मान ठीक है, और मुझे विश्वास है कि वह चाहे वचन-बद्ध भी हो चुके हो—जो मेरी समझ में न हुए होगे—उन से साफ-साफ बात करना शुभ परिणाम देगा।

पर यह बाहर की बात है। तुम्हारे भीतर ? यहाँ कुछ कहते दोहरा संकोच होता है, फिर भी कुछ कहूँगा ही : हाँ, इसे तुम मेरा मत ही समझो, वह भी पूर्वग्रह-दूषित मत, उस से अधिक कुछ नही। आगे-पीछे इस प्रश्न का सामना करना ही होता है, और जहाँ तक निरे सिद्धान्त का प्रश्न है, मै मानता हूँ कि जब तक कोई स्पष्टतया मनोवैज्ञानिक 'केस' न हो विवाह

सहज धर्म है और है व्यक्ति की प्रगति और उत्तम अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक सीढ़ी। लेकिन सिद्धान्त के प्रतिपादन से ही प्रश्न का उत्तर नहीं हो जाता; व्यक्तित्व के प्रश्न के आगे व्यक्ति का जो प्रश्न है, वह बना रहता है। उस के विषय में यह कह सकता हूँ कि व्यक्ति का स्वतन्त्र विकास जब तक पूरा नहीं हो जाता, तब तक उसे इकाई से बाहर प्रस्तुत करने का प्रश्न नहीं उठता, वह प्रश्न तभी उठना चाहिए जब उस के बिना और विकास का मार्ग न हो। और प्रश्न उठने के बाद फिर व्यक्ति-विशेष की खोज होती है: उस में जोखम अनिवार्य है, पर आन्तरिक आलोक कुछ भी काम नहीं देता यह कैसे माना जाय? जोखम भी कौन-सा उठाने लायक है, कौन-सा नहीं, इस के निर्णय में अन्तःकरण का साक्षी अवश्य सहायक होता है। राह चलना हो, तो हर मोड़, हर चौराहे पर राही को जोखम उठाना होता है और वह उठता है; उस समय आँखें बन्द कर के दूसरे के निर्देश पर अपने को नहीं छोड़ देता। और गार्हस्थ्य एक लम्बी यात्रा है—बल्कि पथ-यात्रा नहीं, सागर-यात्रा, जिस में मोड़-चौराहे पर नहीं, क्षण-क्षण पर संकल्प-पूर्वक जोखम का वरण करना होता है और कोई लीकें आँकी हुई नहीं मिलतीं, नक्शे और कम्पास और अन्ततोगत्वा अपनी बुद्धि और अपने साहस के सहारे चलना होता है।

तुम्हें जो राह दीखती है, उस पर चलो, गौरा। धैर्य के साथ, साहस के साथ। और हाँ, जो तुम से सहमत नहीं हैं उन के प्रति उदारता के साथ, जो बाधक हैं उन के प्रति करुणा के साथ। और राह पर जब ऐसा साथी मिलेगा जिस का साथ तुम्हें प्रीतिकर, वाञ्छनीय, कल्याणप्रद लगे, तब किसी की बात न सुनना, जान लेना कि अब स्वतन्त्र रूप से जोखम वरने का क्षण आ गया।

यही मैं मानता हूँ। स्वयं उस आदर्श को नहीं पाता, वह दूसरी बात है। पर वह ठीक है इस के बारे में मुझे ज़रा भी संशय नहीं है।

और अभी क्या लिखूँ? तुम क्या करती हो, क्या करोगी, लिखना।

अब भी अगर बुलाओगी, तो आ जाऊँगा। यों छुट्टियों से तत्काल पहले छुट्टी मिलना कठिन होता है पर आना हो तो एकदम छुट्टियों मे ही आने से काम न चलेगा ?

तुम्हारा
भुवन दा

गौरा के दूसरे पत्र से भुवन ने जाना कि बात विवाह की ही थी। प्रस्तावित लडका गौरा के कालेज मे पढता रहा था, उसे से तीन-चार वर्ष आगे; उस के पिता की ओर से बात पहले उठायी गयी थी जब गौरा ने इंटर पास किया था—लडका तब विदेश मे था। गौरा के माता-पिता ने तब इसी आधार पर टाल दिया था कि लडका तो विदेश है, पर माँ यही मानती थीं कि वह लगभग वचन-बद्ध है। लडका जाडो मे लौट आया था इंजिनीयर बन कर, तब से बात चल रही थी और गौरा की परीक्षा के बाद ही प्रबल हो कर उठी। यो लड़के वाले राज़ी थे कि गौरा आगे भी पढना चाहे तो पढे, पर पक्की बात वे तुरत चाहते थे, और विवाह भी इसी वर्ष नहीं तो अगले वर्ष। लड़के को गौरा ने देखा अवश्य था, पर उस की बहुत हल्की-सी स्मृति ही उसे थी, और यह मानने का कोई कारण नहीं था कि उन में कोई विशेष अनुकूलता है। विवाह की बात लडके की इच्छा पर ही उठी थी, पर एक बी० ए० के विद्यार्थी का एक फर्स्ट ईयर की लड़की के प्रति आकर्षण अपने-आप मे कोई महत्व नही रखता।

गौरा ने यह भी लिखा था कि भुवन के पत्र से उसे बहुत सहारा मिला और आगे का मार्ग कुछ-कुछ उसे दीखता भी है, माँ की अनशन की धमकी स्वयं एक महत्वपूर्ण तथ्य है, पिता तो दुःखी पर चुप है, किन्तु माँ का कहना है कि उन दोनो के जीवन का दारोमदार इसी पर है। गौरा इसे स्पष्ट अन्याय समझती है, पर क्या माता-पिता की इच्छा पर अपने को उत्सर्ग कर देना भी एक रास्ता नही है ? सारी परम्परा तो इसी का *समर्थन* करती है कि

यही रास्ता है : और ऐसे आत्म-बलिदान में सुख भी होता है यदि वह कल्याण की भावना से किया जाय; खीझ कर, आत्म-दहन की भावना से नहीं। यही सब वह सोचती है, और किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाती, पर भुवन दा की यह बात वह खूब समझती है कि अन्ततोगत्वा निर्णय उन के माता-पिता का नहीं, उसी का है; वह जो कुछ भी करे, परिणामों के लिए उत्तरदायी वही होगी। शीघ्र ही वह कुछ तय कर लेगी : अगर बिल्कुल नहीं ही कर सकी, तो फिर भुवन दा को बुला भेजेगी : छुट्टी वह न लें, अवकाश आरम्भ होते ही आ जावें और तब तक वह बात टाल लेगी.

भुवन ने फिर एक छोटा-सा पत्र उसे लिखा :

गौरा,

तुम्हारे पत्र से पूरी बात मालूम हुई। नया मुझे कुछ नहीं कहना है। ठीक है, तुम्हारे निर्णय की प्रतीक्षा करूँगा। पूरे विश्वास के साथ कि जो भी तुम करोगी, भूल नहीं करोगी

आत्म-बलिदान की बात हमारी पीढ़ी की हर युवती सोचती है। युवती ही क्यों, युवक भी। बलिदान ही हो, तो कोई दूसरा क्या कह सकता है? अपनी जिन्दगी लुटाने का हक हर किसी को है; और ऐसे मौके भी हो सकते हैं जब अन्याय को चुनौती देने का कोई दूसरा उपाय ही न रहे, यह मैं समझता हूँ। "जानते हो, मैं तुम्हारी जान ले सकता हूँ?" "हाँ, दस्यु; और तुम जानते हो, मैं जान गँवा कर तुम्हारी अवहेलना कर सकता हूँ?" यह उत्तर कायर का नहीं, साहसी का है। पर आत्म-बलिदान आत्म-प्रवंचना नहीं है, यह खूब अच्छी तरह पड़ताल कर के देख लेना चाहिए। और मैं नहीं मानता कि इस मामले में हमारे सब युवक-युवतियाँ सतर्क रहती हैं। इस तरह का झुकना बलिदान नहीं, पलायन है कटु निर्णय से, स्वाधीनता के जोखम से पलायन। स्वाधीनता साहस माँगती है, दुस्साहस भी माँग सकती है। स्वाधीनता साहसी का धर्म है।

हमारा संस्कार है, हाँ; पर श्रवणकुमार का जो आदर्श है, वही—ज़रा-सी चूक पर !—हमारी सारी पीढ़ी की पराजय और क्लीवता का बड़ा अच्छा प्रतीक भी है। कन्धे पर लदी हुई बहँगी पितृभक्ति का, आदर्श-परायणता का, आत्म-बलिदान का प्रतीक नहीं, जड-पूजा का, आत्म-प्रवंचना का, स्वाधीन जीवन की अपात्रता का प्रतीक है ! श्रवण के लिए वह क्या था, इस का निर्णय करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है, मेरी पीढ़ी के लिए वह क्या है यह मैं ठीक जानता हूँ।

तुम पर मुझे आस्था है। आत्म-बलिदान करती हो, तो मेरा श्रद्धापूर्ण प्रणाम लो। सच्चा बलिदान भी स्वाधीन व्यक्ति का कर्म है।

पत्र दोगी ? मैं देखो कितने तपाक से पत्र लिख रहा हूँ !

तुम्हारा
भुवन

इस का उत्तर उसे बहुत दिनों तक नहीं मिला। पहले कुछ दिन उसने प्रतीक्षा की, फिर मान लिया कि गौरा ने विवाह की स्वीकृति दे दी है, और दे दी है तो भुवन को और लिखने को अभी क्या होगा ? दो-चार मास बाद—या क्या जाने, विवाह के बाद !—ही वह लिखेगी। अवकाश आरम्भ हो गया, उसने सामान तैयार किया कि अगर गौरा बुलायेगी तो वहाँ, नहीं तो कुछ दिन के लिए पहाड-वहाड़ कहीं चला जायगा, पर चार-छः दिन ऐसे भी बीत गये। सहसा एक दिन मद्रास से गौरा का पत्र आया :

भुवदा दा,

मैंने एक साथ कई निश्चय कर लिये। वह बात समाप्त हो गयी है। माँ बहुत रोयीं-धोयीं, पर मान लेगी ऐसा विश्वास है। पिता ने भी यही कहा, बोले, "बेटी, हम दोनों तुम्हारा कल्याण चाहते हैं, यह विश्वास न खोना। तुम्हारी माता समझ जायेगी और हमारा पूरा विश्वास तुम पर बना

है, यह मैं तुम्हे कहता हूँ।" और कुछ उन से कहते नहीं बना। कहते तो शायद मैं न सह सकती।

दूसरा निश्चय : मै आगे पढ़ाई नहीं कर रही। संगीत के लिए आयी हूँ। एक वर्ष यहाँ और एक वर्ष मैसूर में रहूँगी, इतनी दूर स्पष्ट दीखता है, और इस मे इतना काम है कि आगे देखना अभी जरूरी नहीं जान पड़ता। यो यह भी लगता है कि असल चुनाव मैंने कर लिया है, आगे इतनी कड़ी परीक्षा अब न होगी।

भुवन दा, पलायन इधर भी हो सकता है, उधर भी। बिना मन के भीतर घुसे, केवल कर्म के आधार पर कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। आप ने एक बार कहा था, "आत्मा के नक्शे नहीं होते कि हम चट से फैसला दे दें : इस सीमान्त के इधर स्वदेश, उधर विदेश, इधर पुण्य उधर पाप। आत्मा के प्रदेश में सीमान्त हर क्षण, हर साँस के साथ बदल सकता है क्योंकि हर क्षण एक सीमान्त है।"

वह बात आज समझ रही हूँ। जीवन एक बार का वरण नहीं है, वह अनन्त वरण है, प्रत्येक क्षण हम स्वीकार और परिहार करते चलते हैं।

भुवन दा, मैं भाग कर नहीं आयी, माँ के दुःख मे भी नहीं। सामने काम है, और बड़ा अजेंट, बड़ा जरूरी काम। इसी झंझट में मैंने इतनी देर कर दी, पर आप जरूर-जरूर मेरी बात ठीक-ठीक समझेंगे और तब आप को यह देर भी अच्छी लगेगी।

आप की कृतज्ञ
गौरा

पुनश्च:

अब मैं आप को नहीं बुलाऊँगी ! अवकाश आप कहाँ बितायेंगे ? कहीं पहाड़ चले जाइये। पिताजी मसूरी जायेंगे : वहाँ आप जायें तो उनसे मिलिएगा, आप से मिल कर उन्हें तसल्ली होगी।

गौरा

उसी डाक मे बंगलोर से पत्र आया कि उस का थीसिस स्वीकृत हुआ है और डाक्टरेट प्रदान करने का अनुमोदन किया गया है : अगले कनवोकेशन मे उसे डिगरी मिल जायगी।

दक्षिण मे ही गौरा ने पहले-पहल समझा कि कलाकार कैसे देश-काल के बन्धन से मुक्त हो जाता है : कोई भी लगन, कोई भी गहरी साधना व्यक्ति को इन बन्धनों से परे ले जाती है। देह का अपना धर्म है, उस से तो मुक्ति नहीं मिलती, पर आत्मा या आत्मा की बात न करे क्यो कि उस के साथ तो अजर-अमर होने की प्रतिज्ञा ही है—मन भी जरामुक्त, चिर युवा रह जाता है : एक दिन साधक सहसा पाता है कि अरे, यह देह तो बूढ़ी हो गयी जब कि भीतर का जीव ज्यो का त्यो है, बल्कि अधिक स्फूर्तियुक्त, अधिक समर्थ.. तब अगर वह मन को देह पर छोड देता है तभी मन भी जरा का अनुगत हो जाता है, नही तो अन्त तक—देह के विघटन-विलयन तक—भी वह वैसा ही अछूता चला जायगा, ऐसा गौरा को लगता है। पढाई के साथ-साथ भी वह संगीत-साधना करती रही थी, पर वहाँ वह गौण थी, अपने को उस मे बहा नही दिया जा सकता था, समर्पण नही हो सकता था. और साधना शर्तबन्द नहीं होती, वह आंशिक नहीं होती। या होती है, या नहीं होती .. और अब ..

यो सम्पूर्ण साधक कम ही होते है : अधिकतर या तो सब समय अधूरा समर्पण, या कुछ समय पूरा समर्पण दे सकते हैं—सब समय पूरा समर्पण तो पागलपन है जो देवत्व का समकक्षी है, वह तो दुर्लभ है... गौरा जानती है कि वह वैसी सम्पूर्ण साधिका—बल्कि वैसी सम्पूर्णता हो तो साधिका क्यो, सिद्ध—नही है, और भीतर यह भी अनुभव करती है कि वैसी वह होना भी नही चाहती। पर जितनी साधना, या जितनी शोध, जितनी तपश्चर्या उसे करनी है, वह सम्पूर्ण हो यह वह चाहती है, और इस के लिए कृत-संकल्प है। उसने पाया कि संगीत के अध्ययन के साथ संस्कृत का अध्ययन

आवश्यक है, वह भी उसने आरम्भ कर दिया; फिर उसी से सम्बद्ध संगीत काव्यों का अध्ययन; इस में उसने पाया कि संगीत अकेला नहीं खड़ा होता, उसे वास्तव में स्वायत्त करने के लिए थोड़ा इधर-उधर भी बढ़ना आवश्यक है; नाट्यशास्त्र तक पहुँचते न पहुँचते उसने जान लिया कि दो वर्ष तो कम होते हैं, उसे बीस वर्ष भी थोड़े हैं। पर व्यक्ति की कुछ सीमाएँ हैं जिन्हें वह मान ही लेना चाहती है · सम्पूर्ण साधक उन्हें अमान्य भी कर सकता, वह जानती है, और वैसी लगन के लिए जो कठोरता और एक विशेष प्रकार की आत्म-परता चाहिए उसे वह निरी स्वार्थ-परता नहीं कहेगी; पर उसे अभी वह इष्ट नहीं है, वह इन मर्यादाओं को स्वीकार ही कर लेगी... दो वर्ष पूरे कर के कहीं काम करना होगा—पिता-माता पर निर्भर करना अब उचित न होगा—और काम के साथ-साथ ही संगीत-साधना आगे चलानी होगी।

बीच-बीच में वह भुवन को पत्र लिखती : उसमें अपना उत्साह, अपनी चिन्ताएँ, अपने संकल्प, सभी व्यक्त करती। पर भुवन के पत्र फिर विरल हो गये थे; एक बार उसने लिखा कि "तुम्हारी लगन से मुझे अपनी चूक का ध्यान हो आता है—साधना से समझौता मैंने भी किया है क्योंकि नौकरी मैं भी करता हूँ, पर समझौते में जितना अपनी साधना को देना चाहिए वह तो कम-से-कम निरालस, निर्बन्ध भाव से देना चाहिए..." गौरा इस पत्र से मुदित भी हुई, पर उस के बाद से उसने अपने पत्र भी विरल कर दिये, महीने में एक पत्र से अधिक वह न लिखती, कभी दो महीने भी हो जाते। भुवन बंगलोर आवेगा शायद; तब भेंट होगी, यह आशा उस के मन थी, पर उसने व्यक्त न की; भुवन नहीं आया और निराशा भी व्यक्त करने का कोई प्रश्न न उठा।

परीक्षा-फल निकलने के तुरत बाद उसे चन्द्रमाधव का बधाई का पत्र मिला था। उसने उत्तर तत्काल नहीं दिया था—तब वह अशान्त थी; मद्रास आने पर उत्तर देने से पहले चन्द्र का एक और लम्बा पत्र उसे मिला। चन्द्र ने लखनऊ में अपने नये कार्य की बात लिखी थी, और उसके

पिछले पत्र का, जो एक वर्ष से अधिक पूर्व उस के भारत लौटने से पहले गौरा ने उसे लिखा था, हवाला देते हुए कहा था कि "यूरोप का निराशावाद शीघ्र ही सारी दुनिया पर छा जायगा; एक महान् विस्फोट आ रहा है, गौरा जी, और उस की लपटे भारत को अछूता न छोड़ जायेंगी! स्वाधीनता का आन्दोलन है, ठीक है, लेकिन उस लपट का धुआँ व्यक्ति के स्वातन्त्र्य का दम घोट जायगा, ऊब-डूब की ही स्वाधीनता रह जायगी, बस! देखे, आप का आशार्वाद क्या करता है तब..." अनन्तर और कई बातो के बाद लिखा था, "सुना था कि आप के विवाह का निश्चय हुआ था, फिर सुना कि बात टूट गयी : यह भी सुना कि 'मास्टर साहब' के परामर्श से... आप इसे मेरी अनधिकार चर्चा न समझे, गौरा जी, स्वाधीनता का मै खूब सम्मान करता हूँ और यूरोप से लौट कर तो मुक्त रहने का महत्व और भी समझने लगा हूँ—पर भुवन जैसे विज्ञान के नशेबाज़ की बात को जरूरत से ज्यादा अहमियत भी दे दी जा सकती है। वह तो ऊब-डूब भी नही है, डूब ही डूब है : और उस सागर से उबरना नही होता। यो आप के सामने निश्चय ही स्पष्ट कर्तव्य-पथ होगा ऐसा मेरा विश्वास है." इत्यादि।

इस पत्र ने गौरा के पहले पत्र का उत्तर न देने का संकोच मिटा दिया था, और उसने दो महीने तक कोई पत्र नही लिखा था। फिर जब लिखा था, तब क्षमा-याचना करते हुए यह भी लिख दिया था कि दूसरे पत्र से वह विरक्त हो गयी थी। "आप जो सुनते है, सुन सकते है; पर हर सुनी बात की पड़ताल आवश्यक नही होती। और मास्टर साहब के बारे मे आप ने जो लिखा है, उस से मै पूर्ण सहमत हूँ, पर आप उस से जो परिणाम निकालते है उस से नही। वह विज्ञान में डूबे है, ठीक है; उसे आप नशा भी कह लीजिए। पर इस लिए वह राय नही दे सकते, यह मै नही मानती। यो वह राय कभी देते ही नही, पर जब देगे तब वह अधिक सम्मान्य होगी क्योकि वह अनासक्त होगी, ऐसा मै जानती हूँ। जिसे आप नशेबाज कहते है और मै—आप अनुमति दें—साधक कहूँगी वह अपने नशे से इतर बातो

मे बिलकुल असम्पृक्त होता है यही उस की शक्ति है। आप कहते हैं कि वह इस लिए अविश्वास्य है, मैं कहती हूँ कि इसी लिए वह विश्वास्य है, क्योंकि विश्वास-अविश्वास दोनो ही उसे नहीं छूते. .पर अपने भविष्य-निर्णय के बारे मे मेरा कोई मत ही नहीं था, ऐसा आपने क्यो मान लिया? क्या यूरोप के निराशावाद मे यह उदासीनता भी शामिल है ?"

चन्द्रमाधव ने तुरत क्षमा-याचना कर ली थी। "आप को क्लेश पहुँचाना, या आप की या भुवन जी की अवहेलना करना मुझे बिलकुल अभीष्ट न था, आप की शुभाशंसा से ही मैने वह सब लिखा था... वापस लेता हूँ। आप के पत्र से स्पष्ट विदित होता है कि आप मे प्रबल सकल्प-शक्ति है और आप को आप के मनोनीत पथ से कोई नही हटा सकता, मैं इस पत्र से आश्वस्त ही नही, बहुत प्रभावित भी हुआ हूँ... आगे चल कर उसने पूछा था कि गौरा दक्षिण मे क्या कर रही है, और क्या विश्व की इस सकटापन्न अवस्थिति मे उसे संगीत को साधना पर्याप्त जान पड़ती है ?

गौरा ने उस की क्षमा-याचना शिष्ट ढंग से स्वीकार कर ली। सगीत के बारे मे उसने लिखा, "मैने पहले भी एक बार लिखा था कि हम लोग भिन्न-भिन्न भाषा बोलते है, हमारा मुहावरा अलग है। फिर भी कहूँ कि मेरी समझ मे तो एक विश्व-संकट यह भी है कि साधना आज इतनी नगण्य हो गयी है; कि हमारा साध्य जीवन का आनन्द न रह कर जीवन की सुविधाएँ रह गया है यानी जीवन की हमारी परिभाषा ही बदल गयी है, वह जीवन का नही, जीवन की क्रियाओ का नाम हो गया है। इस लिए आज हम जीवन की शोध की नही, जीवन की दौड़ की बात कहने लगे हैं; जीवन का बाह्यीकरण करते-करते हमने उस का बहिष्कार ही कर दिया है। आप यह बात नही समझेंगे : क्योंकि आप 'दूसरी तरफ' है, आप दौड में हैं। गणित की भाषा मे कहूँ—जो शायद हमारे आप के मुहावरे के अध-बीच आ सके—तो कहूँगी कि दौड का अर्थ है देश – काल, जब कि शोध का अर्थ है देश × काल। आप विभाजन-फल माँगते है, मैं (या कह ही लेने दीजिए अपने समूचे वर्ग की ओर से, हम) गुणन-फल के अन्वेषी है।

आप की माँग का अन्तिम परिणाम है न-कुछ, यानी कुछ इतना स्वल्प कि नगण्य; हमारी साध का अन्त है सब-कुछ, कुछ इतना विशाल कि आप भी उस मे समा जाये ! यह अहंकारोक्ति लगती है न ? पर है नहीं, मै न-कुछ हो कर ही सब-कुछ की शोध मे हूँ; अहकार इस तरफ नही हो सकता, अहंकार तो सब से बडा विभाजक है . . "

सितम्बर १६३६ : यूरोप मे युद्ध आरम्भ हो गया, तो चन्द्रमाधव और गौरा मे और दो-एक पत्रो का विनिमय हुआ। और तब भुवन का भी एक पत्र गौरा को मिला। भुवन के पत्र मे गहरी वेदना थी। विज्ञान की एफि-शेंसी स्वय साध्य बन कर मानव को कहाँ ले जाती है, युद्ध की घोषणा मे इस का भीषण परिणाम उसे दीख रहा था। पुराने जमाने मे जब वैज्ञानिक और नीतिज्ञ एक ही था, तब विज्ञान नीति को पुष्ट करता था, और विज्ञान के विकास का इतिहास पहले एक पुष्ट नैतिकता का ही इतिहास रहा : नैति-कता ने किसी दैवी, अलौकिक प्रतिमान पर आधारित एक अन्ध-विश्वास या तर्कातीत श्रद्धा से हट कर एक बुद्धि-संगीत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया। यहाँ तक वैज्ञानिक सब नीतिज्ञ नहीं तो नैतिक अवश्य थे, और यहाँ तक विज्ञान का रेकार्ड वैज्ञानिको के लिए गौरव का विषय है। मध्य-युग मे बुद्धि की महानिशा मे वैज्ञानिक सन्तो ने ही ज्ञान के टिमटिमाते आलोक को अपनी गूदड़ी के भीतर छिपा कर उसकी रक्षा की.. पर किस लिए ? कि औद्योगिक क्रान्ति के साथ वह सुविधा का गुलाम बन कर एक के बाद एक विभ्राट् उत्पन्न करता चले ? क्या यही मानव का भविष्य है क्योंकि यह उस की श्रेष्ठ उपलब्धि विज्ञान का भविष्य है ? वह यह नही मान सकता.. पर निस्सन्देह यह विज्ञान का सूक्ष्म-काल तो है ही, और उस के साथ नैतिकता का भी क्राइसिस है, संस्कृति का भी, क्योंकि विज्ञान का क्राइसिस वैज्ञानिक नैतिकता और वैज्ञानिक संस्कृति का भी क्राइसिस है। इस से यह सीखना होगा कि नीति से अलग विज्ञान बिना सवार का घोडा

है, या बिना चालक का एंजिन : वह विनाश ही कर सकता है। और संस्कृति से अलग विज्ञान केवल सुविधाओं और सहूलियतों का संचय है, और वह संचय भी एक को वंचित कर के दूसरे के हक मे; और इस अम्बार के नीचे मानव की आत्मा कुचली जाती है, उस की नैतिकता भी कुचली जाती है, वह एक सुविधावादी पशु हो जाता है. . और यह केवल युद्ध की बात नहीं है, सुविधा पर आश्रित जो वाद आजकल चलते है वे भी वैज्ञानिक इसी अर्थ मे है कि वे नीति-निरपेक्ष है : मानव का नही, मानव पशु का संगठन ही उन का इष्ट है। कोई भी नीति-निरपेक्ष व्यवस्था अनिवार्यतः सर्वसत्तावादी व्यवस्था होगी, क्योकि नीति को छोड़ देने के बाद दूसरा प्रतिमान सत्ता का रह जाता है..."मेरे लिए यही इस युद्ध का सबक है। यह युद्ध किस लिए लडा जा रहा है, सहसा नही कह दिया जा सकता, ठीक स्वाधीनता के लिए ही है, यह कह देना भोलापन होगा क्योंकि 'स्वाधीनता' के साथ कितने इतर स्वार्थ भी तो मिले हुए है, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध मे नही तो इस युद्ध से आरम्भ कर के हमे संस्कृति के उन मानो के लिए संघर्ष करना है जिन को स्वय हमारी इस संस्कृति ने ही नष्ट कर दिया या जोखम मे डाल दिया। हमे केवल युद्ध नहीं जीतना है, हमे शान्ति भी नही जीतनी है, हमे संस्कृति जीतनी है, विज्ञान जीतना है, नीति जीतनी है : हमे मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा जीतनी है। क्या इस युद्ध का सबक हमे वैसे वैज्ञानिक देगा जो विज्ञान को नीति से नहीं, नीति के लिए मुक्त रखेंगे ? हमे आशा नही खोनी होगी..."

चन्द्रमाधव के पत्र मे निराशा भी थी, और कुछ गर्व का भाव भी कि उस की दुर्वाणी सच निकली। "यह संस्कृति का अन्तिम युद्ध है, क्यो कि जिसे हम संस्कृति कहते है वह एक सड़ा हुआ चौखटा है। और उस में जो जीव बन्द है, वह जीव इसी लिए है, कि वह पशु है; अगर पशु न हो कर तथाकथित संस्कृत मानव होता तो वह भी मर गया होता—जैसे कि सर्वत्र संस्कृत मानव मर गया है। इस युद्ध मे से एक नयी बर्बरता निकलेगी और सारी दुनिया पर राज्य करेगी : मैं कहता हूँ आने दो उस बर्बरता को ! जिस तरह

पर हम है उस तल से ऊँचे की व्यवस्था स्वय एक अभिशाप है क्योकि उस से हमारा सम्पर्क ही नही हो सकता। डिमाक्रेसी धोखा है, गिनतियो का राज बनिये का राज है...” आगे चल कर फिर उसने प्रश्न उठाया था, “क्या आप अब भी मानती हैं कि कलाओ का और संगीत का कोई आत्यन्तिक मूल्य है—इस जीवन में कोई स्थान है ? है शायद—युद्ध के कार्यों को आगे बढाने मे वे सहायक हो सकती हैं . कला यानी पोस्टर, सगीत यानी फौजी बैड...और साहित्य यानी पैम्फलेट, परचे, अखबारनवीसी, रिपोर्ताज का नया माध्यम जो न पूरा तथ्य है न पूरी कल्पना—क्योकि तथ्य और कल्पना का अन्तर उस परम्परा का अविशिष्ट है, जिस मे सनातन सत्य कुछ होता था और उस की शोध होती थी, अब तथ्य ही तथ्य है, सत्य केवल तथ्य का वह रूप है जिसे आज हम देखते या जानते या भॉपते है—यानी तथ्य+हमारी कल्पना या हमारा पूर्वग्रह सत्य अगर पूर्वग्रह-युक्त तथ्य है, तो रिपोर्ताज श्रेष्ठ साहित्य है सीधी बात है कैसी उथल-पुथल है : जो कुछ था, जैसे उस के नीचे से धरती खिसकी जा रही है : हमारे इस बेपेंदी के जगत् को देख कर एक बार अट्टाहास करने को जी होता है—हा-हा-हा-हा !”

गौरा ने पहले उत्तेजित हो कर उत्तर लिखना चाहा, थोड़ा-सा लिखा था फिर फाड़ दिया। क्या उत्तर हो सकता है इस का ?

भुवन को उसने लिखा :

भुवन दा,

आपके पत्र कभी-कभी आते है, पर जब भी आते हैं, तो मैं अपने को आप के समान्तर चलता पाती हूँ। इस पत्र में जो व्यथा है उसे मैं ठीक-ठीक पकड़ सकती हूँ यह कैसे कहूँ—मैं बहुत छोटी और क्षुद्र हूँ—पर मैं चाहती हूँ कि आप के साथ-साथ चल सकूँ। ‘मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा’ का मूल्य कुछ-कुछ मैंने भी समझा है आप की सीख से, मेरा क्षेत्र (यद्यपि उसे ‘मेरा’ कहना कितनी बड़ी स्पर्धा है मेरी !) आप के क्षेत्र से दूर है, पर उस मे भी मेरी थोडी-सी शक्ति के लिए कुछ करने को

है...इस संकट मे हम हार जायेंगे मैं नहीं मानती, और मुझे लगता है कि यह न मानना भी स्वय एक मोर्चा है क्योंकि मानव-नियति मे विश्वास खोना मानव की प्रतिष्ठा की लडाई हार जाना है...भुवन दा, आप बड़े है, मैं जैसे रामजी की सेवा मे गयी गिलहरी से अधिक कुछ नहीं हूँ, पर आप के आदेश से कुछ भी कर सकूँ तो अपना गौरव मानूँगी..." फिर सहसा विषय बदल कर उसने मैसूर की अपनी संगीत-शिक्षा की कुछ बाते लिखी थी, और अन्त मे लिखा था कि आगामी गर्मियो मे वह लौट जायगी। यही उसने कुछ दिन बाद चन्द्रमाधव को भी लिख दिया।

२६ जून १६४० को सवेरे जब गौरा दिल्ली पहुँची, तब रेडियो से घोषणा हो रही थी कि फ्रास की लड़ाई समाप्त हो गयी, सारा फ्रास जर्मनी का अधिकृत हो गया। गौरा ने सोचा था कि वह दिल्ली पहुँचते ही भुवन को सूचना देगी कि वह वहाँ है और भुवन आ कर मिल जाए, पर आने के बाद वह पत्र नही लिख सकी। उस के अनेक कारण हुए, यह दूसरी बात है कि भुवन ने न पत्र लिखने की उस की इच्छा जानी, न पत्र न लिखने के कारण।

चन्द्रमाधव को उसने लिखा :

प्रिय श्री चन्द्रमाधव,

आप के दोनो पत्र मिल गये। भुवन दा के जो समाचार आप ने दिये, उन के लिए आभारी हूँ। आप ने मुझे उन्हे पत्र लिखने को कहा है, पर मेरे पास अपनी ओर से अभी कुछ लिखने को नहीं है और आप ने जो बाते लिखी हैं, उन के बारे में मेरे कुछ कहने का अधिकार अगर भुवन दा समझेंगे तो स्वय मुझे लिख ही देंगे। तब तक मैं इस के सिवा क्या समझ सकती हूँ कि उन के जीवन मे हस्तक्षेप करने का मेरा कोई अधिकार नहीं है ? वह बडे हैं, और मेरे श्रद्धेय है, इतना मेरे लिए काफी है।

आप शीघ्र यहाँ आने वाले है, आइये। मैं अभी यहीं हूँ, कुछ दिन तो रहूँगी ही। काम की तलाश करूँगी।

आप की

गौरा

पत्र भेज कर वह फिर एकान्त मे बैठ कर चन्द्र के दोनो पत्र उलट-पलट कर देख गयी; एक-आध स्थल पर उसने कोई वाक्य पढ़ा पर वैसे लगातार पढ़ नहीं सकी; अक्षर उस की आंखो के आगे तैर गये। उसने पत्र हटा दिये और संगीत की एक कापी उठा कर जल्दी-जल्दी उलट कर एक जगह से खोली, उस के पन्ने पर अपने हाथ की लिखावट पर आँखे जमा दीं। लेकिन उस की अपनी लिखाई भी तैर गयी : सहसा दो बड़ी-बड़ी बूँदे उस पर पड़ीं और लिखाई फैल गयी। गौरा ने आँचल से उसे पोछा, पर उस से फैली हुई स्याही का एक लम्बा धब्बा कागज़ पर बन गया। सहसा गौरा बिल्कुल अवश हो गयी और कापी पर बाहे और सिर टेक कर फफक कर रो उठी।

अन्तराल

रेखा द्वारा चन्द्रमाधव को :

प्रिय चन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला है। सोचती तो हूँ कि चलो, हो ही आऊँ कुछ दिन पहाड़ पर, मगर कुछ निश्चय नहीं कर पाती हूँ। यों अभी सोचने और निश्चय करने के लिए काफी समय भी तो है।

पर तुम्हारे मित्र को मै क्यो लिखूँ ? और मेरी बात का उन पर क्या असर होगा ? उन की बातचीत और सम्पर्क से मै बहुत प्रभावित हुई हूँ निस्सन्देह, और लखनऊ से प्रतापगढ तक की यात्रा तो एक 'रेवेलेशन' ही था मानो—तुम जानते हो, रेलगाड़ी मे बिल्कुल अजनबी से कभी-कभी ऐसा निकट सम्पर्क हो जाता है जिसे साधारण सामाजिक जीवन मे प्राप्त करते बरसों भी लग सकते हैं, समाज मे आदमी अपने सब छद्म, कवच, अस्त्र-शस्त्र जो धारण किये रहता है और सब ओर से चौकस रहता है, रेल में वह इन्हे उतार कर सहज स्वाभाविक मानव प्राणी हो जाता है... लेकिन यह मैं अपनी बात कहती हूँ, डा० भुवन स्वयं असम्पृक्त और दूर हैं और वह जो तय करेंगे अपने मन से ठीक-बे-ठीक और सुविधा विचार कर ही करेंगे। फिर भी, तुम ने कहा है, इस लिए यह पत्र साथ में है, तुम्हीं अपने पत्र के साथ उन्हें भेज देना।

इस बार लखनऊ का प्रवास बहुत सुखद रहा। इस के लिए तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ। सचमुच, चन्द्र, मेरे लिए तुम जो कुछ करते रहे हो, जब सोचती हूँ तो गड़ जाती हूँ—कितने अपात्र को तुमने अपनी करुणा दी है। यों मै तुम से बड़ी हूँ, पर...लेकिन जो नही कह सकूँगी, उसे कहने का यत्न नही करूँगी। पर मैं सच तुम्हारी ऋणी हूँ।

आशा है तुम प्रसन्न हो, और यथावत् काफी हाउस जाते हो। दो एक प्याले काफी के मेरी ओर से भी पी लेना—पर काफी अधिक मत पिया करो।

तुम्हारी

रेखा

इस के साथ का पत्र, रेखा द्वारा भुवन के नाम :

प्रिय भुवन जी,

यह पत्र लिख तो रही हूँ चन्द्र के आग्रह से, पर इस से आप को एक बार फिर सच्चे मन से धन्यवाद देने का जो अवसर मिला है उस का अभिनन्दन करती हूँ। आप का परिचय मेरे इधर के धुँधले वर्षों में एक प्रखर ज्योति-किरण-सा है, मैं तो किसी हद तक कर्मवादी हूँ और सोचती हूँ कि मेरा इस बार का लखनऊ जाना और आप से भेंट होना और आप के साथ प्रतापगढ तक लौटना 'लिखा हुआ' था। यों तो मानव-जीवन एक अकारण, अनिर्दिष्ट, आकारहीन गतिमयता-सा लगता है, पर मेरा ख्याल है, बीच-बीच मे विधि मानवों के जीवन में थोड़ा सा हस्तक्षेप जरूर करती है—एक-एक गोट को उठा कर एक-एक दिशा दे देती है...इस सब को वैज्ञानिक थ्योरी मान कर इस का खंडन-मंडन न करें—मैं अपनी भावना की बात कहती हूँ।

चन्द्र का पहाड़ चलने का आग्रह है। मैंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया; मेरी कठिनाइयाँ तो आप देखेंगे ही। चन्द्र का विचार था कि आप भी चलें, क्या ऐसा हो सकेगा? बल्कि आप भी चलें, और अपने परिचित

और किसी को भी साथ लें—पुरुष, स्त्री, परिवार, जो आप चाहें और जिन का साथ आप को प्रीतिकर रहे। 'चलें' तो मैं कह गयी, पर अपने जाने का निश्चय तभी करूँगी जब आप का पक्का पता आ जाय।

मेरा पता ऊपर दिया है। आप उत्तर चाहे मुझे दें, चाहें चन्द्रमाधव को ही सीधे दे दें।

विनीता
रेखा

(यह पत्र चन्द्रमाधव के पत्र के साथ भुवन को मिला तो उस के हाशिये पर जगह-जगह चन्द्र के नोट थे। 'ज्योति किरण' वाली बात के बराबर लिखा था, "मेरी बधाई स्वीकार करो, दोस्त!" 'विधि के हस्तक्षेप' वाली बात के बराबर लिखा था: "अब निस्तार नहीं है—विधि ने जो दिशा दे दी वह तो पकड़नी ही होगी!" अन्त में लिखा था, "न, तुम उत्तर सीधे ही देना—तुम्हारी गति उसी दिशा में है।")

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा जी,

आप के पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ, यद्यपि उस से साथ ही अपनी अकिंचनता का बोध बड़े जोर से हो आया। आप अगर कर्मवादी हैं तो धन्यवाद देने का प्रश्न यों भी नहीं उठना चाहिए, फिर मैं तो किसी तरह अधिकारी नहीं हूँ। बल्कि मुझ-से कूप-मंडूक को जब तक कोई बाहर का प्रकाश दिखा दे, तो मुझे कृतज्ञ होना चाहिए—भले ही उस प्रकाश से चौंध भी लगे।

पहाड़ की बात चन्द्र ने भी लिखी है। निमन्त्रण के लिए मैं आप दोनों का आभारी हूँ। और जा सकता तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, पर अभी कुछ ठीक नहीं कह सकता। इस की बहुत काफी सम्भावना है कि ग्रीष्मावकाश में मुझे एक वैज्ञानिक मंडल के साथ, या उस की ओर से,

कहीं जाना पड़े। बहुत सम्भव है कि पहाड़ ही जाना पड़े, क्योंकि कॉस्मिक रश्मियों के सम्बन्ध का काम है और उस के लिए मापक यन्त्रों को पहाड़ी ऊँचाइयों पर या जल की गहराई मे ले जाना होगा। यदि ऐसा हुआ, तो सम्भव है, कुछ दिन के लिए मै कहीं पहाड़ पर आप लोगों को मिल जाऊँ। नही तो फिर किसी सुअवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। पर कुलू कदाचित् न हो सके—उधर जोजी-ला पर एक-दूसरा दल जायगा यह निश्चित है। मै या भूमध्य रेखा की ओर लंका मे कहीं जाऊँगा या किसी निर्जन पहाड़ी झील पर—शायद कश्मीर मे। कुछ निश्चय होते ही सूचित करूँगा।

आशा है आप प्रसन्न है।

आप का
भुवन

भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को :

प्रिय चन्द्र,

तुम्हारा पत्र और उस के साथ रेखा देवी का पत्र और उस पर तुम्हारी बदतमीज़ियाँ सब मिली। रेखा जी को मैने उत्तर तभी दे दिया था। लिख दिया था कि मेरे जा सकने का कोई ठीक नही है, क्योंकि मै शायद काम से कहीं जाऊँ। तुम्हे चिट्ठी लिखने में इसी लिए देर की कि कुछ पक्का पता लग जाय। अब यह तय है कि मै कश्मीर जाऊँगा; पहलगाँव से ऊपर तुलियन झील है, वहाँ पर। मैं कॉस्मिक रेंज पर कुछ काम करता रहा हूँ तुम जानते हो, उसी सिलसिले में कुछ नये मेजरमेंट लेने होंगे अन्यत्र लिये गये मेजरमेंट की चेकिंग के लिए। एक टोली रोहतंग के पार जोजी-ला जा रही है ऊँचाइयों पर माप लेने के लिए; मैं तुलियन झील मे पानी की गहराई में माप लूँगा।

इस लिए कुलू का तो कोई सवाल नहीं है। अधिक-से-अधिक एक

बात हो सकती है। अगर तुम लोग कश्मीर जाओ, तो मैं चार-छः दिन शायद कहीं मिल सकता हूँ। यहाँ से कुछ यन्त्र वगैरह साथ ले कर चलूँगा; दिल्ली से उन्हे बुक कर देना होगा और उन के पहुँचने मे कुछ दिन लगेंगे ही। यह समय या तो दिल्ली मे बिता सकता हूँ, या फिर आगे कहीं जा सकता हूँ। तुम लोग जैसा प्रोग्राम बनाओगे, मुझे सूचना देना।

रेखा जी को अलग पत्र नहीं लिख रहा हूँ। मैंने कहा तो था कि पक्का होते ही सूचना दूँगा, पर तुम्ही लिख देना, फिर जैसा तय होगा मुझे बता देना।

और क्या हाल-चाल है? लखनऊ अभी कायम है या कि तुमने उलट दिया अपनी अखबारनवीसी से?

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा,

यह बिना तुम्हारी ओर से प्रेरणा या 'कोंच' के लिखा गया पत्र पा कर तुम्हे अचम्भा होगा। होगा न? पर कोई कोयला इतना काला नहीं होता कि सुलग कर लाल न हो सके! मुझे भी दैवी अनुकम्पा कभी छू जाती है और नेक काम कर बैठता हूँ।

ग्रीष्मावकाश मे, शायद, तुम से भेंट न हो सके। मै काम से कश्मीर जा रहा हूँ। कॉस्मिक रश्मियो की तलाश मे। कभी सोचता हूँ, इन रश्मियों को हम ठीक समझ सकें, विश्व में बिखरी हुई इस मुक्त शक्ति को काम मे ला सकें, तो मानव का कितना बड़ा कल्याण उस के द्वारा हो सकेगा—सच ही 'शिव' सर्वत्र फैला हुआ, घटघटव्यापी और अन्तर्यामी है, उसे पहचान सकने, उससे सम्पृक्त हो सकने की ही बात है... फिर ध्यान आता है, आज जो इतनी तत्परता कॉस्मिक रश्मियो की खोज में दिखायी जा रही है, वह क्या

उन की कल्याणकारी सम्भावनाओं के लिए ? या कि ध्वंस के रथ-चक्र में ए
और अरा लगा देने के लिए, जिस से उस की गति और तीव्र हो सके
लेकिन उस डर से विज्ञान को रुकना नहीं होगा : वैज्ञानिक को तथ्य की शो
भी करनी होगी और विवेक को भी जगाना होगा...

कुछ दिन पहले लखनऊ गया था। चन्द्रमाधव अच्छी तरह है; काफ़
और शहर का स्कैंडल—राजनैतिक-सामाजिक—उस का मुख्य खाद्य है। औ
वह इस पर पनप भी रहा है। उस के यहाँ एक और रिमार्केबल व्यक्ति
परिचय हुआ—एक श्रीमती रेखा देवी से। तुम उन्हें देखतीं तो अवश
प्रभावित होतीं—एक स्वाधीन व्यक्ति जिस का व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज ते
से नहीं, दुख की आँच से निखरा है। दुःख तोड़ता भी है पर जब नहीं
तोड़ता या तोड़ पाता, तब व्यक्ति को मुक्त करता है। ऐसा ही कुछ मुझे
उन में लगा। हम लोगों की कई तरह की बहस हुई—सत्य पर, मानव
पर, काफ़ी पीने पर! एक गाना भी उन से सुना—बँगला का—गला बहु
अच्छा है पर गाने की बात पर न जाने किस रागात्मक गाँठ का बोझ है
जो अच्छा गा सकता है, वह क्यों नहीं गाते समय सब राग-विराग से मुक्त है
संगीत को तो गायक को ही नहीं, श्रोता को भी राग-मुक्त कर देना चाहिए
परिणाम यही निकलता है कि संगीत से उन का कलाकार का सम्बन्ध नहीं
है, भावुक का है। पर तर्कवाद को यहाँ तक क्यों ले जाया जाय ? उन की
आवाज़ बहुत अच्छी थी, और उस में 'सोज़' था।

तुम क्या कर रही हो—कब इधर आती हो ? कश्मीर से लौट क
तो शायद भेंट होगी ही। आगे क्या करने का विचार है ? लिखना। नो
क्या जाने, देवकृपा फिर मुझे छू जाय और मैं फिर पत्र लिख दूँ।

तुम्हारा स्नेही
भुवन

चन्द्र द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा जी,

भुवन का पत्र आया है। कुलू तो वह नहीं जा सकेगा—कश्मीर जा रहा है कुछ रिसर्च के सिलसिले मे—पर उसने लिखा है कि अगर हम लोग कश्मीर मे कहीं मिल सकें तो वह कुछ दिन हमारे साथ रहना चाहेगा। क्यो न वैसा ही प्रोग्राम बनाया जाय? कश्मीर चलें; वहीं भुवन साथ हो लेगा और वहाँ से फिर उसे आगे जहाँ जाना होगा चला जायगा। आप चाहे वहीं रह जाइयेगा चाहे लौट आइयेगा। यह भी हो सकता है कि हम सब दिल्ली मिलें और वहीं से साथ चलें। मैंने छुट्टी ले ली है, अब आप अगर न चलेंगी तो मुझे बहुत-बहुत सख्त सदमा पहुँचेगा!

मेरे ख्याल मे सब से अच्छा होगा कि हम लोग मिल कर कुछ पक्का प्रोग्राम बना लें, और भुवन को सूचना दे दें। उसने भी यही लिखा है। आप एक-आध दिन फिर लखनऊ आ जाइये न—या मुझे लिखें, मैं प्रताप-गढ आ जाऊँ? दो घंटे का तो रास्ता है।

प्रतीक्षा मे,

आप का
चन्द्र

पुनः चन्द्र द्वारा रेखा को :

रेखा,

तुम (हाँ, मै जानता हूँ तुम इस सम्बोधन से चौंकोगी; यद्यपि तुम मुझे तुम कह सकती हो, पचासों औरत-आदमी एक दूसरे को तुम कहते हैं और कोई नहीं चौंकता, पर तुम्हारा चौंकना ठीक भी है क्योंकि मैं हज़ारों की तरह तुम्हें तुम नहीं कह रहा हूँ, वैसे कह रहा हूँ जैसे एक-एक को कहता

है) तुम यहाँ आओगी, दिन-भर के लिए और रात को गाड़ी से वापस चली जाओगी। ठीक है, इतना ही सही। यह भी हो सकता है कि इतना भी तुम इस लिए कर रही हो कि भुवन के पास जाने की बात है, नहीं तो न आतीं। वह भी सही। यह होता ही है कि स्त्रियाँ जहाँ उदासीनता देखती है, वहाँ आकृष्ट होती है। पर रेखा, तुम नही जानती कि मैंने कितनी बार तुम्हे बुलाना चाहा है, 'तुम' कह कर ही नहीं, 'तू' कह कर—कुछ न कह कर केवल आँखो से, मन से, हृदय की धकड़न से, अपने समूचे अस्तित्व से! तुम अगर डेस्टिनी को मानती हो तो कहूँ कि जब से तुम्हे देखा है तब से यह जानता रहा हूँ कि डेस्टिनी ने मुझे तुम्हारे साथ बाँधा है, और मै चाहूँ न चाहूँ, इस के सिवाय कोई उपाय नहीं है कि मै तुम्हारी ओर बढता जाऊँ, तुम दूर जाओ तो तुम्हारे पीछे जाऊँ पृथ्वी के परले छोर तक भी! और आज तीन वर्षों से यह बात मैं तुम से कहना चाहता हूँ, एक आध दफे मैने ठान कर प्रयत्न भी किया है पर तुम टाल गयी हो। पर आज मैंने निश्चय किया है कि मै कहूँगा ही, किसी तरह नहीं रुकूँगा।

उस दिन जब मैंने अपने जीवन की, अपने विवाह की कहानी तुम्हें सुनायी थी, तब तुमने पूछा था कि यह सब क्यों मै तुम्हे बता रहा हूँ। उस दिन भी मैने चाहा था कि पूरी बात तुम से कह दूँ। फिर बडे दिनों में भी—पर तब भी तुम और-और बातें कर के टाल गयी थीं। पिछली बार भुवन के कारण कोई मौका ही नहीं मिला। पर एक तरह से मैं उस से खुश ही हूँ। क्योंकि उस बार मुझे और भी स्पष्ट दीख गया कि तुम्हारे बिना मेरी गति नहीं है। यह भी तब मैने अनुभव किया—तुम चाहे इसे न मानो—कि तुम्हारे अधूरेपन को मैं ही पूरा कर सक्ता हूँ, मै ही, और कोई नहीं, कोई नहीं! तुम अधूरेपन से भी इनकार करोगी, तुम भविष्य मे भी इनकार करती हो—तुमने अपने को बचाये रखने के लिए बहुत-सी बोगस थ्योरियाँ गढ रखी हैं जिन्हें तुम भी नहीं मानती हो, मैं जानता हूँ। और भुवन के तुम्हारे व्यवहार में यह मुझे स्पष्ट दीखा कि तुम्हारी सब थ्योरियाँ केवल एक रक्षा कवच है, तावीज की तरह तुम ने उन्हें बाँध रखा है क्योंकि तुम्हारी

सारी प्रवृत्तियाँ उन के विरुद्ध हैं और तुम स्वयं अपनी प्रवृत्तियो से डरती हो। क्यो डरती हो? जो सहज प्रवृत्तियाँ है, वे कल्याणकारी है। और तुम्हारी प्रवृत्तियाँ और मेरी प्रवृत्तियाँ समान्तर है, रेखा! भुवन दूसरी दुनिया का आदमी है। हो सकता है कि मुझ से ऊँचा, अच्छी दुनिया का ही हो, पर वह दूसरी दुनिया है, दूसरा स्तर है, और वह स्तर हमारे-तुम्हारे स्तर को कही नही काटता। क्यो तुम और अपनी प्रतारणा करती हो—क्या तुम्हारे जीवन में पहले ही यथेष्ट प्रतारणा नहीं रही?

रेखा, तुम बार-बार कह देती हो कि तुम मुझ से बडी हो, पर यह भी एक कवच है तुम्हारा। उम्र मे भी तुम मुझ से दो-तीन बरस छोटी तो हो ही; वैसे भी किस बात मे बड़ी हो? यो मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ, सदा करूँगा, तुम्हारे पैर चूमूँगा, वह बात दूसरी है, पर कौन-सा अनुभव तुम्हे इतनी दूर ऊपर उठा ले जाता है? मै बच्चा नहीं हूँ, रेखा, दो बच्चों का पिता हूँ: क्लेश तुम ने भोगा है अवश्य, पर मै उस से अछूता होऊँ यह नही है। और विवाह के बाद मैं यूरोप घूमा हूँ—युद्ध के आसन्न संकट से निराश, नीति-हीन प्रतिमान-हीन यूरोप—और उस मे जो अनुभव मैंने पाये है वे —क्षमा करना—एक विवाह और एक विच्छेद से कही अधिक तीखे, कटु और पका देने वाले है.. तभी तो, लौट कर फिर मै गृहस्थी मे खप न सका, घर गया, कुछ रहा; हाँ, पत्नी के साथ सोया भी और उस से एक बच्चा भी पैदा किया, पर इन सब अनुभवो ने उस गर्म कड़ाहे को और तपाया ही, उस तेल को और तपाया ही जिस मे जल कर मै आज वह बना हूँ जो मै हूँ। तुमने एक बार कहा था कि तुम्हारे आसपास दुर्भाग्य का एक मंडल है, पर मै देखता हूँ, जानता हूँ, अनुभव करता हूँ कि तुम मेरी आत्मा के घावो की मरहम हो, तुम्हारा साया मेरे लिए राहत है, और—यदि तुम वह मुझे दे सको तो—तुम्हारा प्यार मेरे लिए जन्नत है...मै बडा लालची रहा हूँ, जीवन से मैंने बहुत माँगा है, छोटी चीज कभी नही माँगी, बड़ी से बडी माँगता आया हूँ, मै सच कहता हूँ कि इस से आगे मेरी और कोई माँग नहीं है, न होगी—यह मेरी सारी चाहनाओ, कल्पनाओ, वासनाओ, आका-

त्ताओ की अन्तिम सीमा है, मेरे अरमानों की इति, मेरी थकी प्यासी आत्मा की अन्तिम मंजिल ! रेखा, तुम मे असीम करुणा है—तुम तत्काल प्यार नहीं दे सकतीं तो करुणा ही दो, मुक्त करुणा, फिर उसी में से प्यार उपजेगा

मैं लालची हूँ, मै स्वार्थी भी हूँ। पर इतना स्वार्थी नहीं, रेखा, कि इस बात को मैंने तुम्हारी ओर से न सोचा हो। तुम अकेली हो, मुक्त हो, नौकरियाँ करती हो। पर कहाँ तक ? किस लिए ? मुक्ति आज नारी चाहती है, चलो ठीक है यद्यपि आज मुक्त कोई नही है और है तो इस महायुद्ध के बाद शायद वह भी न रहेगा—पर नौकरी तो कोई नहीं चाहता ? मुक्ति के लिए नौकरी, नौकरी के लिए मुक्ति, दुहरा धोखा है। सेक्योरिटी हर कोई चाहता है, और उसी मे मुक्ति है। पुरुष के लिए भी, और स्त्री के के लिए और भी अधिक।

इन बातो की यहाँ क्या रेलेवेंस है ? बताता हूँ। हेमचन्द्र (हम दोनों के बीच कभी उस का नाम नहीं लिया गया है, आज ले रहा हूँ, लाचारी है) मलय मे जिस के साथ रहता है उस के या और किसी के साथ शीघ्र ही शादी करना चाहेगा—या न चाह कर भी करेगा क्योंकि इस के बगैर उस का वहाँ अधिक दिन रहना सम्भव नहीं होगा—जंग दोनो को अलग कर देगा और हेमेन्द्र को यहाँ ला फेकेगा या जेल में डाल देगा। और इस के लिए वह तुम्हे डाइवोर्स करेगा ही। उस के लिए सब से आसान तरीका यह होगा कि धर्म-परिवर्तन कर के डाइवोर्स माँगे—तुम न धर्म-परिवर्तन करोगी न उस के पास जाओगी, बस। तुम डाइवोर्स माँगती तो वह न देता—और शादी के लिए माँगती तो और भी नहीं, तुम्हें वह गुलाम रख कर सताना ही चाहता—पर अपनी सुविधा के लिए वह सब करेगा।

और मैं ? तुम्हारा सिविल विवाह था, तुम्हारी बात और है। मेरी स्थिति दूसरी है। पर मैं अपने विवाह को विवाह कभी नहीं मान सका हूँ—ऐसा विवाह सन्तान को जायज करने की रस्म से अधिक कुछ नहीं है, न हो सकता है। मैं अलग हूँ, अपने को अलग और मुक्त मानता हूँ, और मेरा परिवार भी मुझ मे न कुछ चाहता है, न कुछ अपेक्षा रखता है सिवाय इस

के जो मै भेजता हूँ और भेजता रहूँगा। सच रेखा, मुझे कभी उस विचारी स्त्री पर बड़ी दया आती है। बल्कि उस का किसी से प्रेम हो, वह किसी से शादी करना चाहे, तो मै कभी बाधा न दूँ बल्कि भरसक मदद करूँ—खुद जा कर कन्यादान कर आऊँ—जो कुमारी नहीं है उसे कन्या कहना असम्मत तो नही है न?

रेखा, भविष्य है, होता है, तुम मानो! पर तुम्हारे बिना मेरा भविष्य नहीं है, यह मै क्षण-क्षण अनुभव करता हूँ। मै चाहता हूँ, किसी तरह अपनी सुलगती भावना को तपी हुई सलाख से यह बात तुम्हारी चेतना पर दाग दूँ कि तुम्हारी और मेरी गति, हमारी नियति एक है, कि तुम मेरी हो, रेखा, मेरी, मेरी जान, मेरी आत्मा, मेरी डेस्टिनी मेरा सब कुछ—कि मुझ से मिले बिना तुम नही रह सकोगी, नही रह सकोगी; तुम्हे मेरे पास आना ही होगा, मुझ से मिलना ही होगा, एक होना ही होगा!

तुम्हारा अभिन्न और तुमसे दूर

च०

पुनश्च :

यह पत्र शायद प्रतापगढ भेजना ठीक न होगा। तुम आओगी, तो यही तुम्हे दूँगा। तुम दोपहर को पहुँचोगी, स्टेशन से ही सीधे काफीहाउस चलेंगे, वहाँ से पुरानी रेजिडेंसी; उस के खँडहरो मे एकान्त मे बैठ कर ही तुमसे बात करूँगा—वहीं यह पत्र तुम्हे दूँगा, वही पढवाऊँगा.. मै देखना चाहता हूँ इसे पढते हुए तुम्हारे चेहरे की एक-एक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गति—क्योंकि उस में मेरा भाग्य लिखा होगा.. रेखा, अभी तक मै भी खँडहर हूँ। तुम भी खँडहर हो, पर वहाँ से हम खँडहर नही, एक नयी, सुन्दर, सम्पूर्ण, जगमगाती इमारत निर्माण कर के निकलेंगे ऐसा मेरा मन कहता है .

चन्द्रमाधव द्वारा गौरा को :

प्रिय गौराजी,

बहुत दिनों से आपने मुझे याद नहीं किया। मैंने पिछले महीने जो

पत्र लिखा था, उस की पहुँच भी आपने न दी। फिर भी, संगीत के तरन्नुम में हम बेसुरे लोगों को बिल्कुल भूल न गयी होंगी ऐसी आशा करता हूँ।

पर आज कोई बेसुरा तर्क भी मैं छेड़ने नहीं जा रहा हूँ; मैंने निश्चय किया है कि अब अपनी बात नहीं किया करूँगा, हर किसी से उस के प्रिय विषय की चर्चा किया करूँगा। समझ लीजिए कि यही मेरी साधना होगी —देखिए, मैं भी साधना-धर्म को मान गया, और यह आप की व्यक्तिगत विजय है।

भुवन जी यहाँ आये थे, यह मैंने आप को पिछले पत्र में लिखा था। रेखा देवी के विषय में भी लिखा था। वह वास्तव में बड़ी प्रभावशालिनी महिला हैं, नहीं तो भुवन सरीखा आदमी अपनी यात्रा का प्रोग्राम किसी के साथ के लिए बदल दे, यह क्या सम्भव है?

रेखा जी अभी हाल में फिर यहाँ आयी थीं। इधर भुवन से उन का कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ था; उन्होंने भुवन को पहाड़ चलने के लिए निमन्त्रित किया था। पहले मेरे भी साथ चलने की बात थी, पर अब प्रोग्राम कुछ बदल गया है। भुवन जी रिसर्च के लिए कश्मीर जा रहे हैं न, मैं तो वहाँ न जा सकूँगा, पर रेखा जी कदाचित् कश्मीर ही जायेंगी। इधर वह कोई नौकरी भी नहीं कर रही हैं, इस लिए पूरी छुट्टी है।

मैं सोचता हूँ, मैं भी जा सकता। डा० भुवन जैसे लगन वाले वैज्ञानिक के साथ पहाड़ में कहीं कुछ दिन रह सकता, तो कुछ सीख ही लेता। वह हैं भौतिक विज्ञान के माहिर, पर और कितना कुछ जानते हैं...एक मैं हूँ कि स्वयं अपने विषय का ऊपरी ज्ञान रखता हूँ—पर जर्नलिज़्म की यही तो मार है; कहीं गहरे नहीं जाने देता, सब कुछ का ज्ञान होना चाहिए, पर उथला ज्ञान, कहीं भी गहरे गये कि दूसरे जर्नलिस्ट सन्देह से देखने लगते हैं, यह कौन उचक्क हमारे बीच में आ गया...

भुवन के गुणों से मैं क्रमशः अधिकाधिक प्रभावित होता जाता हूँ। पर उनमें बड़ा गुण उनका यह मानता हूँ कि उनके द्वारा मेरा आप से परिचय

हुआ। है स्वार्थ-दृष्टि, पर मेरे लिए तो यही गुण सब से अधिक सुखद सिद्ध हुआ न !

यह पत्र न मालूम आप को समय पर मिलेगा या नहीं, आप कदाचित् दक्षिण से चल देने वाली हों। पर वहाँ न भी मिला तो आशा है रिडायरेक्ट तो हो ही जायगा। दिल्ली पहुँचें तो मुझे सूचित कीजिएगा। मैं कुछ दिन के लिए वहाँ जाने की सोच रहा हूँ। छुट्टी पहाड़ जाने के लिए ली थी, पर भुवन दा का साथ तो हुआ नहीं, अब यह सोचता हूँ कि दिल्ली होकर मसूरी ही कुछ दिन रह आऊँ। आप का क्या मसूरी जाने का विचार नहीं है ? आप के पिता जी तो जायेंगे—बल्कि वहीं होंगे ?

आप का स्नेही
चन्द्रमाधव

चन्द्र द्वारा भुवन को :

भाई भुवन,

रेखा जी दो-चार दिन पहले यहाँ आयी थीं। मेरा पहाड़ जाना तो न हो सकेगा। मेरा साथ उन्हें अभीष्ट भी नहीं है। वह तुम्हारे साथ ही जाना चाहती हैं। खुशकिस्मत हो, दोस्त, ! बुद्धू हो तो क्या हुआ।

कभी जब पहाड़ से उतरोगे, तो मुझे भी याद कर लेना। मैं वही का वही हूँ, चन्द्रमाधव, जर्नलिस्ट, तुम्हारा अनुगत और प्रशंसक, और अब तुम्हारे तेज से अभिभूत।

चन्द्र

रेखा द्वारा भुवन को

प्रिय भुवन जी,

आप के पिछले पत्र के बाद आशा की थी कि कुछ निश्चय होने पर आप फिर लिखेंगे। आप का कोई पत्र नहीं आया। हाँ, चन्द्रमाधव जी की

ओर से सूचना मिली थी कि उन को आप का पत्र आया है, जिस में आपने कश्मीर की बात लिखी थी। वहीं का प्रोग्राम बनाने के लिए उन्होंने मुझे लखनऊ बुलाया भी था, और मैं एक दिन दुपहर को जा कर रात की उसी गाड़ी से लौट आयी थी जिस से हम लोगो ने साथ यात्रा की थी।

भुवन जी, पहाड़ जाने के सारे प्रोग्राम को रद्द समझें। वह प्रोग्राम चन्द्रमाधव जी की प्रेरणा से बना था, उन्हीं के साथ हम लोगो के जाने की बात थी और इसी के लिए मैंने भी आप से अनुरोध किया था, पर अब मैं उन के साथ न जा सकूँगी—न अकेले, न पार्टी मे—इस लिए जाने की बात छोड़ देनी चाहिए। हाँ, आप अगर और लोगो को साथ ले कर जाने वाले हो तो मै चल सकूँगी और आप का साथ पा कर प्रसन्न हूँगी—हाँ, आप मेरा साथ चाहे तब।

आप को व्यर्थ ही इतना कष्ट देने के लिए क्षमा चाहती हूँ।

आप की
रेखा

(आगे नया पन्ना जोड़ कर :)

भुवन जी, चन्द्रमाधव जी आप के मित्र हैं और उन का आप का परिचय बहुत पुराना है। ऐसे मे मैं कोई कटुता लाना नहीं चाहती, और जिस स्थिति मे फँस गयी हूँ, उस के कारण लज्जा और संकोच के मारे गड़ी जा रही हूँ। फिर भी मैंने जो लिखा कि चन्द्रमाधव जी के साथ कहीं न जा सकूँगी उस के स्पष्टीकरण मे कुछ तो कहना ही होगा। चन्द्रमाधव जी ने मुझे लखनऊ बुलाया था, मे दोपहर को पहुँची तो पहले हम लोग काफ़ी हाउस गये। वहाँ आप के विषय मे बातें होती रहीं, मैंने लक्ष्य किया कि उन की बातो में बार-बार एक छिपी ईर्ष्या व्यक्त हो उठती है जिस का कारण न समझ सकी। फिर उन्होंने कहा, "यहाँ से रेजिडेंसी चला जाय।" बाहर आँधी के आसार थे—आज-कल धूल के कैसे भक्कड़ आते हैं, आप तो जानते हैं—मैंने आपत्ति की तो बोले, "रेखा जी, ज़रा-सी आँधी से डरती हो?" वह मुझे सदा आप कहते हैं, आप और तुम की खिचड़ी कुछ अद्भुत

लगी पर शायद दिल्ली का मुहावरा है इस लिए मैंने ध्यान न दिया, यह भी न लक्ष्य किया कि उन का स्वर आविष्ट है—बाद मे यह भी याद आया।

हम लोग रेजिडेंसी पहुँचे तो बड़े ज़ोर की आँधी आयी। वह ज़ोर से हँसे और बोले, "ठीक है, बिल्कुल मौज़ूँ है।" तब मैने सँभल कर वापस चलने को कहा, पर उन्होने कहा, "यहाँ तक आयी हो तो मेरी बात सुन कर जाओ।"

भुवन जी, आप समझदार है और मैं स्त्री हूँ। पूरी बात कहने की आवश्यकता भी नही है और उस मे व्यर्थ सब को ग्लानि ही होगी; आप को इस कीचड़ मे खींचना भी न चाहिए। संक्षेप मे कहूँ कि चन्द्रमाधव ने अपना प्रेम निवेदन किया—ज़बानी भी और एक लिखा हुआ पत्र दे कर भी। पत्र मैंने वहाँ नही पढा, उन की बातो से ही स्तब्ध और अवाक् हो गयी क्योकि मैं उन्हे अपना हितैषी, मित्र और सहायक मानती थी—उस नाते उन की बहुत कृतज्ञ भी हूँ—यह नही जानती थी कि उन के हृदय में कैसे भाव भरे है। मै वहाँ से तत्काल एक शब्द भी कहे बिना लौट आयी, वह वही रहे—पीछे मैंने सुना कि रो रहे है पर मैं रुकी नहीं—फिर ताँगा पा कर मै सीधी स्टेशन पहुँची, काफी पीने बैठी तो ध्यान आया कि उन का पत्र मेरे हाथ मे है। वह मैने वही पढा। फिर वेटिंग रूप मे बैठी रही, रात की गाड़ी से लौट आयी।

प्लेटफार्म पर चन्द्रमाधव जी थे। उन्होने मुझ से पूछा कि चिट्ठी का उत्तर क्या मै उन्हे दूँगी? मैंने कहा कि अपनी समझ मे उत्तर तो मै दे आयी जब चली आयी। तब उन्होंने अपना पत्र वापस माँगा। मैंने दे दिया।

भुवन जी, मै बहुत ही लज्जित हूँ सारी घटना से, पर समझ मे नहीं आता कि क्यो मेरे साथ ऐसी बात होती है—सिवा इस के कि फिर नियति की बात कहूँ। मेरे साथ दुर्भाग्य का एक मंडल चलता है जो छूता नहीं, ग्रसता है...क्या आप मुझे क्षमा दे सकेंगे?

रेखा

रेखा द्वारा भुवन के नाम :

प्रिय भुवन जी,

परसों एक पत्र भेज चुकी हूँ। आज फिर कष्ट दे रही हूँ। साथ में चन्द्रमाधव जी का पत्र है जो मुझे अभी इसी डाक से मिला है। पत्र अपनी बात स्वयं कहता है।

आप से अनुरोध करती हूँ कि मेरे कारण आप उन के प्रति अपने मन में मैल न आने दें। मैत्री दुर्लभ चीज है, और मेरी लिखी बातों की उन के जीवन में कोई अहमियत होगी ऐसा नहीं है, वह शीघ्र ही भूल जायेंगे। इसी लिए यह भी प्रार्थना करती हूँ कि आप उन्हें न जतावें कि मैंने यह सब आप को लिखा है : मैं नहीं चाहती कि यह जान कर उन्हें और ग्लानि हो और उन के आप के बीच में सदा के लिए ग्लानि की दरार पड़ जाय।

आप की चिट्ठी की बाट देखती रहूँगी। अब बल्कि सोचती हूँ, कुछ दिन आप के निकट इसी लिए रह सकूँ कि जानूँ, आपने मुझे क्षमा कर दिया है, नहीं तो एक गहरा परिताप मुझे सालता रहेगा।

आप की
रेखा

इस के साथ का पत्र, चन्द्रमाधव की ओर से रेखा को :

रेखा,

मैंने अपनी ही मूर्खता और अपटुता से तुम्हें खो ही दिया, तो अब तुम से यही प्रार्थना करता हूँ कि अब मुझ से कोई सम्पर्क न रखना; मेरा मुँह न देखना, न अपना मुँह मुझे दिखाना। लखनऊ आना, बेशक; जब तुम्हारी इच्छा हो आना-जाना, पर कभी मुझ से अचानक मुठभेड़ हो है

जाय तो मुझे पहचानना मत, बुलाना-बोलना मत। रहो, खुश रहो: पर मेरे जीवन से निकल जाओ, बस!

यह नही कि मैं तुम्हें चाहता नहीं, या कि उस पत्र में लिखी बाते सच नहीं हैं। पर—बस! और कुछ लिखने की सामर्थ्य मुझ मे नही है।

तुम्हारा अभागा

च०

रेखा स्टेशन पर गाड़ी रुकते न रुकते उतर पड़ी, पर प्लेटफार्म की पटरी से पैर छूते ही मानो उस के भीतर की स्फूर्ति सुन्न हो गयी, उसने एक बार नज़र उठा कर इधर-उधर देखा भी नहीं कि कोई उसे लेने आया है या नहीं। यन्त्रवत् उसने सामान उतरवाया, कुली के सिर-कन्धे उठवाया, कुली के प्रश्न 'बाहर, बीबी जी?' के उत्तर मे अस्पष्ट 'हाँ' कहा, और फिर कुली की गति से मन्त्रबद्ध-सी खिंची चल पडने को थी कि पास ही भुवन के स्वर ने कहा, "नमस्कार, रेखा जी!"

तब वह चौंकी नहीं। एक धुन्ध-सी मानो कट गयी; मानो वह जानती थी कि भुवन आयेगा ही; वह मुडी तो एक खुला आलोक उस के चेहरे पर दमक रहा था : "नमस्कार, भुवनजी, मैंने तो समझा कि आप नही आयेंगे।"

"आप बड़ी जल्दी उतर पडीं—मैं तो डिब्बो की ओर ही देखता रहा। अच्छी तो है? देखने से तो पहले से अच्छी ही मालूम होती है—"

रेखा ने किंचित विनोदी दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देख कर कहा, "और आप—पहले से भी अधिक व्यस्त और अन्तर्मुखी—"

"नही तो—ये तो मेरी छुट्टियाँ है।"

"हाँ, काम से नही, काम के लिए। पर अच्छा है—काम मे ही मुक्ति दीख सके, कितना बड़ा सौभाग्य होता है।"

कुली ने पूछा, "जी चलूँ ?"

"हाँ चलो, बाहर ले चलो," भुवन ने कहा। "चलिए, रेखा जी—"

"हाँ। सुनिए, मैं वाई० डब्ल्यू० में ठहरूँगी—मैंने पहले ख़बर दे रखी है। आत्म-निर्भर अर्थात् नौकरी करने वाली स्त्रियाँ वहाँ रह सकती है—"

"ठीक है, वहीं सही। मै तो कालेज में ठहरा हूँ, एक प्रोफ़ेसर के साथ।"

"रहेंगे ?"

"यही चार-छः दिन रहूँगा। यहाँ से सामान भेज कर फिर कहीं जाऊँगा।"

"हाँ—चन्द्रमाधव ने लिखा था—" कह कर रेखा सहसा चुप हो गई। एक बोझल मौन उन के बीच मे आ कर जम गया।

ताँगे पर सवार हो कर रेखा ने फिर पूछा, "भुवन जी, एक स्वार्थ की बात कहूँ ?"

"क्या—"

"मैं दो-चार दिन यहाँ रुक जाऊँ, तो आप अपना कुछ समय मुझे देंगे ? दिल्ली में मेरे परिचित तो बहुत हैं, पर वह ख़ुशी की बात है या डर की, नहीं जानती !"

"मुझे तो यहाँ कोई काम नहीं है; दो-एक व्यक्तियों से ही मिलना-जुलना है; मेरे पास बहुत समय है।"

"उबाऊँगी नहीं, यह वचन देती हूँ!" रेखा हँस दी। "ऊब आने से पहले ही हट जाऊँगी—मुझे और कुछ तो नहीं आता पर ऊब के लक्षण ख़ूब पहचानती हूँ। यह कि मेरे जीवन का मुख्य पाठ यही है—ऊब की सात सीढ़ियाँ !"

"यह खतरा मुझे नहीं है। मैं ही ऊबा सकता हूँ; क्यों कि मेरे कहने को बहुत कम है; अधिक बात जिस विषय की कर सकता हूँ वह ऊबाने वाला है—विज्ञान !"

"भुवन जी, आप अपने बारे में बात करते हैं—करते रहे हैं?"

"नहीं तो—या बहुत कम। वह भी कोई विषय है?"

"तो ठीक है, कहना चाहिए कि वह नया विषय है—मेरे लिए तो है ही, आप के लिए भी है!" रेखा की आँखें हँसी से चमक उठीं। "और मैं वायदा करती हूँ, इस विषय से नहीं ऊबूँगी—आप ही जब छोड़ें तो छोड़ें। बल्कि मैं फिर-फिर लौट आऊँ तो आप बुरा तो न मानेंगे?"

भुवन ने थोड़ा-सा सकुचाते हुए, यद्यपि कुछ तोष भी पा कर, कहा, "न—नहीं तो; पर मैं फिर आप को वार्न करता हूँ, वह विषय बड़ा नीरस है, और कहीं पहुँचता नहीं।"

"मैं तो पहले ही बता चुकी हूँ कि कहीं पहुँचने का लोभ ही मुझे नहीं है—ऐसी यात्रा पर हूँ जो कहीं पहुँचती ही नहीं, अन्तहीन है, यही क्या कहीं पहुँच जाना नहीं है?"

"यह भी एक दृष्टिकोण हो तो सकता है—" कह कर भुवन निरुत्तर सा कुछ सोचने लग गया।

कश्मीरी गेट में वाई० डब्लू० में सामान उतार कर दुमँजिले पर पहुँचाया गया, भुवन को 'लाउंज' में बिठा कर रेखा ने कहा, "आप जरा बैठिए, मैं अभी आती हूँ" और सामान के साथ अपने कमरे की ओर चली गयी।

जब तक वह मुँह-हाथ धो कर लौट कर आवे, तब तक मन बहलाने के लिए भुवन कुछ ढूँढने लगा—इस लिए भी कि जब तब कोई स्त्री आती और लाउंज में उसे देख कर लौट जाती, कोई कौतूहल से उसे घूर कर, कोई सकपका कर—और वह खाली बैठने के संकोच से मुक्त होना चाहता था। पर कुछ भी उसे नहीं मिला। एक ताक में कुछ पत्र रखे हुए थे, उस ने निकाले। "लेडीज़ होमजर्नल', 'वोग', 'वुमन एण्ड होम'—कहीं उस का मन रमा नहीं। वह सब पुनः वहीं रखने को था कि ताक के भीतर एक छोटे आकार का पत्र उसे दीखा, उसने खींच कर निकाला: 'मेन ओनली।' उस ने मुस्करा कर उसे वहीं रख कर ऊपर सब दूसरे पत्र लाद दिये।

वह सोचने लगा, पुरुषों के लिए जो पत्र होते हैं, उनका क्षेत्र तो इतना सकुचित नहीं होता—स्त्रियों के पत्र क्यो ऐसे होते है? पर पुरुषों के पत्र वास्तव में केवल उन के नही होते, सब के होते हैं, और स्त्रियों के केवल "स्त्रियोपयोगी"...लेकिन क्या स्त्री के लिए बस यही बातें उपयोगी हैं—"हाउ टु विन ए मैन"—'हाउ टु होल्ड ए मैन"—"फ़ीड द ब्रूट"—'द वे टु ए मैन्स हार्ट-थ्रू हिज़ बेली'—आदमी को फाँसी कैसे, वश में कैसे रखो, रिझाओ कैसे—मानो उच्चाटन-वशीकरण के यन्त्र-मन्त्र के युग से हम अभी कुछ भी आगे नही गये। और स्वय स्त्री केवल यह नहीं चाहती, इस का प्रमाण वह नीचे छिपा हुआ 'मेन ओनली, है; हो सकता है उस मे केवल यह कौतूहल हो कि पुरुष क्या पढते हैं, कैसे मज़ाक आपस में या स्त्रियो के बारे मे करते है—वैसा ही कौतूहल, जैसा बहुत मे पुरुषों को स्त्रियों के बारे में हुआ करता है जिस के कारण वह स्त्रियों के जनाने की किवाड़-दरारों में कान लगा कर सुना करते है!

एक काल्पनिक समस्या उस के सामने आयी। अगर ये सब पत्र-पत्रिकाएँ बिछी हों, और कोई देखने वाला न हो तो अकेली स्त्री कौन-सा पत्र उठायेगी? क्या किसी का चेहरा देख कर तय किया जा सकता है? कौतूहल-वश उसने सोचा, अच्छा, अब जो स्त्री लाउंज में आयेगी उसे देख कर अनुमान लगाऊँगा कि वह 'वोग' पढ़ेगी कि 'लेडीज होम' कि 'मेन ओनली'—

धत्! पहली स्त्री जो आयी वह रेखा थी। भुवन ने तुरन्त यह खेल बन्द कर दिया। रेखा ने पूछा, "मैंने बहुत देर कर दी न? आप इतनी देर क्या करते रहे? यहाँ आप के पढ़ने लायक भी तो कुछ नहीं है—"

भुवन ने पूछा, "रेखा जी, ये जो इतने जर्नल यहाँ हैं, इन मे आप को कौन-सा पसन्द है?"

"कौन से? अरे ये! ये तो मैंने कभी देखे नहीं। कभी सुनती थी कि डिजाइन के लिए कोई देखा हो, पर इन्हें पढ़ूँ, ऐसी हालत तो कभी नहीं हुई।"

"यही मैं सोच रहा था—कि इन्हें कौन पढ़ता होगा। और क्या

नीचे मैंने देखा, 'मेन ओनली' दबा पड़ा है।"

रेखा हँस पड़ी। "हाँ! वह तो स्वाभाविक है।" स्त्रियों की दिलचस्पी किस चीज में है? इन 'मेन ओनली में।' यह यहाँ का स्थायी मजाक है।"

एक कुरसी खींच कर वह बैठ गयी। "अच्छा, अब बताइये, यहाँ क्या-क्या किया जायगा—आप का क्या प्रोग्राम है?"

आप ही प्रोग्राम बनाइये—"

तय हुआ कि उस दिन रेखा आराम करेगी, तीसरे पहर अगर भुवन आ जाय तो वह घूमने चलेगी—अगर भुवन को अवकाश है। लेकिन अभी तत्काल चल कर काफी तो पी ही जाय।

दोनों नीचे उतरे। भुवन ने देखा, रेखा ने कपड़े बदल लिये थे। गाड़ी में वह रंगीन साडी पहने थी, अब फिर सफेद रेशम पहन लिया था—भुवन को ध्यान आया कि रेखा को उसने रंगीन साड़ी कम ही पहने देखा है, पर सफेद पहने तो कभी देखा ही नहीं, सफेद वह पहनती है तो रेशम, जो वास्तव में सफेद नहीं होता, उस मे हाथी दाँत की-सी, या मोतिये के फूल-सी, या पिसे चन्दन-सी एक हल्की आभा होती है...यों तो शुभ्र श्वेत भी ऐसा होता कि पहनने वाले को दूर अलग ले जाता है, पर यह रेशमी सफेद तो और भी दूर ले जाता है, दूर ही नहीं, एक ऊँचाई पर भी; रेखा मानो उस के साथ चलती हुई भी एक अलग मर्यादा से घिरी हुई चल रही है।

रेखा ने कहा, "क्या सोच रहे हैं, भुवन जी?"

"ऊँ—कुछ नहीं। आप की बात सोच रहा था—नहीं, कुछ सोच नहीं रहा था, केवल आप को देख रहा था—"

"देखिए आप को काम्पिलमेंट देना भी नहीं आता न? कितने अच्छे हैं आप, जिस के साथ सतर्क नहीं रहना पड़ता!"

अब की बार भुवन हँस दिया। पर क्यों, यह वह स्वयं नहीं जान पाया।

काफी पीते-पीते रेखा ने पूछा, "भुवन जी, आप ने पहाड़ जाने के लिए और किसी को आमन्त्रित नहीं किया?"

"नहीं तो। फिर मेरा जाना ही तो नहीं हुआ—"

"अच्छा, आप जहाँ रिसर्च के लिए जाना चाहते हैं वहाँ मैं आ जाऊँ तो आप के काम का बहुत हर्ज होगा?"

भुवन ने चौंक कर कहा, "वह तो एकदम बियाबान जंगल है रेखा जी। वहाँ—"

"फिर भी—फ़र्ज़ कीजिए—"

"नहीं—आप ही हर्ज करना न चाहें तो—ख़ास नहीं होगा—इतना ही कि आप की असुविधा का ध्यान हमेशा रहेगा—"

"और काम में बाधक होगा!" रेखा हँस दी। "ठीक है, मैं तो यों ही कह रही थी।"

वापस पहुँच कर रेखा ने नीचे ही कहा, "ज़ीना चढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है—मैं यहीं से विदा लेती हूँ। मैं यहीं रहूँगी—आप तीसरे पहर जब भी आवें। मैं तैयार मिलूँगी।"

कुदसिया बाग में उन दिनों फूल लगभग नहीं होते—कोई फूल ही उन दिनों में नहीं होता सिवा वैजयन्ती के, जो चटक रंगीन चूनर ओढ़े कड़ी शहल्लो बनी धूप में खड़ी रहती है। लेकिन खंडहर पर चढ़ी हुई 'बेगन बेलिया' लता की छाँह सुहावनी थी—फूल इस में भी कई तेज़ रंगों के भी होते हैं, पर इस की लम्बी पतली बाँहों में, हवा में झूमते गुच्छा-गुच्छा फूलों में एक अल्हड़पन होता है जो वैजयन्ती के भूमिष्ठ आत्म-सन्तोष से सर्वथा भिन्न होता है...और फिर इस विशेष लता के फूल भी तेज़ रंग के नहीं थे, एक धूमिल गुलाबी रंग ही उन में था जो पत्तियों के गहरे हरे रंग को उभारती कुछ कम कर देता था, बस।

भुवन नीचे घास पर कोहनी टेके बैठा बेंच पर बैठी रेखा को देख रहा था। रेखा पहले बेंच पर बैठ गयी थी; जब भुवन नीचे बैठा तो वह भी उठने लगी पर भुवन ने कहा, "नहीं-नहीं, आप वहीं रहिए; इस बैकग्राउं-

पर आप की साड़ी बहुत सुन्दर दीखती है।" रेखा ने एक फीके कोकनी रंग की साड़ी पहन रखी थी, बेगमबैरिया के फूल उस का सन्तुलन कर रहे थे, मानो एक ही गीत दो स्वरों में गाया जा रहा हो, रेखा का मन्द्र, अन्तर्मुख और गहराई खोजता हुआ, लता का तार, बहिर्निवेदित और उड़ना चाहने वाला...

रेखा को एक आदत थी—सहसा, माने अन-जाने, उस का हाथ उठता और पर्पटी के पास मानो कुछ खोजने लगता, फिर बालों की किसी छूटी हुई लट—कभी-कभी काल्पनिक ही लट!—को कानों के पीछे डालता हुआ धीरे-धीरे लौट आता। सारी क्रिया एक बड़े कोमल और आयासहीन ढंग से दुहरायी जाती थी। चलते हुए भी दो-चार बार भुवन ने लक्ष्य किया था, बाग में आने से पहले वे जमुना के किनारे-किनारे थोड़ा भटके थे और थोड़ी देर घाट की सीढ़ी पर पानी के निकट बैठे थे तब भी—तब बल्कि हाथ पानी में डुला कर रेखा ने पर्पटियाँ भिगो ली थीं...वह मुद्रा बड़ी आकर्षक थी, रेखा की उँगलियाँ वैसी तो नहीं थीं जिन्हें सुन्दरता का आदर्श माना जाता है—उन के जोड़ उभरे हुए थे और रूप-तत्व की अपेक्षा मनस्तत्व की ओर ही इंगित करते थे—पर वे थीं पतली और व्यंजनापटु—संवेदनशील उँगलियाँ। अभी बैठे-बैठे उसका हाथ फिर उठा तो भुवन ने पूछा, "आप थक तो नहीं गयीं? हम लोग काफी भटके—"

"नहीं—मुझे तो पता ही नहीं लगा—"

"और रेत में भी चले—उस से बड़ी थकान होती है।"

"नहीं, मैं अभी और चल सकती हूँ। पर यहाँ बैठना भी बहुत मधुर है।"

भुवन हँस दिया। फिर एक लम्बा मौन रहा। दोनों आकाश को देखते रहे। मई का दिल्ली का आकाश—उस की नीलिमा सभ्यता की भाप से मुरझा कर फीकी पड़ जाती है, और आकाश सभ्यता की तरह अपने ही रंग का ओप अपने पर नहीं चढ़ाता!—पर प्रकृति के विभिन्न भावों की झाँई उसे नाना रंग दे जाती है: इस समय उस के आगे ताँबे के रंग का

एक झीना-सा जाल था, जो धीरे-धीरे धुँधला पड़ रहा था।

रेखा ने कहा, "शहरों का आकाश भी क्या चरित्रहीन आकाश होता है—फिर गर्मियों में! यों मैं साँझ को घनी होते देखते घण्टों बैठी रह सकती हूँ—पर गर्मियों में शहर में लगता है सब से अच्छी दोपहर है—साँय-साँय सन्नाटा, धूप ऐसी कि चौंधियाँ दे, पर उस की चिलक ही जैसे दृश्य को माँज जाती है; सभ्यता के भीतर से मानव हृदय की स्तब्ध धड़कन तब सुनी जा सकती है..."

भुवन कुछ नहीं बोला। रेखा का स्वर उसे अच्छा लग रहा था, उस की गति मानो लययुक्त थी, एक भावाक्रान्त उतार-चढाव मानो अलग से कहता था, 'बात के अर्थ से अलग और भी अर्थ है मुझ में, अकथित, अकथ्य अभिप्राय, जरा कान देकर सुनो...'

रेखा ने ही फिर कहा, "यों तो पहाड़ पर या सागर के किनारे ही आकाश देखना चाहिए, पर देहातों में और खास कर आखिरी बरसात में—तब आकाश बोलता है, गाता है—कैसे-कैसे अर्थ-भरे गाने...शहर का आकाश—शहर का सूर्यास्त—जैसे ड्राइंग रूम की बातचीत, सब कोई बोल रहे हैं लेकिन सब कोई जैसे छिपे हुए, जैसे अनुपस्थित, केवल स्वरों के रेकार्ड, केवल यन्त्र-लिखित उत्साह और आवेश!"

भुवन ने धीरे से कहा, "रेखा जी, आप का इस वक्त का आविष्ट स्वर मुझे तो अनुपस्थित नहीं लग रहा है—"

"मैं!" रेखा कुछ रुक गयी। फिर मुस्करा कर बोली, "भुवन जी, आप चाहें तो मैं भी ड्राइंग रूम वाली बातों का कल खोल दे सकती हूँ—आप नहीं जानते कि मेरे पास कितनी बड़ी टंकी उस बँधे पानी की जमा है! लेकिन आप का समय मैंने माँगा था, तो उस के लिए नहीं।" वह फिर गम्भीर हो गयी। असल में मेरे भी दो पहलू हैं—"एक चरित्रवान्, प्रकृत मुक्त, एक सभ्य और चरित्रहीन—"

"रेखा जी, यों पहलू तो हर किसी के चरित्र में होते हैं, पर चरित्र को इस तरह डिब्बों में बाँटना तो बड़ा खतरनाक है—व्यक्ति को एक ओर

सम्पूर्ण होना चाहिए—यह विभाजन तो ह्रास की भूमिका है।"

"है। मै जानती हूँ। और सभ्यता जो ह्रासोन्मुख हो जाती है वह किस लिए? कि समर्थ प्रकृत चरित्र सभ्यता के पोसे हुए पालतू चरित्र के नीचे दब जाता है—व्यक्ति चरित्रहीन हो जाता है। तब वह सृजन नही करता, अलकरण करता है। नये बीज की दुनिर्वार शक्ति से जमीन फोड कर नये अंकुर नहीं फेकता, पल्लवित नही होता, झरे फूल चुनता है, मालाएँ गूँथता है, मालाओ से मूर्तियाँ सजाता है। जब मूर्ति पर मालाएँ सूख जाती हैं तब हमे ध्यान होता है कि सभ्यता तो मर चली—पर वास्तव मे मरना तो वहाँ आरम्भ हुआ है जहाँ हमने झरे फूल का सौन्दर्य देखना शुरू किया—डाल से टूटे फूल का!"

रूपक को अपने सामने मूर्त्त करते हुए भुवन ने कहा, "उस समय भी हम वृक्ष की ओर वापस जा सकते हैं—अंकुर की ओर—"

"हाँ, अगर वह हमारी उपेक्षा से सूख न गया हो। पर आज के हम सभ्य लोग अभी उतने अभागे नहीं है. अभी हम मे झरे फूल भी हैं, जो आहत हैं, और गहरी जडे भी है जो नये अंकुर फेकेगी लेकिन जिन की कद्र नहीं है। यही मै कह रही थी—दो पहलुओं की बात—"

वह चुप हो गयी। फिर एक मौन छा गया। अब तक थोड़ी-थोड़ी हवा चल रही थी, वह भी बन्द हो गयी।

भुवन ने कहा, "उमस हो रही है। थोड़ा टहला जाय?"

"चलिए।"

दोनो बाग मे इधर-उधर टहलने लगे। खँडहर और लता के कुंज के दूसरी ओर लान में जहाँ-तहाँ बच्चो के दल खेल रहे थे, अब तक सब आयाओं द्वारा किलकते-फुदकते अज-शावको की तरह घेरे जा कर अपने-अपने बाडों की ओर ले जाये जा चुके थे, एक दम तोडता हुआ-सा अँधेरा छा गया था।

रेखा ने सहसा कहा, "भुवन जी, मैं आप को अपने प्रकृत, स्वस्थ, मुक्त पहलू से ही जानना चाहती हूँ—उसी के सम्पर्क मे आप को रखना चाहती

हूँ। पर उस के लिए ईमानदारी का तकाज़ा है कि दूसरा पहलू आप से छिपाऊँ नहीं।"

बात भुवन की संवेदना को छू गयी, पर उसे समझ नहीं आया कि क्या कहे। उस का हाथ तनिक-सा रेखा की ओर बढ़ा और रह गया। वह कहने को हुआ, 'थैंक यू, रेखा जी,' पर बात कुछ ओछी लगी। फिर उसने कहा, "रेखा जी, मैंने अपने बारे में इतनी गहराई से कभी नहीं सोचा, पर अगर मुझ में भी ऐसा विघटन है—होगा ही—तो मैं भी यत्न करूँगा कि—"

"नहीं, आप में वैसा नहीं है। आप को—शायद विज्ञान ने बचा लिया। या—" रेखा हँस पड़ी, "कहूँ कि आप अभी उतने सभ्य नहीं हुए।"

भुवन भी हँस दिया।

"लेकिन—मैं आप को देर तो नहीं कर दे रही हूँ? आप के मेजबान—"

शाम के भोजन का बन्धन मैं नहीं पालता, वह प्रतीक्षा नहीं करेंगे। पर आप को भी तो लौटना होगा—आप की तो शायद हाज़िरी लगेगी—"

आज देर से आने की छूट है—सप्ताह में दो दिन होती है।"

"लेकिन कुछ खायेंगी तो?"

"मैं तो केवल काफ़ी पीती हूँ—मैंने कहा न, बहुत सभ्य हूँ। पर आप—"

"मैं भी काफी ही पियूँगा—"

"नहीं, आप को कुछ खाना होगा। चलिए—"

तय हुआ कि टहलते हुए परले फाटक से निकल कर कश्मीरी दरवाज़े के अन्दर जा कर कुछ खाया-पिया जाय, और दोनों धीरे-धीरे उधर बढ़ने लगे।

कार्लटन में सन्नाटा था। शाम को उधर खाने कौन आता है? पीने आते हैं कुछ लोग, पर उन का समय निकल गया—नौ बजे तक कौन ठहरता है...पर खाने को मामूली कुछ मिल जायगा—सैंडविच, कटलेट, वगैरह..

"सभ्यजीवन बड़ा भारी वेटिंग रूम है मानो," रेखा बोली, "और होटल वगैरह भी सब वक्त काटने के—बीच का एक रिक्त भरने के साधन हैं। लेकिन वेटिंग के किस लिए। रिक्त किस के और किस के बीच ? कोई नहीं जानता। इधर-उधर फिर रिक्त है।"

"दो रिक्तो के बीच का रिक्त भरने के लिए रिक्त—तो फिर रेखा जी, ये पार्टिशन क्यों करती है, सारा ही तो एक रिक्त हुआ। सभ्यता की आपकी परिभाषा बड़ी डरावनी है। और उसे भरने के लिए भी रिक्त—विज्ञान तो सिर पीट लेगा जो मानता है कि प्रकृति मरणधर्मा है—रिक्त नहीं सहती।"

"प्रकृति न ? लेकिन सभ्यता नही। आप देखते नहीं कि सभ्यता किस दर्प से कहती है कि प्रकृति असभ्य है ? क्योंकि सभ्यता अप्राकृतिक है।"

दोनो फिर कुदसिया बाग लौट गये। अब एक और भी गहरा मौन वहाँ पर था, और उसने जैसे दोनो को बाँध लिया। कई फेरे दोनो ने चुप-चाप लगा लिये, सहसा दूर कही दस का गजर हुआ।

"रेखा जी, ऐसी बात कहना है तो शील के विरुद्ध शायद; लेकिन मैं कई बार सोचता हूँ, आप को गृहस्थी मे सुखी होना चाहिए था—या यह कहू कि आप के साथी को; ऐसा क्या हुआ कि—"

रेखा रुक गयी। अधेरे मे एक-दूसरे का चेहरा साफ नहीं दीखता था, पर रेखा के साँवले चेहरे मे उस की आँखो के कोये स्पष्ट झलक गये; उसने स्थिर दृष्टि से भुवन को देखते हुए कहा, "पर वह सब तो आप को चन्द्र-माधव ने—आप को मालूम ही होगा—"

"यह तो नहीं कह सकता कि नहीं बताया—या कि स्वयं मैंने ही नही पूछा," भुवन ने चन्द्रमाधव पर दोष न मढने की नीयत से कहा, "पर यो तो कोई न कोई कारण होता ही है—लेकिन उस मे आन्तरिक कारणत्व न हो तो प्रश्न उठता ही है कि क्या कोई एडजस्टमेट नही हो सकता था ? क्योकि बाहरी सब कारणो पर व्यक्ति विजय पा सकता है—क्योकि वह मशीन से अधिक एडेप्टेबल है, लचकीला है।"

"आप ठीक कहते है। हर घटना की एक आन्तरिक संगति होती है—

हर दुर्घटना की भी। लेकिन क्या आप सचमुच वह सब सुनना चाहते हैं?"

"अगर आप को कहने में क्लेश या संकोच न हो तो—हाँ।" भुवन ने हिचकते कोमल स्वर में कहा।

पास की बेंच पर रेखा बैठ गयी।

"संकोच होता भी है, नहीं भी होता। कहते हैं न कि अच्छा स्वप्न कह देने से उस की सम्भावना कम हो जाती है, उसी तरह बुरा सपना कहने से उसका भी बोझ हल्का हो जाता है। मैं जब भी अपनी बात कहती हूँ या कहने का सकल्प करती हूँ तो उस की छाया की एक परत कम हो जाती है, सोचती हूँ कि कह-कह कर ही उसे कह डाला जा सकता है—उस से मुक्त हुआ जा सकता है—पर कहने का निश्चय करना ही बड़ा कठिन होता है क्योंकि—"रेखा ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"मैं समझता हूँ," भुवन ने कहा, "आग्रह नहीं करूँगा। आप—"

"नहीं, आप से शायद कह सकूँगी—कहना चाहूँगी।"

थोड़ी दूर पर पद-चाप सुनाई दी—धीमी, फिर सहसा स्पष्ट—घास पर से सड़क पर। ठेठ खड़ी बोली के स्वर ने कहा, "बाबू जी, यहाँ नहीं बैठ सकते।"

"क्यों?"

"बाबू जी, दस बजे के बाद इधर बैठने का हुक्म नहीं है—अब तो साढ़े दस हो लिये—"

"अच्छा, अच्छा, जाते हैं।"

चौकीदार बगल से लाठी टेक कर कुछ दूर पर खड़ा हो गया।

रेखा उठ खड़ी हुई। "चलिए।"

कुदसिया बाग के दो खंड हैं, बीच में अलीपुर रोड पड़ती है। दोनों निकल कर दूसरे खंड में चले गये। सागू के पेड़ों के चिकने सफेद तने मानो किसी बड़े मंडप के स्तम्भ थे, जिस में रातरानी की ढिग्मूढ़ गन्ध भटक रही थी। मुख्य वीथी से हट कर दोनों घास की छरेल पटरी पर टहलने लगे। लेकिन मूड कुछ बदल गया था।

रेखा ने पूछा, "बैठेंगे ?"

"बेंचें उधर हैं—बुत के पास।" भुवन ने कहा, इस में इनकार भी नहीं था, कोई अनुकूलता भी नहीं थी।

खड़ी बोली की व्यापकता प्रमाणित करता हुआ एक स्वर यहाँ भी नेपथ्य में से बोला, "कौन है ?"

"हम हैं—टहलने आये हैं," भुवन ने चिकने स्वर में उत्तर दिया।

खड़ा स्वर कुछ कम खड़ा हुआ : "बाबू जी, अब बड़ी देर हो गयी; दस बजे बाग बन्द हो जाता है।"

रेखा ने कहा, "द हाउंड्स आफ हेवन आर एवरी ह्वेयर !"

स्त्री-स्वर सुन कर नेपथ्य की वाणी कुछ और भी नरम पड कर बोली, "बाबूजी, इतनी रात को इधर नही घूमते; जमाना ठीक नही है। बड़े चोर-बदमास फिरे है—"

दूर पर चौकीदार की छायाकृति दीख गयी। भुवन ने कहा, "अच्छा भइया, जाते है। आजकल तो यही वक्त होता है घूमने का—इतनी गर्मी होती है—"

चौकीदार ने कहा, "सो तो ठीक है बाबूजी, मगर—" उसके स्वर मे कुछ नरमाई भी थी, कुछ दूरी भी, मानो कह रहा हो, "हाँ, आप सदाशय है, माना, पर बच्चे है, घर जाइये—"

फाटक के बाहर लैम्प के खम्भे के नीचे आ कर दोनो ठिठक गये। सहसा एक-दूसरे की ओर देखा और मुस्करा दिये। रेखा ने कहा, "प्लोमर की एक कविता है जिस मे 'पार्क मे घूमने वाले दो जन खदेड़े जाते हैं—आपने पढी है ?"

"नही—मैंने प्लोमर का सिर्फ नाम पढा है—"

"मुझे याद नही है, लेकिन उस मे सिपाही कहता है : 'आउटलॉज हू आउटरेज बाइलॉज आर द डेविल !' और कविता का अन्त है : 'एंड दस वी कीप अवर सिटीज क्लीन !' "

"हूँ।"

दोनों कश्मीरी दरवाजे की ओर बढ़ रहे थे। दरवाजा वास्तव में दो दरवाजे हैं, एक आने का मार्ग है, एक जाने का, दोनों सड़कों के बीच में घास की एक लम्बी पटरी है, रास्ते के मोड़ के साथ मुड़ती चली गयी है।

भुवन ने हँस कर कहा, "यहीं बैठना चाहिये। यहाँ से तो कोई नहीं उठायेगा।"

रेखा ने कहा, "अजब बात है कि शहर में अगर कोई प्राइवेट स्थान है तो पब्लिक सडक के बीचोबीच।"

भुवन ने साभिप्राय कहा, " 'प्राइवेट फेसेज इन पब्लिक प्लेसेज'—"

रेखा बैठ गयी। भुवन ने कहा, "सचमुच?"

"हाँ, और नहीं तो खदेड़े जाने की कड़ुवाहट मिटाने के लिए।"

भुवन ने बैठते हुए कहा, "इसे ठीक ही कहते है 'सड़क का द्वीप'—दोनों ओर बहते जन-प्रवाह मे निश्चलता का एक द्वीप—"

"हैं न? मेरे साथ कुछ ही दिन मे आप सर्वत्र द्वीप देखने लगेंगे—हमी द्वीप हैं, मानवता के सागर मे व्यक्तित्व के छोटे-छोटे द्वीप; और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है—खास कर व्यक्ति और व्यक्ति के सम्पर्क का, काँटेक्ट का प्रत्येक क्षण—अपरिचय के महासागर मे एक छोटा किन्तु कितना मूल्यवान द्वीप!" रेखा ने आँखें भुवन की ओर उठायीं; भुवन से उस की आँखें मिलीं तो उन मे कुछ प्रबल, कुछ तेजस्वी और संकल्प-भरा था जिसने भुवन की दृष्टि को कई क्षण तक बाँध रखा। फिर उसने आँखे झुका लीं, और उस का हाथ उसी परिचित मुद्रा मे उस की पर्पटी की ओर उठ गया।

न जाने क्यों भुवन के मन में विचार उठा, 'हाँ; मैं तुम्हें पहचानता हूँ, रेखा; लेकिन—तुम मुझ से क्या चाहती हो?' पर तत्क्षण ही विलीन हो गया, इतनी जल्दी कि वह उसे ठीक से पकड़ भी न पाया।

"चलें?" रेखा ने कहा, और साथ ही उठ खडी हुई। उस के बाद कोई कुछ नहीं बोला, रेखा जब वाई० डब्ल्यू के फाटक पर पहुँची और अन्दर प्रविष्ट हो गयी तभी उसने कहा, "नमस्कार, भुवन जी।" और उस ने भी जल्दी मे कहा, "नमस्कार!"

पब्लिक स्थलो पर प्राइवेट चेहरा रखा जा सकता है जरूर, और प्रीतिकर भी होता है, पर उसे देखने के लिए पब्लिक स्थलो से खदेड़ा जाना कोई पसन्द नहीं करता।

जन्तर-मन्तर मे इधर-उधर भटकते, इमारतों के बीच मे से कई प्रकार की आकृतियाँ बनाते और सीढियाँ चढते-उतरते रेखा और भुवन बीच मे आ कर रुक गये थे, सूर्य डूब गया था और मैले लाल आकाश का रग नीचे पानी मे और भी मैला हो कर प्रतिबिम्बित हो रहा था।

"ऊपर चलेंगी ?"

"हाँ।"

दोनो सीढियाँ चढ गये। ऊपर हवा थी। पास-पास खड़े हो कर दोनों पश्चिमी क्षितिज को देखते रहे।

सहसा रेखा ने कहा, "चलिए अब।"

भुवन ने कुछ विस्मय से उस की ओर देखा—इतनी जल्दी क्यो ?

"यहाँ भी तो बन्द होने का समय होता होगा—यहाँ भी—"

भुवन समझ गया। उसने कहा, "नही, यहाँ सूचना की घण्टी बजती है—"

"लेकिन उस से क्या ? जाने का निर्देश जाने का निर्देश है, घण्टी का हो, खडी बोली का हो। उस से पहले ही..."

रेखा ने क्षीणतर आग्रह से कहा, "चलिए।"

"अच्छा तनिक और रुक जाइये, सान्ध्य तारा देख कर चलेंगे—"

"रेखा ने सहसा बडे तीखे काँपते स्वर में कहा, "चलिए—चलिए !" भुवन ने चौक कर देखा, उस का स्वर ही नहीं, वह स्वय भी काँप रही है; लड़खडाती-सी उसने भुवन का हाथ पकड़ा और किसी तरह जल्दी-जल्दी, कुछ उस पर झुकती हुई, कुछ उसे खींचती हुई नीचे उतर गयी।

नीचे पहुँच कर भी वह काँप रही थी। भुवन ने चिन्तित, आग्रहयुक्त स्वर में पूछा, "क्या बात है रेखा जी, तबीयत तो ठीक है न—या कि सीढियाँ चढ़ने से—"

सहसा अपने मे सिमट कर रेखा ने कहा, "नही, नहीं, कुछ नहीं, आप मुझे थोड़ी देर छोड़ जाइये—"

भुवन ने अनिच्छा से कहा, "लेकिन—"

"मै ठीक हूँ।"

भुवन खडा रहा।

"चले जाइये!" कह कर रेखा नीचे चौतरे पर बैठ गयी। दोनो हाथ उठा कर उसने माथा पकड़ लिया, आँखें बन्द कर लीं।

भुवन कुछ परे हट कर अनिश्चित-सा खड़ा रहा।

थोडी देर मे रेखा ने सिर उठाया, उस की आँखें सूनी थीं। भुवन को वहाँ देख कर पहले बहुत ही छोटे निमिष के लिए सूनी ही रहीं, फिर सहसा उस पर केन्द्रित हो आयीं। उसने जल्द-जल्दी कहा, "अच्छा लीजिए, सुनिए, सुन लीजिए—हेमेन्द्र—हेमेन्द्र का नाम आप जानते हैं न, मेरा पति—अपने एक युवा बन्धु को ले कर यहाँ आया था—यहाँ तारे को देख कर दोनो ने वफा की कसमे खायी थीं—हेमेन्द्र ने मुझे बताया था—"

भुवन स्तब्ध रह गया। उस के कुछ समझ में न आया। फिर रोशनी एक बडी पैनी कटार-सी उसे भेद गयी: वह सब समझ गया, उसने चाहा कि रेखा को कन्धे से लगा कर धीरे-धीरे थपथपा दे...पर वह अपने स्थान से हिल भी नहीं सका, वहीं खड़े-खड़े उसने पूछा, "तो—तो आपने विवाह क्यो किया था—" पूछना वह यह चाहता था कि 'हेमेन्द्र ने आप से विवाह क्यो किया था?' पर प्रश्न को इस रूप मे वह न रख सका।

"क्यो कि—मेरा चेहरा उस मित्र से मिलता था!" रेखा का स्वर एक अजीब पतली अवश चीख-सा हो गया था।

भुवन जहाँ था, वहीं बैठ गया। थोड़ी देर स्तब्ध बैठा रहा, निर्निमेष आँखो से, भरे हुए पानी मे, बुझे हुए आकाश का प्रतिबिम्ब देखता। फिर वह धीरे-धीरे उठा, रेखा के पास जा कर उसने बिना कुछ कहे रेखा की बाँह पकड़ी, मृदु किन्तु दृढ हाथ से उसे उठा कर खड़ा किया, और बाँह पर सहारा देता हुआ फाटक की ओर ले चला। दो तीन कदम चलते-चलते

रेखा का शरीर सहसा कड़ा पड गया—उसने बाँह छुड़ा ली और कहा, "मै ठीक हूँ, भुवन जी !" उस का स्वर भी अपने सहज स्तर पर आ गया था, यद्यपि अब भी आविष्ट था।

फाटक के पास उसने रुक कर कहा, "भुवन जी, मैं क्षमा चाहती हूँ।"

भुवन ने कहा, "नहीं, रेखा जी, दोष मेरा है, मैं दुराग्रह—"

रेखा ने धीरे से उस के हाथ पर हाथ रख कर उसे चुप करा दिया, मानो कह रही हो, 'रहने दीजिए, मैं जानती हूँ कि दोष किस का था।'

फिर उसने कहा, "मै बिल्कुल ठीक हूँ, आप अब कुछ पूछना चाहे तो पूछ लीजिए। मै अभी बता सकती हूँ। फिर शायद—न सकूँ। या सकूँ तो भी ये बाते बार-बार याद करने की नही है, आप मानेगे—"

"नही रेखा जी, मुझे कुछ पूछना नही है।" भुवन ने गम्भीर हो कर कहा। "एक बार भी मै याद दिलाने का कारण बना, इसी की मुझे बहुत ग्लानि है। आप और कुछ न बताइये, न याद कीजिए।"

कोई बीस मिनट बाद, दोनो कनाट प्लेस मे बैठे धीरे-धीरे काफी पी रहे थे। रेखा की दृष्टि अब भी खोयी हुई थी। भुवन पर एक अजीब जुगुप्सा-मिश्रित संकोच छाया हुआ था। रेखा को देखते हुए एक प्रश्न बार-बार उस के मन मे उभर आता था जिस से वह लज्जित हो जाता था; जिसे दबा देने की चेष्टाओं की असफलता, गहरी आत्म-ग्लानि उस मे भर रही थी... हेमेन्द्र ने कब, कैसी स्थिति मे उसे वह बात बतायी होगी?..

वह साहस कर के पूछ ही डालता, तो रेखा उस समय शायद बता भी देती। क्यो कि उस की खोयी हुई दृष्टि उसी स्थिति को देख रही थी, उसी ग्लानि को मन-ही-मन दुहरा रही थी...

देर रात को हेमेन्द्र कही बाहर से आया था। रेखा का शरीर अलसा गया था, आँखे थकी थी, पर वह पलंग के पास की छोटी लैम्प जलाये पढ रही थी। लैम्प पर हरे काँच की छतरी थी, उस से छन कर आये हुए प्रकाश मे रेखा का साँवला चेहरा अतिरिक्त पीला दीख रहा था; बाकी कमरे मे बहुत धुँधला प्रकाश था।

हेमेन्द्र के लौटने पर उस से किसी प्रकार का दुलार या स्नेह-सम्बोधन पाने की आशा उसने न जाने कब से छोड़ दी थी; वैसा कुछ उन के बीच में नही था—उन के निजी जीवन मे नही, यो समाज में जो रूप था—पब्लिक चेहरा !—वह दूसरा था। इस लिए वह उस के लिए तैयार नहीं थी जो हुआ : हेमेन्द्र ने पीछे से आ कर बडे उतावलेपन से और कड़ी-कड़ी पकड़ से उस के दोनों कन्धे पकडे, उसे उठाते और उस के कन्धे के ऊपर से अपना मुँह उस के मुँह की ओर बढ़ाते हुए कहा, "मेरी जान—मेरी जान—"

किताब रेखा के हाथ से छूट गयी, सारा कमरा एक बार थोड़ा डोल गया। सहसा घूम कर, कुछ विमूढ़ किन्तु सायास कोमल रखे गये स्वर में उस ने कहा, "हेमेन्द्र—"

हेमेन्द्र को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो, वह सहसा रेखा के कन्धे छोड़ कर पीछे हट गया, फिर उस ने कमरे की मुख्य बत्ती जला दी। थोड़ी देर अजनबी दृष्टि से रेखा को देखता रहा; रेखा की परिचित किंचित् विद्रूप-भरी मुस्कराहट उस के चेहरे पर आ गयी। बोला, "हलो, रेखा, सॉरी आइ' म सो लेट—" और पलग के पास की खूँटी की ओर बढ़ गया।

ऐसा तो रोज होता था। पर आज रेखा यह स्वीकार न कर सकी थी। अभी क्षण-भर पहले की घटना मानो असंख्य तपे हुए सुओं से उसे छेद रही थी—उसे समझना होगा, समझना होगा...

रेखा ने हाथ का काफ़ी का प्याला रख दिया कि हाथों का काँपना न दीखे; फिर जोर से हिलाया कि यह विचार, यह दृश्य उस की आँखों के आगे से हट जाय—पर नहीं...

उसने भी जा कर हेमेन्द्र के कन्धे पकड़ लिये थे और पूछा था, 'हेमेन्द्र, तुम्हें बताना होगा, इस का अर्थ क्या है ?"

"और न बताऊँ तो ?" वह विद्रूप की रेखा और स्पष्ट हो आयी थी। फिर सहसा उसने बहुत रूखे पड़ कर, रेखा को धक्का दे कर पलंग पर बिठाते हुए कहा था, "लेकिन नहीं, बता ही दूँ—रोज-रोज की झिकझिक से पिंड

छूटे—पाप कटे। तो सुनो, मै तुम से प्रेम नही करता, न करता था। न करूँगा !"

"यह तो बताने की जरूरत शायद नही है। पर तब मुझ से विवाह क्यो किया था—"

"यह भी जानना चाहती हो। अच्छा। यह भी जानेगी। अब सब जानोगी तुम।"

रेखा जैसे खडी होने को हो गयी—फिर बैठ गयी।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, स्वस्थ होइये। चलिए, मैं आप को टैक्सी मे पहुँचा आऊँ—"

रेखा पत्थर हो गयी। "नही। मै ठीक हूँ। पर इस समय आप को यहाँ बिठाना शायद अन्याय है। आप मुझे यही छोड जाइये, मै पीछे चली आऊँगी।"

"यह तो नही हो सकता रेखा जी, चाहे आप की अवज्ञा ही करनी पडे। पर आप को एकान्त की ज़रूरत है, यह तो समझ रहा हूँ। तो चलिए, मैं आप को टैक्सी मे बिठा देता हूँ, साथ नही जाऊँगा।"

रेखा कुछ नही बोली।

भुवन ने बिल चुकाया और दोनो बाहर आये। रेखा टैक्सी मे बैठ गयी, तो भुवन ने मौन नमस्कार किया। तब रेखा ने बडे आयास से एक फीकी मुस्कान चेहरे पर ला कर कहा था, "लेकिन भुवन जी, डिसइज़ नाट दएएड, आइ होप! कल मै फिर तीसरे पहर तैयार मिलूँगी।"

भुवन ने फिर चिन्तित स्वर मे पूछा था, "आर यू शोर यू आर आल राइट ? या मै चलूँ—",

"नही, भुवन जी! ड्राइवर, चलो, कश्मीरी गेट।"

गाडी जब सरकी तो रेखा ने फिर भुवन की ओर उन्मुख होकर कहा,"

"गाड ब्लेस यू।"

भुवन तनिक विस्मित हुआ, पर तुरन्त सँभल कर बोला, "एड यू।"

टैक्सी चल दी। तब रेखा पीछे ऐसे गिरी मानो अब नहीं उठेगी, नहीं

उठेगी, चारों ओर से अतल दूरी से असख्य काले और उजले तारे उस की ओर बढ़े चले आ रहे है, शून्य का अतल गर्त सिमट कर छोटा हुआ आ रहा है और उसे ऐसे जकड लेगा जैसे लोहे का सन्दूक—और उसी के अन्दर वह घुट जायगी, नही रहेगी, न कुछ हो जायगी.. स्मरण के टापू...आह, विस्मृति का महामरुस्थल, आह...

"क्यों, आप ढूँढ रहे है न कि कल वाली रेखा कहाँ गयी ?,'

भुवन अवाक् रेखा का मुँह ताक रहा था। उस पर कहीं कोई व्यथा की, चिन्ता की रेखा नहीं थी, जागर की छाया नही थी। रेखा ने फिर वही सादी रेशमी साड़ी पहन रखी थी, लेकिन आज बिना किनारे की नहीं, प्योंडी के से मटीले पीले रंग के चौड़े पाड़ वाली, जिस का पीलापन उस के साँवले रग को एक सुनहली दमक दे रहा था। हाँ, पर्पटियो पर आज उस ने कोलोन-जल लगा रहता था, नीबू के फूलो की-सी हल्की महक उस से आ रही थी।

भुवन जैसे पकड़ा जा कर मुस्करा दिया।

"लेकिन अचम्भे की कोई बात नहीं है। मै क्षण-से-क्षण तक जीती हूँ न, इस लिए कुछ भी अपनी छाप मुझ पर नही छोड जाता। मैं जैसे हर क्षण अपने को पुनः जिला लेती हूँ।

"तुम ने एक ही बार वेदना मे मुझे जना था, माँ
पर मैं बार-बार अपने को जनता हूँ
और मरता हूँ
पुनः जनता हूँ और पुनः मरता हूँ
और फिर जनता हूँ,
क्योंकि वेदना मे मैं अपनी ही माँ हूँ !"

भुवन ने कहा, "आप अपने को ऐसे पुनः जिला लेती हैं, यही शायद मुझे आप की सब से पहली स्मृति है।"

रेखा ने सचेत हो कर पूछा, "कैसे ?"

भुवन ने लखनऊ की पार्टी वाली बात बता दी, जब उस ने रेखा को सहसा विश्राम करते हुए देखा था। फिर कहा, "लेकिन तब उस का पूरा अभिप्राय नही समझ सका था, अब समझता हूँ।"

रेखा ने विषय बदलते हुए कहा, "आप के जाने का कुछ निश्चय हुआ ?"

"नही, अभी दो-चार दिन तो और है ही, फिर कश्मीर जाऊँगा। फिर वहाँ भी शायद दो-चार दिन रुकना पडे।"

"मै सोचती हूँ, मै कल नैनीताल चली जाऊँ ?"

"क्यो ?"

"यहाँ अधिक रहूँगी, तो कदाचित् आप के काम मे बाधक हूँगी—अब भी नही हूँ, यह मानना मुश्किल है। आप पता ही नहीं लगने देते—'

"यह बात बिल्कुल नही है रेखाजी, मै बिल्कुल खाली हूँ। मित्र भी विशेष नही है। प्रोफेसर समाज मे तो ठहरा ही हूँ, एक परिचित और हैं, उन से कभी मिल लेता हूँ—"

"कौन ?"

"मेरी एक छात्रा थी—गौरा, उस के पिता।"

"छात्रा थी—आप को अभी पढाते कितने वर्ष हुए है ?

"मैने उसे सात आठ बरस पढाया था—मैट्रिक मे अब तो वह वह बी० ए० भी दो बरस हुए कर चुकी—अब मद्रास मे है।"

"ओह।"

थोड़ी देर मौन रहा। फिर रेखा ने कहा, "कल रात वाली गाडी से चली जाऊँगी।" फिर कुछ नटखट भाव से : "लेकिन वहाँ मन न लगा तो कश्मीर आ जाऊँगी, कहे देती हूँ। आप भी खदेड़ देगे यह कह कर कि हुक्म नही है ?"

भुवन ने हँस कर कहा, 'मै क्या करूँगा, यह बताने का भी हुक्म नही है। लेकिन—" वह कुछ रुका, "आप की गाडी कितने बजे जाती है ?"

"नौ बजे शायद।"

"ओह।" भुवन कुछ सोच रहा है, देख कर रेखा ने पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

कुछ नहीं, कल मैं उधर भोजन करने वाला था। पर कोई बात नहीं—मैं छुट्टी ले लूँगा—"

"नहीं, वैसा न कीजिए। मैं स्वयं स्टेशन पहुँच जाऊँगी—"

अन्त में यह निश्चय हुआ कि भुवन पहले आ कर सात ही बजे रेखा को ले कर स्टेशन के वेटिंग रूम में बिठा देगा; फिर जा कर गाडी के समय आ जायगा और रेखा को गाडी पर सवार करा देगा। रेखा ने मान लिया। बोली, "स्टेशन तो मैं खुद भी आ सकती हूँ। पर बिदा करने आप आवेंगे तो मुझे अच्छा लगेगा।"

थोड़ी देर बाद भुवन ने पूछा, "यह तो कल का तय हुआ। और अब?"

"अब आप जो कहें। कुछ स्पेशल। सिनेमा जाना चाहेंगे?"

"न-नहीं। हाँ, कुछ स्पेशल हो और आप की इच्छा हो तो चलिए।"

"नहीं। तब नहीं। चलिए, नदी पर चलें—"

"पानी तो कुछ है नहीं—"

"पार बालू पर—टापू में या परले किनारे पर—काश कि दिल्ली में समुद्र होता।"

"सच, तब यहाँ इतनी क्षुद्रता का राज न होता शायद—कुछ तो सागर की महत्ता का प्रभाव पडता—"

"धन्य है आप का आशावाद! आप का ख्याल है बम्बई में कम क्षुद्रता है? कुछ कम होगी तो इस लिए कि शासन का केन्द्र दिल्ली है। शासन वहाँ ले जाइये तो—"

"आप ठीक कहती हैं शायद। पर इस समय मैंने वैज्ञानिक बुद्धि को छुट्टी दे रखी है। अच्छी कल्पना में क्या हर्ज है?"

"और तो चलिए, देखिए मैं इसी को सागर का किनारा माने लेती हूँ।

और रेत का टापू कोई सागर द्वीप हो जायगा जिस पर हम तूफान मे बह कर आ लगे हैं—दो अजनवी जिन्हे साथ रहना है—कम-से-कम कुछ देर।"

"एक मिस राबिन्सन क्रूसो, और उन का अनुगत मैन फ्राइडे।

"हाँ। और वहाँ पर किसी राक्षस के पदचिह्न मिले तो ?"

"परवाह नही, मैन फ्राइडे जादू जानता है।"

नाव मे उन्होने नदी की इधर की शाखा पार की। नाव वाले ने पूछा, "यही ठहरूँ ?"

"चाहे ठहरो चाहे डेढ़-दो घटे मे आ जाना।" भुवन ने लापरवाही से कहा।

"अच्छा, नही तो आप रुक्का दे देना।"

"अच्छा!"

सूखी स्वच्छ रेत पर आ कर भुवन ने एक ब-र चारो ओर देखा, फिर ऊपर। फिर वह कहने को हुआ, तारे कितने है—"पर 'ता–' कह कर रुक गया; तारो की ओर रेखा का ध्यान न खीचता होगा।

रेखा ने कहा, "रुक क्यो गये ?"

"कुछ नही, यो ही—"

"कहिए न ?"

"नही।"

रेखा ने कहा, "आप तारो के बारे में कुछ कहने जा रहे थे—"

भुवन ने सकपका कर स्वीकार कर लिया।

"तो रुक क्यो गये ?"

भुवन चुपचाप उस की ओर देखने लगा।

"ओ—मै समझ गयी। तारो से मै नही डरती, भुवन जी! कभी नही डरी। और मैने कहा था न, जो दुःस्वप्न कह लूँगी, उस से मुक्त हो जाऊँगी ? अभी तक कह नही पायी थी, यही उस की ताकत थी। अब-अब नहीं! आप कहिए तो तारे गिन डालूं आकाश के ?"

"न। गिनने से कम हो जाते है। और तारा एक भी कम करना कोई

और नहीं ले सकता, उसी तरह वह अपार स्नेह भी एक समवयस बालक के कौतुक-भरे सख्य का स्थान नहीं ले सकता.. बड़ो के स्नेह से घिरी हुई वह अकेली ही रह गयी थी—और उस अकेलेपन ने उसे पका कर स्वयं भी 'बड़ा' बना दिया था . एक ओर वह पाती थी कि उस के कौतुक-जगत् और बड़ों के स्नेह-जगत् के बीच मे एक दीवार है, दूसरी ओर वह देखती थी कि स्वयं उस के स्नेह-सम्पृक्त परिपक्व रूप, और उसके कौतुक-वेष्टित शिशु-रूप के बीच में भी एक दीवार खड़ी थी.. न सही अधिक कुछ, न सही प्यार, यह यन्त्रणा और ग्लानि और अपमान ही सही जो उसने पाया, पर बचपन मे अगर उसे दो-एक वर्ष ही ऐसा कोई बाल-साथी मिल गया होता—तो कम-से-कम आज उस के पीछे ऐसा कुछ होता जिस में वह सम्पूर्णता देख सकती, अपने जीवन की निष्पत्ति देख सकती—.. एक भाई आया था, पर तब वह आठ वर्ष की हो चुकी थी, भाई छः वर्ष का हुआ तब तक तो वह यो भी वह कौतुक-युग पार कर चुकी थी और उस के बाद के स्वप्न दूसरे थे—कितने भिन्न ! और फिर तीन वर्ष बाद भाई मर गया था—माता-पिता के दिल टूट गये थे, और उसके स्वप्नो की दूसरी खेप भी नष्ट हो गयी थी ..

और भुवन—वह डाक्टरेट कर चुका है, वैज्ञानिक रिसर्च मे नाम पा रहा है, वय मे उस से बड़ा है, और यहाँ बैठ कर बालू के घर बना रहा है और मुग्ध हो सकता है...ईर्ष्या का कोई सवाल नहीं है—ईर्ष्या क्या होगी—पर क्यों उसे उस सुरक्षा और स्नेह में भी वह सम्पूर्णता, वह मुक्ति नहीं मिली—क्यों, क्यो, क्यो..

भुवन ने अपने काम मे लगे-लगे ही पूछा, "मिस रॉबिन्सन—रेखा जी, कलकत्ते मे आप बचपन में जहाँ रहीं, वहाँ बालू थी। लेकिन वहाँ तो नदी के किनारे कीचड़ होता है—"

क्यो उस के विचार रेखा के विचारो के समान्तर चल रहे हैं जब वह खेल में डूबा है, क्यों वह छूता है उस दुबले स्वत्व को जिसे रेखा छिपा लेना चाहती है—सब की दृष्टि से, सब से अधिक इस भुवन की दृष्टि से जो इतना भोला है, जो केवल खुली हँसी है, जाड़ों की धूप की तरह खिली हुई हँसी—

नहीं, वह अपनी परछाई नही पडने देगी यहाँ पर, वह चली जायगी—

उसने मुँह उपर कर लिया कि आँखो मे उमडते आँसू बाहर न बह आये।

भुवन कहता गया "नहीं, कलकत्ता अच्छा नही है। इस बालू के टापू के मुकाबले मे कोई जगह अच्छी नही है। लीजिए आप का घर तैयार हो गया।"

अब की बार भी उत्तर न पा कर भुवन ने विस्मय से उधर देखा। रेखा आकाश की ओर मुँह उठाये निर्निमेष बैठी थी, खेल से बहुत दूर। अचकचा कर भुवन खडा हुआ, मोटर की मुडती रोशनी के पलातक आलोक मे उसने सहसा चौक कर और लजा कर देखा, रेखा की आँखो मे आँसू है। उस के हाथ अनैच्छिक गति से रेखा के आँसू पोछने को हुए पर फिर उसे ध्यान हुआ कि बालू से सने है और अनिश्चित से अध-बीच रुक गये। सहसा किंकर्तव्यविमूढ करुणा से भरा हुआ वह झुका और रेखा की गीली पलकें उसने चूम ली।

तभी वह कुछ बोल सका। "रोती हो? बालू के घरो वाले रोया नही करते—"

"नही भुवन, ये दुःख के आँसू नही है—" कहती-कहती भी रेखा आँसू झटक कर खड़ी हो गयी। बोली, "आप ही से छिपाना चाहती हूँ, आप ही को—" फिर जल्दी से विषय बदलने के लिए उसने कहा, "नहीं, कलकत्ते मे बालू नहीं थी। वहाँ मैं मिस राबिन्स नही थी, राजकुमारी थी, जादू के उद्यान मे रहती थी, बड़ा हरा-भरा—बालू तो क्या मट्टी भी कही नहीं दीखती थी।"

भुवन ने भी हल्का स्वर स्वीकार करते हुए कहा, "ओ, तब तो आप इस गरीब बालू के घर का सौन्दर्य क्या देखेगी।"

"उलटे अधिक समझती हूँ, भुवन जी।" रेखा हँसी, पर हँसी के नीचे गाम्भीरता थी।

"तो अब चला जाय?"

"चलिए।"

भुवन चलने को हुआ तो रेखा ने पूछा, "इस बालू के घर को गिरायेंगे नहीं ?"

"क्यों ?"

"क्योंकि वास्तव में गिर नहीं सकता। उस की छाप अतलान्त तक गो है। ऊपर से मिटा देना चाहिए, नहीं तो उस का जादू दूसरे जान जायेंगे।"

भुवन ने उसे परचाते हुए कहा, "हाँ, यह तो है।" और पैर की गति से घर-बगीचा सब मटियामेट कर दिया। फिर कुछ आगे बढ कर उसने नाव वाले को आवाज दी : "नाव वाले !"

"किनारे पर लग कर उसने कहा, "और इस प्रकार क्रूसो मभ्यता को लौट आया।"

रेखा ने कहा, "अगर क्रूसो कभी लौटते है तो।"

लेकिन भुवन ने कुछ अधिक बारीक हिसाब लगाया था। रेखा को स्टेशन तो उस ने सात से पहले पहुँचा दिया; पर नयी दिल्ली जा कर लौटने में उसे अधिक देर लगी यद्यपि खाना भी उसने लगभग नहीं खाया, छू कर छोड दिया। स्टेशन पहुँचा तो नौ में दो मिनट थे। उसने सोचा कि रेखा शायद प्लेटफार्म पर चली गयी हो, पहले सीधा उधर गया, फिर हड़बड़ा कर वेटिंग रूम आया—रेखा उद्विग्न-सी बाहर खड़ी राह देख रही थी। उसने कहा—"मैं पहले उधर गया था—देर हो गयी—चलिए—आप प्लेटफार्म पर क्यों न—"

"मैं बाकायदा विदा किये बिना नहीं जाऊँगी, क्या आप नहीं जानते थे ? गाड़ी में बैठ जाती और आप न आते तो—"

उस की बात में उलहना नहीं था, केवल सच की सीधी उक्ति थी।

गाड़ी की सीटी सुनाई दी। भुवन ने कहा, "गाड़ी तो अब—"

"जाने दीजिए। नहीं मिलेगी। मैं घबड़ाई हुई नहीं दौड़ूँगी।" सहज

वह हँस दी, जिस से तनाव एकाएक शिथिल हो गया।

भुवन ने कहा, "अब ?"

"वापस वाई० डब्ल्यू तो मै नही जाऊँगी। अगली गाड़ी कब जाती है ?"

"पता करें। मेरे ख्याल में तो रात मे और नहीं जाती, तड़के शायद—"

"वही सही, रात वेटिंग रूम मे काट दूँगी। आप जाइये; पर सवेरे कैसे आयेंगे—या मत आइयेगा, अभी थोडी देर मे चले जाइयेगा, बस।"

भुवन ने कहा, "इस परम्परा का निर्वाह तो तब होगा जब रात-भर यहीं बातें की जायें, और तडके गाड़ी पकडी जाय। एक प्रमाद जब हो जाय, तब यही उस का उपाय होता है।"

"सच ?" रेखा का चेहरा खिल आया। "मैं राजी हूँ। पर चलिए, पहले आप को कुछ खिला दूँ। मै खिलाऊँगी—स्टेशनों पर मेरा राज है।"

"लेकिन मै तो खा आया।"

"गलत बात है। खा कर आते, तो या तो पहुँचते नही, या पहले आते। ठीक वक्त पर आये तो मतलब है कि खाना सामने छोड आये हैं"

"यह तर्क मेरी समझ मे नही आया—"

"न आये। यह स्त्री-तर्क है। इस के आगे विज्ञान नहीं चलता। चलिए। रास्ते मे गाड़ी का पता भी करते चलेंगे। और टिकट वापस कर के नया लेना होगा।"

गाड़ी सुबह साढे चार बजे जाती थी। टिकट भुवन ने वापस कर दिया; नया टिकट रात बारह के बाद मिलेगा—नयी तारीख हो जाने पर, क्योंकि रेखा इटर का सफर करती थी, सेकेंड होता तो तभी मिल जाता।

कुछ खा कर और काफी पी कर दोनो रिफ्रेशमेंट रूम से निकले तो रेखा ने कहा, "मुझे जनाने वेटिंग रूप मे जाने को मत कहिएगा। और जहाँ कहें—प्लेटफार्म पर घूमने को, बेंच पर बैठने को, आगे बजरी पर बैठने को, पुल पर चढ कर रेलिंग से झाँकने को—जो कहेंगे सब करूँगी।"

भुवन ने कहा, "टहलेंगे।"

पुल से पार एक अपेक्षाकृत सूने प्लेटफार्म पर दोनों टहलने लगे। अभी डेढ़ घंटे बाद टिकट मिलेगा, गाड़ी तीन बजे प्लेटफार्म पर आ लगेगी, तब उसमें बैठा जा सकता है।

प्लेटफार्मों पर भटकते, कभी बेंच पर बैठते, कभी छती हुई पटरी में आगे बढ़ कर बजरी पर चल कर तारे और कभी पुल पर खड़े-खड़े सिगनलों की लाल बत्तियाँ देखते, इंजिनों का स्वर सुनते और उन के धुएं की गुंजलक को आँखों से सुलझाते हुए दोनों ने चार घंटे तक क्या बातें की, इसका सिलसिलेवार ब्यौरा देना कठिन है। सिलसिला उस में अधिक था भी नहीं, भले ही उस समय उन दोनों को यही दीखा हो कि प्रत्येक बात एक में से अनिवार्यतः निकलती और सुसगत गति से चलती गयी है। साढ़े बारह के लगभग भुवन जा कर नया टिकट ले आया और अपने लिए नया प्लेटफार्म। तीन बजे जब गाडी आ लगी, तब वह कुली ढूंढ कर लाया, रेखा से बोला, "अब तो वेटिंग रूम में जायेगी या अब भी मैं ही सामान उठवा कर लाऊंगा?" फिर दोनों गाड़ी पर चले गये।

जनाने डिब्बे में पहिले ही से कई सवारियाँ थीं—बच्चे-कच्चे लिये औरतें। सामान उस में एक तरफ रखवा कर रेखा बाहर निकल आयी; बोली, "चलिए कहीं और बैठें—फिर यहाँ आ जाऊँगी।"

साधारण इंटरों में एक खाली था। दोनों उस में जा बैठे, बातें फिर होने लगीं। "भुवन ने कश्मीर के अपने प्लान बताये—कब जायगा, कहाँ रहेगा, क्या करेगा—तुलियन झील पर कैसे दिन काटेगा वगैरह। रेखा ने पूछा, "वहाँ बालू होगी?"

"बालू? क्यों?"

रेखा हँस दी। "घरौंदे बनाने के लिए—"

भुवन भी हँस दिया। फिर उस ने पूछा, "नैनीताल में क्या करेंगी आप दिन-भर?"

"झील की ओर ताका करूँगी। कागज की नावें चलाया करूँगी—नहीं, कागज की भी नहीं, सपनों की। काल्पनिक यात्राएँ करूँगी। स्वप्न

को क्या मालूम है, मध्यवर्ग की बेकार औरत कितनी लम्बी लड़ी गूँथ सकती है सपनो की।"

चार बजे उस डिब्बे मे भी दो-चार व्यक्ति आ गये। रेखा ने कहा, "फिर थोडा टहला जाय?"

"चलिए—"

दोनों फिर प्लेटफार्म पर टहलने लगे। लेकिन भीड होने लगी थी। भुवन ने कहा, "आपको एक बार अपने सामान की भी फिक्र करनी चाहिए।"

जनाने डिब्बे मे भीड भर गयी थी। रेखा ने अपना सामान देख-देख कर, अपना अधिकार स्थापित कर देने के लिए सीट पर थोडी जगह करायी और वहाँ बैठ गयी। भुवन बाहर खिड़की पर खडा हो गया।

भीतरी बड़ी किटकिट थी। बात करना असम्भव था। रेखा ने अपना पर्स खोल कर उस में से छोटी-सी कापी निकाली और पैंसिल से उस मे कुछ लिखने लगी।

भुवन ने पूछा, "क्या लिख रही हैं?"

रेखा ने हँस कर सिर हिला दिया।

थोडी देर बाद उसने कापी भुवन की ओर बढ़ायी। उस मे लिखा था, "उस डिब्बे मे बैठ कर थोड़ी देर के लिए मै अपने को यह मना सकी थी-कि हम साथ ही इस गाडी मे यात्रा कर रहे है। पर अब—अब लगता कि आप मुझे बिदा कर चुके, और उपचार बाकी है।"

भुवन ने कुछ न कह कर कापी लौटा दी।

रेखा ने फिर लिखा: "अगले स्टेशन पर आप प्रतापगढ से आगे बात चलाने आवेंगे?"

अब की बार भुवन ने कहा, "जरा पैंसिल दीजिए।" और लिखा: "आप ही ने तो कहा था, 'अब अगले स्टेशन पर न आना?' "

सहसा रेखा ने कहा, "सुनिए, आप मुझे छोड़ने क्या दो-चार स्टेशन भी न चलेंगे? हापुड से लौट आइयेगा—"

भुवन सिर्फ हँस दिया, कुछ बोला नहीं।

रेखा के चेहरे पर एक हल्की-सी उदासी खेल गयी। कापी में उसने लिखा, "नहीं, मेरी ज्यादती है।"

भुवन ने फिर कापी ले ली। जेब से कलम निकाल कर सुस्पष्ट अक्षरों मे लिखा "अकेले है न, तभी लीक पकड़ कर चलते है।" फिर तनिक रुक कर उस पर दुहरे उद्धरण-चिह्न लगा दिये "—"

रेखा ने कापी देखी तो अचकचा कर बोल उठी, "यह—यह आप से किस ने कहा ?"

भुवन हँसने लगा। फिर उस ने लिखा, "मैंने कहा था न, मैन फ्राइडे जादू जानता है ?"

रेखा ने कापी ले ली, और अपलक दृष्टि से भुवन को देखने लगी। फिर उस की आँखें कुछ विकेन्द्रित हो गयी, जैसे उस के विचार कहीं दूर चले गये हो।

भुवन ने कहा, "मै अभी आया—" और ओझल हो गया।

प्लेटफार्म पर चहल-पहल सहसा बढ गयी, जैसा गाडी चलने का समय हो जाने पर होता है। रेखा कापी में लिखने लगी। "ठीक गाडी के जाने के समय आप कहाँ चले गये ? मै गाड़ी चलने से पहले ही मानो खो गयी हूँ। इन स्त्रियो की बाते सुनती हूँ, और अनुभव करती हूँ कि मै गृहस्थिन तो पहले ही नही थी, अब शायद स्त्री भी नहीं रही—कितनी दूर, कितनी दूर है मुझ से ये बाते। एक तीन बच्चो की माँ है, एक पाँच की। एक के 'वह' लाम पर गये हैं—इराक मे हैं। वहाँ से चाँदी के लच्छे न जाने कैसे भिजवाये थे—चाँदी के मगर फिरोज़ेजडे। दूसरी के 'वह'..."

गार्ड ने सीटी दी। रेखा ने हडबडा कर इधर-उधर देखा, फिर घबरा कर कापी में लिखा, "कहाँ चले गये तुम, भुवन—गाडी चलने वाली है—क्या अन्त में बिना विदा के ही मुझे जाना होगा ?" कापी उस ने बन्द की और खड़ी हो कर दरवाजे की ओर बढ़ी, बाहर झुकी—

सामने भुवन खड़ा मुस्करा रहा था।

बड़े नालायक है आप !' रेखा सहसा कह गयी। "मुझे यों डराना अच्छा लगता है ?"

भुवन ने कहा, "अभी तो बहुत टाइम है। डरा मैं नहीं गार्ड रहा है। आप बेशक बाहर चली आइये—"

रेखा उतर आयी और गाड़ी से कुछ हट कर भुवन के बगल खड़ी हो गयी। भुवन मुस्कराता ही जा रहा था। रेखा उस की ओर देखने लगी : हाँ, यही अच्छा है, इसी प्रकार मुस्कराते हुए ही हट जाना चाहिए, वह भी मुस्करायेगी—एक मिनट की तो बात होती है, ज़रा से धीरज की, ज़रा-मज़बूत नर्व्ज़ की—बाद में चाहे जो हो .

भुवन ने सहसा जेब में से कुछ निकाला, अंगूठे और उँगली से मसल कर उस की गोली बनायी और ठोकर मार कर फुटबाल की तरह उछाल दी। रेखा ने कहा, "क्या था ?"

गार्ड ने और गाड़ी ने एक-साथ सीटी दी।

भुवन ने कहा, "मेरा प्लेटफार्म टिकट।"

रेखा भौंचक उसे देखने लगी। भुवन बोला, "क्यों, यह गाड़ी भी छोड़नी है क्या ? मैं चल रहा हूँ साथ—हापुड़ नहीं, मुरादाबाद।"

उस के साथ ही लपक कर रेखा अगले इण्टर की ओर बढ़ी—कितना अच्छा था उस के साथ कदम मिला कर लपकना। उसे सवार करा कर भुवन भी उछल कर चलती गाड़ी में सवार हो गया।

रेखा बैठ गयी; जगह कम थी, भुवन खड़ा रहा। रेखा ने एक बार बस उस की ओर देखा, फिर कापी निकाल कर लिखा, "भीड़ है, नहीं तो मैं इस वक्त गाना गा कर सुना देती।"

भुवन उस की ओर मुस्करा दिया। फिर कापी ले कर लिख दिया, "भीड़ की सज़ा मुझे मिलेगी ?"

रेखा फिर असहाय-सी उसकी ओर देखने लगी। फिर उसने घूम कर खिड़की से मुँह बाहर निकाला और धीरे-धीरे गाने लगी। भुवन दरवाज़े पर था ही, दरवाज़ा खोल कर खड़ा हो गया। सरसराती हवा के साथ गान

के स्वर उस के कानो को छूने लगे :

महाराज, ए कि साजे   एलै मम हृदय पुर माझे।
चारण तलै कोटि शशि-सूर्य   मरै लाजे।
महाराज, एक कि साजे—
गर्व सब टूटिया
मूछि पडे लूटिया
सकल मम देह-मन वीणा सम बाजे।
महाराज ए कि साजे—

जमना के पुल की गडगडाहट मे आगे गान खो गया। पुल जब पार हुआ, तब रेखा चुप हो गयी थी, क्षितिज मे कुछ हल्कापन दीखने लगा था।

तल्लीताल मे मोटर से उतर कर भुवन ने एक नज़र नैनीताल की झील को देखा—तीसरे पहर की धूप एक तरफ की पहाडी पर ऊँचे पर थी, झील घनी छाँह मे थी और आकाश ऐसा दूर था मानो किसी गहरी तलहटी में से ऊपर देख रहे हो—तो उसने जाना कि यहाँ तक आने का निश्चय तभी हो गया था जब उसने मुरादाबाद का टिकट लिया था। मुरादाबाद में जब रेखा ने पूछा था, "सुनिए, आप सचमुच यहाँ से लौट जायेंगे ?—अब मुझे पहुँचा ही आइये न ?" तब, जैसे यह प्रश्न उसके मन से पहले पूछा जा चुका हो, ऐसे ही बिना अचम्भे मे उस ने कहा था, "हो तो सकता है—"

और रेखा ने चिढाया था, "तो मैन फ्राइडे अभी से सकने की बातें सोचने लगा जादू भूल कर ?"

"भई अभी दिन-दुपहर है, जादू का वक्त अभी कहाँ हुआ है ?"

मुरादाबाद से वे बरेली हो कर नहीं गये थे : रामपुर गये थे और वहाँ से मोटर में काठगोदाम होते हुए नैनीताल—तीसरे पहर ही यहाँ पहुँच गये

थे। रास्ते मे रेखा धीरे-धीरे न जाने क्या गुनगुनाती आयी थी, बोली बहुत कम थी; एक अलौकिक दीप्ति उस के अलस शान्त चेहरे पर थी : बीच-बीच मे वह आँखे बन्द कर लेती और भुवन समझता कि सो गयी है, पर सहसा उस की पलकें उस अनायास भाव के खुल जाती जिस से स्वस्थ शिशु की आँखे खुलती है, और वह फिर कुछ गुनगुना उठती.. .. भुवन ने कहा था, "थोडा ऊँघ लीजिए, रात भर जागी है—" तो सहसा सजग हो कर बोली थी, "अभी ? ऊँघने के लिए तो सारा जीनव पडा है, थोड़ा-सा जाग ही ली तो क्या हुआ !" और एक कोमल मुस्कान से खिल कर उसे निहारने लगी थी। फिर भुवन ऊँघ गया था...

होटल साफ-सुथरा था, पर लोग काफी थे। मैनेजर से भुवन ने पूछा कि ठहरने की जगह मिल सकेगी ? तो उस ने तपाक से उत्तर दिया : "जी हाँ, डबल रूम—कितने दिन के लिए ?" और रजिस्टर की ओर हाथ बढ़ाते हुए "किस नाम से—"

क्षण-भर के लिए वह झिझक गया। मैनेजर के प्रश्न के साथ ही सभ्यता की जो समस्याएँ सहसा उस की नजर के आगे कौंध गयी, उन पर उस ने आते हुए विचार नही किया था। सँभल कर बोला, "अभी हमने निश्चय नही किया है कि यहीं ठहरेंगे या और आगे जायेंगे : जरा चाय-वाय पी ले तब तक सोचते हैं—"

"जी हाँ, अभी लीजिए" कह कर मैनेजर ने आवाज़ दी, "बाय !"

'बाय' आया तो उस से कहा, "साहब का आर्डर ले लो, चाय केक पेस्ट्री वगैरह जो चाहे—"

रेखा कुछ पीछे थी। भुवन ने कहा; "आप जरा यहीं बैठिए, मैं अभी आया—सामान—"

पर रेखा साथ बाहर की ओर चली। बोली, "क्या बात है, भुवन ?"

"कुछ नहीं।" भुवन क्षण भर रुक गया। फिर बोला, "मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा—नैनीताल मे ही नही।"

"रेखा उसे देखती रही। उस का चेहरा उतर गया! "अभी वापस जाओगे?"

"यहाँ तो नहीं रहूँगा। या तो आगे चलें—"

"चलो—"

"अच्छा, मैं आता हूँ—"

"लेकिन जा कहाँ रहे हो? बताओ तो—"

"भई कुछ सामान-वामान तो मुझे चाहिए, आ तो गया—"

"मेरे पास सभी कुछ फालतू है, बिस्तरा, कम्बल—"

भुवन ने एक मुदित-सी खीझ के साथ कहा, "अच्छा, एक टूथ ब्रश तो ले आऊँ।"

रेखा हँस पड़ी। फिर बोली, मैं भी साथ चलूँ?"

"नहीं, मैंने चाय का आर्डर दिया है, मैं अभी लौट कर आया।"

रेखा मान गयी। भुवन चलने लगा तो बोली, "पर हम यहाँ ठहर नही रहे हैं, यह उदास जगह है। आगे कहीं भी चलो—मुझे छोड आना होगा।"

भुवन चला गया। रेखा भीतर बैठ कर कापी में कुछ लिखने लगी। उसे नहीं मालूम हुआ कि भुवन कब लौटा, सहसा उस का स्वर सुन कर चौंकी। भुवन मैनेजर से कह रहा था: "हम लोग आगे जा रहे हैं सात-ताल, अभी चले जायेंगे चाय के बाद—आप का शुक्रिया।"

"दैट्स आल राइट, सर! "चाय आ गयी है।"

दोनों ने एक साथ ही प्रश्न किये:

"ले आये टूथ ब्रश?"

"क्या लिख रही हैं—कविता?"

रेखा ने पहले उत्तर दिया: "हाँ, समझ लो।"

भुवन ने नकल लगाते हुए कहा, "और मैं भी, हाँ, समझ लो।" फिर कहा, "अच्छा, जल्दी से चाय पी लीजिए—आगे जाना है तुरन्त।"

"कहाँ?"

"आगे। इंडु द ब्लू। क्रूसोलेंड। चाय का मजा क्यों बिगाड़ती हैं—पी लीजिए और चलिए।"

रेखा मुस्करा दी। चाय से उठ कर वे बाहर आये तो भुवन ने कहा, 'आप के बक्स-वक्स मे कहीं जगह हो तो यह पैकेट उस में रख दीजिए—"

रेखा ने दुष्टता से कहा, इतना बड़ा टूड ब्रश। जरा मै भी देखूँ—ौर भुवन के रोकते न रोकते उस ने पैकट खोल कर झाँका ही तो।

दो कमीजे, एक फ्लैनल की ट्राउजर्स, एक पाजामा, एक-आध और ोटी चीजें, और, हाँ, एक टूथ ब्रश भी।

रेखा ने कहा, "हाँ, है तो सही टूथ ब्रश। पर यह सब रेडीमेड क्या आये आप—"

"तो आप का क्या ख्याल था, आप का फालतू कम्बल लपेटे घूमूँगा?" ुवन हँस पड़ा, और अपने पतले कुरते की ओर देखने लगा।

रेखा ने गम्भीर हो कर माफी माँगी। सहसा उसे ध्यान हुआ, भुवन को ा खींच लाने मे भावुकता का कितना बडा प्रमाद उसने किया है।

भुवन ने उस की बात काट कर कहा, "जल्दी कीजिए रेखा जी, सामान ख्वाना है।"

रेखा सामान रख रही थी तो उस ने पूछा, "दस-बारह-पन्द्रह मील चल कती हैं? वैसे मोटर भी जाती है, पर आगे भी कुछ चलना पडेगा—"

"जरूर चल सकती हूँ। पैदल ही चलूँगी। लेकिन कहाँ जायेंगे? ाततात?"

"नहीं।" भुवन फिर मुस्करा दिया। "क्रूसालैंड—मैंने कहा न? बताने ा जादू चला जाता है।"

भुवन कुली साथ ले आया था। सामान उठवाया और बोला, "चलो, म लोग आते हैं। डाक बँगले पर जा कर बैठना।"

कुली चल पडे।

"कहाँ के डाकबँगले—यह बता दिया है?"

"वह सब मैं ठीक कर आया हूँ—आप किसी उपाय से पहले नहीं जान पायेंगी।"

रास्ता उतार का था। दोनो बडी तेजी से उतरने लगे।

भुवन ने कहा, "अगर तेज चलने की बात न होती, तो मै आप से गाने का अनुरोध करता।"

रेखा ने रुकते-रुकते शब्दों मे कहा, "नहीं—इस वक्त—हवा को ही गाने दीजिए।"

लेकिन दो-तीन मील जा कर जब वे एक खुली जगह सामने का दृश्य देखने के लिए रुके, तब रेखा सहसा खुले गले से किसी भाटियाली पद के बीच मे से ही गा उठी :

ओ ये केडे आमाय निये जाय रे,
जाय रे कोन चूलाय रे!
आमार मन भूलाय रे!
ग्राम छाडा ओइ राडा माटीर पथ—

बस, यही अढाई पंक्ति, और फिर मुक्त भाव से आगे को दौड़ पड़ी। पीछे-पीछे भुवन भी दौड़ने लगा।

भुवाली से एक डेढ़ मील आगे रेखा ने सहसा भुवन का हाथ पकड़ कर कहा, "वह देखो सामने—क्या वही हम जा रहे हैं।"

दिन ढलने लगा था। आकाश के विस्तार मे एक हल्की-सी धुन्ध छाने लगी थी, अभी थोड़ी देर मे इसी धुन्ध मे साँझ का ताम्र-लोहित रंग छा जायगा... आस-पास की पहाड़ियाँ नैनीताल की तरह तंग नहीं थीं, एक के बाद एक तीन-चार खुले स्तर थे मानो पुरानी सूखी झीलों के थाल हों, और आस-पास पहाड़ियाँ क्रमशः नीची होती गयी थी। और धुन्ध के बीच मे जैसे किसी जौहरी ने सम्भाल कर रूई के गाले पर कोई मूल्यवान् रत्न रखा हो, एक झील चमक रही थी...

"मुझे क्या मालूम है? हो सकता है। पर वह शायद भीमताल है, तब सातताल दाहिने को होगा।"

"वहाँ क्या सचमुच सातताल है?"

"ज़रूर है, लेकिन जादू के बगैर नहीं दीखते। यों शायद तीन हैं—ल्कि अढ़ाई—"

रेखा ने फिर पूछना चाहा, "क्या हम वहाँ जा रहे हैं?" पर क गयी।

दिन छिपते-छिपते दोनो भीमताल पहुँच गये। कुली भुवाली में ही ीछे रह गये थे। झील के पास ही डाकबंगला था, भुवन ने वहाँ जा कर चौकीदार से कहा कि कुली आये तो उन्हे कह दे कि वह आगे चला गया है और कुली जल्दी आवे, फिर कुछ और पूछताछ भी कर ली और रेखा के ास लौट आया।

"क्या यहीं रुक रहे हैं हम?"

"नहीं, बस तीन मील और जाना है। थक तो नहीं गयी?"

इर्रेलेवेंट बाते मत कीजिए," रेखा ने उत्तर दिया और भुवन ने देखा, उस के चेहरे पर यद्यपि श्रम के लक्षण स्पष्ट है, पर उस की एड़ी की गति मे सहसा नयी लचक आ गयी है...

रात हो गयी थी। सप्तमी-अष्टमी का चाँद था। पथ बराबर हल्की उतराई का ही था। एक छोटे से गाँव के पास से वे गुजरे। भुवन ने कहा "अब मील-भर और होना चाहिए—"

"अब भी नाम नहीं बताओगे जगह का?"

"नाम? नाम मे क्या है? हमारा ही क्या नाम है? वहाँ एक तिलिस्मी झील है, और उस के नौ अलग-अलग कक्ष हैं, सब कभी एक साथ नहीं दीखते। रोज़ एक देखना होता है—"

"ओः, पूरा नाइन डेज़ वंडर!" रेखा ने चिढाया।

"हाँ, वही सही। लेकिन चार दिन की चाँदनी कहते हैं, तो मेरे वंडर मे दो पूरी चाँदनियाँ समा गयीं, और फिर भी कुछ बाकी रह गया—समझीं?"

"तुम और तुम्हारा अरिथमेटिक!"

"पहाड़ी के मोड़ पर सहसा घने पेड़ों के झुरमुट की ओट में पानी की चमक। भुवन ने कहा, "थके राही, वह देखो मंजिल! इस झील का नाम है नौकुछियाताल।"

"थकें तुम—और तुम्हारे दुश्मन। लेकिन सचमुच यही नाम है?"

"हाँ।"

बड़ा साफ-सुथरा कमरा। बड़ी टेबल लैम्प। बिजली के लैम्प मे और रहस्य मे वैर है, लेकिन तेल के लैम्प—आओ, रहस्य के सौन्दर्य, सौन्दर्य के रहस्य, इस छोटे से आलोक-वृत्त को घेर लो!

सामान न जाने कब आयेगा। गर्म पानी से दोनो ने मुँह-हाथ पैर धोये, एक लम्बी आराम-कुरसी भुवन ने खिड़की के पास खींच ली, जहाँ से झील और चाँद भी दीखता था, पैरो के लिए एक तिपाई रखी; फिर रेखा से कहा, "यहाँ बैठ जाओ।"

रेखा ने एक बार उस के चेहरे की ओर देखा, फिर इस आज्ञापना के स्वर का प्रतिवाद करने की उस की इच्छा दब गयी। वह आराम से लेट गयी। भुवन खिड़की के चौखटे पर आधा बैठ गया।

"और एक कुरसी खींच लो न?"

"खींच लूँगा पीछे।"

रेखा ने कुछ अलसाये स्वर से कहा, "फ्राइडे, तुम नहीं गा सकते? वह एक जादू बाकी है अभी—फिर मै मान लूँगी कि कामिल जादूगर हो।"

भुवन ने कहा, "अच्छा गाता हूँ।" उठ कर बरामदे मे गया, धीरे-धीरे टहलने लगा।

उस की गुनगुनाहट भीतर पहुँची तो रेखा का और भी अलसाया स्वर आया: "बाहर क्या प्रेक्टिस करने गये हो?"

भुवन ने उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद भीतर गया तो देखा, रेखा वहीं कुरसी पर सो गयी है। वह दबे पाँव बाहर लौट आया। बरामदे के खम्भे के साथ पीठ टेक कर नीचे बैठ गया और चाँद देखने लगा। सहसा

न जाने क्यों उदास विचार उस के मन में उमड़ने लगे—क्या थकान के कारण ? वह फिर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा।

...मेरे माया लोक की विभूति बिखर जायगी !
किरण मर जायगी !
लाल हो के झलकेगा भोर का आलोक—
उर का रहस्य ओठ सकेंगे न रोक।
प्यार की नीहार बूँद मूक झर जायगी !
इसी बीच किरण मर जायगी !
ओप देगा व्योम श्लथ कुहासे का जाल,
कडी-कडी छिन्न होगी तारकों की माल।
मेरे मायालोक की विभूति बिखर जायगी—
इसी बीच किरण मर जायगी !'

चारो ओर पैरों की चाप और लालटेन की रोशनी से वह चौंक कर जागा। हाथ की घड़ी देखी—ग्यारह बजे थे। कुली आ गये थे। उस ने कहा, "शोर मत मचाओ!" सामान उतरवा कर पैसे दे कर उन्हें बिदा किया। फिर भीतर जा कर देखा, रेखा गहरी नींद मे सो रही थी। भुवन ने सामान बाहर ही रहने दिया, बिस्तर खोला, एक कम्बल निकाल कर, अन्दर चादर जोड़ कर, दबे पाँव भीतर गया और धीरे से रेखा को उढ़ा दिया। वह नहीं जागी। तब वह बाहर आया, और जमीन पर बिछे बिस्तर पर ही स्वयं लेट गया, एक कम्बल खींच कर अपने पैरो पर उस ने ढक लिया।

झील इस समय सुन्दर है—आसपास घने पेड़ो के झुरमुट है यद्यपि झील नैनीताल की तरह दो पहाड़ों के बीच मे भिंची हुई नहीं है, खुली है—दिन में भी क्या वह उतनी ही सुन्दर होगी—जितनी उसने सुना है, जितनी अब है ? दिन...'मेरे मायालोक की विभूति...!' दिन अपनी चिन्ता स्वयं करेगा। एक बार उसने चाहा, उठ कर फिर रेखा को देख आये, पर शरीर ने कोई प्रोत्साहन न दिया। ठीक है, दिन की बात दिन मे—अभी तारे हैं—कितने तारे—क्या सचमुच हर किसी का एक एक अपना

तारा होता है ? केवल कल्पना। पर सुन्दर कल्पना। क्यों ? क्या यह कल्पना और भी सुन्दर नहीं है कि सब तारे सब के होते हैं ? हाँ, सदैव तो वही। पर एक क्षण होता है—एक द्वीप का क्षण—नहीं, क्षण का द्वीप—नहीं, उस क्षण में तारों का एक द्वीप—न...

सुन्दर रंग—बिना आलोक के रंग—लेकिन बिना आलोक के रंग हो कैसे सकते हैं ?—नहीं, बिना रंग का आलोक, तीक्ष्ण आलोक :

भुवन उठ कर बैठ गया। सूर्य निकल आया था। लपक कर वह भीतर गया—कुरसी पर रेखा नहीं थी। तो वह पहले उठ गयी—उस ने भी भुवन को न उठाया होगा—उसे पहले जागना चाहिए था।

वह बाहर आया। देखा सूटकेस खुला है। उस की कमीज, पैंट, तौलिया और अन्य आवश्यक सामान बाहर एक ओर को रखा है। और वह सोता ही रहा।

भीतर जा कर मुँह-हाथ धोने की उस की इच्छा न हुई। उस ने तौलिया में सब सामान डाला, और नीचे झील की ओर चला।

सामने जहाँ धूप पड़ रही थी, वहाँ पेड़ों पर जहाँ-तहाँ बड़े-बड़े लाल गुच्छे चमक रहे थे। भुवन ने पहचाना—बुरूस के फूल। मुँह-हाथ धो कर वह तोड़ कर लायेगा...

बिना शीशे के हजामत बनाना ऐसा कठिन नहीं था। आँख बन्द कर लेने से अपना चेहरा देखने में मदद मिलती है। प्रक्षालन कर के उस ने कपड़े बदले, उतरे कपड़े तौलिया में लपेट कर वहीं रख दिये और लम्बे कदम फेंकता हुआ बुरूस के गुच्छों की ओर चला।

दो बड़े-बड़े गुच्छे उस ने तोड़े। फिर दोनों को देख कर एक वापस पेड़ में अटका कर रख दिया, एक ले लिया।

जहाँ तौलिया छोड़ गया था, उधर वह लौट रहा था कि दूर, कुछ ऊपर से, उसे रेखा का स्वर सुनाई पड़ा। रेखा गा रही थी। भुवन ठिठक कर

सुनने लगा; कभी स्वर उस तक पहुँचते, कभी हवा उन्हें उड़ा ले जाती :

"ऊषा एशे.... कल-कण्ठ-स्वरा !
...'मिलन ह'बे ब'ले' आलोय आकाश भरा !
चलछे भेसे मिलन-आशा-तरी अनादि स्रोत बये,
कत कालेर कुसुम उठे भरि छेये...
तोमाय आमाय —"

हवा उठी, गान खो गया, फिर स्वर आये मगर अस्पष्ट : भुवन जल्दी से उधर को बढ़ने लगा-जिधर से गान आ रहा था।

कुछ ऊँचे पर, सूर्य को सामने किये, मुँह कुछ ऊँचा उठाये रेखा एक पत्थर पर बैठी थी। भुवन एक ओर से आ रहा था, उस ने देखा कि रेखा की आँखें बन्द हैं, मानो प्रभात के सूर्य को अपना चेहरा वह सौंप रही हो। पक्के पीले रंग की साड़ी उस ने पहन रखी थी, जिसे सूर्य ने और सुनहला चमका दिया था ..वह कुछ हट कर पीछे हो गया और दबे पाँव बढ़ने लगा। रेखा अब भी गा रही थी, लेकिन शब्दों के बिना, केवल स्वर; कभी गुनगुना देती और कभी ज़ोर से। बिलकुल पास जा कर उस ने धीरे से हाथ बढ़ा कर रेखा की कबरी छुई; वह तनिक-सा चौंकी पर फिर पूर्ववत् हो गयी, घूमी नहीं, गाना बन्द कर दिया। भुवन ने हाथ का बुरूस का गुच्छा उस की कबरी में खोंस दिया—वह इतना बड़ा था कि आधी कबरी को और कान तक बालों को ढक रहा था : उसे ठीक से अटकाने के लिए भुवन कुछ आगे झुका कि एक-आध काँटा खींच कर कबरी कुछ ढीली करे : सहसा रेखा ने दोनों बाहें उठा कर उस का सिर घेर लिया, कन्धे के ऊपर से उसे निकट खींच कर उस का मुँह चूम लिया—बड़े हल्के स्पर्श से लेकिन ओठों पर भरपूर।

भुवन भी कुछ चौंक गया, वह भी चौंक कर छिटक कर खड़ी हो गयी, दोनों ने स्थिर और जैसे असम्पृक्त दृष्टि से एक-दूसरे को देखा, फिर एक साथ ही दोनों ने हाथ बढ़ा कर एक दूसरे को खींच लिया, प्रगाढ़ आलिंगन

मे ले लिया और चूम लिया—एक सुलगता हुआ, सम्मोहन, अस्तित्व-निरपेक्ष, तादाकार चुम्बन।

"तुम फिर कुछ लिखती रही हो?"

"हाँ—"

"क्या?"

"कुछ नही। मेरी डायरी है।"

भुवन ने आगे नहीं पूछा। बोला, "अच्छा, अब तो गाना गाओगी?"

"न। तुम्हारी बारी है गाने की।"

"मैं। मैं श्रेष्ठ गायक हूँ। मेरा गाना स्वरातीत है। दिन भर तो गाता रहा, तुम ने सुना नहीं?"

"थोड़ा और श्रेष्ठ हो जाओ, तो मेरा सुनना भी सुन सको।"

तीसरे पहर रेखा ने कपड़े बदल लिये थे। वह फिर सफेद पहनने लगी थी, लेकिन भुवन के आग्रह से उसने एक नीली साड़ी और नीला ही ब्लाउज पहन लिया था। अब कमरे की व्यवस्था ठीक-ठाक हो गयी थी, सामान लगा कर रख दिया गया था, खिड़की के पास रेखा का पलंग बिछा था और बाहर बरामदे मे भुवन का—भुवन ने आग्रह कर के वहीं लगाया था।

दिन भर वे प्रायः भटकते ही रहे थे—सुबह लौट कर नाश्ता किया था और फिर निकल गये थे, झील का एक चक्कर लगाया था; फिर लौट कर झील पर गये थे, नौ कुण्डों में से जो एक सब से खुला और शैवाल-रहित जान पड़ता था उस मे नहाये थे और फिर भोजन के लिए लौट आये थे। झील पर भुवन ने पूछा था, "तैरना जानती हो?"

"बस डूबने भर को।"

तब तो बहुत जानती हो। इतना तो मैंने भी नहीं सीखा। कलकत्ते मे क्यों नहीं सीखा?"

"तब रेखा हँस कर बोली, "जानती हूँ साहब, तैर लेती हूँ। पर इन कपड़ो मे नहीं—"

"ओह।" भुवन झेंप गया। "तो लायी क्यो नहीं?"

"मुझे क्या मालूम था—"

"कास्च्यूम तो नैनीताल में भी मिल जाता—"

"मुझे बताया था? नहीं तो मैं भी टूथ ब्रुश खरीदने चल देती।"

किनारे पर ही वे नहाये थे। भुवन तैर कर भीतर गया था, रेखा ने भी साड़ी पहने-पहने दो-चार हाथ तैरने का यत्न किया था पर लौट आयी थी।

अपराह्न में वे बुरूसो की छाया में काही-बिछी ठंडी जगह मे बैठे लेट रहे थे। फिर लौट कर चाय पी थी; तब रेखा ने कपड़े बदल लिये थे।

"अच्छा, चलो घूमने चलें।"

"चलो। किधर?"

"फिर पहले प्रश्न? सामने—सर्वदा सामने।"

"नहीं, मेरा मतलब था, सातताल के जादुई ताल खोजने हैं कि—"

"न। जादुई ताल यह है। नौ तहो का जादू है इस पर!"

वह पहाड़ पर ऊँचे चढने लगे, फिर पहाड़ की उपत्यका के साथ-साथ सममार्ग पर।

दिन ढल आया था। थोड़ी देर में सूर्य पहाड़ी की ओट हो कर छिप जायगा। सहसा भुवन ने कहा, "चलो, सूर्यास्त को पकड़े।"

दोनो हाथ पकड़े-पकड़े दौड़ने लगे। पहाड़ी के सिरे के पीछे सूर्य छिपा रहा होगा—बादल नहीं थे, एक तेजोदीप्त नंगा लाल रवि-बिम्ब ही क्षितिज की ओट हो रहा होगा अगर वे पहाड़ी के सिरे तक पहले पहुँच जायँ तो देख सकेंगे।

दौड़ते-दौड़ते भुवन ने कहा, "दौड़ो, रेखा, हमारी सूरज से होड़ है।"

रेखा और तेज दौड़ने लगी। भुवन के हाथ पर उस की पकड कुछ कड़ी और खींचती-सी हो गयी, भुवन ने लक्ष्य किया कि वह हाँप रही है

और सहमा धीरे हो गया, पर ऐसे नहीं कि रेखा को साफ मालूम हो।

पर पहाड़ी के मोड़ तक पहुँचते न पहुँचते सूर्य छिप गया। एक द्रुत हाथ मानो किसी धूसर लेप से सारा आकाश पोत गया; प्रकाश अब भी था, पर मानो किसी स्रोत से उद्भूत नहीं, दिग्भ्रान्त, आकाश में खोया-सा।

भुवन ने सहसा रुक कर कहा, "हम हार गये।" जहाँ सूर्य डूबा था, वहाँ एक छोटी-सी लाल लीक थी, जैसे किसी ने 'इतिशम्' लिख कर उस पर जोर देने को पुष्पिका बना दी हो।

उसी की ओर देखते हुए रेखा ने कहा, "डूबते सूर्य को कौन पकड़ सकता है?"

क्षण भर बाद भुवन के हाथ पर उस की पकड़ फिर दृढ़ हो आयी। "मगर यह हार नहीं है। रात का अपना सौन्दर्य है। वह समान सौन्दर्य पहचानो, भुवन।"

भुवन घूमा। रेखा का दूसरा हाथ भी उसने पकड़ लिया और सम के प्रकाश में थोड़ी देर उस का मुँह निहारता रहा। "पहचानता हूँ। तुम्हीं वह सौन्दर्य हो, नीलाम्बरा रात का सौन्दर्य, और तुम्हारे केशों में असंख्य तारे हैं।"

"और तुम—शुक्र तारा।" रेखा ने बहुत धीमे कहा। कोमल आग्रह से उस के हाथों ने भुवन को निकट खींच लिया।

जरा परे हट कर भुवन ने मान से कहा, "क्यों, चाँद नहीं?"

"वेन मैन! नहीं, चाँद घटता-बढ़ता है। उस का बहुरूपियापन मुझे नहीं चाहिए। शुक्र, केवल शुक्र।" फिर हल्की-सी उसाँस ले कर, "चाहे कितनी जल्दी अस्त हो जाय!"

भुवन ने आँखों से उसकी आँखों को पकड़ते हुए धीरे-धीरे सिर हिलाया हक् उदास नहीं होना है। फिर रेखा के माथे की ओर देखते हुए, कविता की पंक्ति उद्धृत की, "एंड द स्टार्स इन हर हेयर वेयर सेवन।"

वह लौटने के लिए मुड़ा। बोला, "यहाँ जुगनू होते तो मैं थोड़े से पकड़ कर तुम्हारे बालों में फँसा देता।"

किस चीज़ ने उस की नींद तोड़ दी—चाँद की रोशनी ने, या कि उस पर बादल की छाया ने—

भुवन ने आँखें खोलीं। नहीं, बादल की छाया नहीं, रेखा की छाया थी।

रेखा उस के सिरहाने बैठी थी, उस पर झुकी हुई उस का चेहरा देख रही थी।

उस ने आँखें खोली हैं, यह देख कर रेखा ने अपने दोनों हाथ उस के माथे पर रख दिये।

हाथ बिल्कुल ठंडे थे।

"तुम ठिठुर रही हो, रेखा!" कह कर भुवन उठने को हुआ, पर रेखा ने उस का माथा दबा कर उसे रोक दिया। भुवन ने कुहनी से अपना कम्बल उठा कर सरका कर रेखा के घुटनों पर उढ़ा दिया, फिर उस के दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ कर कम्बल के अन्दर खींच लिये। पूछा "क्या बात है, रेखा?"

रेखा नहीं बोली।

भुवन ने फिर पूछा, "रेखा, क्या बात है?"

"तुम—हो, तुम सचमुच हो! यू आर रीयल!" रेखा का स्वर इतना धीमा था कि ठीक सुन भी नहीं पड़ता था।

भुवन ने कहा, "आइ'म" वेरी रीयल, रेखा। पर ठहरो, पहले तुम्हें कम्बल उढ़ा लूँ—"

एक हाथ में रेखा के दोनों हाथ पकड़े वह उठा, दूसरे हाथ से उस ने कम्बल खींच कर रेखा की पीठ भी ढक दी। स्वयं पैर समेट कर बैठा हो गया, कुछ रेखा की ओर को उन्मुख।

रेखा सहसा हाथ छुड़ा कर उस से लिपट गयी। आँखें उस ने बन्द कर लीं; भुवन के माथे पर अपना माथा टेक दिया। उस के ओठ न जाने क्या कह रहे थे, आवाज़ उन से नहीं निकल रही थी।

भुवन कहता गया, "क्या बात है, रेखा, रेखा, क्या बात है—" उस

रेखा के ओठ उस के कान के कुछ और निकट सरक आये। पर स्वर उन मे से अब भी नहीं निकला।

पर सहसा भुवन जान गया कि वे शब्दहीन-स्वरहीन ओठ क्या कह रहे है।

"मैं तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे लो।"

भुवन वैसा ही स्तब्ध बैठा रहा। न उठा, न हिला; न उसने रेखा को निकट खींचा, न हटाया। रेखा के ओठ भी निश्चल हो गये, मानो उन्होंने जान लिया कि वे जो कह नहीं सके हैं, वह सुन लिया गया है।

न जाने कितनी देर तक ऐसा रहा। फिर भुवन ने कहा, "रेखा, पैर उठा कर इधर पसार लो—ठिठुर जायेगे।" लेकिन रेखा के अग-प्रत्यग जैसे शिथिल हो गये थे। भुवन ने हाथो मे बलात् उस के पैर उठा कर कम्बल के अन्दर कर लिये। रेखा कुछ सीधी हो कर बैठ गयी। भुवन ने दोनो बाहों से उसे कमर से घेर लिया, सिर उठा कर धीरे से रेखा की जाँघ पर रख दिया।

फिर और न जाने कितनी देर तक ऐसा रहा।

सहसा रेखा चौंकी। भुवन का शरीर काँप रहा था। जल्दी से झुक कर रेखा ने उस का मुँह देखना चाहा, पर उस ने और भी जोर से उसे रेखा की जाँघ मे गडा कर अपनी एक बाँह से ढँक लिया।

रेखा बैठी रही, बिल्कुल निश्चल। उस की सब सवेदनाएँ जैसे अत्यन्त सजग हो आयीं, पर साथ ही भीतर कहीं कुछ जड़ होने लगा।

भुवन सिसक रहा था, अब उस की सिसकी स्पष्ट सुनी जा सकती थी।

रेखा ने फिर उसे सीधा करना चाहा, पर न कर सकी। फिर वह वैसी ही निश्चेष्ट बैठ गयी।

थोड़ी देर बाद भुवन ही सिर उठा कर जरा ऊपर को सरका, सिर उसने फिर रेखा की देह पर टेक लिया लेकिन हाथ मुँह के आगे से हटा लिया।

पर रेखा ने अब उस का चेहरा देखने की चेष्टा नही की।

भुवन कुछ असम्बद्ध-सा बड़बडाने लगा। पहले ओंटो की बिल्कुल ही स्वरहीन गति, फिर एक धीमी फुसफुसाहट, कभी कहीं टूटा हुआ स्वर। रेखा एकाग्र हो कर सुन भी रही थी और मानो अर्थ तक पहुँचने का यत्न भी नहीं कर रही थी..

लेकिन अर्थ स्वयं धीरे-धीरे अवगत होने लगा।

"यह इनकार नहीं है, रेखा, प्रत्याख्यान नहीं है.. यह सब बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर...वह—वह सौन्दर्य की चरम अनुभूति होती है—होनी चाहिए मैं मानता हूँ...इसी लिए डर लगता है, अगर वह— अगर वैसा न हुआ—जो सुन्दर है उसे मिटाना नही चाहिए.. तुमने जो दिया है, उस के सौन्दर्य को मैं मिटाना नही चाहता, रेखा, जोखम मे नही डालना चाहता। वह बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर. "

और फिर बड़ी-बडी सिसकियो ने उस का स्वर तोड़ दिया, अब की बार उस ने मुँह नही छिपाया, और रेखा वैसे ही बैठी रही, एक हाथ भुवन के कन्धे पर रखे, दूसरा अपनी जाँघ पर उस के चेहरे के नीचे, भुवन का पहला गर्म आँसू इस हाथ पर गिरा तो वह तनिक-सा सिहर गयी, फिर हाथ को उस ने अंजुली-सा बना लिया और आँसू उस मे गिरते गये।

जब भुवन का आवेश कुछ कम हुआ तो रेखा ने अपना आँसुओ से भीगा हुआ हाथ खींचा, और भुवन के आँसू अपने केशो मे और फिर अपनी छाती पर पोछ लिये। फिर आँचल खीन्च कर धीरे से भुवन की आँखे पोंछ दीं। जो हाथ कन्धे पर पड़ा था, वह अत्यन्त धीरे-धीरे उसे थपकने लगा।

भुवन धीरे-धीरे शान्त हो गया। एक ऐसी गहरी शिथिलता उस के सारे शरीर पर छा गयी मानो हफ्तो का रोगी हो। रेखा ने उसे धीरे-धीरे और ऊपर की ओर खींचा, उस का सिर अपनी छाती पर टेका, अपने आँचल से ढक दिया।

एक स्निग्ध, करुण, वात्सल्य-भरी गरमी से घिरा हुआ भुवन सो गया। न जाने कब एक बार उस की नींद की घनता कुछ कम हुई, तो उस के कन्धे

पर उस थपकी की वैसी ही सम, कोमल, अभयदा, त्राणमयी छाप पड़ रही थी। वह फिर खो गया।

लेकिन सुबह वह अकेला था। जब उस की नींद खुली, तो पलकों पर एक भारीपन था, मन पर कुछ ऐसा भाव कि वह नींद मे उठ कर चला है, और कही अपरिचित जगह पर जा कर जाग कर भटक गया है फिर सहसा रात की घटना का चित्र स्पष्ट हो गया, उसने जाना कि रेखा जहाँ थी वहाँ नही है और वह बहुत गहरी नींद सोया होगा। पर उठ कर भीतर जा कर रेखा को देखने का भी साहस उसे न हुआ। वह वही से बाहर जा कर सीधे बुरूस के झुरमुट मे चला गया।

अनमने-से भाव से उस ने बुरूस का बडा-सा गुच्छा तोड़ा। फिर सहसा सचेत हो कर उसे देखा। नहीं, जीवन मे कोई चीज दोबारा नही होती है। कम-से-कम कोई सुन्दर चीज नहीं। जो होती है वह सुन्दर नहीं होती। फूल का गुच्छा उस ने फेंक दिया। झुरमुट में और गहरा घुसने लगा।

क्या वह लौट कर जायगा—रेखा के पास जायगा? उस के सामने होगा?

पुराणो मे बहुत कहानियाँ हैं। स्त्री कभी नहीं माँगती, और जब माँगती है—प्रत्याख्याता स्त्री ने कभी पुरुष को क्षमा नहीं किया, सदैव शाप दिया है; और पुराणों मे कहीं यह ध्वनि नहीं है कि वह शाप अनुचित है। कहीं बल्कि यह स्पष्ट कहा है कि स्त्री माँगे तो 'न' कहने का अधिकार पुरुष को नहीं है, शीलविरुद्ध है—माँग के औचित्य-अनौचित्य से परे...सब पुराणों का रोमांटिसिज्म है? लेकिन पुराण बिल्कुल रोमांटिक नहीं थे—उन की स्वच्छन्दता प्रकृति की स्वच्छ, स्वस्थ आत्म-निर्भरता की स्वच्छन्दता थी, जिस मे स्त्री भी उतनी ही स्वायत्त है जितना पुरुष; बल्कि अधिक, क्योंकि उस पर प्रकृति का दायित्व है। कहीं भी प्रकृतिके शासन में अस्वीकार का अधिकार नर का नहीं है; सर्वत्र मादा निर्णायिका है—क्योंकि वह माँ है...

लेकिन प्रत्याख्यान की बात वह क्यों सोचता है? उस ने तो कहा भी है, प्रत्याख्यान वह नहीं है। केवल सुन्दर, सुन्दर से सुन्दरतर वह चाहता है, और लोभ से सुन्दर को जोखम में नहीं डालना चाहता। इस लिए और भी नहीं, कि रेखा उस जोखम को समझती नहीं—या हेय मानती है। सहसा रेखा के प्रति एक गहरे कृतज्ञ भाव ने उसे द्रवित कर दिया: कैसे यह स्त्री सब-कुछ इस तरह उत्सर्ग कर दे सकती है, बिना कुछ प्रतिदान माँगे, बिना कोई सुरक्षा चाहे—बल्कि सुरक्षाओं की सब सम्भावनाओं को लात मार कर! क्यों? क्योंकि वह भुवन को प्यार करती है, उसे कुछ देना चाहती है? कुछ नहीं, सब कुछ, अपना आप। कैसी विडम्बना है यह स्त्री की शक्ति की, कि उस का श्रेष्ठ दान है स्वयं अपना लय—अपना विनाश! लेकिन लय के बिना और श्रेष्ठ दान कौन-सा हो सकता है? अहं की पुष्टि के लिए समर्पण नहीं, अहं का ही समर्पण समर्पण है...

झुरमुट में बुरूस का स्थान अब बॉज ने ले लिया था, अधिक घने, ठंडे और पुष्पविहीन। वह और अन्दर पैठता चला जा रहा था।

और वह?

क्यों वह रेखा की ओर से ही सोच रहा है, क्यों नहीं अपनी ओर से सोचता? वह—वह क्या चाहता है, क्या देना चाहता है, क्या वह रेखा को चाहता है? प्यार करता है? नकारात्मक उत्तर उस के भीतर से नहीं उठता, लेकिन क्यों नहीं सहज स्वीकारी उत्तर आता, क्यों यह स्तब्धता है...

सुन्दर से सुन्दरतर...चरम अनुभूति...

लेकिन तुम में अगर सौन्दर्य की चरम अनुभूति है, भुवन, तो डर कैसा! डर केवल सुन्दर में अविश्वास है।

पर उस की तसल्ली नहीं हुई। स्वयं उस के भीतर, और गहरे किसी एक स्तर पर एक संघर्ष है, इस का जैसे उसे थोड़ा-थोड़ा भान है; पर किस स्तर पर, यह वह नहीं जान पाता, और उसे कुरेद कर ऊपर भी नहीं ला पाता। मानो प्रयत्न छोड़ कर उस का मन रेखा के कहे हुए वाक्यों पर उछटता-सा घूमने लगा: काल का प्रवाह नहीं, क्षण और क्षण और क्षण

...क्षण सनातन है.. छोटे-छोटे ओएसिस.. सम्पृक्त क्षण.. नदी के द्वीप .. जो काल-परम्परा नही मानता, वह वास्तव मे कार्य-कारण-परम्परा नहीं मानता, तभी वह परिणामो के प्रति इतनी उपेक्षा रख सकता है—एक तरह से अनुत्तरदायी है...पर इस से क्या ? उत्तर मॉगने वाला कोई दूसरा है ही कौन ? मै ही तो मुझ से उत्तर मॉग सकता हूँ ? और अगर मै अपने सामने अनुत्तरदायी हूँ, तो उस का फल मैं भोगूँगा—यानी अपने अनुत्तरदायित्व का उत्तरदायी मैं हूँ...

क्या यह—परसो और कल और आज—वैसा ही एक द्वीप है—सम्पृक्त क्षणो का द्वीप—काल-प्रवाहिनी मे अटका हुआ एक अलग परम्परा-मुक्त खण्ड—जैसे रेखा कहती है ? परसो, कल, आज, फिर महाशून्य—नहीं, आज, फिर दूसरा आज, फिर आज, तब महाशून्य !

सामने एक पेड़ पर आर्किड लग रहे थे। और पेड़ो पर भी पत्ते लटके भुवन ने देखे थे, पर इस मे फूल थे। रग उन मे अधिक नहीं था—चम्पई भीतर कत्थई और फूल की बावली के बिल्कुल बीचोबीच मे गहरा पीला—फिर भी, आर्किड ..

उसे जमना के टापू का बालू का घरौंदा याद आ गया, जहाँ आर्किड लगाने की बात उस ने कही थी। वह जैसे-तैसे पेड़ पर चढा, कुछ नीचे ही पौधे समेत फूल उस ने नोच लिये और उतर आया। झाड़ कर फूल अलग करता हुआ लौट चला।

रेखा बरामदे की सीढ़ियो पर बैठी थी। कुछ लिख रही थी। दूर भुवन को देख कर कापी उस ने बैग मे डाल ली, और एकटक उस की प्रतीक्षा करने लगी।

भुवन गम्भीर चेहरा लिये हुए आया। रेखा से आँखें उस ने न मिलायीं, यह देख लिया कि उस का चेहरा भी गम्भीर नहीं तो एक शान्त चेहरा तो है ही, भीतर की कोई छाप उस पर नहीं दीख रही है।

भुवन ने चुपचाप आर्किड उस की गोद मे रख दिये। एक लच्छा कर उस के बालो में अटका दिया।

"ओः, आर्किड। तब यह विदा है।"

ऐसा कोई सम्बन्ध भुवन ने नहीं देखा था। पर बोला, "रेखा, आज तो मुझे जाना होगा न।"

"सो—मैं जानती थी।"

भुवन उस के पास सीढ़ी पर बैठ गया।

"रेखा, तुम ने मुझे क्षमा कर दिया?"

रेखा का हाथ टटोलता हुआ बढ़ा; भुवन के हाथ पर आ कर शिथिल रुक गया। "किस बात के लिए, भुवन?"

"सब कुछ। तुम जानती तो हो।"

"तुम्हारे क्षमा माँगने की तो कोई बात मुझे नहीं दीखती, भुवन! मैं ही—"

भुवन ने असल बात से कुछ हटते हुए कहा, "और मैं बहुत लज्जित हूँ, रेखा! पुरुष की आँखो मे आँसू तो नामर्दी हैं—मैं—तुम क्या सोचती होगी न जाने—"

रेखा के हाथ के दबाब ने उसे चुप करा दिया, पर वह स्वयं कुछ देर तक कुछ नहीं बोली। फिर उस ने कहा, "भुवन, मर्द के आँसू मैंने पहले भी देखे हैं। बड़ी व्यथा के आँसू—इस लिए कि उस पुरुष ने मुझे खो दिया है। बड़ी ग्लानि के आँसू—इस लिए कि वह पुरुष मुझे पा लेना चाहता है और पा नहीं सकता। पर तुम्हारे आँसू—किसी पर छाँह करते हुए उस के लिए रोना नामर्दी नहीं है, भुवन..."

धीरे-धीरे उस ने अपना हाथ खींच लिया। दोनो चुप, स्तब्ध बैठे रहे।

कुछ खाने की इच्छा नहीं थी, पर भुवन ने खोये-से, रेखा को उसे नाश्ता करा लेने दिया। थोड़ी देर खोये-से ही दोनो बरामदे मे आ कर खड़े रहे, झील को देखते रहे। फिर वह क्षण आ ही गया।

रेखा ने अन्दर से एक पुलिन्दा ला कर देते हुए कहा, "यह लो अपना टूथब्रश।"

भुवन ने कहा, "अच्छा रेखा; अब चलता हूँ।" वह कुछ रुका। "कहना चाहता हूँ कि मैं—तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ, पर शब्द ओछे हैं, नही कहूँगा। इतना ही कि—गाड ब्लेस यू!"

"रुको—" कह कर रेखा भीतर गयी। थोड़ी देर मे एक छोटा-सा पैकेट और ले आयी। "यह भी लो—"

"क्या है?"

"जाते हुए रास्ते मे देख लेना।"

भुवन ने एक लम्बे क्षण तक रेखा को देखा, आँखो ही आँखों विदा माँगी और दी, और चलने को मुड़ा।

"भुवन, यह भी लेते जाओ।"

रेखा ने बालो मे से आर्किड निकाल कर उस की ओर बढा दिया बाकी फूल उस ने रख लिये थे।

"यह—यह क्यो—"

"मेरी ओर से—इस लिए कि तुम—शायद—फिर न आओ।" रेखा ने जल्दी से मुँह फेर लिया।

भुवन ने सहसा उस की ओर बढ़ कर बायें हाथ के अँगूठे-उँगली नाखूनो की चुटकी से उस का ब्लाउज पकड़ कर खींचा, और दाहिना हाथ बढ़ा कर आर्किड के फूलो का लच्छा उस के भीतर डाल दिया। बड़े स्निग्ध स्वर से कहा, "पगली कहीं की!"

फिर बडी त्वरा से उस ने अपनी पोटली उठायी और बिना लौट कर देखे चला गया।

दो मोड़ पार कर के, जैसे कुछ याद कर के वह रुका। छोटा पैकेट उस ने खोला।

उस मे रेखा की वह छोटी कापी थी, और वह नीली साड़ी जिसे पहन कर उस ने भुवन के साथ सूर्यास्त का पीछा किया था।

दृश्यो का द्रुत परिवर्तन स्फूर्तिप्रद होता है शायद, लेकिन जहाँ उस परिवर्तन के साथ रागावस्थाओं का भी उतना ही द्रुत परिवर्तन हो वहाँ स्फूर्ति ही आवश्यक नही है, व्यक्ति चकित-विमूढ हो कर भी रह जाता है...काम दबाव मे उस का मन नौकुछिया अधिक नही भागा था—यों भी उस की प्रवृत्ति पीछे देखने की नहीं थी, हठात् कभी अतीत की किरण मानस को आलोकित कर जाय वह दूसरी बात है—पर श्रीनगर की झील और नौकुछिया का अन्तर स्वय मन पर चोट करता था। निस्सन्देह श्रीनगर मे सब-कुछ बड़े पैमाने पर था, बड़ी चौड़ी उपत्यका, बड़े पर्वत शृंग, बड़ी झील—बडे लोग!—पर नौकुछिया एक सुन्दर हरे निर्जन में जड़ा हुआ छोटा-सा नगीना था, और यह—जनाकीर्ण मग मे आभूषणों से लदी बैठी पुंश्चली स्त्री...क्या हुआ अत्यन्त सुन्दरी है तो? पब्लिक फेमेज़ इन पब्लिक प्लेसेज़! उसे खुशी ही थी कि श्रीनगर मे अधिक समय नहीं बिताना पडेगा, दिल्ली मे ही रुके रह जाना बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो यहाँ वह घबडा जाता—और नौकुछिया के बाद तो—!

डेढ ही दिन उसे वहाँ लगा, इतने मे उस की तैयारी हो गयी। यहाँ से घोड़ो पर सामान लद कर जायगा, पहलगाँव और वहाँ से तूलियन-चौथे दिन पहुँच जायगा। वह पहलगाँव मे प्रतीक्षा करेगा, तम्बू पहलगाँव

से ही तुलियन ले जाने होगे—उस के लिए उस ने नये खानसामा को आगे भेज दिया था।

लेकिन अपना आवश्यक सामान ले कर जब वह पहलगाँव की मोटर पर पहुँचा तब अचकचा कर रह गया। मोटर के बानेट के सहारे रेखा खड़ी थी।

मुस्करा कर बोली, "नमस्कार।"

"नमस्कार। तुम—"

"मै आप से एक दिन पहले यहाँ पहुँच गयी—आप दिल्ली ही रह गये, मैं सीधी इधर चली आयी।"

"लेकिन—"

"आप भूलते हैं, मैं बँगला बोलने वाली कश्मीरिन हूँ—यहाँ किसी को पहचानती नही पर मेरे रिश्तेदार और बुजुर्ग चारों ओर बिखरे पड़े हैं।"

"पर मेरे जाने का कैसे पता लगा?"

"मैं कल पूछने गयी थी। यों तो न भी जाती तो भी लग जाता—आप वैज्ञानिक यन्त्रादि ले जाने का परमिट लेने गये थे—वह अधिकारी मेरे कुछ लगते है मामा-वामा।"

भुवन हँसने लगा, क्योंकि इन सज्जन से बड़ी मनोरंजक भेंट हुई थी उस की। वह मानते ही नहीं थे कि युद्ध-काल मे यन्त्रादि ले कर कोई उत्तर के पहाड़ों मे जा रहा है तो रूस से सम्बन्ध जोड़ने के सिवा उस का कोई उद्देश्य हो सकता है। फिर जब उस ने कहा कि उस का काम कई विश्व-विद्यालयो के काम से सम्बद्ध है जिन मे केम्ब्रिज-और अमरीका के कुछ विश्वविद्यालय भी हैं, तो उन्होने मान लिया कि वह ब्रिटेन का चर है। परमिट तो दे दिया, लेकिन बड़ी भेद-भरी दृष्टि से उसे देखते रहे।

फिर उस ने कहा, "मुझे तो किसी ने नहीं कहा—"

"मैने कहा था कि मैं स्वयं मिल लूँगी—"

"तो तुम जा कहाँ रही हो—पहलगाँव?"

"जी—मैं काम्प्लिमेंट्स रिटर्न करने आयी हूँ—पहलगाँव तक पहुँचाने

आयी हूँ—तुलियन तक जाने को तैयार हो कर अगर आप कहेंगे। यह मेरा प्रदेश है, आप मेहमान हैं।" फिर सहसा गम्भीर हो कर कहा, "आप का हर्ज तो नहीं होगा? मैं अभी लौट सकती हूँ—रास्ते में भी कहीं उतर सकती हूँ—"

"इस का जवाब तो मैं दे चुका।"

"क्या?"

"पिछली भेंट का मेरा आखिरी वाक्य—"

विषाद की एक हल्की-सी छाया रेखा के चेहरे पर दौड़ गयी। फिर वह मुस्करा दी। "हाँ, सो तो हूँ।"

अगली सीट भुवन की थी। उस ने कहा कि रेखा वहाँ बैठ जाय, पर रेखा ने आग्रह किया कि वहाँ कोई बैठेगा तो भुवन, नहीं तो दोनों साथ बैठेंगे पहली सीट पर, वहीं वे बैठे।

पामपुर-अवन्तिपुर के खुले प्रदेश के पास से मोटर बढ़ती चली। भुवन ने कहा, "यहीं सब केशर का प्रदेश है न?"

"हाँ। इसी से इसे काश्मीर कहते हैं—भारत में तो और कहीं होता नहीं। और पामपुर असल में पद्मपुर है।"

भुवन ने कहा, "बंगालिन, अभी काश्मीर से तुम्हारा नाता छूटा नहीं?"

रेखा हँस दी। "जो असम्पृक्त हैं, उन का सब देशों से नाता है!"

"तो, तुम्हारे लिए सब जगहें बराबर हैं?"

"उस दृष्टि से—हाँ। मेरे लिए महत्व है व्यक्तियों का—विशेष व्यक्तियों का।" और एक अर्थ-भरी दृष्टि से उस ने भुवन की ओर देख लिया। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर रेखा ने पूछा, "पहलगाँव रुकोगे?"

"सोचा तो था। पर अब नहीं—मुझे तुलियन पहुँचाने चलोगी न?"

"आप कहें तो! और पहलगाँव में टूथब्रुश न मिलेगा, इस लिए मैं सब साथ लायी हूँ।"

"सामान आने में तो दो-तीन दिन लगेंगे ही। चल सकते हैं। पर पहलगाँव से तुलियन सामान के साथ मैं स्वयं जाना चाहता हूँ—"

"बाधा नही बनूँगी, भुवन। जिस दिन सामान आवेगा उसी दिन चली जाऊँगी। बल्कि—"

"यह मेरा मतलब नहीं था—"

"जानती हूँ—" कह कर रेखा ने उसे चुप करा दिया।

ज्यो-ज्यो बस आगे जाती थी, त्यो-त्यो भुवन का मन अधिकाधिक तीव्र झटको के साथ पीछे जाता था—एक लघु क्षण के लिए, बस, लेकिन प्रत्येक बार एक टीस के साथ, और प्रत्येक बार न जाने कहाँ से उखड़े-उखड़े वाक्यांश लगता हुआ ..'स्वाधीनता का जोखम'...'आन्तरिक आलोक का जोखम'...'एंड द स्टार्स इन हर हेयर वेयर सेवन'...'जुगनू तो सीली सडी जगह मे होते हैं'...'आत्मा के नक्शे'...'क्षण सीमान्त है'.. 'वहाँ बालू होगी?' 'मै शैरन का गुलाब हूँ, और उपत्यका की तितली...' 'डर, सुन्दर का डर, विराट का डर'...'दुःख जाना है, पर डर नहीं'... दो-एक बार अशान्त भाव से वह अपनी सीट मे इधर-उधर मुड़ा। 'मेरी प्रिया बोली, उसने कहा, उठो प्रिय और मेरे साथ आओ, क्योंकि शीत ऋतु बीत गयी है, वर्षा चुक गयी है, धरती में फूल जागते हैं, पंछियों के गाने का समय आ गया है, और कुमरी का कूजन सुन पडने लगा है। अंजीर के वृक्ष में नया फल आता है, और अंगूरी के कच्चिया अंगूर मधुर गन्ध दे रहे है। उठो, प्रिय, और चले आओ।' सहसा स्पष्ट हो गया कि सालोमन के गीत के ये अंश उसे रेखा की कापी में-से याद आ रहे हैं—क्यो? वह सीधा हो कर बैठ गया। कापी के वाक्य और स्पष्ट हो कर उसके आगे दौड़ने लगे—एक के बाद एक पंक्ति, जैसे सिनेमा की पट्टियाँ मानो बेलन पर चढी हुई घूमती जाती हैं और एक एक पंक्ति आलोकित होती जाती है...

'तुम चले जाओगे—मैं जानती हूँ कि तुम चले जाओगे। मैं आदी हूँ कि जीवन मे कुछ आये और चला जाय—मैंने हाथ बढ़ा कर उसे पकड़ना चाहना भी छोड़ दिया है—कौन पकड़ कर रख सकता है? बचपन में माँ एक कहानी सुनाया करती थीं, कोकिल का स्वर सुन कर राजा ने

पकड़वा मँगाते थे पर वह चुप हो जाता था। माँ कहती थी कोकिल को पकड़ा लिया जा सकता है, पर गान वंदी नहीं होता। तब मै सोच लेती थी, बन्दी करना मैं क्यो चाहने लगी? मै स्वय गाऊँगी। पर अब माँ की बात याद आ जाती है ..नहीं, गान को बन्दी करना नहीं चाहूँगी। और हॉ, गाऊँगी भी, चाहे टूटे स्वर से—मेरा गान तुम सुनोगे?'...

'हम हार गये। तुम ने कहा था, हम हार गये, सूर्यास्त को नही पकड़ सके। फिर तुम ने कहा था—कहा नहीं, उद्धृत किया था, "उस के केशो मे सात तारे थे।" पर अब अपनी ओर देखती हूँ तो सोचती हूँ,मुझ मे? नहीं, मुझ मे केवल अन्धकार की एक बहुत बड़ी लहर—हट जाओ भुवन, मै तुम्हे प्यार करती हूँ पर मेरा संस्पर्श विषाक्त है।'..

'तुमने डर की बात कही थी। वह एक चीज है जो मैंने पहले कभी नहीं जानी। दुःख—हॉ, वह खूब जाना है, अपमान, ग्लानि, ईर्ष्या—ये भी सहे हैं, पर डर...मगर डर की छूत होती है शायद, और तुम्हारा वह नामहीन डर मुझे भी छूता है, एक सिहरन-सा वह मेरी रीढ पर से उठता हुआ मेरे मन पर छा गया है या—किस का डर? तुम से डर? तुम से!! तुम्हारे लिए डर?—? तुम्हे खो दूँगी, यह? लेकिन तुम्हे पाया है, यही तो कभी नहीं सोचा। जागने का डर? न जाने कब से मेरा मन, मेरी आत्मा, मेरी देह, सब सोयी हैं, जड़ है, और जड़ से इतर कोई स्थिति मे सोचती ही नहीं। आग सुलगती है, धधकती है, ईंधन चुका कर धीमी पड जाती है, वैसी आग फिर भडक सकती है। लेकिन मुक्त आग को बुझा दो—तब राख, कोयले, अध-जली लकड़ी—वह मैं हूँ। उठी हुई लहर जो वही जम गयी है। पीछे नहीं जा सकती, पीछे गर्त है—हर तरग के पीछे गर्त होता है। आगे नही जा सकती—गति जड हो गयी है। जम गयी हूँ, पिघलूँगी तो पछाड खा कर गिरूँगी—क्या वही डर है जो मुझ मे जाग गया है—पिघलने का डर? लेकिन मै तुम्हे अपने से बचाऊँगी भुवन...'

'मै स्वप्न देख कर उठी हूँ, तुम सो रहे हो, सोओ, मै जगाऊँगी नही

पहले मन हुआ था, स्वप्न तुमसे कह दूँ, पर नहीं। तुम्हे देख कर न जाने क्यो एक पंक्ति मन मे आयी—तुमने पूछा था एक बार, "कविता लिखती हो?" हाँ, एक कविता मैंने भी लिखी है, पर मेरी कविता उस के शब्द मे नही है, उस की भावना मे है—तुम पहुँचोगे?

शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा—

स्नेह-शिशु, उठ जाग।'

'तुम सोओ। अपने स्वप्न के लिए तुम्हे नहीं जगाऊँगी। स्वप्न मे मैंने तुम्हारे प्रिय किसी को देखा था। न मालूम कौन होगी वह, लेकिन मैं ने उसे देखा था, पहचाना था, और वह तुम्हे बहुत प्रिय थी। उसे देख कर मेरे मन मे स्नेह उमड़ आया—ईर्ष्या होनी चाहिए थी पर नहीं हुई। भुवन, मै तुम्हारे जीवन मे आऊँगी और चली जाऊँगी—मैं जानती हूँ अपने भाग्य की मर्यादाएँ!—पर तुम्हे जो प्रिय है उन्हे प्यार कर सकूँगी—सहज भाव से, बिना आयास के। और सोचती हूँ, तुम्हारी करुणा सदैव मुझे शान्ति दे सकेगी।'...

'तुम ने मेरे जूड़े मे लाल फूल खोस कर मेरा सिर ढक दिया है, तुम ने मेरी पलकें, मेरा मुँह—...एक धधकते हुए प्रभा-मडल से मेरा शीश घिर गया है ..क्या इस की दीप्ति दुर्भाग्य के उस मडल को छार न कर डालेगी जो मेरे साथ रहा है?'

'मैं ने तुम्हे गाना सुनाया था: शारद प्राते आमार रात पोहालो। मेरी वंशी, तुम्हें किस के हाथ सौंप जाऊँगी? अब सोचती हूँ, क्या उस में भवितव्य की सूचना थी—क्या मै तब जान गयी थी, देख सकी थी—.. मूक मेरी वंशी, अभी सहसा तुम्हारी बहकी हुई साँस से मुखर हो उठी है, और अभी मूक हो जायगी। होने दो, चुकने दो रात—! मैं ने गाया था, महाराज, यह किस साज में आप मेरे हृदय मे पधारे है? उस में कौतुक भी है, अचरज का चकित भाव भी है, और अपनापे की द्योतक ठिठोली भी है—कोटि शशि-सूर्य लजा कर पैरो में लोट रहे हैं; महाराज, यह किस ठाट से आप मेरे हृदय में पधारे है—मेरा देह-मन वीणा-सा बज उठा है...'

'शीत में बहुत ठिठुर जाये, तो नाक के ठिठुरने के साथ घ्राण-शक्ति मर जाती है। फिर बाहर, भीतर, फूलों मे, मन्दिर के धूमायित वातावरण मे—कहीं कोई गन्ध नही मिलती...लेकिन फिर बिजली की कौंध की तरह सहसा और तीखी वह लौटती है, नासा-पुट गन्ध से भर जाते है, सौरभ की तरग मे मानो डूबने लगता है व्यक्ति, साँस बन्द हो जाता है...वैसी ही स्थिति मे मैं थी—बरसो की घ्राण-शक्ति-हत, और अब सहसा तुम्हारे धाम मे तुम्हारे सौरभ ने छा लिया है.. मै लड़खड़ा गयी हूँ, मूक हूँ, क्या कहूँ नहीं जानती, कैसे कहूँ नहीं सोच सकती.. और तुम अभी चले जाओगे—कभी भी. .फिर मिले—अगर मिले।—तो शायद कुछ कह पाऊँ—मेरी स्तब्ध आत्मा कुछ.. '

'मैं जागती हूँ कि सोती हूँ ? तुम हो, कि स्वप्न हो ? मुझे लगता है कि मै जागती हूँ, जाग कर तुम्हे देखती हूँ, और आश्वस्त हो कर सो जाती हूँ। लेकिन शायद सोती हूँ, सोते मे देख कर जाग उठती हूँ.. '

रेखा बीच-बीच मे उस की ओर देख लेती थी। जानती थी कि वह कुछ सोच रहा है। पर उस ने पूछा नहीं। सहसा भुवन के विषय मे एक नये संकोच ने, एक ब्रीडा ने उसे जकड़ लिया था। क्षण-भर के लिए उस का मन नौकुछिया की उस घटना की ओर गया जब भुवन उस की गोद मे रोया था—कैसे वह कह सकी थी जो भी उसने कहा था ? वह पछताती नही है, उस ने जो कहा था उन्मुक्त उत्सृष्ट भाव से कहा था, पर.. लाज से सिहर कर वह सिमट गयी, पल्ला खींच कर उस ने मानो अपने को और लपेट लिया।

भुवन ने पूछा, "ठंड लगती है ?"

"नहीं, नहीं।" उस की वाणी के अतिरिक्त आवेश को लक्ष्य कर भुवन ने उस की ओर देखा; दोनो की आँखे मिलीं : भुवन की आँखो मे स्नेह-पूर्ण कौतुक था, रेखा की आँखो मे एक अन्तर्मुख लज्जा; पर सहसा उस का मन हुआ, वही बाँह फैला कर भुवन को खींच ले, इस पुरुष को, इस शिशु को, इस—'शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा...'

मानो पहाड़ की छत पर एक हवा-धुली, धूप-मँजी झील; ओट को अधिक कुछ नहीं था, एक ओर खुला घास का पहाड़, जिस के नीचे एक झुरमुट; कुछ दूर पर झील से निकल कर बहता हुआ मुखर पहाड़ी नाला। तेज सनसनाती ठंडी हवा; आकाश मे अत्यन्त शुभ्र उड़ते छोटे मेघ-खंड, मानो पवन अप्सराओ के नये धुले कंचुक-उत्तरीय उड़ाये लिये जा रहा हो। तुलियन।

घास मे से उभरी हुई एक चट्टान पर धूप मे दोनो बैठ गये : सामान और तम्बू आने मे थोड़ी देर लगेगी—कुलियो को पहले रवाना किया गया था पर राह मे वे उन्हे पीछे छोड़ आये थे।

"रेखा, उन के आने से पहले एक गाना गा दो।"

"कैसा?"

"गाने को कैसा भी होता है? जो चाहो—तुलियन के सम्मान में—झील, धूप, हवा, बादल, सब के—"

रेखा खड़ी हो गयी। सामने आ कर उस ने उँगलियों से ठोड़ी पकड़ कर भुवन का मुँह उठाया कि उस पर पूरी धूप पड़े, क्षण-भर उसे निहार कर झुक कर चूम लिया। हँस कर कहा, "यानी भुवन के सम्मान में—सारे भुवन के।"

थोड़ी देर बाद फिर वह बैठ गयी :

यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृन्तों में बीते
कुछ हानि तुम्हारी है क्या?
चुपचाप चू पड़ें जीते।
निश्वास मलय में मिल कर
ग्रह-पथ में टकरायेगा,
अन्तिम किरणें बिखरा कर
हिमकर भी छिप जायेगा।

आरम्भ उत्साह से हुआ था, पर फिर मानो स्वर अनमने हो गये। फिर

भी वह गाती रही, फिर गान रुक गया। रेखा ने कहा, "भुवन, क्षमा करो, वह उदासी मेरी अपनी है, गान की नही। पर और एक सुनाऊँगी थोड़ी देर बाद—"

भुवन उठा। "चलो, धूप मे टहले।"

रेखा भी खड़ी हो गयी। "लेकिन सूर्यास्त के पीछे नहीं दौड़ूँगी। वैसे इस ऊँचाई पर दौड़ भी नहीं सकती—"

भुवन ने कहा, "तुम्हे तकलीफ तो न होगी रेखा? इतनी ऊँचाई पर काफी कष्ट भी हो सकता है—"

"नहीं, नहीं-नहीं।" रेखा ने दृढता से प्रतिवाद किया, मानो दृढता से हृद्‌गति का भी नियन्त्रण हो जाता हो।

दोनो झील से कुछ ऊँचाई पर, सम-तल आगे-पीछे टहलने लगे।

दूर कुलियो का स्वर सुनायी दिया।

रेखा ने कहा, "अच्छा भुवन, फिर सही—रात को—आज तो पूर्णिमा होगी न?"

"सच? हाँ, आज-कल मे ही होनी चाहिए। अच्छा आओ तम्बू, की जगह टीक करे पहले—"

तम्बू भी लग गये घास वाली पहाड़ी पर, झुरमुट से आगे बड़ा तम्बू रहने के लिए, झुरमुट से इधर जहाँ से नाला फूटता था उस के निकट एक छोलदारी सामान और खानसामा के लिए, दूसरी रसोईघर की। दिन छिपते खानसामा ने चाय भी तैयार कर दी। भुवन ने कहा, "इसी समय कुछ डिब्बे-विब्बे खोल कर खा लिया जाय, रात को और बनाने की जरूरत है क्या?"

रेखा ने सहमति प्रकट की। खानसामा को कह दिया गया। वह प्रबन्ध मे लग गया। भोजन समाप्त होते न होते उस ने कहा, "हुजूर हुक्म करे तो चाय फिर दे सकता हूँ—"

भुवन ने कहा, "अच्छा शुक्रिया—ठीक नौ बजे चाय दे देना।"

रेखा ने एक शाल कन्धे पर डाल ली और कहा, "मैं उस समय तक तम्बू के भीतर नहीं आऊँगी।"

"तो मैं ही कौन बैठ रहा हूँ।"

दोनो फिर बाहर टहलने लगे।

दिन छिप रहा था, लेकिन छिपा ठीक नही, क्योकि ड्रामा मे एक आलोक के क्षीण होते न होते दूसरा उज्ज्वल हो आया : बढ़े से चाँद [illegible] चन्द्रिका सारे वातावरण मे फैल गयी।

दोनो किनारे-किनारे बढ़ते हुए काफी आगे निकल गये। यहाँ पानी के बिल्कुल पास एक चट्टान पर बैठ कर रेखा झुक कर हाथ से पानी उछालने लगी। भुवन भी बैठ गया, पानी मे हाथ उस ने भी डाल दिये। पानी [illegible] ठंडा था। लेकिन उस की छलछलाहट बड़ी मधुर थी; ठंड, ऊँचाई और चाँदनी से स्फटिक से निखरे हुए वातावरण मे उस मे छोटे घुंघरुओं की-सी रुनझुनाहट थी।

"अँग्रेजी हो तो माइंड करोगे?"

भुवन ने प्रश्न समझते हुए कहा, "बिल्कुल नहीं।"

रेखा गाने लगी :

लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी!

भुवन ने आगे झुक कर पानी में खेलता हुआ उस का ठिठुरा हुआ हाथ बाहर निकाल लिया, फिर छोड़ा नहीं।

लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी!

बाहर चाँदनी थी, सुन्दर शीतल; ठंड से जड़ित वातावरण ऐसा लग[illegible] था, मानो सारा दृश्य एक विशाल हिम-शिला के अन्दर बँधा हो, और [illegible] का प्रकाश उस शिला को जगमगा दे...परन्तु फिर भी तम्बू के भीतर पीली रोशनी सुन्दर और आकर्षक थी। साढ़े नौ बजे थे, तम्बू के [illegible] आते हुए दोनों ने देखा, भीतर सब सामान ठीक-ठाक सज गया है; मेज [illegible] लैम्प के प्रभा-मंडल के छोर पर दो प्याले रखे हैं, और हरे रंग के तौलि[illegible]

लिपटी हुई चायदानी—'टी-पोची' तो थी नहीं, और चाय गर्म रखने के लिए यह व्यवस्था की गयी होगी...

आगे एक ओर सफरी पलग पर रेखा का बिस्तर बिछा था, चारखाने नीले पलंगपोश से ढका हुआ; दूसरी ओर नीचे लकडी के बडे पटरों पर भुवन का। ये पटरे उस ने इस लिए मँगा लिये थे कि वर्षा मे कदाचित् यन्त्रादि को फर्श से ऊँचा रखना पडे।

रेखा ने कहा, "यह क्या बात है—किफायत, या कि मेरा अतिरिक्त सम्मान—"

"रेखा, खानसामा को तो एक ही खाट का पता था न? और ये पटरे कम नही है—फिर मेरी हवाई मैट्रेस है—" कह कर भुवन ने बिछाने का कोना उठा कर दिखा दिया। "बल्कि, मेरा किसी तरह कम सम्मान नही किया गया है, इस का प्रमाण यह है कि चाहो तो मै बदल लेता हूँ।"

दोनो चाय पीने लगे। कुछ बिस्कुट भी ढके रखे थे।

थोडी देर बाद भुवन बिना कुछ कहे उठ कर बाहर चला गया। जाते हुए तम्बू का पल्ला गिरा गया। रेखा ने इस का अभिप्राय समझ लिया, उस ने कपडे बदल लिये, भीतर जा कर मुँह-हाथ धोया, फिर शाल लपेट ली और पल्ला उठा कर बाहर चली आयी। भुवन कुछ दूर पर टहल रहा था, वहीं चली गयी।

थोडी देर साथ टहलता रह कर भुवन तम्बू की ओर लौट गया।

रेखा कुछ और आगे बढ गयी। एक चट्टान पर बैठ गयी। थोडी देर बाद उस ने एक-एक काँटा निकाल कर जूडा खोला, बाल खोल डाले, फिर सिर को एक बार झटक कर उन्हे कन्धों पर फैला लिया। फिर उस ने चाँद की ओर मुँह उठा कर आँखे बन्द कर ली, उस का सारा शरीर शिथिल हो आया।

ऐसा ही भुवन ने उसे लगभग घण्टे-भर बाद पाया। वह कपडे बदल कर फिर लौटा नही था, यह सोच कर कि रेखा उसी के कारण बाहर रुकी है तो थोडी देर मे स्वय आ जायगी, पर जब वह बहुत देर तक न आयी तब

वह देखने निकला। पहले एक बार यों ही चारों ओर नजर दौड़ायी, पर कहीं गति का कोई लक्षण नहीं देखा, सर्वत्र निश्चलता; तब वह आगे बढ़ा।

जब उस की आँखों ने सहसा रेखा का आकार पहचाना, तो वह वहीं ठिठक गया। रेखा ठीक वैसे बैठी थी जैसे लखनऊ में उस ने देखा था, शिथिल, शान्त, दूर।

और वह वैसा ही ठिटका रहता, अगर यह न देखता कि रेखा की शाल उस के कन्धों से गिर गयी है, और उसे होश नहीं है। कन्धों पर का रेशम चाँदनी में ऐसा चमक रहा है, जैसे छोटे-छोटे पंख।

उस ने शाल उठाते हुए कहा, "पगली, चाँदनी बहुत है, सब पी सकोगी। चलो, जमी जा रही हो ठंड से—ऐसे तो तुम्हीं चाँदनी बन जाओगी।"

"हाँ, बत्ती बुझा दो, पर पल्ला आधा खोल दो कि चाँदनी दीखती रहे।"

भुवन ने एक ओर का पल्ला ऊँचा कर के ऐसे बाँध दिया कि ज़रा खुला रहे, उस से चाँदनी का एक वृत्त रेखा के पास फर्श पर पड़ने लगा।

"अभी थोड़ी देर में यह बढ़ कर तुम्हारे ऊपर आ जायगा, न!" रेखा ने कहा।

"ॲं—हाँ।"

भुवन लेट गया और उस खुली हुई जगह में से बाहर आकाश देखने लगा। बहुत देर तक वह मुग्ध भाव से देखता रहा, कुछ बोला नहीं। न रेखा कुछ बोली।

सहसा उसे ध्यान आया कि चाँदनी का वह वृत्त उस के ऊपर आ गया है। तब यह देखने को कि रेखा जग रही है या नहीं, उस ने उधर देखा।

रेखा ज्यों-की-त्यों बैठी थी, चाँदनी के प्रतिबिम्बित प्रकाश में उसे देखती हुई।

भुवन ने हड़बड़ा कर कहा, "रेखा ठिठुर जाओगी—"

रेखा ने उसे सुना नहीं।

भुवन ने उठ कर उस के कन्धे पकड़े—ठंडे, जैसे बर्फ। बलात् उसे लिटा दिया, कम्बल उढ़ा दिये। धीरे-धीरे उस के चेहरे पर हाथ फेरने लगा, चेहरा भी बिल्कुल ठंडा था। उस ने खाट के पास घुटने टेक कर नीचे बैठते हुए रेखा के माथे पर अपना गर्म गाल रखा, उस का हाथ धीरे-धीरे रेखा के कन्धे सहलाने लगा। भुवन ने कम्बल खींच कर कन्धे ढक दिये। कम्बल के भीतर उस का हाथ रेखा का वक्ष सहलाने लगा—

सहसा वह चौंका। झीने रेशम के भीतर रेखा के कुचाग्र ऐसे थे, जैसे छोटे-छोटे हिमपिंड. और अब तक जड़ रेखा के सहसा दाँत बजने लगे थे।

"पगली—पगली!"

भुवन ने एकदम खड़े हो कर एक हाथ रेखा के कन्धे के नीचे डाला, एक घुटनों के, उसे कम्बल समेत खाट से उठाया और अपने बिछौने पर जा लिटाया। अपने कम्बल भी उसे उढ़ाये, और उस के पास लेट कर उसे जकड़ लिया।

सहसा रेखा ने बाँहें बढ़ा कर उसे खींच कर छाती से लगा लिया, उस के दाँतों का बजना बन्द हो गया। क्योंकि दाँत उस ने भींच लिये थे, भुवन को उस ने इतनी जोर से भींच लिया कि उन छोटे-छोटे हिमपिंडों की शीतलता भुवन की छाती में चुभने लगी...

फिर स्निग्ध गरमाई आयी। भुवन ने धीरे-धीरे उस की बाहु-लता की पकड़ ढीली कर के उसे ठीक से तकिये पर लिटा दिया, और हाथ से उस की छाती सहलाने लगा। चाँदनी कुछ और ऊपर उठ आयी थी, रेखा की बन्द पलकें नये ताँबे-सी चमक रही थीं।

"दिस दाइ स्टेचर इस लाइक अंटु ए पाम ट्री, एंड दाइ ब्रेस्ट्स टु क्लस्टर्स आफ ग्रेप्स।

"आइ सेड, आइ विल गो अप टु द पाम ट्री, आइ विल टेक होल्ड आफ द बाउज देयराफ: नाउ आल्सो दाइ ब्रेस्ट्स शैल बी एज़ क्लस्टर्स आफ द वाइन, एण्ड द स्मेल आफ दाइ नोज लाइक एप्ल्स।"

सहसा भुवन ने कम्बल हटाया, मृदु किन्तु निष्कम्प हाथों से रेखा के

गले के बटन खोले, और चाँदनी मे उभर आये उस के कुचो के बीच की छाया-भरी जगह को चूम लिया। फिर अवश भाव से उस की ग्रीवा को, कन्धों को, कर्णमूल को, पलकों को, ओठो को, कुचों को...और फिर उसे अपने निकट खींच कर ढक लिया :

सालोमन का गीत उस घिरे वातावरण मे गूँजता रहा।

"आइ स्लीप, बट माई हार्ट वेकेथ; इट इज द वॉयस आफ माइ बिलवेड दैट नाकेथ, सेइंग : ओपन टु मी, माइ सिस्टर, माइ लव, माइ डव, माइ अनडिफाइल्ड, फार माइ हेड इज फिल्ड विथ ड्यू, एंड माइ लाक्स विथ द ड्राप्स आफ द नाइट..."

भुवन ने अपना माथा रेखा के उरोजो के बीच मे छिपा लिया : उन की गरमाई उस के कानो मे चुनचुनाने लगी : फिर उस के ओठ बढ कर रेखा के ओठो तक पहुँचे, उन्हें चूमा और प्रतिचुम्बित हुए।

"माइ बिलवेड इज माइन, एंड आइ एम हिज, ही फीडेथ एमंग द लिलीज..."

क्यो भुवन के ओठ शब्दहीन हो गये हैं, स्वरहीन हो गये हैं, क्या वह गीत के ही बोल स्वरहीन हिलते ओठों से कह रहा है या कुछ और कह रहा है?

"रेखा, आओ.."

"आइ रोज अप टु ओपन टु माइ बिलवेड, एंड माइ हैंड्स ड्राप्ड विथ मर्ह एंड फिंगर्स—..."

"चाँदनी बहुत है, सब पी न सकोगी...ऐसे मे तुम्ही चाँदनी हो जाओगी।"

'और तुम, भुवन, तुम? तुम भी, लेकिन जम कर नहीं, द्रवित हो कर'

कभी रेखा जागी। तब चाँदनी शायद दोनो के सटे हुए चेहरों को छू कर ऊपर उठती हुई फिर खो गयी थी, गाल को एक ठंडा स्पर्श उसने

जगह से अन्दर आता हुआ दोनों के तपे माथे और गालों को सहला रहा था; रेखा ने एक लम्बी साँस खींच कर उसे पी लिया, उस के जिस हाथ पर भुवन सोया था उस की उँगलियाँ उस के माथे के उलझे बालों से बड़े कोमल स्पर्श से खेलने लगीं, कि वह जागे नहीं, फिर वह दुबारा सो गयी।

कभी भुवन जागा। उस की चेतना पहले केन्द्रित हुई उस हाथ में जो रेखा के वक्ष पर पड़ा उस की साँस के साथ उठता-गिरता—उफ, कितने कोमल आलोडन से, जिस से भुवन को लगता था कि उस की समूची देह ही मानो धीरे-धीरे आलोडित हो रही है, मानो बहती नाव में वह सोया हो .. अवश हाथ, जिन्हें वह हिला भी नहीं सकता, अवश देह, लेकिन एक स्निग्ध गरमाई की गोद में अवश-चाँदनी वह अधिक पी गया है—'चाँदनी, मदमाती, उन्मादिनी' !...और उस मीठी अवशता को समर्पित वह भी फिर सो गया .

फिर भुवन जागा, इस बार सहसा सजग, कुहनी पर ज़रा उठ कर उस ने देखा, रेखा सीधी सोयी है। उस ने झुक कर धीरे से उस के ओठ चूम लिये; रेखा जागी नहीं पर उस के ओठ ऐसे हिले मानो स्वप्न में कुछ कह रही है। फिर सालोमन का गीत गूँज गया :

"एंड द रूफ आफ दाइ माउथ लाइक द बेस्ट वाइन फार द बिलवेड, दैट गोएथ डाउन स्वीटली, काज़िंग द लिप्स आफ दोज़ दैट आर एस्लीप टु स्पीक .."

और उस ने बड़े ज़ोर से रेखा के ओंठ चूम लिये, वह जागी और उस की ओर उमड़ आयी :

"लेट अस गेट अप अर्ली टु द विनयार्ड्स, लेट अस सी इफ द वाइन फ्लरिश, ह्वेदर द टेंडर ग्रेप्स एपीयर, एंड द पोमेग्रेनेट्स बड फोर्थ : देयर विल आइ गिव दी आफ माइ लव्ज़।"

और वह उमडना फिर एक आप्लवनकारी लहर हो गया।

"आइ एम ए वाल, एंड माइ ब्रेस्ट्स लाइक टावर्स, देन वाज़ आ
इन हिज़ आइज़ एज़ वन दैट फाउंड फेवर..."

ऐसा ही भोर के चोर-पैर आलोक ने उन्हें पाया। पर जगाया नहीं
चुपके से एक ओर हो गया। फिर धूप की एक किरण तम्बू के पल्ले
झाँकती हुई आयी—पर आगे नहीं बढ़ी।

रेखा उठी। पल्ले को खोल कर उस ने गिरा दिया, एक क्षण-भर भुव
की ओर निहारा, फिर बाहर चली गयी।

अनन्तर भुवन उठा। अन्यमनस्क हाथों से उस ने रेखा के कम्बल उठा क
उस के बिस्तर पर डाले, अपने बिस्तर की सलवटों को ठीक-ठाक किया, पल्ले
की ओर बढ़ा पर लौट गया, भीतर जा कर मुँह धोया और पोंछता हुआ
बाहर निकला, एक बार चारों ओर नज़र दौड़ायी; रेखा के तकिये में
गड्ढा था जहाँ उस का सिर रहा होगा सहसा झुक कर उसे चूमा, फि
तम्बू के दोनों पल्ले उलट दिये और बाहर निकल दोनों बाहें फैला कर, सु
की धूप को गले से लगाते हुए मानो नये दिन का अभिनन्दन किया।

•

धूप चढ़ आयी। नाश्ते के बाद भुवन ने पूछा, "तैरने चलोगी?"

"हाँ। मैं कास्ट्यूम लायी हूँ।"

"पानी बहुत ठंडा है—जम जाओगी।"

यह वाक्य प्रतिध्वनि-सा लगा। सहसा स्मृति की बाढ़ आयी। "तु
तो—चाँदनी में ही जम गयी थीं!" भुवन की आँखें उस से मिलीं, उन
कौतुक था। रेखा ने आँखें नीचे करते और मुँह दूसरी ओर फेरते हुए कहा
"और तुम—तुम पिघल गये थे—?"

फिर सहसा लज्जित हो कर सिमटती-सी दूसरी ओर चल दी।

भुवन ने पास जा कर कहा, "लजाती हो—मुझ से—अब?"

"हटो—तुम से नहीं तो और किस से लजाऊँगी? और कौन—

और रेखा तम्बू के अन्दर भाग गयी।

भुवन ने नीचे जा कर खानसामा से कहा कि दोपहर का कुछ हल्का भोजन तैयार कर के रख दे, और फिर पहलगाँव जा कर और जो-कुछ ताजा सामान लाना हो ले आये—दो दिन के लायक, क्योंकि परसों फिर नीचे जाना होगा बाकी सामान के लिए। अभी वे लोग तैरने जायेंगे, लौट कर स्वयं कुछ खा लेंगे। खानसामा ने केवल कहा, "हुजूर पानी बहुत ठंडा है," और अपने काम में लग गया।

भुवन तम्बू में गया। रेखा मेज़ के पास खाट के सिरे पर बैठी कुछ सोच रही थी।

"फिर कुछ लिखना चाहती हो? तुम पहले जीती हो और लिखती हो, कि पहले लिखती हो फिर जीती?"

"यही भेद नहीं पहचान पा रही हूँ—यह मेरा सौभाग्य है। और तुम्हारा वरदान।" कुछ रुक कर वह बोली, "मैं कहानी लिखने जा रही थी —तुम्हारे पढ़ने के लिए। पर तुम्हें सुना ही देती हूँ।"

भुवन ने घुटने टेक कर कुहनियाँ मेज़ पर रखीं, ठोडी हथेली पर जमायी, बिलकुल बच्चों की-सी मुद्रा बनाता हुआ बोला—"सुनाओ।"

"हँसना मत! तुम ने पंडितराज कोक का नाम सुना है?"

"हाँ, पर यह भी सुना है कि सभ्य लड़कियाँ उस का नाम नहीं लेतीं।"

"नहीं लेती होंगी। उन को हक ही नहीं होगा। पर बीच में मत बोलो, नहीं तो नहीं कह पाऊँगी। कोक कश्मीर-राज के मन्त्री थे, पर कैसे हुए इसी की कहानी है। राजा की एक कन्या थी। राज भर में नंगी फिरा करती थी। टोकने पर कहती थी, 'मुझे काहे की शरम? राज्य में मैं किसी को पुरुष मान कर देखूँ तब तो लजाऊँ? मैं किसी को देखती ही नहीं।'

"एक दिन कोक वहाँ आये, उन्होंने राजकुमारी को देखा। उन से आँखें चार होते ही सहसा वह लजा गयी, उसे लगा वह नंगी है, भाग गयी और जा कर कपड़े पहन लिये।"

वह बहुत देर तक रुकी रही। फिर भुवन ने कहा, " 'फिर' पूछने की

इजाजत है।"

"बस। इतनी ही कहानी मैं सुनाना चाहती थी। वैसे बाद में जेक से उस का विवाह हुआ, और उसी को अपने सब रहस्य सिखाने के लिए जेक ने अपना ग्रन्थ लिखा। पर वह अलग कहानी है।"

"ओः!" कह कर भुवन चुप हो गया।

रेखा ने सहसा फिर कहा, "यह कहानी मुझे जानते हो किस ने सुनाई थी? देखो, मेरा शाप छूट गया है, मैं नाम ले सकती हूँ—हेमेन्द्र ने। क्यों, कब, यह नहीं बताना होगा। पर—उसे भी पुरुष कर के मैंने जाना नहीं था।"

भुवन चुपचाप उसे देखता रहा। फिर एक लम्बी साँस उस ने ली। उठ कर आया, धीरे-धीरे रेखा के केश सहलाता रहा।

थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा चलो तैरने—"

"चलो, मै आती हूँ।"

तीसरे पहर दोनों पहाड़ की चोटी पर थे, खुली धूप में। हाथ पकड़े एक बार उन्होंने चारों ओर देखा। निर्जन—नहीं कोई नहीं दीख रहा था। एक ओर झील का विशाल मुकुर, और सब ओर आकाश, नीला, मुक्त, अतल...

रेखा ने कहा, "देखो, हम दुनिया को छत पर हैं।"

तैरने के बाद बदन सुखा कर वह धूप में लेटे रहे थे। फिर लौट कर खाना खाया था, और थोड़ी देर के लिए फिर धूप में आये थे, उस में शरीर अलसा गया तो जा कर थोड़ी देर सो गये थे। फिर रेखा ने उठ कर उसे उठाया था, दोनों बिस्तर ठीक कर दिये थे, और कहा था, "तुमने नहीं चलोगे—फिर धूप चली जायगी?" और उसी तरह भटकते हुए नंगे पैर ही, दोनों यहाँ तक चढ़ आये थे...

भुवन एक चपटी चट्टान पर पाँव फैला कर बैठ गया।

रेखा ने खड़े-खड़े पूछा, "भुवन, मेरी मोहलत कब तक की है?"

भुवन अचकचा गया। कुछ उत्तर न दे सका।

"बोलो?"

भुवन ने धीरे-धीरे कहा, "परसों पहलगाँव जाना होगा, सामान लिवाने—"

रेखा ने शान्त स्वर से कहा, "अच्छा।" उस में कोई आक्रोश, प्रतिवाद, आवेश, कुछ नहीं था, केवल एक स्थिर स्वीकार। उस ने दोनों हाथ उठा कर एक बड़ा-सा वृत्त बनाते हुए फैलाये और फिर नीचे गिरा लिये—न मालूम अँगड़ाई लेते हुए, या उस विस्तीर्ण आकाश को बाँहों में समेटते हुए।

सहसा भुवन ने भर्राये कंठ से कहा, "आओ।" रेखा ने मुड़ कर देखा, उस का हाथ रेखा की ओर बढ़ा है एक आह्वान में, उस पुकार को उसने समझा, भुवन के पास घुटने टेकते और झुकते हुए उस ने फुसफुसाते स्वर में उत्तर दिया, "आयी, लो—"

साक्षी हो सूर्य, और आकाश, और पवन, और तले बिछी घास और चट्टानें, साक्षी हों अन्तरिक्ष के अगणित देवता और अकिंचन वनस्पतियाँ—

लेकिन यह एक सत्य है जो कोई साक्षी नहीं माँगता, सिवाय अपने ही भीतर की निविड समर्पण की पीड़ा के, अपने ही में निहित, स्पन्दित और क्रियाशील असंख्य पीडाओं की असंख्य सम्भावनाओं के . .

सॉझ, रात, दूर टुनटुनाती गोधूली की घंटियाँ, शुक्र तारा, तारे, चाँद, लहरियों पर चाँदनी की बिछलन, छोटे-छोटे अभ्र खंड, ठंडी हवा, सिहरन, ऊँचाई, ऊँचाई के ऊपर आकाश में चुभता-सा पहाड़ की सींग, आकाश .. सब का अर्थ है, सब-कुछ का अर्थ है, अभिप्राय है, ठिठुरे हाथ, अवश गरमाई, रोमाञ्च, सिकुड़ते कुचाग्र, पर्पटियों का स्पन्दन, उलझी हुई देहों का घाम, कानों में चुनचुनाते रक्त-प्रवाह का संगीत—इन सब का भी अर्थ है अभिप्राय है, प्रेष्य सन्देश है; नहीं है तो इन सब के योगफल और समन्वय

प्रकृति का ही अर्थ नहीं है, अभिप्राय नहीं है, केवल उद्देश्य...

क्यों न सब-कुछ का अर्थ है—दूसरा, गहरा अर्थ? ऐसा ही रहा, तो और एक-आध दिन में हर स्थान का, हर दृश्य का, हर बात का एक गहनतर, गोपनतम अर्थ हो जायगा, एक रागात्मक ऐश्वर्य—तब रेखा किसी ओर मुड़ नहीं सकेगी बिना उस अर्थ से अभिसिंचित हुए...भुवन पूछता है, "पहाड़ पर चलोगी?" तो वह सिहर उठती है, "ठंड तो नहीं लगती?" तो लजा जाती है, "आओ, बैठें," तो मानो उस के घुटने मोम हो जाते हैं...लेकिन ऐसा रहेगा नहीं, और एक दिन भी नहीं, यह दोपहर ढलेगी तो जो रात होगी, उस के बाद जो सवेरा होगा..

तीसरे पहर फिर घूमने पहाड़ पर जाने की बात थी, शायद उस पार तक, पर दोपहर की संक्षिप्त नींद से उठ कर उन्होंने देखा, बादल का एक बड़ा-सा सफेद साँप झील के एक किनारे से उमड़ कर आ रहा है, और उस की बेडौल गुंजलक धीरे-धीरे सारी झील पर फैली जा रही है, थोड़ी देर में वह सारी झील पर छा कर बैठ जायगा, और फिर शायद उस का फन उस पहाड़ की ओर बढ़ेगा—

भुवन ने कहा, "शायद बारिश हो, नहीं जायेंगे।"

तम्बू के सामने के चँदोवे में, नीचे पटरे डाल कर उन पर कुछ बिछा कर दोनों बैठ रहे, देखते रहे बादल को धीरे-धीरे झील पर छाते हुए। जब वह घाटी में उमड़ कर आया, तब उस का बड़ा स्पष्ट आकार था, पर झील पर आ कर वह बिखरने लगा था, बादल की अपेक्षा एक धुन्ध की तरह ही, झील की सतह को दुलराता हुआ .

"देखते हो, बादल कैसे झील को दुलराता है—"

ओफ़, ये गहनतर अर्थ...रेखा की छाती में गुदगुदी होने लगती है, वह चाहती है कि भुवन का सिर खींच कर वहाँ छिपा ले, भुवन के कंधे को भींच ले फूलों के बीच जहाँ उस ने दो दिन पहले पहली बार फूल

था...लेकिन वह निश्चल बैठी है, बिल्कुल निश्चल, भुवन का ही हाथ उस
का हाथ खोजता आता है और उस पर टिक जाता है, बहुत धीरे-धीरे उसे
दुलराता हुआ...

उस मे भी अर्थ है, गहनतर अर्थ, उस धीरे-धीरे दुलराते हाथ मे...

झील बिल्कुल छिप गयी। केवल एक सफेद धुन्ध की दीवार : कही
कोई दिशा नहीं, क्षितिज नहीं, दोनो धुन्ध में खो गये, केवल वे दोनो, तम्बू
का चँदोवा, और धुन्ध, धुन्ध, व्यापक धुन्ध...

भुवन ने सहसा उदास हो कर कहा, "कल—"

रेखा ने सहसा उसे रोक दिया। कल कल, आज क्यों? वह नही कहने
देगी भुवन को कुछ भी—पर भुवन ने जब फिर कहना चाहा, "कल इस
समय—" तो रेखा ने बढ कर अपने ओठ उस के ओठो पर रख दिये और
उसे चुप करा दिया।

बस इतना ही, चन्दोवा भी नही, धुन्ध मे केवल चेहरे, केवल मिली
हुई आँखे, ओठ—

लेकिन रात को जब भुवन ने बडे आदर से उसे अपने पास लिटा कर
अच्छी तरह उढा दिया, और एक कुहनी पर टिके-टिके धीरे-धीरे उसे थपकने
लगा, तब एक बडी गहरी उदासी ने उसे पकड लिया। भुवन की किसी
बात का कोई उत्तर उस ने न दिया, उस के पास लेटी, एक शिथिल हाथ
उस की कमर पर डाले, अपलक, शून्य, न देखती हुई दृष्टि से उस की
ओर देखती रही। भुवन जब बहुत आग्रहपूर्वक पूछता, तो कभी अंग्रेजी
कभी बँगला मे, कभी हिन्दी मे कुछ गुनगुना देती—कभी पद्य, कभी गद्य
-अपनी ओर से कुछ न कहती। एक बार भुवन ने कुछ शिकायत के से
स्वर मे कहा, "तुम सिर्फ कोटेशन बोल रही हो—अपना कुछ नहीं
बोलोगी?"

तब उस ने खोये से स्वर मे कहा, "अपना! अपना क्या? मैं सिर्फ

कोटेशन बोलती हूँ, भुवन, क्योंकि मै स्मृति मे जी रही हूँ।"

भुवन चुप हो गया। धीरे-धीरे रेखा की आविष्ट उदासी उस पर छा गयी, उस ने धीरे-धीरे अपना सिर रेखा के माथे पर टेक दिया और निश्चल हो गया। बीच-बीच मे वह अनमने हाथ से उसे दो-एक बार थपक देता, या अनमने ओठो से उस की पलके छू लेता, बस।

बहुत हल्की-सी बारिश होने लगी। तम्बू पर बूँदो की थाप पहले तीखी पड़ी, पर वह जैसे जैसे भीगता गया वह थाप भारी होती गयी; थोड़ी देर मे एक मन्द्र एकस्वर उन के उदास राग मे तानपूरे की संगत करने लगा...

न जाने कब धीरे-धीरे दोनो सो गये। प्रकृति को कोई अर्थ नहीं है, अभिप्राय नही है, केवल उद्देश्य, प्राणिमात्र उन के अनुगत हैं।

वापसी का रास्ता सदैव बहुत छोटा होता है, विशेष कर जब दुनिया की छत पर से नीचे उतरे : वह उतराई वैसी नही होती कि पैर पसार कर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मानो मुक्त, हवा पर तिर जाये और जा कर उतरे न जाने कहाँ दूर, दूर वायुमण्डल के पार एक श्वासरुद्ध, निरे आलोक की दूसरी दुनियाँ मे, यह उतराई होती है नीचे—मिट्टी की, लोगो के पैरो से रौंदी हुई धरती पर...

पहलगाँव दीखने लगा, तो रेखा ने धीरे-धीरे, बिना आग्रह के मानो उस की बात न भी मानी जाय तो कोई बात नहीं, कहा, "अभी तो नहीं पहुँचे होंगे—उधर से ऊपर से चलें—"

भुवन तुरत मुड़ गया।

चलने से पहले भुवन ने कहा था, "रेखा, अभी क्या जल्दी है, और दो दिन रह जाओ—मैं कल जा कर सामान लिवा लाऊँ—"

रेखा ने उसकी आँखो में देखा था। नहीं, औपचारिक बात नहीं थी, भुवन सचमुच उसे ठहरने को कह रहा था।

यही ठीक है, यही ठीक है। यहाँ वह विदा लेने नही आयी, विदा देने आयी है। भुवन उसे रहने को कहता रहे, सुनते-सुनते ही वह चली जाय। यही ठीक है.. उस ने सहसा कड़े पड़ कर कहा था, "नही भुवन, जाऊँगी। मैंने वचन दिया था।"

चलते हुए वे सीधे रास्ते से नीचे नही उतरे थे, पहले ऊपर चढ़े थे—पहाड़ की छत पर—रेखा, आगे-आगे। ऊपर पहुँच कर रेखा ने एक बार चारो ओर देखा था, रुक-रुक कर, मानो एक-एक स्थल को दृष्टि मे बसाते हुए, स्मृति की गाँठ बाँधते हुए, फिर कहा था, "भुवन, जाने से पहले मै एक बात कहना चाहती हूँ। आइ एम फुलफिल्ड। अब अगर मै मर जाऊँ तो परमात्मा के—प्रकृति के—प्रति यह आक्रोश ले कर नही जाऊँगी कि मैंने कोई भी फुलफिलमेंट नही जाना—कृतज्ञ भाव ही ले कर जाऊँगी—परमात्मा के प्रति और—भुवन, तुम्हारे प्रति।" और हठात् वह भुवन के पैरो की ओर झुक गयी थी और भुवन के चौंकते-न-चौंकते उस के पैरों की धूल ले ली थी।

चुपचाप वे उतरते गये थे। रुद्धकंठ, स्तब्धप्राण, आविष्ट।

फिर सहसा पहलगाँव दीख गया था। रेखा रुक गयी थी, पहलगाँव की ओर ताकते-ताकते ही उस ने भुवन का हाथ पकड़ा था और दबा कर छोड दिया था।

जिस रास्ते से वे चले, उस से नदी या कि बड़ा पहाड़ी नाला पड़ता था। पुल था, वे पार हो गये। पर पहलगाँव इसी पार था, इस नदी और शेषनाग नदी के संगम पर। फिर भी दोनो उसी पार से धीरे-धीरे नाले के साथ उतरने लगे।

आधा मील आगे जा कर भुवन ने देखा, एक पेड का तना नदी के आर-पार पडा है। स्पष्ट ही वह पुल का काम देने के लिए डाला गया है, पैदल इस पर आ-जा सकते है। भुवन ने पूछा, "इस से पार चले—सकोगी?"

"अब सब-कुछ सकूँगी, भुवन!" रेखा बोली, भुवन ठीक समझ नहीं सका कि इस का अभिप्राय क्या है। रेखा आगे बढ कर तेज पैरो से

तने पर चल चली। मॅझधार जा कर रुकी, नीचे पानी की ओर देखा, और फिर वहीं बैठ गयी। भुवन भी कुछ दूर आगे बढ़ कर बैठ गया।

रेखा गाने लगी। उस का गला भर्रा रहा था, स्वर मानो अब टूटा, अब टूटा, पर वह चेहरे पर एक मुस्कान लिये गाये जा रही थी, किसी बात का उसे होश नहीं था, यहाँ तक कि भुवन को लगा, उस की उपस्थिति की खबर भी रेखा को नहीं है :

"तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे
देबे कि गो वासा आमाय देबे कि एकटि धारे।
तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे।
आमि शुनबो ध्वनि काने आमि भरबो ध्वनि प्राणे
आमि शुनबो ध्वनि
सेइ ध्वनि ते चित्त वीणाय तार बाँधिबो बारे-बारे।
तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे।
देबे कि गो वासा आमाय देबे कि—..."

मानो दूर, अलग हटाया हुआ, भुवन सोचने लगा। एक अद्भुत भाव उस के मन में उठा। अभी पीछे देखने, सोचने, परखने की सामर्थ्य उस में नहीं थी, इतना ही उस के मन में उठा कि यह उस के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्धि-स्थल है ..क्या वह भी रेखा की तरह कह सकता है कि अब वह फुलफिल्ड है, कि अब वह मर सकता है? पर फुलफिल्ड होना क्या है? एक तन्मयता उस ने जानी है, एक अभूतपूर्व तन्मयता; लेकिन स्वयं वह जो जाना है उस से कुछ अधिक और कुछ अधिक गहरा रेखा उस के निमित्त से जान सकी है—अधिक गहरा कि वह स्त्री है, और स्त्री होते हुए भी उस ने वह साहस किया है जो शायद भुवन में नहीं है, अधिक गहरा इस लिए, कि उसे जानने के लिए पहले जाना कई कुछ भुलाना भी पड़ा है... तो क्या यही फुलफिलमेंट नहीं है कि कोई किसी को वह चरम अनुभूति दे सके—देने का निमित्त बन सके—जो जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है? सचमुच, ऐसे सन्धि-स्थल पर

ही मरना चाहिए, यह कहते हुए कि मै कुछ दे सका जो मुझ से बड़ा है, मुझ से अच्छा है ..अगर वह यही से नीचे कूद पड़े—रेख गाना समाप्त कर के मुड कर देखे कि वह नही है, गुम हो गया है, तो—

लेकिन रेखा ने सहसा गाना बन्द कर दिया। पुकारा "भुवन! भुवन!"

"हाँ!"

"यहाँ आओ!"

भुवन पास सरक आया।

"मेरा हाथ पकडो।"

भुवन ने पकड लिया।

"भुवन तुम वैज्ञानिक हो। लेकिन तुम्हारी आकाक्षा क्या थी—वैज्ञानिक होने की ही, या और कुछ?"

"क्यो?" कह कर भुवन तनिक रुका, फिर जैसे सच बता देने को बाध्य हो, ऐसे बोला, "मेरा स्वप्न था डाक्टर होने का—बहुत बडा सर्जन—"

"और मेरा था वायलिनिस्ट होने का—बहुत बडी वायलिनिस्ट।"

दोनो थोड़ी देर चुप रहे। फिर रेखा ने धीरे-धीरे कहा "उसे मै वायलिन भी सिखाऊँगी—और वह बडा सर्जन भी होगा।"

थोडी देर बाद वह खडी हो गयी। भुवन का हाथ पकडे-पकडे उसे उठाया, और हाथ पकड़े ही पार हो गयी।

बस्ती के पास भुवन ने पूछा, "पहलगॉव ठहरोगी? मै चौथे-पॉचवे आऊँगा डाक-वाक देखने—"

"शायद, अभी कुछ सोचा नही—"

लेकिन भुवन के कुली जब आ गये, और वह उन्हे आगे चला कर थोडी देर होटल के बरामदे मे रेखा के पास खडा रहा, और फिर सहसा कुछ भी कहना असम्भव पा कर रेखा के हाथ को जोर से भीच कर, एक कन्धे से उस का आधा आलिंगन कर के जल्दी से उस से टूट कर, अलग हो कर बिना लौट कर देखे चला गया—रेखा भी बोली नही, केवल बेबस हाथ बढाये खडी रह गयी—उस के घंटा-भर बाद जब कुली ऊपर से रेखा का सामान

ले कर आ पहुँचा, तो वह रुकी नहीं, तत्काल बस मे जा बैठी और श्रीनगर के लिए रवाना हो गयी।

चौथे-पाँचवे दिन भुवन पहलगाँव आया। सीधा होटल गया। मालूम हुआ कि रेखा वहाँ ठहरी नहीं, उसी दिन चली गयी। फिर वह डाकघर डाक पूछने गया। हाँ, तीन-चार चिट्ठियाँ थी। उस ने ले ली। हाँ, एक बडे लिफाफे पर रेखा के अक्षर थे। उसने लिफाफा खोला। ठीक पत्र नहीं था, अलग-अलग कागज़ के कई टुकडे थे। भुवन ने जहाँ-तहाँ पढा—एक-आध जगह कविता की पंक्तियाँ थीं—

आई सेड टु माइ सोलः बी स्टिल, एंड वेट विदाउट होप
फार होप वुड बी होप आफ द रांग थिंग, वेट विदाउट लव
फ़ार लव वुड बी लव आफ द राग थिंग; देयर इज़ येट फेथ,
बट द फेथ एंड द लव एंड द होप आर आल इन द वेटिंग।. .

फिर भुवन ने सब कागज़ जेब मे डाल लिये कि तुलियन जा कर एका[illegible] मे पढेगा . . .

"मै सोचना चाहती हूँ, पर सोच नहीं सकती। ठीक सोचना चाहती हूँ, इस मे भी सन्देह हो आता है।

"कुछ महान्, कुछ विराट् घटित हुआ है, ऐसा थोड़ा-सा आ[illegible] होता है। लेकिन कहाँ? मुझ मे? मैं उस विराट् का वाहन हूँ, मा[illegible] हूँ—मैं अकिंचन, नगण्य, मैं जो अगर कभी थी भी तो अब नहीं हूँ। [illegible] को? मेरे साथ?

"कुछ स्तब्ध, कहीं निश्चलता, कहीं, न जाने, कैसी एक शान्ति[illegible]

"मैं एक खडा हुआ पानी थी : एक झील, एक पोखर, एक ताल, शैवालो से ढका हुआ। तुमने आँधी के तरह आ कर मुझ को [illegible]ड़ित कर दिया, मुझ मे अनन्त आकाश को प्रतिबिम्बित कर दिया। [illegible] कहने दो, भुवन, मेरी यह देह जैसे तुम्हारी ओर उमडी थी, वैसे क[illegible]

उमडी, शिरा-शिरा ने तुम्हारा स्पर्श माँगा, तुम्हारे हाथो का स्पर्श, तुम्हारी बाहो की जकड, तुम्हारी देह की उत्तेजित गरमाई लेकिन—तुम मे डर था—डर नही, एक दूर का कोई अनुशासन, कोई एक मर्यादा, जिस के स्रोत तक मेरी पहुँच नहीं थी। और जिस से छुआ जा कर मेरा तूफान सहसा शान्त हो गया, मैं फिर उसी तल पर पहुँच गयी जिस तल पर ताल सदा से था—ढका हुआ, निश्चल, खड़े पानी का एक उद्देश्यहीन जमाव—

"लेकिन नही। यह ढका नही, आकाश का प्रतिबिम्ब उस मे रहा; फिर तुमने फिर मुझे जगा दिया—क्षण-भर के लिए, लेकिन पहचान के क्षण के लिए, अनन्य-सम्पृक्त एक क्षण के लिए—भुवन, मै तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ . . ."

"न, मै कुछ मानूँगी नहीं। तुम्हारे जीवन की बाधा नही बनूँगी, भुवन, उलझन भी नहीं बनूँगी। सुन्दर से डरो मत—कभी मत डरना—न डर कर ही सुन्दर से सुन्दरतर की ओर बढते है।

"लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना—मेरी यह कुंठित, बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर, मुक्त, ऊर्ध्वाकान्ती . ."

"सोचती हूँ, जीवन के हर मोड पर मुझे स्नेह मिला है, करुणा मिली है, साहाय्य मिला है। इतनी करुणा, इतनी अनुकम्पा, इतनी भलाई—कभी मैं अपने ऊपर खीझ उठती हूँ कि मुझ में क्यो नहीं एक प्रतिस्फूर्ति जागती—क्यो मैं ऐसी अचल अचेतन हूँ? कृतज्ञता—हाँ, कृतज्ञता बहुत है, पर कृतज्ञता जीवन को सच नहीं बनाती, प्यार सच बनाता है; क्योंकि कृत-ज्ञता मे व्यथा नहीं है, और बिना व्यथा के सत्य नही है। कितनी सच बात कही थी तुम ने हमारे पहले विवादो मे—आज व्यथा मे मैं उस सच को जानती हूँ, भुवन। पर क्यो सब-कुछ अयथार्थ है, क्यो कुछ भी मुझे नहीं छूता? तुम भी, भुवन,—तुम से मैंने पूछा था कि तुम यथार्थ हो? क्योंकि मैं जागी थी और एक बड़ी विमूढता मुझ पर थी—एक समर्पण मेरे भीतर जाग रहा था पर अयथार्थ को मै समर्पण करना नही चाहती थी...वह

डर...अयथार्थ को समर्पण करने का डर क्या होता है भुवन, तुम जानते हो ? न, तुम कभी न जानो वह डर...

"लेकिन उस शाप से मै मुक्ति पा सकी, भुवन ! चाहे थोडी देर के लिए ही, चाहे बीच-बीच मे कुछ क्षणो के लिए ही, मैने पहचाना कि तुम हो, सचमुच हो, कि तुम्हीं को मैंने समर्पण किया है।"

"मेरी यह सोयी अवस्था फिर लौट आयी है, पर वैसी जड नही—मैं मानो स्वप्नाविष्ट हूँ। स्वप्न मे चलती हूँ, खाती-पीती हूँ, काम करती हूँ, और करूँगी।"

"भविष्य मैं अब भी नही मानती। तुम्हारे मन, हृदय, आत्मा की बात मैं नहीं जानती, नहीं जानती कि मेरे तुम्हारे जीवन मे आने का क्या अर्थ या महत्व है। यह भी नही जानती कि तुम्हारे जीवन में आयी भी हूँ कि नहीं। लेकिन पूछूँगी भी नही। साल-भर पहले—अभी कुछ महीने पहले तक भी—हम राह पर इस तरह मिलते—मिलने की सम्भावना भी होती—तो मै उस मिलने का भविष्य जानना चाहती। जानना चाहना ही स्वाभाविक होता। पर अब मै अपने का अकुश देती हूँ कि पूछूँ, पर प्रश्न मेरी जीभ पर नही आता—मेरे मन मे ही ठीक आकार नहीं लेता, कि स्वयं अपने से भी पूछ सकूँ। फुलफिल्ड : शान्त, स्तब्ध, निर्वाक, मैं बस हूँ, कोई प्रश्न मेरे भीतर नहीं उठते और भविष्य से मैं कुछ पूछना नहीं चाहती।

"मैने बार-बार कहा है कि भविष्य नहीं है, केवल वर्तमान का प्रसार है, उसी की अनिवार्य अन्तःसम्भावनाओं का स्फुरण : अब मैं यह अनुभव करती हूँ। पहले मानती थी, अब उस की तीखी अनुभूति टीस-सी मेरे अन्तर में स्पन्दित हो रही है। वह सच है, और मैं उस के आगे झुकती हूँ।

"जब तक जो है, उसे सुन्दर होने दो भुवन; जब वह न हो, तो उस का न होना भी सुन्दर हो ..."

एक कविता तुम्हारे लिए रख रही हूँ, नाम है 'छतरी' :

वर्म दैन दोज ड्रीम्स इन हिच ट अर्थ गिव्ज वे

आइ एम अवेक एड वाक आन सालिड स्टोन,

विदाउट यू डिसेम्बाडीड, एवरी डे
अगेंस्ट द ईस्ट विड गोइंग होम एलोन।
इन ड्रीम्स आफ फालिंग देयर इज ओनली ड्रेड,
फाल्स एंड, ड्रीम्स फेल, नाइट फाल्स, नाइटमेयर रिमेन्स,
ए गोस्ट आफ फ्लेश एंड ब्लड, आइ मस्ट बी फेड
मस्ट ओपेन एन अम्ब्रेला ह्वेन इट रेन्स।
ह्वेयर विल इट आल एण्ड ? विल इट एंड एट आल ?
हाइ द विंड राइजेज, कोल्ड द रेन विल फाल,
बट इफ द सन शोन इट वुड ओनली शाइन
आन अनरीएल सीन्स एंड ग्रीफ एज रीअल एज माइन:
अगेंस्ट द नाइट विड गोज ए लिविंग गोस्ट,
रीअल, फार इट लव्ज, एंड लैक्स ह्वट इट लव्ज मोस्ट।

"तुमने मुझे एक बार भी नहीं बताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय में क्या भाव है। प्रेम, स्नेह, दया, समवेदना, करुणा, क्या ? या कि केवल मेरे दुःख ने एक प्रतिध्वनि तुम में जगा दी, बस ? क्यों तुमने मुझे अपने इतने निकट लिया ?

"या कि मैं केवल एक धृष्ट साहसिका हूँ, जो अनधिकार तुम्हारे जीवन में घुस आयी ? या...

"यही एक ही प्रश्न मैं तुम से पूछना चाहती थी, भुवन, आगे-पीछे कुछ नहीं, केवल यही एक बात: और इस के लिए साहस नहीं बटोर पायी। तुम्हारे सामने न जाने क्यों एक संकोच जकड़ लेता है..."

"मैं उदास हो गयी थी, तुम भी उदास हो गये थे। तुम्हें उदास करना मैं नहीं चाहती थी। तुम्हें उदास देखना कभी नहीं चाहती...भुवन, स्वभाव से मैं वैसी नहीं हूँ, तुम ने मुझे उदास, दुःखी, प्रतिमुखी, अवरुद्ध ही जाना है—सहा है, मेरे भुवन, बड़ी करुणा और स्नेह के साथ सहा है—पर मैं वैसी नहीं हूँ। मैं हँसती थी। पथ-तट के एक उपेक्षित फूल को

देख मैं विभोर हो सकती थी, लहरों के साथ दौड़ सकती थी, और नदी क
हवा के साथ मेरा मन उड़ जाता था हँसते सुनहले पंख फैला कर, अन्तरि
को मेरी हँसी से गुँजाता हुआ ..

"लेकिन भुवन, धीरे-धीरे वह हँसी मरती गयी। मैं कहते लज्जित हूँ
पर वर्षों से वह मरती रही है, धीरे-धीरे, 'ड्राप बाइ ड्राप स्लोली, ड्राप बा
ड्राप आफ फायर: एलास माई रोज आफ लाइफ गान आल
प्रिक्ल्स...

"तुम ने मुझे फिर वह हँसी दी। थोड़ी देर के लिए। लेकिन वह
सच्ची, मुक्त।"

"अब लगता है, क्या हुआ उस का? अकारण, निराधार हँसी, निष्प
रिणाम हँसी...

"लेकिन सच्ची हँसी तो स्वतःप्रमाण है, स्वयम्भू, निष्परिणाम..."

चन्द्रमाधव के पहचानते ही रेखा के चेहरे पर विस्मय की दौडती लहर के साथ-साथ घने दुराव की एक छाया भी स्पष्ट हो गयी है, इसे देख कर यदि चन्द्रमाधव को क्लेश हुआ तो उस ने उसे दीखने नहीं दिया। कुछ तो वह प्रत्याशित ही था क्योंकि उसी ने तो रेखा को कहा था कि उस से कोई सम्पर्क न रखे, राह मे मिल जाने पर उसे पहचाने नहीं, बुलाये-बोले नहीं—उस के जीवन से निकल जाय। पर उस से भी अधिक कारण यह था कि दो दिन पहले गौरा से भेंट होने पर गौरा के चेहरे पर भी कुछ वैसा ही भाव उसे दीखा था, और उस से वह तिलमिला गया था क्यो कि गौरा से उस ने कभी कुछ नही कहा था, बल्कि गौरा का शुभेच्छु बन कर उस ने भुवन से अपनी मैत्री को भी जोखम मे डाला था.. कल की यह छोकरी, उस से—चन्द्रमाधव से—मिले और ऐसी चिकनी साफ दीवार बन कर कि कहीं उसे छुआ न जा सके, भेदने की तो बात अलग, और तिस पर ऊपर से इतनी चिकनी, विनीत, मानो अपनी सकल्प-शक्ति क्या होती है यह उस ने कभी जाना ही नहीं! और उस की तिलमिलाहट उस के चेहरे पर झलक गयी थी, गौरा ने उसे देख लिया था—यह जलालत भी उसे सहनी पडी थी! बातो के सिलसिले मे गौरा ने कहा था, "आप भुवन दा के मित्र हैं, अब तक यही जानती थी, अब जानूँगी कि आप उन के शुभ-चिन्तक है। और मेरे शुभचिन्तक तो आप है ही, यह तो सदा से जानती

हूँ।" वह ताकता रह गया था, गौरा कह क्या रही है—क्या यह सीधे-सीधी बात है, या कि मखमल मे लिपटी हुई जूती, या.. फिर वह सँभल गया था, मगर एक बार तो गौरा ने देख ही ली थी उस की झेंप और तिल-मिलाहट...

रेखा को वह नही देखने देगा। इतना ही नही, रेखा से वैसी बात हो वह नही होने देगा। रेखा बच्ची नही है। औरत है, अनुभवी औरत है। और अब—कश्मीर से भुवन के पास से लौट कर अब—क्या अब भी उस की वही हेकड़ रहेगी जो पहले थी? वह तो नामुमकिन बात है, और शायद उस की मदद से गौरा की भी अक्ल ठिकाने लायी जा सके।

रेखा ने कहा, "यह अप्रत्याशित कृपा है, चन्द्रमाधव जी—"

चन्द्र ने भी बडे विनीत स्वर मे कहा, "कृपा आप की है रेखा जी, मैं तो सर्वदा उस का प्रत्याशी हूँ।" फिर कुछ रुक कर, "पिछली बातें, आशा है, आप ने भुला दी है—"

रेखा ने सम स्वर से कहा, "भुलाने की बात तो तब हो जब याद करने को कुछ रहा हो: हॉ, आप का न बोलने का जो आदेश था उसी की बात अगर कह रहे हैं तो वह तो आप ही का—"

यह औरत जात! लेकिन यह भी पी जाना होगा—झगड़े का न अवसर है, न यह स्थान है, न झगड़ा कर के फायदा है। रेखा को झुकना पड़े, वह समय आयेगा, अपने-आप आयेगा, जरूर आयेगा!

"नही रेखा जी, मै केवल अपने दोषो की बात कह रहा था—उन्हें भूल कर फिर आप मुझे फ्रेंड का गौरव दे सकें तो—"

"फ्रेंडशिप बाहर की स्थिति नहीं है, चन्द्रजी, वह अपनी प्रवृत्ति का नाम है। मैं तो फ्रेंड के सिवाय कुछ हो ही नहीं सकती अब—"

चन्द्र ने ऑखे सकोच कर उस की ओर देखा। मन-ही-मन कहा, 'ऐसी बात है—फ्रेंड के सिवा कुछ हो नहीं सकतीं आप हम सब के लिए, सारी दुनिया के लिए—केवल एक ही व्यक्ति है जो—"और वह उस के चेहरे में खोजने लगा उस एकमात्र व्यक्ति के प्रभाव की कोई छाप—

यह जो दीवार की-सी दूरी है, वह आवरण, यह केवल गहरी अनुभूति का परदा नहीं है जो भोक्ता को बाकी जगत् से अलग कर देता है ? जो भी किसी ऐसी अनुभूति से गुजरता है, उस की छाप को एक कवच की तरह पहन लेता है, और वह उसे औरों से अलग कर देती है, वैसे लोगों की एक अलग बिरादरी हो जाती है—रेखा कहेगी जीवन की नदी में अनुभूति के द्वीप.. अगर वह थोडा-सा कोंच कर, कुरेद कर, नीचे उस सतह तक पहुँच सके जहाँ जीव को दर्द होता है, वह तिलमिलाता है ’

प्रत्यक्ष उस ने कहा, “थैंक यू, रेखा जी, मैं भी शायद अब फ्रेंड के सिवा कुछ नहीं हो सकता।” वाक्य का दोहरा अर्थ है, यह उस ने लक्ष्य किया पर उस में दोष क्या है, कलाकार तो हमेशा दोहरे अर्थों से खेलता ही रहता है। “पर क्या हम लोग बाहर कहीं नहीं चल सकते—वाई० डब्ल्यू० लाउंज तो बात करने के लिए नहीं है।”

“चलिए।”

जीने से नीचे उतर कर चन्द्र ने कहा, “कश्मीरी गेट में हजरतगंज वाली बात नहीं है—यहाँ टहला नहीं जा सकता। टहलना चाहें तो आगे कुदसिया बाग की तरफ— ?”

रेखा ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, “नहीं।” फिर कहा, “चलिए नयी दिल्ली की तरफ चलें—”

चन्द्र ने ताँगा ठहराया, दोनों सवार हो गये। काफी देर तक चुपचाप चलते रहे। फिर चन्द्र ने पूछा, “भुवन जी की कोई खबर है ? मुझे तो बहुत दिनों से पत्र नहीं आया—”

“पत्र तो मुझे भी नहीं आया। पर कश्मीर में ही हैं, रिसर्च कर रहे हैं।”

चन्द्र ने प्रतीक्षा की कि रेखा कुछ और कहे। फिर बोला, “आप से तो भेंट हुई होगी ?”

“हाँ।” इस बार और भी संक्षिप्त उत्तर था।

चन्द्र थोड़ी देर सोचता रहा, दाँव तोलता रहा। फिर उस ने कहा

"गौरा जी—गौरा को आप जानती है न ? भुवन की शिष्या और अन्तरंग मित्र—कह रही थी कि आप भी भुवन जी के साथ गयी है; मुझ से आप के बारे मे पूछ रही थी।" तनिक रुक कर, "अपने मास्टर साहब के लिए बहुत चिन्तित थी।"

चन्द्र के प्रश्न पर रेखा का मन कुछ भटक गया था। पर अन्तिम बात से फिर एकाग्र हो आया। "क्यो ?"

चन्द्रमाधव एक उडती-सी हँसी हँसा। मानो कहता हो, उस का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है, और ऐसी मामूली बात मे मेरी कोई दिलचस्पी भी नही है।' फिर साभिप्राय बोला, "गौरा भुवन की सब से प्रिय शिष्या है—और अब शिष्या नही, मित्र है।"

"मैं जानती हूँ।" भुवन के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति आवश्यक है, कुछ ऐसी भावना से रेखा ने कहा, "भुवन जी ने स्वयं मुझे बताया था।"

"अच्छा !" चन्द्र ने किंचित् आश्चर्य दिखाते हुए कहा, "तब तो आप को उन से जरूर मिलना भी चाहिए।"

"पर वह तो मद्रास मे है न ?"

"थी। आजकल यहीं हैं। उन की शादी की बात चली थी दो बरस पहले, तब भुवन की सलाह से मद्रास चली गयी थी संगीत सीखने। वहाँ से लौट आयी हैं।"

"ओ।"

फिर थोड़ी देर मौन रहा। नयी दिल्ली मे वेंगिको के नीचे ताँगा रुका; चन्द्र ने कहा, "यहाँ चाय पियेंगे, काफ़ी तो दिल्ली की अच्छी नहीं होती-"

"जो आप चाहें।"

बैठ कर चन्द्र को सहसा याद आया, गौरा की बात से असली बात चीत बीच ही मे रह गयी थी। यो गौरा की बात रेखा को बताना भी इतना जरूरी नहीं था, पर सब से जरूरी था यह जानना कि रेखा और भुवन के बीच स्थिति क्या है—दोनों कितने गहरे में हैं...

"मैंने तो सुना था आप नैनीताल गयी है और भुवन कश्मीर, पर

गौरा कह रही थी कि आप भी कश्मीर गयी थी—मुझे तो अचम्भा हुआ—"

"हाँ, मैं कश्मीर भी गयी थी। नैनीताल पहले गयी थी, लौट कर फिर कश्मीर।" रेखा ने स्थिर भाव से कहा। फिर सहसा एक ऊब की लहर सी उस के भीतर उमडी: जानना चाहता है तो जान ले न, यह भी अधूरी बात है, एक बार कह ही दी जाय पूरी बात तो यह पैतरेबाजी खत्म हो। उस ने अनमने से ढग से जोड दिया, "डाक्टर भुवन भी नैनीताल गये थे; वह पहले लौट कर कश्मीर गये, मैं सीधी चली गयी थी।"

उस के अनमनेपन की ओर लक्ष्य कर के चन्द्र सोचने लगा, यह बात क्या है ? क्या सारी बात ऐसी है कि इस अनमने ढग से कह डाली जाय—या कि बात इतनी बड़ी है कि अब छिपाव को भी छोड दिया गया है ? ऐसा है तो—अगर भुवन न होता, वह होता, तो वह भी छिपौवल छोड देता—बल्कि इतना भी नही, वह ऐलानिया कहता, वह काम छोड़ कर रेखा को ले कर कहीं चला जाता बर्मा-वर्मा, वह प्रेम क्या जिस के लिए सब-कुछ वारा न्यारा न कर दिया जाय ? आशिक वह जो सर पै कफन बाँधे फिरे, यह क्या कि आशिकी भी हो रही है, रिसर्च भी, और नौकरी भी चल रही है.. ...

"कैसा है पहाड़ो का मौसम ? सुना है बड़ी भीड़ है इस साल, ठहरने को भी कहीं जगह नही मिलती—"

"हाँ, तो यह भी आप पूछना चाहते है .." थके भाव से रेखा ने कहा, "नैनीताल मे तो जगह थी होटलो में, पर हम लोग नीचे चले गए थे; होटल मे नहीं ठहरे। और कश्मीर तो मेरा घर ही है।"

"हाँ, ऑफ कोर्स।" कह कर चन्द्र ने कुछ ऐसे भाव मे रेखा की ओर देखा, मानो कह रहा हो, देखिए, इस से आगे मै कुछ नही पूछ रहा हूँ, टैक्ट का तकाजा है, यों जानना चाहना स्वाभाविक होना आप मानेगी..

रेखा की विरक्ति सहसा एक शारीरिक थकान बन कर उस की देह पर छा गयी। एक धूमिल उछटती नजर से उसने डेविको के चायघर के फैलाव को, विशाल गलीचे और भारी परदो को देखा, उफ कैसी है यह घुटन—

कहाँ है इस मे कोई रन्ध्र जिस मे से धुन्ध का अजगर आ कर सारी झील को छा ले और क्षितिजो को मिला दे ! उस ने क्षण-भर आँखे बन्द कर लीं, उस का हाथ पर्पटी तक उठा और उस काल्पनिक लट को सँवारता हुआ कान के पीछे से ग्रीवा के मोड़ के साथ लौट आया। सहसा उस ने पूछा, "चन्द्र जी, आप का परिवार कहाँ है ?"

चन्द्र के ओठ पतले हो आये, लेकिन निमिष-भर के लिए ही, फि उस ने तपाक से कहा, "ओ, हाँ, रेखा जी, आप को खबर देना तो भूल ह गया। वे लोग लखनऊ आ रहे हैं। मेरे पास ही रहेगे।"

"सच ?" रेखा ने सहसा गम्भीर हो कर कहा, "यह बहुत अच्छी ब है चन्द्र जी। आइ होप यू आर हैपी।"

"व्हट इज हैपिनेस, रेखा जी, कुछ और बात करिए, हैपिनेस तो ए कल्पना है—या उस अवस्था का नाम है जिस मे हम अपनी जरूरत को अभी जानते नहीं है। इनसान के लिए हैपिनेस नहीं है—क्योकि वह ला इलाज जिज्ञासु है। वह जान के रहेगा—और जानेगा तो भोगेगा।"

खडन मे रेखा की रुचि नही थी। फिर भी इतना कहे बिना वह न रह सकी : "जिज्ञासु ही हैपिनेस जान सकता है, नहीं तो जिस ने उसे जाना नहीं वह भोगेगा क्या ? कोई चीज स्थायी नहीं है, इसी से वह कल्पना मात्र तो नहीं हो जाती ?"

"पर स्थायी नहीं है तो हैपिनेस कैसे है ? जिस के साथ छिन जाने का डर बराबर लगा है, वह प्राप्ति कैसी है ?"

रेखा के भीतर कुछ पुकार उठा, 'वही प्राप्ति है, वह प्राप्ति है।' उस ने धीरे- से कहा, "जो छिन जा सकता है पर जब है तब सर्वांश है, वही आनन्द है।" फिर विषय बदलने के लिए, बिना उत्तर का मौका दिये कहा, "लेकिन गृहस्थ-जीवन मे दूसरे स्तर की बात सोचनी चाहिए न— उस का आधार है स्थायित्व, उड़ान नहीं, गृहस्थी की आधार-भूमि पर पैर टेक कर आप घूम भी सकते हैं—"

"रेखा जी, इस बात को गुस्ताखी न समझा जाय तो कहूँ कि गृहस्थी

के मामले मे आप को ऑथारिटी मानने मे संकोच भी हो सकता है।"

"सो तो है।" रेखा ने कहा, फिर मानो उसे तभी ध्यान आया हो कि बात हँसी की है, वह हँस दी।

चन्द्र ने चाय के प्याले की तलछट रालदान मे उडेल कर चायदानी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "आप गौरा जी से मिलने चलेगी ?"

रेखा ने चायदानी सँभालते हुए कहा, "लाइये, मैं बना दूँ।" फिर प्रश्न का उत्तर देते हुए, "हाँ, अगर उन्हे बुरा न लगे—"

"वाह, उन्हे क्यो बुरा लगने लगा ? भुवन जिस पर—जिस की इतनी प्रशंसा करते रहे है उसे उन की प्रिय शिष्या न देखना चाहे, यह हो ही नही सकता। वैसे बडी अच्छी लडकी है—और बडी सुन्दर। संगीत में रुचि रखती है यह तो आप को मालूम ही है। इटेलिजेट भी है, पर जरा मुँहजोर—"

रेखा ने अनमने से कहा, "हाँ ?"

गौरा ने कहा, "आइये, बैठिए, पिता जी अभी आते है—"

यह स्वागत इतना असाधारण था कि चन्द्र सहसा यह भी पूछना भूल गया कि वह मसूरी से कब लौटे। वह बैठा ही था कि गौरा ने भीतर के किवाड़ तक जा कर पुकारा, "पिताजी, चन्द्रमाधव जी आये हैं।"

फिर वह आ कर कर्तव्यनिष्ठ लड़की की तरह बैठ गयी और अतिथि का मनोरंजन करने लगी।

"आप पहाड नही गये ? दिल्ली मे तो ऐसी गर्मी पड रही है कि बस—"

चन्द्र ने सहसा कहा, "गौरा, मैं तुम से मौसम की बात करने नहीं आया।"

गौरा ने अज्ञान बन कर कहा, "जी ?"

चन्द्र एक बार साहस कर के 'तुम' कह गया था, पर इस 'जी ?'

के आगे उस का साहस जवाब दे गया। फिर भी, जैसे कोई ठंडे पानी में गोता लगा ही तो डाले, उस ने कहा, 'रेखा जी यहाँ हैं, आप से मि[illegible] को इच्छुक है।"

गौरा को थोडी देर अचकचाते देख कर उसे बडा सन्तोष हुआ।

गौरा ने खडी होते हुए कहा, "आप के लिए चाय लाऊँ—चाय [illegible] पियेंगे न?" फिर तनिक रुक कर, "वह जब चाहे आवे—मैं तो यहीं र[illegible] हूँ—"

अब जा कर चन्द्र ने पूछा, "पिता जी कब आये? बड़ी जल्दी ल[illegible] आये—"

"नहीं, फिर जायेंगे, मेरी वजह से आ गये।"

"आप भी जायेंगी?"

"शायद—"

"कब?"

"इसी हफ्ते जाने की सोच रहे हैं—" भीतर से उत्तर आया, [illegible] साथ-साथ गौरा के पिता ने दरवाजे पर प्रकट होते हुए कहा, "कहो भ[illegible] कब आना हुआ?"

गौरा ने फुर्ती से कहा, "मैं चाय लाती हूँ," और भीतर चली गयी

तीन दिन बाद जब रेखा को ले कर चन्द्रमाधव फिर वहाँ गया, त[illegible] गौरा का बर्ताव कुछ ऐसा ही था—चिकना, विनीत, शिकायत से परे, [illegible] दूर...परस्पर नमस्कार और परिचय के बाद जब तीनों बैठ गये तो एक [illegible] का मौन उन पर छा गया। चन्द्र चाहता था कि इन दोनों को मिला [illegible] की अपनी सफलता पर प्रसन्न हो, पर एक अजब संकोच का भाव उ[illegible] भीतर भर रहा था—एक अनिश्चय, एक आशंका सी....वह चुप-चा[illegible] चोर आँखों से कभी रेखा को, कभी गौरा को देख रहा था, ये दोनों [illegible] करने लगें तो कुछ ठीक हो...

पर वे दोनों भी चुप थीं। रेखा को गौरा ने चन्द्र के पास ही सोफे पर बिठाया था, स्वयं दूसरी ओर तख्त के कोने पर सीधी बैठी थी—एक हाथ हल्का-सा तख्त पर टिका हुआ, आँखें नीचे झुकी हुई। उस ने बिल्कुल सफेद धोती पहन रखी थी—बहुत छोटी-छोटी सफेद बूटी वाली चिकन की—गहने वह यों भी नहीं पहनती थी और आज चन्द्र ने लक्ष्य किया कि उस के हाथों पर साधारण एक-एक चूड़ी और एक अँगूठी भी नहीं, स्फटिक से घिरी हुई निष्कम्प लौ की तरह वह अपने में सिमटी बैठी थी। रेखा ने भी सफेद रेशमी साड़ी पहन रखी थी, जिस अनुपात में रेशम की सफेदी चिकन की सफेदी की अपेक्षा कोमल थी, उसी अनुपात में उस का साँवला वर्ण भी मानो गौरा का धूमिल प्रतिबिम्ब था। गौरा सिमटी हुई और दूर थी, रेखा की आँखों में वह अस्पृश्य खुली दूरी नहीं थी पर मानो एक मेघ-घिरे आकाश का-सा भाव था...

रेखा ने कहा, "गौरा जी, चन्द्र जी बता रहे थे कि आप दक्षिण से संगीत की विशेष शिक्षा पूरी कर के आयी हैं।"

गौरा ने सायास कहा, "जी, दक्षिण से तो अभी आयी हूँ। गयी थी संगीत सीखने ही, पर दो वर्ष में क्या आता है।"

रेखा ने पूछा, "दक्षिण का संगीत तो बिल्कुल अलग है न—मैं कुछ जानती तो नहीं पर सुना है—"

"हाँ—पर मैंने तो सुना है आप बहुत अच्छा गाती हैं—"

"नहीं गौरा जी, वह तो—"

चन्द्र ने बात काटते हुए कहा, "हाँ गौरा जी, हम ने भी बहुत दिन से सुन रखा था, पर उस दिन भुवन के आग्रह से सुनने को न मिल गया होता तो रेखा जी कबूलतीं थोड़े ही कि—"

रेखा सहसा उठ कर गौरा के पास चली आयी। "यहाँ बैठ जाऊँ—यह बीच में शून्य का एक चौखटा रख के आर-पार बात करने का अँग्रेजी तरीका मुझे पसन्द नहीं है।"

"बैठिए।"

चन्द्र बोला, "इस समय भुवन को भी यहाँ होना चाहिए था—कित अच्छा श्रोता।" फिर दोनो की ओर देखकर, "गौरा जी, भुवन का को पत्र-वत्र आया है इधर? मुझे तो बहुत दिनो से कोई खबर नहीं है।"

"नहीं तो।" गौरा ने बिना किसी की ओर देखे उत्तर दिया। फि सहसा बोली, "वह लगन वाले आदमी है—खोज मे लगे हैं तो और कि बात की खबर उन्हे थोडे होगी! उन्हे खाने-पीने का भी होश नहीं रहत जब काम कर रहे हो—"

रेखा ने कहा, "आप तो उन्हे बचपन से जानती है न?"

"जी, उन्होंने मुझे पढाया भी है—"

चन्द्र ने हँसते हुए कहा, "गुरु वैज्ञानिक, शिष्य सगीतज्ञ—यह अच्छ विरोधाभास है न, रेखा जी?"

रेखा ने सीधा उत्तर न दे कर कहा, "अच्छा गुरु उदार होता चन्द्र जी, और उदार बनाता है।"

गौरा खड़ी हुई। "आप लोगों के लिए चाय लाऊँ—"

रेखा ने कहा, "नहीं गौरा जी, आप बैठिए—"

"सब तैयार है—"

"तो चलिए, मै आप की मदद करूँ," कह कर रेखा भी उठ स हुई, "मैं आप की रसोई मे आऊँ तो कोई—"

"आप कैसी बात करती हैं, रेखा देवी?" कह कर गौरा आगे च पडी, रेखा पीछे-पीछे।

गौरा ने चलते-चलते कहा, "काम वास्तव मे कुछ नहीं है, रेखा दे सिर्फ पानी डाल कर ले आना है, मेज लगी है।"

दोनों उस समय चाय का कमरा पार कर रही थीं। रेखा ने कहा, " तो देख रही हूँ।"

"या—आप पसन्द करे तो बैठक मे ही ले चलूँ—"

"नहीं, यहीं ठीक है, गौरा जी—"

"आप चाय पसन्द करेंगी या कॉफी?"

रेखा ने हँस कर कहा, "आप ने जरूर यह भी सुना होगा कि मै काफी पियक्कड़ हूँ, पर चाय ही पियूँगी।"

गौरा ने तनिक-सा खिच कर कहा, "भुवन दा ने ही लिखा था कि लखनऊ मे बराबर काफी हाउस जाते रहे"—मानो कहना चाहती हो, आप के बारे मे कुछ पूछताछ की हो, ऐसा न समझें।

रेखा ने वह खिचाव भाँप लिया। सहसा गौरा के कन्धे पर हाथ रख बोली, "बुरा नही मानिएगा, गौराजी, चन्द्रजी तो जर्नलिस्ट है न, हर त का प्रचार करना उन का काम है—मेरे काफी पीने का भी—"

गौरा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

चाय रख कर गौरा ने कहा, "आप बैठिए, मै चन्द्रमाधव जी को बुला ऊँ—"

रेखा ने कहा, "ऐसी क्या जल्दी है, दो मिनट अकेले बैठे रहेगे तो ई हर्ज नहीं होगा—बल्कि अकेले रहना तनिक भी सीख सके तो फायदा हो।"

गौरा ने कुछ विस्मय से उस की ओर देखा, फिर बैठ गयी। रेखा कुछ हना चाहती है शायद, और चन्द्रमाधव की उपस्थिति मे बात कर सकना सी को कठिन मालूम हो, यह जरा भी अस्वाभाविक नही है।

पर रेखा चुप रही। बल्कि उस ने आँखे बन्द कर के क्षण-भर हथेलियो चेहरा ढँक लिया। गौरा स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही, और इस समय विधा पा कर सिर से पैर तक देख गयी। फिर उस की आँखे रेखा के हाथो र टिक गयीं।

रेखा के हाथ सुन्दर नही कहे जा सकते, पर उन की उँगलियो मे एक वेदना क्षमता थी, और उँगलियो के जोड स्पष्ट ही एक चिन्तनशील स्वभाव सूचक थे। छिगुनियो की सिरे वाली पोर थोडी-सी भीतर की ओर को मुडी ई थी। एक हाथ की अनामिका पर अँगूठी थी—सफेद धातु, चाँदी या लैटिनम ?—जिस में एक बड़ा-सा कटहला जड़ा हुआ था, रेखा के साँवले ग पर वह फबता था। अँगूठी उँगली मे ढीली थी, नगीना एक ओर को

खिसक गया था। चिन्तनशील उँगलियों की यही मुश्किल होती है—दो...
बड़े होते है, अँगूठी चढाने में दिक्कत होती है और इस लिए ढीली अँ...
पहननी पड़ती है...

सहसा रेखा ने हाथ हटा लिये, आँखे खोलीं, और पूछा, "गौरा...
हमारे जर्नलिस्ट साहब हम दोनों को मिलाने को बहुत उत्सुक थे। और...
निस्सन्देह आप सोच रही होगी कि हम लोग जो मिलीं, सो आखिर क्यों...

गौरा ने अपने को सँभालते हुए कहा, "नहीं, मिलना तो मैं...
चाहती थी—"

"और मैं भी चाहती थी। और मिलना हुआ, यह बड़ी खुशी की...
है। पर स्त्रियाँ जो चाहती है उस के होने के लिए प्रतीक्षा करती...
और—" रेखा रुक गयी, मानो अपने शब्द तौल रही हो, और त...
रही हो कि बात कही जाय या नहीं, "और यह भी है कि आप मुझ...
आप का मेरे बारे में कौतूहल भुवन जी की मारफत ही रहा होगा...
दोनों के बीच भी कड़ी वही हैं, चन्द्र तो नहीं।"

गौरा चुप रह गयी।

रेखा ने फिर कहा, "डा० भुवन ही'ज ए वेरी फाइन मैन।"

गौरा ने कहा, "चाय ठंडी हो जायगी; चन्द्र जी को बुला लूँ—

रेखा ने मुस्करा कर कहा, "आइ'ल टेक द हिंट। लेकिन एक...
ही डालूँ—क्योंकि फिर शायद न सकूँ—या मौका न मिले। चन्द्र...
से क्या मेरे बारे मे कुछ कहा है, यह नहीं पूछूँगी—कहा ही होगा...
वह भी नहीं पूछूँगी। अपनी ही ओर से कहूँ—मेरे कारण डा०...
अहित, जहाँ तक हो सकेगा, मैं नहीं होने दूँगी। चाहती हूँ कि...
के साथ कह सकूँ कि बिल्कुल नहीं होने दूँगी, पर भीतर वह नि...
पाती, और झूठा आश्वासन नहीं देना चाहती—खास कर आप...

गौरा ने तनिक उदासीनता चेहरे पर लाते हुए कहा, "यह...
मुझे क्यों कहती हैं, रेखा जी?"

"क्यों, यह तो नहीं जानती। पर कह देना चाहती हूँ—

शायद—कभी आप को यह याद करने की जरूरत पड़े। किसी के निजी जीवन मे—भावना—जगत् मे-हस्तक्षेप करना मै कभी नहीं चाहती, गौरा; मैंने जो-कुछ कहा है, कुछ जानने के लिए नहीं, केवल अपनी बात कहने के लिए। फिर भी अगर कोई ऐसा स्थल छू गयी हूँ जिस से मुझे दूर रहना चाहिए था, तो—क्षमा चाहती हूँ।"

सहसा खड़ी हो कर रेखा गौरा के पास चली आयी, दोनों हाथ उस के कन्धे पर रख कर उस ने धीरे मे पुकारा, "गौरा!" गौरा ने आँख उठायी, दोनोकी आँखे मिलीं और देर तक मिली रहीं। फिर रेखा ने धीमे स्वर में कहा

"कभी हम किसी से मिलते है और तय कर लेते हैं कि हम अजनबी नहीं हैं, पर उस से जरूरी नहीं है कि बात करना सहल ही हो जाय-" वह कुछ रुकी, कुछ अनिश्चित स्वर मे उस ने कहा, "है न?" फिर उस के हाथ धीरे-धीरे खिसकते हुए हट चले, गौरा ने दाहिना हाथ उठा कर उस का हाथ पकड लिया और उसे थामे उठ खड़ी हुई। सामने सामने खडे दोनो की आँखें एक वार फिर मिली। फिर रेखा सहसा मुड़ कर बाहर के कमरे की ओर चली गयी। क्षण-भर बाद एक नजर मेज पर लगी हुई चीजों पर दौडाते हुए और उस के द्वारा मानो साधारण के स्तर पर उतरते हुए गौरा ने दो-तीन कदम आगे बढ कर आवाज दी, "आइये, चाय तैयार है।"

चाय पीते-पीते चन्द्र को लगा कि वातावरण मे कहीं कुछ परिवर्तन है। लेकिन क्या, यह वह नहीं जान सका। उसे केवल यह अनुभव हुआ कि कही किसी तरह वह असफल हुआ है, लेकिन इस असफलता की कुढन ऐसी थी कि वह यह भी नहीं सोच पा रहा था कि किस बात में वह असफल हुआ है...

गौरा ने कहा, "रेखा जी, चाय के बाद एक गाना सुनायेंगी?"

चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, पहली ही भेंट मे फर्माइश! मुझे तो हिम्मत न होती, और फिर रेखा जी—रेखा जी इज ए डिफिकल्ट वुमन टु नो! "लेकिन—" और वह रुक कर स्थिर दृष्टि से रेखा की ओर देखता रहा, "लेकिन डिफिकल्ट हे इसी लिए शायद पहली बार ही कह देना चाहिए,

क्योंकि दूसरी बार ही कौन अधिक परिचित हो जायेगी!"

गौरा ने कहा, "रेखा जी, मेरे कहने का बुरा तो नहीं मानेंगी?"

"गौरा, तुम चन्द्र को अभी नहीं जानती—वह जब नाराज होता है तभी कुछ क्लेवर बात कह कर दुनिया से बदला ले लेता है!"

"यानी? यानी आप यह कहना चाहती हैं कि असल में मुझे जानना ही डिफिकल्ट है? गौरा जी से मेरा—गौरा जी, आप इन की बात न मानिएगा—मैं तो जो-कुछ कहूँ एकदम सतह पर हूँ—"

रेखा ने साभिप्राय कहा, "ओ हो, आज तो आप बहुत बड़ा कनफेशन किये दे रहे हैं, चन्द्र जी—"

चन्द्र जरा-सा अप्रतिभ हुआ, पर तुरन्त पैंतरा बदल कर बोला, "हाँ, जो सतह पर है, वही सच है, सतह के नीचे कुछ नहीं है, सिर्फ धोखा। जो कहते हैं कि यथार्थ कुछ नहीं है, जो गोचर है सब माया है, वे ही तो साबित करते हैं कि माया ही यथार्थ है, सतह ही वास्तविकता है—क्योंकि वह कम-से-कम गोचर तो है, उस के पीछे तो कुछ है ही नहीं!"

"ओफ, चन्द्र जी, जिन के तर्क को आप इस रूप में पेश कर रहे हैं वे सुन लें तो—"

"तो आत्म-हत्या कर लें, यही न? लेकिन उस में क्या बुराई है? आखिर एक भ्रम ही तो नष्ट होगा—माया का एक पुंज? और आत्मा तो अनश्वर है—तब आत्म-हत्या के माने क्या? लेकिन रेखा जी, आप गाना सुनायें ही, तो वही सुनायें जो लखनऊ में—"

"कौन-सा?"

"वही शरद् की रात के बारे में कुछ; उस समय पूरा सुन नहीं पाये थे—"

रेखा ने गौरा की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "तुम बँगला समझ लेती हो?"

गौरा ने कहा, "थोड़ी बहुत। पढ़ कर तो समझ लेती हूँ, सुन कर थोड़ी अड़चन होती है।"

"तुम नहीं गाती ?"

"मैं ! मेरी आवाज़ तो—"

"बहुत मीठी है। अच्छा, संगत करोगी तो गा दूँगी—"

"वाह वा !" चन्द्र ने समर्थन किया, "बहुत अच्छा आइडिया है। आप का संगीत भी कभी नहीं सुना गौरा जी !" कह चुकने के बाद सहसा उसे ध्यान आया, गौरा को रेखा तुम कह कर सम्बोधन कर रही है, और गौरा इस पर चौंकी नहीं, मानो यह स्वाभाविक है, उस ने सहसा चौकन्ने हो कर दोनों की ओर देखा—यह कब, कैसे हो गया ? क्या दोनों ने सहज मान लिया कि रेखा बड़ी और गौरा छोटी है और इस लिए—या कि दोनों ने वैसा परिचय बना लिया—लेकिन कब ? कब ? मिस्टरी, दाइ नेम इज़ वुमन...,मध्य युग के सन्त ठीक मानते थे—हर औरत चुड़ैल होती है, झाड़ू पर सवार जादूगरनी, जो आदमी के किये-कराये पर झाड़ू फेर देती है... उस ने फिर कहा, "हाँ, आप दोनों गाइये-बजाइये, मैं अकेला सुनूँगा, एक दोहरे मिरेकल का एकमात्र साक्षी—"

गौरा ने कहा, "नहीं रेखा जी, संगत नहीं करूँगी, आप का गान एकाग्र हो कर सुनना चाहूँगी, संगत करने बैठूँगी तो ध्यान बँट जायगा। आप का आग्रह हो तो पीछे सुना दूँगी। पर मुझे कुछ आता नहीं।"

रेखा ने कहा, "ऐसे ही सही।" फिर चन्द्र से, "लेकिन तुम साक्षी क्यों होगे—तुम्हें भी तो मिरेकल में भाग लेना चाहिए ?"

"मैं ? लेकिन मुझे न गाना आता है, न बजाना—"

"तो तुम नाचना—"

"क्यों, वह आना ज़रूरी नहीं है शायद ?" कुछ रुक फिर चन्द्र स्वयं ही बोला, "ठीक है, पुरुष हमेशा से नाचता आया है, स्त्रियाँ नचाती आयी हैं।"

"और बिना सीखे नाचता आया है, है न ?" रेखा ने और चिढ़ाया।

गौरा ने भी उसी स्पिरिट में कहा, "हमेशा से नाचता आया है, तब यह हाल है, रेखा जी, बन्दर भी शायद तीन महीने में सीख जाता है—"

चन्द्र ने तीखी दृष्टि से गौरा की ओर देखा, मानो कह रहा हो
'अच्छा, तुम्हें भी पंख लगे ?' फिर बोला, "जी हाँ, पर फ़र्क जानवर-जान
वर का नहीं, मदारी-मदारी का है। बन्दर का मदारी और उस का बन्दर जो
खेल खेलते हैं, उस के नियम सीधे होते हैं, दोनों पक्षों का एक ही नियम
होता है और दोनों उसे जानते हैं। पर हम...भला सोचिए, हम ब्रिज के
डमी बन कर अपने सब पत्ते बिछा दें, और आप तिपत्ती खेलने लगें तो—"
आपकीरेखा ने टोका, "लेकिन है आपकी कल्पना में पुरुष भी जुआरी, स्त्री
भी, क्यों, नहीं ?"

"और नहीं तो क्या। जीवन जुआ तो है ही, बड़ा भारी जुआ, ए द
लेस गैम्बलिंग मैच।"

गौरा के मुँह पर कोई तीखा जवाब मचल रहा है यह दीख रहा था।
रेखा ने कहा, "तुम्हारी बात में कुछ तत्त्व हो सकता है, चन्द्र; लेकिन
क्या इस से शायद तुम्हीं को अचम्भा हो।"

"क्या ?"

"यह कि दाँव दोनों खेलते हैं, लेकिन हम अपना जीवन लगाती हैं
और आप—हमारा।"

गौरा कुछ शान्त दीखी, मानो इस उत्तर में वह जो कहना चाहती थी
वह भी कह दिया गया।

चाय से उठ कर तीनों फिर बैठक में आ गये। कमरे में कुछ
अँधेरा था, क्यों कि बाहर बदली घिरने लगी थी; बढ़ी हुई उमस में आ
हो रही थी कि शायद वर्षा हो—इस मौसम की पहली वर्षा...कभी-क
बादल गरज जाते थे।

चन्द्र ने कहा, "अच्छा रेखा जी, अब गाना हो जाय।"

गौरा ने उठ कर छोटी मेज पर से एक चाँदी का डिब्बा रेखा की ओ
बढ़ाते हुए कहा, "लीजिए—"

गौरा के बढ़े हुए हाथो मे एक मे डिब्बा, दूसरे मे उस का ढक्कन था, ाग-इलायची उठाते हुए रेखा की दृष्टि उन हाथो पर टिकी थी। सहसा ा ने कहा, "बहुत सुन्दर है तुम्हारे हाथ—तुम चूड़ी-ऊड़ी नही ानती ?"

गौरा ने कुछ झिझकते हुए हाथ थोडे-से पीछे खींच लिये, कुछ बोली ही।

अच्छा मै चूड़ियाँ लाऊँगी—गौरा, मे आइ ?"

गौरा और भी सकुचित हो गयी, थोड़ा रुक कर बोली, थैंक यू" ागर काँच की हो और नहीं—"

रेखा ने तनिक मुस्करा कर कहा, "तुम वर्किंग वुमन की सीमाओ की ात सोच रही हो! खैर तुम्हारी शर्त मान लेती हूँ, पर इन हाथो पर— सचमुच बहुत सुन्दर हाथ है, गौरा, ये दूसरे आभूषण माँगते है।"

गौरा ने सकुचाते हुए डिब्बा चन्द्रमाधव के आगे रख दिया, हाथ पीछे खींच लिये मानो छिपा लेगी।

बादल की गड़गड़ाहट जोर से हुई। चन्द्रमाधव ने कहा, "सुनाइये, बादल का ही कोई गीत सुनाइये। आप की बँगला मे तो सुना है वर्षा के गीत लाखो है।"

पहले रेखा ने यही सोचा था। पर गौरा के हाथो की बात से उस का मन मानो किसी दूसरी तरफ चला गया था। वह अनमनी-सी उन्ही की ओर देखती जा रही थी।

गौरा ने कहा, "रेखा जी, जो आप की इच्छा हो गाइये—"

रेखा ने जैसे कुछ चौक कर कहा, "उँ-हाँ और गुनगुनाने लगी। गुन-गुनाना अनिश्चित-सा था, पर सहसा मानो निश्चय कर के उस ने स्पष्ट स्वर मे गाया :

तोमाय
साजाबो यतने कुसुमे रतने
केयूरे कंकणे कुंकुमे चन्दने

साजाबो
किंशुके रंगने
तोमाय...

गान दोनो श्रोताओ के लिए कुछ अप्रत्याशित था, चन्द्र ने भवें
सी उठायी, गौरा सीधी हो कर बैठ गयी। रेखा गाती रही :

कुन्तले वेष्टिबो स्वर्ण-जालिका
कण्ठे दुलाइबो मुक्ता-मालिका
सीमन्ते सिन्दूर अरुण बिन्दुर
चरण रंजिबो अलक्त-अंकणे
किंशुके रंगने तोमाय
साजाबो

गान समाप्त होने पर थोड़ी देर मौन रहा। फिर गौरा ने पूछा,
अच्छा गाती है आप। यह रवीन्द्र संगीत है न?"

हाँ"

फिर एक विकल्प के बाद चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, आप—"

गौरा ने रेखा की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "मै सिर्फ तबला
आप को—अच्छा लगेगा?" फिर चन्द्र की ओर मुड कर, "और
करूँगी बादल से सुर मिलाने की—"

"हॉ, हॉ, जरूर।" चन्द्र ने उत्साह से कहा।

गौरा भीतर जा कर जोड़ी उठा लायी, फर्श पर बैठ गयी। तब
ठोकने-खींचने लगी तो चन्द्र ने रेखा से पूछा, "आपने वर्षा का गी
न सुनाया?"

रेखा ने उत्तर न दिया। कमरे मे प्रकाश और भी धुँधला
था; चन्द्र उस के चेहरे के भाव को ठीक-ठीक देख भी न सकता था।

गौरा ने कहा, मै धम्मार में एक परण सुनाती हूँ।"

परकशन (Percussion) वाद्य सब से प्राचीन वाद्य है;
विद् इस का कारण यह बतायेंगे कि मानव बुद्धि ने पहले धमाके

संगीतात्मक सम्भावनाओं को पहचाना—या कि ताली से आगे बढ़ने पर किसी न किसी चीज को पीटना ही ताल देने का सरल माध्यम है। ऐतिहासिक दृष्टि से वह ठीक ही होगा। पर संगीतात्मक दृष्टि से ऐसे वाद्यों का महत्त्व यह है कि मौलिक प्राकृतिक शक्तियों से, प्रकृति के क्रीडा-कल्लोल से, सम-स्वरता वे ही सब से अच्छी तरह कर सकते है—हवा, बादल, आँधी, पानी, बिजली, लहर, दावानल, जलप्रपात...ढोल- मार्दल-मृदंग-तबले की थाप मानव को जिस सहज भाव से इन के निकट ले जा सकती है, इन के साथ एकतानता स्थापित कर सकती है, और वाद्य नहीं कर सकते...

बादल की गड़गड़ाहट में वर्षा का सरसराता स्वर भी मिल गया था। पर किसी को उस का ध्यान नहीं था। तबले का स्वर कभी धीमा और तरल, कभी चौड़ा और परुष, कभी हल्का और दौड़ता हुआ, धुँधलके में भर गया था। रेखा एकटक गौरा के हाथों को देख रही थी, पर हाथों की आकृति अब स्पष्ट नहीं दीखती थी, तबले के पड्डे और स्याही के वृत्तों पर उस की छाया-सी ही पहचानी जाती थी। रेखा दबे-पाँव उठी, मैंटल पर से लैम्प उठा कर उस ने गौरा के पास जमीन पर रखा, फिर उस का छादन तिरछा कर के बटन दबा कर उसे जला दिया—ऐसे कि प्रकाश तबलों पर और कलाई तक गौरा के हाथों पर पड़े, और वहीं नीचे आलोक के लम्बोतरे घेरे में गलीचे का नीला-भूरा पैटर्न दीखने लगा।

रेखा फिर मुग्ध-सी गौरा की थिरकती उँगलियों को देखती रही, चन्द्र छत के पंखे की ओर टकटकी लगाये सुन रहा था।

सहसा एक थाप के साथ सन्नाटा हो गया जिस में तबले का स्वर ही थोड़ी देर गूँजता रहा, फिर वह बारिश के स्वर में लय हो गया। गौरा ने एक लम्बी साँस ली।

रेखा बढ़ कर नीचे गौरा के पास बैठ गयी, अपने दोनों हाथ उस ने तबलों पर टिके हुए गौरा के हाथों पर रख दिये। कुछ बोली नहीं। फिर सहसा उस ने हाथ उठा कर अपनी अनामिका से अँगूठी उतारी और नरम हाथ से गौरा का हाथ अपनी ओर खींचते हुए उस की उँगली में पहना दी।

गौरा ने अचकचा कर कहा, "रेखा जी—यह क्या—नहीं रेखा जी, यह नहीं—" और घबड़ाये से हाथों से अँगूठी उतारने लगी।

"रहने दो, गौरा, कटहला शायद तुम्हारे हाथ के लायक नहीं है, पर यह मेरी माँ की अँगूठी है—"

"तब तो और भी नहीं रेखा जी, मैं आप की दी हुई चीज वापस नहीं कर रही—अवज्ञा न समझें—पर आप की माँ की अँगूठी मैं कैसे ले सकती हूँ ?" अँगूठी उतार कर वह रेखा का हाथ खोजने लगी।

रेखा ने कहा, "गौरा, मैं—"

"नहीं, नहीं, नहीं!" गौरा अँगूठी फिर रेखा को पहनाने का यत्न करती हुई बोली, "आप मुझे चूड़ियाँ दे दीजिएगा, मैं पहनूँगी, पर यह—"

"चूड़ियों की बात तो अलग है। वह तो मेरी बंगालिन आँखों को खटका था कि तुम्हारी कलाइयाँ सूनी है, पर यह तो मेरा ट्रिब्यूट—"

"मुझे शर्मिन्दा मत कीजिए रेखा जी! अच्छा, आप मेरी ओर से हो रख छोड़िए—फिर कभी दे दीजिएगा—या मैं माँग लूँगी—"

"फिर कब ? यह टालने की बात है—"

"नहीं सच; कभी जब—आप की माँ ने आप को यह कब दी थी ?"

रेखा का हाथ सहसा शिथिल पड़ गया। अँगूठी उस की माँ ने उसे सगाई पर दी थी। वह कुछ बोल न सकी, गौरा ने अँगूठी उसे पहना दी और क्षण भर उस का हाथ अपने हाथ में लिये रही। फिर सहसा उस की शिथिलता और उस के चेहरे का अनुपस्थित भाव देख कर बोली, "आप नाराज तो नहीं हो गयीं रेखा जी ? यू आर वेरी काइंड—लेकिन यह तो—"

रेखा ने सँभल कर कहा, "ठीक कहती हो, गौरा।" धीरे-धीरे हाथ खींच कर वह फिर अपनी जगह जा बैठी। गौरा भी उठी, पहले दीवार की ओर बढ़ी कि स्विच दबा कर कमरे की बत्तियाँ जला दे, पर अधबीच रुक कर उस ने हाथ खींच लिया, झुक कर तबले उठाये और अन्दर चली गयी।

रेखा ने उस की प्रत्येक भंगिमा को लक्ष्य किया था। उसी का लिहाज़
र के गौरा बत्तियाँ नहीं जला गयी। उस ने ज़ोर से अपने को हिलाया,
न्द्र की ओर देखा, सायास मुस्करायी और बोली, "अब मेघ-संगीत सुनाऊँ?"

चन्द्र उस की ओर तकता रहा। सारी घटना उस की कुछ समझ में
हीं आयी थी, वह बैठा-बैठा सोच रहा था कि औरत नाम का जन्तु भी
जाने किस ढब का है, सहसा उत्तर भी न दे सका। रेखा ने आगे बढ़
र स्वयं बत्तियाँ जला दीं, फ़र्श पर रखा लैम्प बुझा दिया, और गा उठी :

मन मोर मेघेर संगीते,
उड़े चल दिग्दिगन्तेर पाने श्रावण वर्षण संगीते
उड़े चल, उड़े चल, उड़े चल!

गौरा लौट कर आयी, तो रेखा को कमरे के मध्य में खड़ी गाती देख
र किवाड़ के सहारे ही ठिठकी खड़ी रही।

रेखा को उस के ठिकाने पर पहुँचा कर चन्द्रमाधव जब वापस मुड़ा, तब
स के चेहरे पर जो परिवर्तन हुआ वह इतना द्रुत था कि उस की रेखाओं
को मानों चलते देखा जा सकता था—सलवटों का चल कर नयी जगह
ठना, नयी झुर्रियों का उमड़ना, आँखों पर एक झिल्ली-सी का छा जाना..
खा ने कहा कि पहुँचाने की ज़रूरत नहीं है, वह चली जायेगी, पर उस
ने कहा था कि उसे भी कश्मीरी गेट ही जाना है—और बिल्कुल झूठ भी
हीं कहा था, क्योंकि जिस काम से उसे जाना था वह कश्मीरी गेट में भी
हो सकता था.. सीढ़ियों के नीचे ही रेखा ने कहा, "चन्द्र, तुम्हारा बहुत-
बहुत धन्यवाद—गौरा से मिल कर मुझे बड़ी खुशी हुई—" फिर वह तनिक
रुकी, मानो और कुछ भी कहने वाली हो, पर फिर सहसा, "अच्छा,
नमस्कार!" कह कर मुड़ी और सीढ़ियाँ चढ़ गयी। चन्द्र बाहर की ओर
को मुड़ गया। हल्की-सी बारिश अब भी हो रही थी, पर चन्द्र ने उस
की परवाह न की।

सड़क के पार, कालेज के बगल मे एक होटल का बोर्ड था 'होटल एंड बार' क्या वही ? चन्द्र थकी चाल से उधर बढा, पर अध-बीच मे तिकोने पार्क के सिरे पर रुक गया, फिर दाहिने मुड कर कुछ आगे बढा और फिर निकलसन रोड की ओर मुड गया। कोई दो फर्लांग जा कर एक और जगह थी। यहाँ वह बहुत दिनो से नहीं आया था, पर पहले अक्सर आया करता था ..

पहले...अन्दर कुरसी पर बैठते हुए उसे याद आया, पीते लोग उन दिनो भी थे ही, पर उस का पीने आना मानो उस के लिए बडी असाधारण घटना थी, उस के लिए ही नही, यो भी ..और जब एक बार वह हेमेन्द्र के साथ आया था—हेमेन्द्र और उस के मित्र के साथ, और मित्र अन- भ्यस्त मात्रा मे पी जाने के कारण धुत्त हो गया था और दोनो उसे उठा कर ले गये थे. हेमेन्द्र था सो था, पर था जिन्दादिल आदमी, वैसे हमप्याला कहाँ मिलते है ..उस ने पुकारा, "बेयरा ?"

बेयरा ने आ कर सलाम किया। फिर ज़रा ध्यान से देख कर सहसा दुबारा सलाम किया किंचित् मुस्कराहट के साथ। तो यह उसे पहचानता है. चन्द्र को अच्छा लगा। उस ने पूछा, "बियर है ? कौन सी ?" पर बेयरा उत्तर दे इस से पहले ही फिर कहा, "अच्छा नहीं, ह्विस्की ले आओ।"

"कौन सी, सा ब—"

"अच्छा, सोलन ले आओ। बडा पेग—डबल।"

बेयरा चला गया। चन्द्रमाधव ने सिगरेट जलायी और कुरसी मे आराम से पीठ टेक कर धुआँ उड़ाने लगा।

हेमेन्द्र...कहाँ होगा हेमेन्द्र अब ? चन्द्र ने कोशिश की, रेखा और हेमेन्द्र की साथ कल्पना करे, पर उस में किसी तरह सफलता नहीं मिली; हेमेन्द्र की शबीह यह किसी तरह सामने लाता तो रेखा की बजाय गौरा आ जाती; फिर वह सकल्प-पूर्वक उसे हटा कर रेखा को सामने लाता तो हेमेन्द्र की बजाय भुवन सामने आ जाता ..हार कर उस ने सिगरेट मुँह

निकाल कर उठ कर एक ओर को थूका; फिर बैठ गया। बेयरा ह्विस्की ले आया, ट्रे में सोडा भी था पर चन्द्र ने ग्लास उठा कर इशारे से सोडा-पानी को मना किया और उठा कर दो-तीन घूँट ही ह्विस्की के पी डाले। फिर उसने जोर लगाना छोड़ दिया : न सही हेमेन्द्र, वह जो आवेगा उसी को देखेगा—गौरा सही, रेखा सही, उस की अपनी पत्नी सही...

और यह मानव मन की प्रतिकूलता ही है कि उस के मानस पटल पर रह-रह कर दो आकृतियाँ खिंचने लगीं—कभी उस की पत्नी की, कभी हेमेन्द्र की...

उसने एकदम से उठा कर गिलास खाली कर दिया। आकृतियाँ कुछ फीकी हो गयी, मिट गयीं। हाँ, यह ठीक है। आकृतियों की कोई जरूरत नहीं है। वह सोच रहा है, उतना ही काफी है। देखना तो वह नहीं चाहता किसी को...पर क्या सोच रहा है ? हाँ, वह कुछ जरूरी बात सोच रहा था, कुछ काम उसे करना है...

उस ने फिर पुकारा, "बेयरा।"

दूसरे डबल के साथ उस ने सोडा भी लिया। फिर बेयरा से लिखने का कागज मँगाया। कागज सामने रख कर वह उस की चिकनी सफेद सतह को देखता हुआ घूँट-घूँट ह्विस्की पीता रहा, थोड़ी देर बाद उस ने जेब से कलम निकाल कर पत्र लिखना शुरू किया—हेमेन्द्र को।

लेकिन सम्बोधन लिख कर ही वह रुक गया। क्या लिखे, कैसे लिखे ? इतने वर्षों में कभी तो उस ने हेमेन्द्र को कुछ लिखा नहीं...उस ने सिगरेट सुलगा कर लम्बा कश लिया, धुएँ के छल्ले बनाने के लिए ठोड़ी ऊँची उठा कर मुँह गोल करना चाहा पर ओठ जैसे अवश हो रहे थे, मुँह के आसपास की पेशियाँ उस का आदेश नहीं मान रही थीं और ऊपर के ओठ के सिरे पर एक अजीब फड़कन होने लगी थी जिसे वह किसी तरह नहीं रोक पा रहा था।

हेमेन्द्र को क्या उस की याद होगी ? उस मलय स्त्री के आलिंगनों में वह सब भूल गया होगा...पर स्त्रियाँ तो हेमेन्द्र को अच्छी नहीं लगती

थी—वह स्त्री क्या उसे छोड़ न गयी होगी ? वह तो एंग्लो-मलय न—उस के और भी प्रेमी ज़रूर रहे होंगे..

न, हेमेन्द्र को उस की याद बिल्कुल न होगी। क्या चन्द्रमाधव क्या—कोई भी...

पर चन्द्रमाधव ही क्यों ? नाम से लिखना क्या ज़रूरी है ? बल्कि बग़ैर नाम के पत्र लिखने से शायद उस का महत्त्व बढ़ जाय—क्योंकि किसी नाम के साथ हेमेन्द्र के जो पूर्वग्रह होंगे उन से बचाव हो जायगा...

वह जल्दी-जल्दी लिखने लगा। समाप्त कर के उस ने मानों अपने ही को सम्बोधन कर के कहा, "वाह, मेरे दोस्त, जर्नलिस्ट चन्द्र, यू'र ग्रेट मैन। .."

सहसा उस ने जाना, बारिश बड़े ज़ोर से होने लगी है। उस ने पैड में से चिट्ठी के पन्ने अलग करके सफ़ाई से तह किये और भीतर की जेब में रख लिये, फिर बेयरे को बुला कर खाने का आर्डर दे दिया।

डैम ऑल वीमेन . नहीं, सब नहीं, केवल उन्हें जिन्हें तबीयत माँगती है; तबीयत, यानी वाञ्छा की एक गरम लपलपाती जीभ...रॉटन मिडिल क्लास वीमेन—दबी वासनाओं की पुतली, मक्कार, बीमार, मर्दख़ोर औरतें-मर्द के ख़िलाफ़ सब एक, जैसे फन्दे फैलाये ठगों का गिरोह...ठीक कहते हैं कम्युनिस्ट, इस भद्रवर्ग को मटियामेट किये बिना स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध हो ही नहीं सकते...

अपने जीवन में पहली बार गौरा ने एक पत्र लिख कर फाड़ा, लगभग वही दुबारा लिखा और दुबारा फाड़ दिया। तीसरी बार उस ने केवल दो पंक्तियों का पत्र लिखा, उसे सामने रख कर बहुत देर तक देखती रही। फिर उस ने धीरे-धीरे उसे भी चार टुकड़े कर के नीचे गिरा दिया। मेज़ से लिखाई का सामान इधर-उधर ठेल कर उस पर बाँहें रख उन पर सिर टेक कर बैठ गयी।

काफी देर बाद उस ने सिर उठा कर नीचे पड़े कागज के टुकड़ों की ोर देखा, पंखे की हवा मे दो-एक टुकडे फडफडा रहे थे, एक पर लिखे ए दो शब्द कभी दीख जाते, कभी छिप जाते · "मेरे भुवन दा" . गौरा ाथिल भाव से उठी, टुकड़ों को समेट कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ कर के स ने टोकरी मे डाल दी, फिर कमरे मे टहलने लगी।

कुछ देर बाद किसी ने दरवाजे पर हल्के हाथ से दस्तक दी। गौरा । किवाड़ खोले; एक चपरासी ने एक पैकेट उसे दिया और कहा, "मेमसा' ब । भेजा है वाई० डब्लू० से—"

गौरा ने ले लिया, कहा, "अच्छा। हमारा सलाम कह देना।" रवाज़ा फिर बन्द कर के उसने पैकेट खोला : हल्के रंगो की कॉच की दो र्जन चूडियाँ थी।

गौरा स्थिर दृष्टि से उन्हे देखती रही। सुन्दर चूडियाँ थी। थोडी देर ाद गौरा ने उन्हे मेज़ पर रख दिया और फिर टहलने लगी। टहलते- हलते वह रुकी, दो चूड़ियाँ उठा कर उस ने बाये हाथ मै पहन लीं, बाकी फर पैकेट मे लपेट दी।

थोडी देर मे पिता बाहर से आये तो गौरा ने कहा, "पापा, मसूरी ापस कब चलेंगे ?"

"अब तो एक बारिश हो गयी—अब—"

"नही, चलिए—आज ही चलिए—"

"अच्छा, तुम्हारी माँ तो खुश ही होगी—सामान ठीक कर लो—मेरा तो ठीक ही है, तुम्हारे ही सामान की बात है।"

रेखा ने भी भुवन को एक पत्र लिखा, पर उसे फाड़ फेंकने की बजाय अधूरा छोड दिया, और निश्चय किया कि वह उसे भेजेगी नहीं। उसे सहसा लगा कि पत्र मे लिखने को कुछ नहीं है क्योकि बहुत अधिक कुछ है, अगर वह सब वह कहने बैठ ही जायगी, तो फिर रुक नहीं सकेगी, और उधर

भुवन का काम असम्भव हो जायगा . पत्र मे जान-बूझ कर उस ने अपनी बाते न कह कर इधर-उधर की कहना आरम्भ किया था, गौरा से भेंट की बात लिखने लगी थी पर उसी के अध-बीच मे रुक गयी थी। नही, गौरा की बात वह भुवन को नही लिखेगी। भुवन का मन वह नही जानती, लेकिन गौरा का...भुवन गौरा का मन जानता है कि नहीं, यह भी वह नहीं जानती पर जहॉ भी गहरा कुछ मूल्यवान् कुछ, आलोकमय कुछ हो, वहॉ दबे पॉव ही जाना चाहिए, वह कही हस्तक्षेप नही करना चाहती, कुछ बिगाड़ना नही चाहती...नदी मे द्वीप तिरते है टिमटिमाते हुए, उन्हे बहने दो अपनी नियति की ओर, अपनी निष्पत्ति की ओर, नदी के पानी को वह आलोडित नही करेगी। वह केवल अपना मन जानती है, अपना समर्पित, विह्वल, एकोन्मुख, आहत मन : उसे वह भुवन तक प्रेषित भी कर सकती है, पर नहीं—भुवन से उस ने कहा था, वह अपने स्वस्थ और स्वाधीन पहलू से ही उसे प्यार करेगो, और गौरा के उस से कहा है. .पर यह कैसे सम्भव है कि एक साथ ही समूचे व्यक्तित्व से भी प्यार किया जाय, और उस के केवल एक अंग से भी ? वह सब की सब समर्पित है, स्वस्थ भी और आहत भी—बल्कि समर्पण मे ही तो वह स्वस्थ है, अविकल है, बन्धनमुक्त है... भुवन, भुवन, मेरे भुवन, मेरे मालिक...

वह घूमने जायेगी। जमना की रेती मे—जहॉ बैठकर भुवन ने उस का बालू का घर बनाया था, बारिश से रेत जम गयी होगी, वहॉ बैठ कर वह सॉझ घिरती देखेगी . दिल्ली की सॉझ तुलियन की सॉझ नहीं है, पर तारे वही होगे, उन्हे देखते वह अपने को मिटा दे सकेगी, उन की टिमटिमाहट मे वह सिहरन पा सकेगी जो भुवन का आत्म-विस्मृत स्पर्श-रेखा सहसा सिहर गयी, कुरसी पर उसने सिर पीछे टेक दिया, ऑखें बन्द कर लीं, शरीर को छोड़ दिया। ऐसे ही भुवन ने उसे पहले देखा था लखनऊ मे, क्यों नहीं वह आगे बढ कर उस की पलकों और उठे हुए ओठो को छू सकता—क्या वह दिल्ली मे है, छिप कर 'मैन ओनली' पढने वाली स्त्रियों के इस

बोर्डिङ्ग मे, भीड़-भड़क्के की इस दिल्ली मे, चन्द्रमाधव की दिल्ली मे, और और हेमेन्द्र की दिल्ली मे...

रेखा उठ गयी—उठ कर लाउंज मे जा बैठी, दैनिक अखबार उठाये और 'वांटेड' के कालम देखने लगी।

चन्द्रमाधव अगर देख सकता कि मलय मे उस समय क्या स्थिति है, और हेमेन्द्र क्या सोच रहा है या कर रहा है, तो कदाचित् पत्र लिखने की बात उस के मन मे न उठती। या क्या जाने फिर भी उठती, बल्कि उस मे लिखने के लिए और भी बाते उसे सूझती, क्योकि रेखा के प्रति एक सर्वथा अबौद्धिक आक्रोश उस के भीतर उमड़ता आ रहा था। यो इसे वह स्वयं देख रहा हो या स्वीकार कर रहा हो, ऐसा नही था, उस के सामने वह स्त्री जाति के प्रति एक घृणा या प्रतिहिंसा के रूप मे ही आया था, पर भीतर-ही भीतर था वह केन्द्रित और एकोन्मुख : या अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि उस के बिखरे हुए झाग भुवन पर भी आ पडते थे —पर भुवन पर उस के द्वेष का उसे बोध था, इस लिए उसे इसी का प्रक्षेपण नहीं माना जा सकता..

मलय मे तनाव क्रमश: बढ़ रहा था, और हेमेन्द्र की अंग्रेज कम्पनी ने उधर अपना काम समेटना आरम्भ कर दिया था, हेमेन्द्र बदली पर उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका मे कहीं जा रहा था जहाँ कम्पनी का कारबार फैला था; मलय की बात और थी, पर वहाँ के सर्वथा गोरे समाज मे रह सकने के लिए स्थिति मे परिवर्तन आवश्यक था—जिस समय चन्द्र ने हेमेन्द्र को पत्र लिखा उस समय हेमेन्द्र दिल्ली मे किसी वकील को लिखे हुए अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था जिस मे तलाक की व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूछा गया था, ताकि वह अफ्रीका जाय तो अपनी विवाहित पत्नी को साथ ले जा सके। हेमेन्द्र ने यह भी लिखा था कि आवश्यक होने पर वह भारत भी आ सकता है—यदि उस से जल्दी निपटारे की कोई सूरत न निकल आये।

जिस दिन उस ने रेखा और गौरा की भेंट करायी थी, उस के दूसरे दिन सवेरे फीका मुँह और झल्लायी हुई तबीयत ले कर उठा, बड़ी अनिच्छा पूर्वक मुँह-हाथ धो कर चाय पीने बैठा तो उबकाई आने लगी, थोड़ा लिवर साल्ट खा कर वह फिर सो गया। तीसरे पहर उठ कर उस ने हजामत बनायी, नहाया, उस से तबीयत कुछ सुधरी पर 'मूड' वैसा ही चिड़चिड़ा और हिंस्र बना रहा। शाम को सिनेमा देखने से भी कोई फर्क नहीं हुआ, दूसरे दिन भी वही हालत रही। तीसरे दिन शाम को उस ने तय किया कि गौरा से मिलने जायगा, शायद उसे घूमने ले जायगा या उस से संगीत सुनेगा—तबला नहीं, सितार या बेला या कुछ और। पर वहाँ पहुँच कर देखा ताला बन्द है, नौकर ने बताया कि गौरा पिता के साथ मसूरी चली गयी है। चन्द्र का वह जिघांसु मूड फिर लौट आया, कुछ बियर पीने का संकल्प कर के वह कनाट प्लेस की ओर चल पड़ा.. फिर साँझ को वह आधे मन से रेखा को देखने पहुँचा, वहाँ भी जब मालूम हुआ कि रेखा नहीं है तब उसे तसल्ली ही हुई। रात को फिर वह कनाट प्लेस पहुँच गया, भटकते हुए उसे दो-तीन पत्रकार बन्धु मिल गये और उन के साथ वह फिर पीने बैठ गया। तीन दिन बाद रेखा से मिले बिना ही वह लखनऊ लौट गया। स्टेशन पर उसे छोड़ने पत्रकार बिरादरी के चार-छ: आदमी गये थे, एक ने फोटो भी ले लिया, उसे यह सब अच्छा लगा, गाडी मे बैठा तो दिल्ली के अनुभवो का कसैला स्वाद उस के मुँह मे नही था, और यह भी वह भूल गया था कि लखनऊ मे, जहाँ वह जा रहा है, वहाँ उस की पत्नी और बच्चे या तो आ गये होंगे या आने वाले होंगे।

अवध की शामे मशहूर है, लेकिन हजरतगंज में शाम मानो होती नहीं, दिन ढलता है तो रात होती है। या शाम अगर होती है तो अवध की नहीं होती—कहीं की भी नहीं होती, क्योंकि उस में देश का, प्रकृति का, कोई स्थान नहीं होता, वह इन्सान की बनायी हुई होती है: रंगीन बत्तियाँ,

चमकीले झीने कपडे, प्लास्टिक के थैले-बटुए, किरमिची ओंठ, कमान-सी मूछों पर तिरछे टिके हुए और ऊपर से रिकाबी की तरह चपटे फेल्ट हैट .. और राह चलते आदमी जिन के सामने बौने लगने लगे, ऐसे बडे-बडे सिने-माई पोस्टरों वाले चेहरे—कितना छोटा यथार्थ मानव, कितने बडे-बड़े सिने-माई हीरो—अगर लोग सिनेमा के छाया-रूपों के सुख-दुःख के सामने अपना सुख-दुःख भूल जाते हैं तो क्या अचम्भा, उन छाया-रूपों के स्रष्टा एक्टर-एक्ट्रेसों के सच्चे या कल्पित रूमानी प्रेम-वृत्तान्तों में अपनी यथार्थ परिधि के स्नेह-वात्सल्य की अनदेखी कर जाते है तो क्या दोष. यथार्थ है ही छोटा और फीका, और छाया कितनी बडी है, कितनी रंगीन, कितनी रसीली

काफी हाउस की काफी न मालूम गोमती के कीचड़ से बनने लगी है—उस मे कोई जायका नहीं है। है तो कुछ मिट्टी का, पर नहीं, जली हुई मिट्टी का है। अधिक तपे हुए आवे मे जो ईंटें जल कर काली हो जाती है, उन्हे पीस कर कहवा बनाये तो शायद . चन्द्र का जी होता, काफी फर्श पर थूक दे, पर जैसे-तैसे वह उसे गील लेता, फिर उस घूँट का उत्तर-स्वाद धोने के लिए दूसरा घूँट भरता और उसे भी गील लेता ..

अब वह काफी हाउस दो बार नही आता था, एक ही बार शाम को आता था, पर अब बैठता था बहुत देर तक, खाने के वक्त ही घर पहुँचता था—कभी और भी देर से—और सीधा सोने चला जाता था। स्त्री साहस कर के खाने का पूछती थी तो वह अनमना-सा इनकार कर देता था, उस के स्वर में जो प्राणहीन विनय होता था उसे लक्ष्य कर के पत्नी मानो बुझ जाती थी और आग्रह नहीं करती थी। हाँ, जब वह खाट पर लेट जाता, तब कभी-कभी वह जा कर उस के जूते मोजे खोल देती, कभी हिम्मत कर के गले से टाई भी उतार लेती, पाजामा उस के पास लाकर रख देती और धीरे से कहती, "कपडे तो बदल लेते—"

पहले दो-एक बार उस ने बेटी को भेजा था कि बाबूजी के जूते खोल दे। पर फिर उस की समझ मे आ गया था कि बच्चों को देख कर उसे और

भी झल्लाहट होती है, तब से वह शाम को जहाँ तक हो सके बच्चों को उस की नज़र से दूर ही रखती थी, स्वयं ही आती थी। चन्द्र उस की इन सेवाओं को बिल्कुल उदासीन भाव से स्वीकार कर लेता था। कभी जब वह टाई खोल कर उसे कालर से निकालने के लिए उस के ऊपर झुकती तो उस की कमीज के गले के भीतर से उस के उरोजों का जो थोड़ा-सा हिस्सा उसे दीख जाता उसे वह स्थिर दृष्टि से देखता रहता, कभी-कभी उस दृष्टि को लक्ष्य कर के वह लजा जाती, कौतूहल से चन्द्र सोचता कि अगर वह नौक-रानी होती, या कोई और स्त्री होती, तो चन्द्र उस से छेड़-छाड़ करना चाहता और शायद कमीज का गला पकड़ कर अपनी ओर खींच लेता, पर वह तो उस की स्त्री थी जो उस के खींचने पर झुक जायगी, हाथ बढ़ाने पर सह लेगी, चौंकेगी नहीं, विरोध नहीं करेगी, निषिद्ध के रोमांचकारी रस से उमडे-सिमटेगी नहीं . वह वैसा ही स्थिर देखता रह जाता, पर उस की आँखों का केन्द्रित भाव बिखर जाता, फिर वह एक करवट हो जाता, पत्नी चली जाती तो उठ कर कपड़े बदल लेता...

बरसात जम कर शुरू हो गयी थी। पार्कों की स्वैरिणी हरियाली बढ़ कर सडक की पटरियों पर भी अधिकार जमाने लगी थी, सकर स्थापत्य की नवाबी इमारतों की छोटी-छोटी अलङ्कृतियाँ उस में ऐसे खो गयी थीं जैसे किसी बगिया में छोटी-छोटी फुलवाड़ियाँ। चन्द्र काफी हाउस में बैठ कर बारिश का शब्द सुना करता; पक्की सड़क पर बड़ी-बड़ी बूँदों की कोड़े की मार का स्वर न जाने क्यों उस की पहले से तनी हुई शिराओं में एक नयी उत्तेजना भर देता : वह लगातार एक के बाद एक कई सिगरेट फूँक डालता, फिर कभी-कभी अपनी मेज पर से उठ कर एक-दूसरे मेज पर चला जाता जहाँ दो-चार लेखक-पत्रकार मिश्र जाति के लोग प्रायः सिगार पीते और बहस करते बैठे रहते थे : एक अंग्रेजी के लेक्चरर जिन्होंने कभी कुछ लिखा नहीं था पर अपनी सर्वसंहारी मौखिक आलोचनाओं के कारण प्रगतिशील लेखक समुदाय के अगुआ माने जाते थे, एक उर्दू के शायर, जो प्रायः नौ-साढ़े नौ बजे तक वहीं जमे रहते थे क्यों कि उस समय कुछ गोरी लड़कियाँ डिनर के

या सिनेमा के बाद काफी पीने वहाँ आया करती थीं, उन के जाते ही शायर साहब भी माँगा हुआ सिगार चुक जाने के कारण जेब से बीडी निकाल कर सुलगाते और उठ कर चल देते, स्थानीय हिन्दी दैनिक के एक सहायक सम्पादक, जो बराबर इस मत का प्रचार करते थे कि युद्ध मे इंगलैंड हार जायगा और उस के बाद लड़ाई मे कमज़ोर हुए जर्मनी को भी हरा कर रूस भारत को आज़ाद करेगा, दो-एक और ऐसे व्यक्ति, जिन के बारे मे चन्द्र यही जानता था कि वे 'प्रमुख लिटरेरी आदमी' है, पर किस लिटरेरी क्षेत्र मे प्रमुख हैं यह नहीं, न किसी की किसी प्रकाशित रचना का जिक्र कभी हुआ था . यो शीघ्र ही एक विराट् विश्व-लेखक-सम्मेलन करने की बात प्रायः हुआ करती थी जिस ने भारत के लेखक तो खैर होगे ही, रूस से भी डेलीगेशन बुलाया जायगा.. इस दल मे बैठ कर चन्द्र कई एक नये शब्द और पद सीख गया था, और कई परिचित शब्दो का अर्थ विपर्यय भी उस ने अपनी बोलचाल मे लक्ष्य किया था। और यह भी वह देख रहा था कि वह अब व्यक्तियो की बात सोचता है तो विशिष्ट इकाइयो के रूप में कदाचित् ही, सदैव कोई जातिवाचक विशेषण उस के साथ आता हो है— यहाँ तक कि उसे लगता, स्वयं अपने को वह 'मै, चन्द्र' न कह कर कहीं 'वह बूर्जुआ पत्रकार चन्द्रमाधव' न कहने लग जाय। कभी वह उसे अच्छा भी लगता—इस प्रकार वह वैयक्तिकता से परे जा सकता है जो सिद्धि है, निर्व्यक्तिक हो सकना, निर्व्यक्तिक रूप से घृणा कर सकना, बिना दर्द के सब कुछ का तिरस्कार कर सकना—कितना अच्छा होगा वह। तटस्थता—सन्यास —केवल अलग, उदासीन हो जाना—ऊँहुँक्, वह गलत है, सन्यास और निवृत्ति-मार्ग केवल सामन्तवादी परम्परा की एक विकृति है, कर्म-च्युति का एक बहाना, एक प्रकार का नशा, इनसान एक्टिविस्ट हो, पर निर्व्यक्तिक; घृणा करे, तिरस्कार करे, एक निर्व्यक्तिक रेवोल्यूशनरी घृणा के साथ— वर्ग-मुक्त हो, पीडा-मुक्त हो, इस डिकेडेट, रुग्ण, ह्रासशील समाज मे और स्वयं अपने आप से बाहर हो कर इस के सब मानो-प्रमाणो को तोड गिराये, इस की मान्यताओ को अमान्य कर दे.. हो, किन्तु व्यक्ति न हो, मनुष्य न हो,

एक शक्ति हो, एक नीतिमुक्त, स्वैर-तन्त्र सहस्र शीश, कोटि बाहु, अजस्र वीर्य जैविक प्रक्रिया का एक स्फुरण .

कभी वह उठ कर बाहर निकल आता, क्षण-भर बारिश को देखता जिस की बूँदें आलोक के वृत्तों में आ कर थोड़ी देर के लिए चमक जातीं और फिर अँधेरे में खो जातीं, मानों वह बारिश उसी वृत्त के एक सिरे पर न कुछ से पैदा होती हो और दूसरे सिरे पर न-कुछ में विलीन हो जाती हो—न ऊपर बादल से उस का कोई सम्बन्ध हो, न नीचे पृथ्वी से.. फिर वह फेल्ट उतार कर कोट में छिपा लेता, मुँह को बूँदों की सूक्ष्म बरछियों के प्रति समर्पित कर देता, और बारिश में ही घर की ओर चल पड़ता।

रात के दस बजे थे। दिन-भर वह घर नहीं गया था। भीगता हुआ वह घर पहुँचा, तो बच्चे सो चुके थे, सोने के कमरे में प्रकाश था और वहाँ उस की पत्नी सिलाई लिये बैठी थी। उसे आता देख कर वह उठी, धीरे से बोली, "हाय, सारे कपड़े भीग गये", और लपक कर तौलिया, एक धोती, कमीज़, पाजामा ले आयी। दबे स्वर में, यथासम्भव उलाहने का भाव उस में न आने देने का यत्न करते हुए, उस ने कहा, "रोज भीग आते हैं। कहीं सर्दी वर्दी लग गयी तो ?"

चन्द्र कपड़ों-वपड़ों से परे हट कर तिपाई पर हाथ और कमर टेकता हुआ बोला, "तो क्या, घर रहूँगा तो तुम्हें सेवा का मौका मिलेगा।"

पत्नी ने अनिश्चय से उस के चेहरे की ओर देखा, क्या यह व्यंग्य है या हँसी ? पर चन्द्र का चेहरा सूना था, दोनों में से कोई भाव उस पर नहीं था। वह साहस कर के थोड़ा मुस्करायी और बोली, "न, सेवा ऐसे भी जितनी चाहिए कराइए।" फिर रुक कर बोली, "अच्छा, कपड़े तो बदल लीजिये, फिर मैं खाना लाऊँ।"

"नहीं कौशल्या, भूख नहीं है। और मैं थक भी गया हूँ।" कहते-कहते उस ने हल्की-सी जँभाई ली।

कौशल्या बढ़ कर उस के जूते खोलने लगी। मोजे गीले थे, आसानी से न उतरे, उस ने कहा, "ठीक से बैठ जाइये तो उतार लूँ।" चन्द्र ने

बैठ कर पैर उठाये तो उस ने उकड़ूँ बैठ कर पैर गोदी में लिया और मोजा उतार कर पंजे हाथों से मल दिये। जूते-मोजे एक ओर रख कर वह तौलिया ले कर आयी, चन्द्र को निश्चल देख कर उस ने तौलिया अपने कन्धे पर डाला और चन्द्र की टाई खोल डाली। क्षण-भर अनिश्चित खड़ी रह कर मानो साहस बटोर कर उस ने पेंट की पेटी का बकसुआ खोल दिया, फिर कमीज खींच कर बाहर निकाल दी। फिर बोली, "अच्छा लीजिए, अब जल्दी बदल डालिए।" और जाने को मुड़ी।

चन्द्र उसे स्थिर दृष्टि से देख रहा था। कौशल्या थोड़ी-सी सिमट गयी। चन्द्र ने कहा, "तुम जा कहाँ रही हो?" वह कहने को हुई, "आप कपड़े—" पर बीच में ही रुक गयी, बोली, "आप की डाक ले आऊँ।"

चन्द्र तनिक-सा मुस्कराया, फिर कपड़े बदलने लगा। धोती की तहमद लपेट ली, बदन रगड़ कर सूखी कमीज पहन ली, फिर खाट पर बैठ गया। कौशल्या ने आ कर कहा, "यह लीजिए।"

दो चिट्ठियाँ थीं। एक पर टाइप किया पता था—उसे सवेरे भी देखा जा सकता है। दूसरी—पर यह क्या? उस पर चन्द्र की ही लिखावट थी। सात-आठ दिन पहले उस ने दिल्ली रेखा को पत्र लिखा था वही लौट कर आया था। 'एड्रसी लैफ्ट'.. तो रेखा वहाँ नहीं है, और डाक आगे भेजने के लिए पता भी नहीं छोड़ गयी है, न उसे सूचना दे गयी है . क्षण-भर वह सूना-सा ताकता रहा।

कौशल्या ने पूछा, "किस की चिट्ठी है?"

चन्द्र अनजाने ही कहने को था, "मेरी" पर रुक गया, स्वर में लापरवाही लाता हुआ बोला, "ऊँह, यों ही।" दोनों पत्रों को उस ने तकिये के नीचे ठेल दिया, आँखें कौशल्या पर जमायीं और पूछा, "तुम नहीं खाओगी?"

कौशल्या क्षण-भर अनिश्चित रही, उत्तर देने को थी कि चन्द्र ने हाथ बढ़ा, उस की कमीज का गला पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया।

कौशल्या खिंच आयी, चन्द्र ने सहसा खडे होते-होते दूसरी बॉह उस के सिर के पीछे ले जाते हुए उसे और निकट खीच लिया, पास आते चेहरे पर उस ने देखा, कुछ विस्मय , कुछ अचकचाहट, कुछ प्रतीक्षा; ओठों के अध खुलेपन मे इन सब के मिश्रण से ऊपर भी एक अकथ्य भाव, इस से आगे वह नहीं देख सका क्यो कि ओठो के छूते-न-छूते कौशल्या ने हाथ बढा कर बत्ती बुझा दी थी, चन्द्र ने उस की कॉपती-सी देह को खींच कर चारपाई पर गिरा लिया और एक क्रूर चुम्बन से उस के ओठ कुचल दिये—अँधेरे मे कौशल्या की देह का कम्पन सहसा स्थिर हो आया—उन ओठो मे वासना थी, सूखे गर्म ओठ, पुरुष के ओठ पर प्रेमी के नहीं, प्यार नहीं, बीते हुए स्मरणाश्रित चुम्बनो की गरम-गरम राख..

उस की शिथिल देह पर भार दिये-दिये ही चन्द्र जब सो गया, तब भी वह निश्चल पड़ी रही, थोडी देर बाद जब वह करवट ले कर उस से अलग हो गया तब वह धीरे से उठी, अपने कपडे उस ने ठीक किये, फिर दबे पॉव निकल कर दूसरे कमरे मे चली गयी। साधारणतया वह उसी कमरे में दूसरी चारपाई पर सोती थी, पर सुबह जब चन्द्र उठेगा तब उस के द्वारा देखा जाना वह नहीं चाहती, वह जानती है कि उस समय उसे देख कर चन्द्र सहसा अजनबी आँखों से उसे देखेगा और फिर उन मे घृणा घनी हो आयेगी.. यह—यह अपने-आप मे कुछ भी है या नहीं वह नही जानती, प्यार होता तो अवश्य होता, पर जब नही है तो यही बहुत है; उस घृणा के साथ तो यह भी जहर हो जायगा . ऐसे ही सही, सवेरे चन्द्र उठे तो उसे न देखे, न घृणा करे। राख ही सही, पर घृणा की सॉस उसे भी उडा न दे...

रेखा

पत्र को बंद कर देने से पहले बहुत देर तक रेखा देखती रही, यद्यपि था वह मुश्किल से आधे पृष्ठ का। लेकिन उस की आँखें पत्र के शब्दों पर नहीं टिकी थीं, वरन् उस के आशय पर, और पत्र का आशय उस के शब्दों के आशय के भिन्न कुछ, गहरा कुछ था, जिस के कारण उस की दृष्टि दूर कहीं खो गयी थी। जहाँ वह बैठी थी, वहाँ उस के आगे कुछ बादाम के पेड़ थे, उस से आगे मौसमी विलायती फूलों की क्यारी, उस के बाद फिर पेड़, दूर पर पहाड़ों की कतार जो घनी बदली के कारण डरावनी हो आयी थी, पत्र पर टिकी हुई आँखें मानो इस सारे दृश्य को भी अपने में समा ले रही थीं और कुछ नहीं देख रही थीं। यह कश्मीर था—उस के पूर्वजों का कश्मीर, इस लिए उस का कश्मीर, जिस का सब-कुछ उस का ग़ैर था। जल-वायु वनस्पति, आकाश, लोग, यहाँ तक कि सर्वत्र बिखरे हुए उस के नाते-रिश्तेदार भी, जिन के नाम भी वह नहीं जानती थी, चेहरे तो दूर, और जिन में से अधिकांश को उस के अस्तित्व का भी पता नहीं था . कितना अजनबी, अकेला और ग़ैर हो सकता है व्यक्ति, जब वह अपने घर में अजनबी होता है.. लेकिन यही अच्छा है. क्योंकि इस अजनबीपन में कोई भी वास्तव में ग़ैर नहीं है, वह एक द्वीप है जिस के चारों ओर नदी का प्रवाह है, उस में और द्वीप है, कहीं कोई साझा सीमान्त नहीं है, किसी से कोई सीधा सम्पर्क नहीं, केवल नदी के माध्यम से, नदी जो माँ है, धारयित्री है,

तारयित्री है, जो अंत मे एक दिन अपने आप्लवन मे सब को समा लेगी ..

नीचे कहीं वह रास्ता है, जिस से दो-ढाई महीने पहले वह पहलगाँव गयी थी, तुलियन गयी थी। क्या सचमुच गई थी? लेकिन नहीं, यह सदेह फिर कभी उस के मन मे नही उठा है। अयथार्थ को आत्म-समर्पण करने का जो डर कभी उस ने जाना था जो कभी उस ने जीत लिया था, वह फिर कभी नहीं जागा है, वह समर्पित है और जिस के प्रति समर्पित है वह उस की धमनियो मे स्पन्दित है. "मैं फुलफिल्ड हूँ" इस अनुभूति की दीप्ति अब भी उस के अन्त.करण को आलोकित किये है, और कभी बात करते-करते या बैठे-बैठे इस की कांति सहसा उस के चेहरे पर फैल जाती है तो बूढ़ी मिसेज ग्रीव्ज चकित हो कर देखने लगती है, और खुश होती है कि उस की सगिनी, सहायिका और प्रबंधकर्त्री मे ऐसी आध्यात्मिक कांति है ..।

एंजेला ग्रीव्ज एक पादरी की विधवा है, पर पादरी कहने से जैसे स्वल्प-साधन, बहुधन्धी, सेवा-रत व्यक्ति का चित्र सामने आता है, वैसे मिस्टर ग्रीव्ज भी नही थे, और उन की विधवा तो नहीं ही है। ग्रीव्ज ने सेवा बहुत की, पर साधन भी काफी जुटाये, और जायदाद तो बहुत जुटा ली। फल उपजाने वाले कुल से आ कर यहाँ बागवानी के लिए उत्तम जमीन देख कर जितना ध्यान उस ने आत्माओं की खेती में लगाया उतना ही फलो की खेती मे भी, और अब श्रीनगर मे बँगले के अलावा आसपास कई बगीचो और बगलो की देख भाल निस्सन्तान विधवा एंजेला के जिम्मे है। उसी के विज्ञापन के जवाब मे रेखा यहाँ आयी है और यद्यपि उस का पद है 'कम्पेनियन' अर्थात् सगिनी का, तथापि काम उस के नाना प्रकार के है और संग उस का कम ही होता है, क्यो कि एन्जेला जब बाहर के बगीचों मे जा रहती है तब उसे श्रीनगर छोड जाती है, और जब श्रीनगर जाती है तब उसे यहाँ पहुँचा कर एक-आध दिन काम समझा कर फिर छोड जाती है। एंजेला की उम्र साठ से ऊपर है, पर उस का शरीर सीधा और फुर्तीला है, और बुद्धि बडी सजग, काम उस के लिए बहुत है पर वह हारती नहीं और

कभी मानती नहीं कि वह थक गयी है—यद्यपि संगिनी की खोज मूलतः थकान का ही एक पर्याय है. .।

सेब कच्चे ही तोड़ कर पेटियो मे भर लिए गए है। पेड़ो पर बहुत थोड़ा फल है। कुछ जो पकने पर तोडा जायगा और श्रीनगर मे ही बिकेगा क्योंकि बाहर भेजने लायक वह नहीं होता, कुछ जो अनन्तर उतारा जायगा और जाडो तक बिकता रहेगा। रेखा को काम विशेष नही है, एजेन्ट श्रीनगर मे काम देखती है और वह यहाँ सबेरे बगीचे का एक चक्कर लगा लेती है, पेकिंग वगैरह के काम पर नजर दौडा लेती है, और बाकी घर की ही देख-भाल करती है। काम विशेष नही है, उपस्थिति ही प्रयोजनीय है. ।

वर्षा लगभग हो ली, पर बादल कभी-कभी घिर आते है और ठंड हो जाती है और यहाँ की वर्षा का कोई भरोसा भी नहीं, अगस्त के उत्तरार्ध मे प्रायः बडे जोरो का एक दौर आता है और कभी सितम्बर तक चला जाता है काले बादलो के नीचे सारा दृश्य घुट कर बंद हो जाता है, पेड़ छोटे हो आते है, बँगला खिलौना-सा बन जाता है। मानो पूरा दृश्य अजायबघर के काँच के शो-केस मे रखा हुआ एक माडेल हो.. केवल पहाड उभर कर बडे भारी और तीखे हो आते है, जैसे आकाश के तेवर चढ गए हो, घनी काली भौहे उभर-सिकुड कर और भी काली हो गयी हो फिर धूप कभी निकल आती है और सारा दृश्य खिल आता है, मधु-मक्खियाँ गुंजार करने लगती है, धूप के उजलेपन मे अन्तर्हित एक ललाई उस तेज को मीठा कर देती है, उस की चुनचुनाहट त्वचा को सुहानी लगती है और नाडियो मे अलस तन्द्रा भर जाती है . यह अलसाना भाव ही पहाड के शरदारम्भ का पहला और सब से प्रीतिकर चिह्न होता है—सब से प्रीतिकर भी, लेकिन साथ ही एक विशेष प्रकार की व्याकुलता लिए हुए . उस व्याकुलता को रेखा नाम देना नहीं चाहती, नाम देना आवश्यक भी नहीं है, क्यों कि धमनियो मे उस की अकुलाहट के साथ ही मन मे जो विचार या वाछा-चित्र उठते है वे अपने आप मे सम्पूर्ण होते है। इस अर्थ मे सम्पूर्ण कि समूचे अस्तित्व की माँगे उन में अभिव्यक्ति पा लेती है . पहाड की पहली शरद्

का यह मदालस भाव अकेले अनुभव करने का नहीं है, क्योंकि वह मूलतः एक प्रतिकर्षित भाव नहीं है जैसी जाडो की ठिठुरन-सिकुड़न, न वैसा मुक्त विस्फूर्जित भाव है जैसा बरसात का उल्लास; वह मूलतः एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव, जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है ..

रेखा ने एक लम्बी साँस ली। दूसरे की उपस्थिति...तुलियन की चाँदनी झील के वक्ष को दुलराती हुई धुँध की बाँह, उस की छाती को बहुत हल्के गुदगुदाते आर्किड के फूल, और वह स्निग्ध गरमाई जिसे वह नाम नहीं देगी, जिस का चित्र वह अपने आगे मूर्त नहीं करेगी.. एक सिहरन सी उस की देह मे दौड गयी, वह उठ कर खडी हो गयी और पत्र को पढती हुई चलने लगी, पर उठते ही उसे चक्कर-सा आने लगा, मतली होने लगी, आँखो के आगे अँधेरा-सा छा गया, चिठ्ठी का सफेद कागज नीला हो गया और स्याह अक्षर हरे-सुनहले हो कर मानो एक दूसरे से उलझते-लड़खड़ाते कभी पास कभी दूर होने लगे...वह उलटे पाँव चल कर हाथ से कुरसी टटोल कर फिर बैठ गयी, कडे संकल्प से अपने को संभाल कर उस ने एक बार पत्र पूरा पढ डाला और फिर सफाई से तीन तह कर के लिफाफे में डाल कर बन्द कर दिया जिस पर पता पहले से लिखा था। फिर उस ने पीठ और सिर पीछे टेक कर आँखें बन्द कर लीं, लिफाफा उस के हाथ से गोदी मे झूल गया।

मेरे भुवन,

तुम्हे जब-तब पत्र लिखती रही हूँ—जान-बूझ कर देर-देर से, पर एक महत्त्व की बात फिर भी नहीं लिखी, क्योंकि ठीक जानती नहीं थी ..अब लिखती हूँ—अब जानती हूँ, पर लिखने से पहले बहुत सोचा है कि लिखूँ या नहीं।

वह वायलिनिस्ट सर्जन वाली बात सच है, भुवन। मैं भगवान् का आशीर्वाद तुम्हारे लिए माँगती हूँ, और तुम्हारे चरण गोद में ले कर माथे से लगाती हूँ—उन्हीं के स्पर्श से वह आशीर्वाद मुझे भी घेर ले।

मुझे कुछ चाहिए नहीं भुवन, तुम्हें बताया इस लिए कि—वह भविष्य

मे मेरी आस्था है भुवन, और उसे तुम ने मुझे दिया है। अगर अब हम न मिलें, तो भी वह भूलना मत।

२०

थोड़ी देर बाद वह फिर उठी, धीरे-धीरे खडी हुई, दो-चार कदम चली, और फिर बगीचे के पार चल पडी। चिट्ठी किसी और को भी दी जा सकती थी, पर वह स्वयं ही जायगी, स्वयं ही उसे बक्स मे छोडेगी और इस निमित्त से थोडा टहलना भी हो जायगा—बगीचे से निकल कर टेढी-मेढी सडक से नीचे बड़ी सडक तक, कुछ आगे गॉव के सिरे तक जहॉ लेटर-बक्स लगा है, फिर दूसरी ओर सडक के मोड़ तक जहॉ से उपत्यका की चितकबरी ओढनी पर लगा हुआ नदी का बलखाता हुआ गोटा चमक जाता है—यद्यपि इस बदली में वह चमकेगा नहीं, सीसे-सा झलकेगा—जैसे बहुत-बहुत पुरानी सफेद ज़री हो .पुरानी तो है ही—न मालूम कितना पुराना गोटा है, और न मालूम उस से भी कितनी पुरानी यह धूमर ओढनी रेखा को एक पजाबी टप्पा याद आ गया, जो उस ने घूमते हुए एक दिन किसी राह चलते बूढे सिख को गाते सुना था :

मेरा चोला लीरॉ दा :
इक वारी पा फेरा तक्क हाल फकीरॉ दा !

चलते-चलते वह स्वय भी धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी, कुछ तो उस के सुर की, और कुछ अर्थ की करुणा ने सहसा उसे छा लिया कि वह मानो उस की अपनी करुणा हो गयी, मानो अभी लम्बी तान के साथ उस के ऑसू उमड़ आयेंगे...लेकिन उमडे नहीं, रेखा बीच-बीच मे रुक-रुक कर गुनगुनाती रही, "तक्क हाल फकीरॉ दा...तक्क हाल फकीरॉ दा..." और बढती रही गन्तव्य की ओर !

वकील से भेंट मे ज्यादा समय नहीं लगा था, पर हेमेन्द्र के चेहरे पर जो कुटिल सन्तोष का भाव था, उस मे से एक झल्लाहट भी प्रकट हो रही थी। उसे क्या कहना था, वह अच्छी तरह जानता था, आने से पहले मलय

मे भी उस ने कानूनी सलाह ले ली थी और दिल्ली के इस वकील से भी पत्र-व्यवहार कर लिया था, दूसरी ओर वकील भी तलाक के कानून का पारंगत था और उसे जो कहना था वह न केवल अच्छी तरह जानता था बल्कि साफ, सुलझे, सान पर चढ़े हुए चाकू की तरह बेलाग फ़िक़रो मे कह भी सकता था। ऐसी भेंट का अपना एक रस होना चाहिए था, पर हेमेन्द्र की झल्लाहट की वजह दूसरी थी। वकील ने कहा था कि जहाँ तक तलाक की दरख़ास्त के कारणो की बात है, उचित कारण सब दूसरी तरफ हैं : न्यायतः रेखा ही दरख़ास्त दे सकती है क्यो कि उत्पीडित पक्ष वही है, और अगर वह नही देती तो उस की मर्ज़ी है। पर हेमेन्द्र किसी तरह छुटकारा चाहता है, तो यही तरकीब हो सकती है कि वह धर्म-परिवर्तन कर ले और फिर रेखा से भी कहे, उस के इनकार करने पर तलाक की दरख़ास्त दे...यह बता कर उस ने कहा था, "मै मान कर चल रहा हूँ कि आप दोनो छुटकारा चाहते हैं, नही तो अगर वह न चाहती हो और धर्म-परिवर्तन करने को तैयार हों तो आप कुछ नही कर सकते—यानी ऐसे स्मूथली नहीं हो सकता—फिर तो आप को ऐसे आरोप उन पर लगाने पडेगे जो सच होने पर भी कोई स्त्री आसानी से न मानेगी—और झूठे हो तब तो...और यह तो सवाल ही दूसरा है कि वह कितनी क्रूरता होगी—"

हाँ, वकील ने कोई मुरव्वत नहीं की थी—एकदम बेलाग बात की थी ...वह ठीक ही था, पर यह पराधीनता उसे अखर रही थी। वह मनमानी का आदी है, इतनी छोटी-सी बात के लिए उसे रेखा का मुँह जोहना पडेगा —वह चाहेगी तो तलाक होगा, न चाहेगी तो नहीं—यह स्थिति उस से सही नहीं जा रही थी.. रेखा बाधा नहीं देगी, वह जानता है, फिर उस सूरत मे जब मुक्ति देने मे उसे स्वयं भी तो मुक्ति मिलेगी—यद्यपि यह भी वह जानता है, रेखा को कानूनी मुक्ति की परवाह नही है, वह किसी भीतरी बन्धन से बद्ध या मुक्ति से मुक्त होगी; और वह अब भी अपने को इतना मुक्त समझती होगी कि कानून की बन्दिशो का बोझ उस पर न हो। यह सब ठीक है, पर क्यो वह रेखा पर निर्भर करने को लाचार है? इस से तो

अच्छा होता कि वह यही कह कर तलाक माँगता कि रेखा दुराचारिणी है—वह उस हालत में भी सफाई देने न आती अहंकारिणी, पर उस में उस की मुँहजोरी तो न होती।

वह तो सचमुच वही करता। कुछ जब तोडना ही है, तो सीधे स्मैश करना चाहिए। यह क्या कि तोडना भी चाहो, और ढेला मारते भी डरो, गिराओ भी तो धीरे-धीरे कि चोट न आये? तोड़ना है तो हथौडा—स्मैश! वकील ने कहा है कि रेखा को पत्र वही लिखेगा, और हेमेन्द्र से वायदा लिया है कि वह स्वयं कोई पत्र-व्यवहार नही करेगा, पर क्यो न वह रेखा को एक पत्र लिखे, साफ-साफ पता लगाते क्या देर लगेगी—लिख दे कि वकील ने ऐसा कहा है पर वह सोचता है कि सीधी साफ बात—पूछ ले कि क्या तुम सफाई देने आओगी? वकील ने कहा था, क्रूरता होगी। सभी पुरुष-स्त्री क्रूर होते है—और सब से क्रूर वे जो एक-दूसरे से शादी कर लेते है

क्या जाने, रेखा भी शादी करना चाहे, पर यह विचार आते ही हेमचन्द्र ठिठक-सा गया—रेखा, और शादी! एक विकृत मुस्कान उस के चेहरे पर फैल गयी। एक शादी का ही अनुभव उस के लिए काफी होगा .. प्यार? लेकिन रेखा के लिए पुरुष-मात्र ऐसा जहरीला जीव हो गया होगा —औरतो की बनावट ही ऐसी होती है, कि पुरुष से चोट खा कर वे सारी पुरुष जाति को बुरा समझ लेती हैं—उदार दृष्टि से तो सोच ही नही सकती, कि मर्द-मर्द मे भेद भी हो सकता है, कि—

यहाँ आ कर उस की विचार-परम्परा टूट गयी। क्यो नही वह रेखा पर तर्स खा सकता, करुणा कर सकता, क्यो नही उसे अपनी दया दे सकता? रेखा—उस के प्रेम-शरीर का एक भरा हुआ अवयव जिसे उस ने काट दिया है—काट देने के बाद अवयव पर आक्रोश कैसा?

खैर, वह रेखा को एक चिट्ठी तो लिखेगा ही, देखा जायगा—करुणा करने के लिए सारा भविष्य पडा है।

तुलियन से लौट कर भुवन फिर प्रयोगशाला मे डूब गया था। यद्यपि

वह डूबना पहले से कुछ भिन्न था; क्यों कि तुलियन के प्रयोगों को ले कर यह जब भी गणना करने बैठता, तो उन प्रयोगों से मिलने वाली बौद्धिक प्रेरणा ही नहीं, उन की ओट में तुलियन का वह भावोन्माद भी झलक आता जिसे ओट से खींच कर सामने लाने का प्रयत्न उस ने नहीं किया था; वह अनुभूतियों का एक संघट्ट, संवेदनाओं का एक घना सम्पुंजन था जिसे विश्लिष्ट कर के देखना चाहना ही मानो बर्बरता थी—जिस तरह किसी हल्की गैस से भरे हुए गुब्बारे से लटक जाने पर गुरुत्वाकर्षण को काट कर मानव मानो भार-मुक्त हो जाता है—पृथ्वी पर पैर रख कर चलता भी है तो भार दे कर नहीं चलता, वैसी ही उस की अवस्था थी : वह अपनी सब चर्चा पूरी करता था, पर मानो धरती पर पैरों की छाप डाले बिना : जैसे मानवी काया-पिंजर में बँधा कोई आकाशचारी देव-गन्धर्व.. रेखा के दो-एक पत्र उसे आये थे, छोटे-छोटे, सूचनात्मक, जिन में कभी एक-आध वाक्य अन्तरंग सम्बोधन का आ जाता तो आ जाता : उन से वह भावोन्माद फिर भीतर ही भीतर पुष्ट हो जाता था, उभर कर सतह पर नहीं आता था। भुवन ने अधिक पत्र नहीं माँगे, बल्कि अपनी ओर से भी विशेष कुछ नहीं लिखा, वैसे ही सूचनात्मक पत्र...हाँ, रेखा की तरह उस ने भी जब-तब कागज पर अपने विचार लिख कर रख छोड़ना आरम्भ कर दिया था—वह भी रेखा इरादा कर के नहीं, रेखा के उदाहरण का ध्यान कर के भी नहीं, लगभग अनजाने ही; उस की वैज्ञानिक दीक्षा के कारण अन्तर इतना था कि अलग-अलग परचों को बजाय उस ने एक कापी रख ली थी। यह जिज्ञासा भी उस के मन में कभी नहीं हुई कि क्या रेखा भी अभी वैसे कुछ लिख कर रखती होगी, या कि क्या वे विचार और भावनाएँ कभी वह देख-पढ़ सकेगा.. लेकिन ऐसा वह क्यों, कैसे हो गया वह स्वयं नहीं समझ पाता था—जीवन के प्रति ऐसा स्वीकार भाव उस में कहाँ से आया? चन्द्रमाधव की भाँति वह जीवन को नोचने-झँझोड़ने का आदी तो नहीं था; बछड़े को देखा देने नृशंस ग्वाले जैसे गाय के थनों में हुचका मार कर दूध की अन्तिम बूँद निकाल लेना चाहते हैं, जीवन की कामधेनु को वैसे दुह लेने की प्रवृत्ति उस

की नहीं थी, पर ऐसा प्रश्न-विहीन भाव भी तो उस का नही रहा था : यह क्या रेखा की छाप थी कि वह भी मानो धीर-प्रवाहिनी जीवन की नदी का एक द्वीप-सा हो गया है ? रेखा ..उस की आकृति का, विशेष घटनाओ या स्थितियो का चित्र भुवन के सामने कदाचित् ही आता, स्मृत संस्पर्शों या दुलारो का राग कदाचित् ही उमे द्रवित करता, पर रेखा के अस्तित्व का एक बोध मानो हर समय उस की चेतना के किसी गहरे स्तर को आलोकित किये रहता और उस के प्रतिबिम्बित प्रकाश से अन्तःकरण को रंजित कर जाता—जैसे किसी पहाडी झील पर पडा हुआ प्रकाश प्रतिबिम्बित हो कर आस-पास की घाटियो को उभार देता है...केवल कभी-कभी वह साँझ को बाइबल उठा कर उस मे सालोमन का गीत पढने बैठ जाता, पढते-पढते ऐसा विभोर हो जाता कि ज़ोर-ज़ोर से पढने लगता, फिर अपना स्वर उसे चौंका देता—मानो जाग कर वह जानता कि वह रेखा के कारण उसे पढ रहा है—प्रकारान्तर से रेखा के साथ है..

केवल एक बार पिछले कुछ महीनो की घटनाएँ—और विशेषकर दो-तीन मास पहले के नौकुछियाताल और तुलियन के थोड़े से दिन—एक तीखे मर्मान्तिक दर्द की तरह उसे साल गयी थी। थोड़ी देर वह तिलमिला गया था, फिर लज्जा से भर गया था—इस लिए और भी अधिक कि वह तिलमिलाना भी और सिमटना भी एक और व्यक्ति ने भी देख लिया था। फिर उस से प्रकृतस्थ हो कर बात सँभाल ली थी—या सँभालनी चाही थी, क्यो कि कहाँ तक वह सँभल सकी है वह नही जानता था ..

गौरा कुछ घण्टो के लिए आयी थी। दिल्ली से वह बनारस जा रही थी जहाँ उस ने कालेज मे सगीत-शिक्षिका की नौकरी स्वीकार कर ली थी, सीधी न जा कर उस ने भुवन से मिलते हुए जाने का निश्चय किया था। अपनी ओर से तो वह चाहती ही, पर भुवन ने भी बुलाया था : उस ने केवल यह सूचना दी थी कि वह बनारस जायेगी और उत्तर मे भुवन ने पूछा था कि क्या वह उधर से हो कर न जा सकेगी—उस ने निस्सन्देह बहुत प्रमाद किया है और गौरा का रोष स्वाभाविक ही होगा, पर रोष न कर के उसे

देखते जाना भी कम स्वाभाविक न होगा और वह कृतज्ञ भी होगा—गौरा का वह सदैव कृतज्ञ है...

वह स्टेशन लिवाने गया था, स्टेशन से वे दोनो पहले उस की प्रयोगशाला मे गये थे, वहाँ से होते हुए घर आने की बात तय हुई थी। प्रयोगशाला से लगे हुए भुवन के कमरे मे वैज्ञानिक यन्त्रो से घिरे हुए बैठ कर गौरा ने बताया था कि वह बनारस नौकरी करने जा रही है, फिर भुवन से यन्त्रो के बारे मे पूछने लगी थी। यन्त्रो से कॉस्मिक रश्मियो, और उन से तुलियन की बात उठना स्वाभाविक था, गौरा ने सहसा पूछा था, "तुलियन झील सुन्दर है?' और साथ ही जोड दिया था, 'वहाँ भी आप यन्त्रों से ऐसे ही घिरे बैठे रहते होंगे—प्रकृति के लिए आप को फ़ुरसत हो कहाँ होगी?"

तब, पहली बार वह दर्द उसे साल गया था। "प्रकृति के लिए फ़ुरसत"—एक प्रकृति बाहर की जड प्रकृति है, एक उस की धमनियो मे गरम-गरम प्रवाहित होने वाली उस की प्रकृति—और क्या सचमुच उसे फ़ुरसत नही हुई थी? झूठ वह नही बोलेगा, गौरा से बिल्कुल नहीं, पर कहे क्या वह? जो-कुछ भी वह कहेगा, क्या वह झूठ नहीं होगा?

उस ने कह था, "कितने भी यन्त्र हो, पहाड़ को और प्रकृति को नहीं छिपाते", फिर कुछ रुक कर अपने को बाध्य करते हुए, "तीन-चार दिन के लिए रेखा देवी भी वहाँ आयी थीं—बल्कि यन्त्रो के आने से पहले—"

एक भारी-सा मौन उस के बीच मे पड़ गया था। वह दर्द भुवन को फिर सालने लगा था, पर इस मौन को ठेल कर हटा देने की प्रेरणा उस मे नही थी। गौरा भी कुछ कहने को हुई थी—फिर सहसा चुप लगा गयी थी, भुवन देख सका था कि वह कुछ कहती रुक गयी है, पर क्या, वह नही सोच सका था। अन्त मे गौरा ने ही कहा था, "अब कहाँ हैं रेखा देवी?"

"काश्मीर मे—वहाँ उन्हो ने नौकरी कर ली है। पीछे दिल्ली मे थीं—दिल्ली से वहाँ चली गयी।"

गौरा ने फिर कुछ रुक कर, सकुचाते हुए कहा था, "हाँ।" फिर वह कुछ कहने को हुई थी, और फिर रुक गयी थी।

मौन और भी भारी हो गया था। अब की बार उसे कोई नही तोड़ सका था। अन्त मे जब भुवन ने कहा था, "चलो, घर चलेंगे—यहाँ कुछ और नही करना है", तब भी उसे यह नही लगा कि उस भारी मौन को वह तोड सका है, बात उस ने की है जरूर, पर यह दूसरे स्तर पर है, जिस स्तर पर मौन है उस पर यह पहुँची ही नही...

और न गौरा ही उसे तोड पायी थी जब उस ने घर पहुँच कर कहा था, "लाइये, मै आयी हूँ तो थोडी सँभाल मै कर जाऊँ—पर पहले चाय बना लाऊँ।" स्वय यह अनुभव करती हुई वह बिना भुवन के रास्ता दिखाने की प्रतीक्षा किये भीतर चली गयी थी—वह इस घर का भूगोल नही जानती, पर एक अकेले बैचलर सायटिस्ट के घर का भौगोलिक रहस्य हो ही कितना सकता है..

भुवन तिलमिलाया हुआ टहलता रहा था। दर्द उसे सालता हुआ सारी देह में छा गया था, एक भीतरी दबाव-सा उस की आँखो के पपोटो मे स्पन्दित होने लगा था, भवो के ऊपर उस का माथा सीसे-सा भारी हो आया था,

गौरा चाय बना कर ले आयी थी। एक बार भुवन के चेहरे को देख कर चुप-चाप टालने लगी थी। बढा हुआ प्याला ले कर भुवन बैठ गया था।

उसी प्रकार, मौन की दीवार को तोड़ने मे असमर्थ, भुवन ने पूछा था, "गौरा, तुम ने नौकरी जो कर ली—तो क्या जीवन का मार्ग अन्तिम रूप से चुन लिया? माता-पिता की क्या राय है?"

"हाँ, भुवन दा। नौकरी मैने नही चुनी, सगीत ही चुना है, पर आगे सीखने के लिए यह सहारा जरूरी है—मात-पिता पर बोझ बने रहना कहाँ तक ठीक होता?"

भुवन उसे देखता रहा था। माथे का नाडी-स्पन्दन वैसा ही था, उसे मानो वह सुन सकता था। फिर उस ने पूछा था, "गौरा, विवाह क्या कभी नही करोगी?"

तब यह मौन थरथरा कर टूट गया था। गौरा खड़ी हो गयी थी उस का मुँह तमतमा आया था। मुद्रा तनिक भी नहीं बदली थी, इस से यह स्पष्ट नहीं था कि वह तमतमाहट कैसी है, उत्तर देने से पहले भी वह क्षण-भर रुकी रही थी और जब बोली थी तो बिल्कुल सम स्वर से : "भुवन दा, मुझ से तो आप पूछते है, पर नौकरी तो आप भी करते हैं, आपने क्या सोचा है यह सब—सोच चुके है ?"

भुवन ने कहना चाहा था, "मेरी बात दूसरी है—पुरुष के लिए विवाह और नौकरी विरोधी कैरीयर नहीं हैं और स्त्री के लिए साधारणतया तो होते ही है—साथ नही चलते—" पर कह नहीं पाया था, गौरा के मुँह की ओर देखते-देखते अचानक कह गया था, "गौरा, आज देखता हूँ तुम मुझ से छोटी अब नहीं हो—और अब से बराबर-बराबर बात करूँगा, यों पहले भी बिल्कुल छोटी ही तो नहीं मानता था—"

गौरा एकदम बैठ गयी। उस का चेहरा शान्त हो आया। बोली, "माफी चाहती हूँ, भुवन दा—आप सदैव बड़े है।"

भुवन ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "नही।" फिर मानो असली विषय पर लौटते हुए, "पर मेरे लिए एक चुन लेना आवश्यक नहीं है। इस मामले मे पुरुष कन्फ्यूज्ड भी रहे तो चल सकता है—स्त्री को बिल्कुल क्लीयर-हेडेड हो कर सोचना पडता है—निर्मम हो कर।"

गौरा ने जिद की, "अच्छा जरूरी न सही, आप ने सोचा तो होगा ?" फिर सहसा अपनी ज़िद पर थोडा-सा शरमा कर वह मुस्करा दी।

उस मुस्कराहट से भुवन सँभल गया। स्वयं भी मुस्करा कर बोला, "ठीक सोचा तो नहीं—सोचना तो एक वैज्ञानिक क्रमागत क्रिया है—पर हाँ, यों ही कुछ धारणाएँ तो हैं—"

"क्या ?"

"यही कि उस के विरुद्ध मैंने कोई प्रतिज्ञा तो नहीं की। राह चलते यदि कोई उपयुक्त साथी मिला, तो—"

"लेकिन इस देश मे राह चलते कुछ नहीं होता, भुवन दा, बड़ी खोज

करनी पड़ती है।" गौरा स्पष्ट ही उसे चिढा रही थी।

भुवन ने उसी ढग से कहना चाहा, "न, मिरेकल इस देश मे भी होते हैं—" पर यह मानो उसे अनुगूँज लगी दूर कहीं की घटियो की—जबान पर आयी बात रुक गयी और वह फिर चुप हो गया। थोडी देर बाद उस ने फिर हँसने का यत्न करते हुए कहा, "खोज तो दूसरे करते हैं—विज्ञान के विद्यार्थी का तो सारा जीवन ही खोज है।"

"ओ हो! तब जब कुछ मिल जायगा तो भौंचक से देखते रह जायेंगे। सब-कुछ कॉस्मिक रेज की तरह थोडे ही यन्त्र से नाप लिया जाता है।"

"खास कर स्त्री—यही न? पर यह क्यो मान लेती हो कि मैं ही खोजूँगा—वह भी तो खोजेगी—बल्कि वही खोज लेगी—स्त्रियो की बुद्धि तो अचूक होती है न ऐसे मामलो मे! मैं—यन्त्र—केवल इतना जान लूँगा कि खोज पूरी हो गयी।"

भुवन को थोड़ा-थोड़ा लग रहा था कि वह उस के लिए अस्वाभाविक ढग से बात कर रहा है, कुछ-कुछ बेवकूफी की भी बात कर रहा है। पर इस तरह की गैर-जिम्मेदार बाते मानो एक छद्म थी जिस की ओट मे उस की भीतरी आकुलता और असमजस छिप जाता था। वह कहता गया, "राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूँगा, मेरे पीछे कोई है और मुड कर नही देखूँगा और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखो के आगे डाल देगी—उस दिन मैं जान लूँगा कि मेरी खोज—कि मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी, और पडाव आ गया।"

गौरा अनिश्चित-सी हँसी, "क्या बच्चो की-सी बात करते है आप। या रोमाटिको जैसी।"

"क्यों?"

"और नहीं तो क्या। कौन वह सुन्दरी होगी जो ऐसे अपने केशो में आप को बाँध लेगी—ऐसी तो रोमाटिको की वह सनातन चुडैल थी—लिलिथ—जो अपने सुनहले बालो से लोगो के दिल बाँध लिया करती थी और वे

सूख जाते थे। क्यो नही आप उन नाइटों की बात सोचते जिन के माथे पर तारा चमका करता था।

"तारो की खोज क्या कम पागलपन है, गौरा? इतने बडे आकाश मे कोई एक तारा चुन लीजिए, अच्छा चुन हो लीजिए, अग्रेजी मे कहते तो है कि 'अपना छकड़ा तारे के पीछे जोत लो' पर तारे तक पहुँचे तब तो—"

"या तारा ही आप तक पहुँचे—"

नही, यह भी प्रतिध्वनि है—कहाँ, किस की प्रतिध्वनि? 'कोई बात नही, मैन फ्रायडे, तारा खुद तुम्हे ढूँढ लेगा।'—'मै अँधेरे में डूबना नहीं चाहती, नही चाहती।'—'अच्छा मैन फ्राइडे, तुम्हारा तारा कौन-सा है?'—'और तुम—शुक्रतारा।' 'क्यो, चाँद नहीं?' वेन मैन। नहीं, शुक्र, केवल शुक्र!' 'मेरा तारा।'

भुवन खड़ा हो गया। प्याला उस ने रख दिया, टहलने लगा।

"क्या बात है भुवन दा?"

भुवन ने पैतरा करते हुए कहा, "हमारे प्रोफेसर कहते थे, विज्ञान से जिस की शादी हो जाती है, उसे फिर और कुछ नही सोचना चाहिए। वह बड़ी कठोर स्वामिनी है।"

गौरा ने कहा, "हूँ। यो तो सगीत—कोई भी कला—और भी कठोर स्वामिनी है, और विज्ञान का मनचलापन तो सन्दिग्ध भी हो सकता है, कला के बारे मे तो सन्देह की गुंजाइश नही।" फिर वह रुक कर क्षण भर स्थिर दृष्टि से भुवन को देखती रही। "मगर भुवन दा, हम लोग क्या बे-बात की बात कर रहे है, आप, आप हैं कहाँ?"

"गौरा—" भुवन ने पास आ कर एक हाथ गौरा के कन्धे पर रखा और चुप हो गया। धीरे-धीरे उस का हाथ हटने लगा पर गौरा ने उस पर अपना हाथ रखकर उसे रोक लिया और बड़े अनुरोध से कहा, "बताइये न, भुवन दा—"

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ खींच लिया। "कुछ नहीं गौरा, अपने भविष्य के बारे मे नहीं सोचा करता, तुम्हारे ही भविष्य की बात सोचा करता हूँ।"

कुछ रुक कर, पर गौरा को बोलने का मौका दिये बिना, "यो तो भविष्य की बात ही नही सोचनी चाहिए—वर्तमान ही सब-कुछ है, भविष्य केवल उस का एक प्रस्फुटन—"

यह क्या हो गया है उस को ? यह भी प्रतिध्वनि है...

गौरा ने उलहने के स्वर मे कहा, "यह आप कहते है, भुवन दा, आप ?"

ठीक है गौरा का उलहना, भुवन के भीतर कुछ उमड़ कर बोला था, तुम कैसे ऐसी बात कह सकते हो, और गौरा को ..

ठीक इस समय, बड़े मौके से, भुवन का नौकर आ गया था। साधारणतया उसी को आ कर चाय देनी चाहिए थी, पर रसोई मे आ कर उस मे उथल-पुथल के लक्षण देखे तो भीतर देखने चला आया, भीतर गौरा को चाय लिये बैठे देख कर वह मुड गया एक हल्की-सी मुस्कराहट को छिपाने के लिए—तो डाक्टर साहब के लिए अभी कही कुछ उम्मीद है...

भुवन अपनी ही बात को ले कर हँस दिया। "और नहीं तो क्या ? सोचने को तो हम बहुत कुछ सोचते है, पर जब जॉच कर के देखते है तो यही मानना पड़ता है कि हॉ, वर्तमान ही सब-कुछ है।"

गौरा थोडी देर वैसे उलहने से देखती रही। फिर उस ने कहा, "हो सकता है। यो मेरे लिए भी यही बात है—अभी जहॉ तक मुझे दीखता है, उसी के अनुसार मैने भी सोच लिया है, आगे जब—नया वर्तमान खुलेगा तब उस के अनुसार और सोच लूॅगी। नही तो आप ही बताइये—"

भुवन ने कुछ सोचते हुए कहा, "हॉ, यो तो ठीक है।"

अगली गाडी से गौरा चली गयी थी। जाने के समय वातावरण कुछ स्वच्छ हो गया था, भुवन ने यह भी कहा था कि अगले दशहरे की छुट्टियो में वह शायद बनारस आयेगा—दो-एक दिन, फिर गौरा के साथ दिल्ली लौटेगा अगर उस के पिता वहॉ होगे, या अगर मसूरी होगे तो वही जायगा। गौरा ने कहा था, "जरूर चलिएगा—आप पिता जी को बहुत नेग्लेक्ट करते रहे है—रहे है न ?" फिर चारो ओर नजर डाल कर कहा था,

"घर को भी आप ने नेग्लेक्ट कर रखा है। मै एक-दो दिन रह जाती तो सब सँभाल देती—पर आप रहने ही कहाँ देते हैं?" भुवन ने हँस कर उत्तर दिया था, "घर की सँभाल एक-दो दिन का काम थोड़े ही है, गौरा? एक बार सँभालोगी, फिर वैसा ही हो जायगा—पर वैसे नुक्स क्या है, मुझे जबानी ही बता दो, मै सँभालूँगा—"

"ऐसे काम जबानी ही हो सकते तो..."

"तो क्या?"

लेकिन गौरा ने अपना वाक्य पूरा नहीं किया था।

गौरा के जाने के बाद वापस लौट कर बहुत देर तक भुवन कमरे मे और छत पर चक्कर काटता रहा। गौरा के आने ने उस के भीतर जो उद्वेलन उत्पन्न कर दिया था, उस का कारण वह नही जानता था, न कोई स्पष्ट विचार ही उस के मन मे उठ रहे थे, केवल एक आकारहीन, केन्द्रविहीन आकुलता...फिर वह अपनी कापी ले कर बैठा, लेकिन उस में भी कुछ न लिख सका : कापी सामने रख कर बैठा रहा, साँझ घिर आयी, बादल छा गये और गरजने लगे...उस ने कापी रख दी और टहलने निकल गया।

दूसरे दिन फिर वह पूर्ववत् अपने काम में जुट गया, उद्वेलन भीतर-ही भीतर कही दब गया और पहले की स्थिति फिर हो गयी—काम, काम, काम, केवल चेतना के भीतरी किसी स्तर पर एक आलोकमय छाप, और उस के साथ गुँथा हुआ रेखा का ध्यान जो सतह पर नही आता..

इस अवस्था से रेखा के पत्र ने उसे झकझोर कर जगा दिया—और ऐसा जगाया कि फिर वह कभी उस अवस्था को नहीं लौटा, फिर जब आयी तो एक प्रकार की जड़ता आयी, और उस के भीतर एक आलोक नहीं, एक गुथीला अन्धकार .

पत्र पाकर उस ने पढ़ा, तो पहले शान्त भाव से ही पढ़ गया, कोई आश्चर्य की बात उस मे नहीं थी। रेखा से जब वह विदा हुआ था, तब जो

बात हुई थी उस से यह परिणाम निकलता ही था—रेखा ने सूचित कर दिया था और यह भी कह दिया था कि वैसा ही वह चाहती है...पर क्या तब सचमुच वह समझ सका था ? उस ने मन-ही-मन उस स्थिति को मूर्त किया—नदी के आर-पार पड़े शहतीर पर वे दोनों, दोनों स्तब्ध, नीचे दौड़ता उफनता पहाड़ी नदी का जल, और दोनों की अपूर्ण आकांक्षाओं का आरोप उस भविष्यत् जीव पर जिसे—शायद !—उन्हों ने अनजाने और एक आविष्ट मोहावस्था में रचा है...क्या तब वह उस बात का पूरा अभिप्राय समझा था जो रेखा ने कही थी—क्या वह अब भी समझ रहा है ? धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उस के मन में उभरने लगी, और मानो तेजाब से एक-एक गहरी रेखा उस के चेतन-पट पर कोरने लगी..."आर यू रीएल—तुम हो, सचमुच हो, भुवन ? . मैं तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे लो रेखा, आओ... 'लेट अस गेट अप अर्ली टु द विनयार्ड्स : देयर विल आइ गिव दी आफ माइ लव्ज'.. 'महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माझे ?'...भुवन, मेरी मोहलत कब तक की है ? शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा ..पगली, पगली, तुम तो चाँदनी में ही जम गयी थीं ! और तुम ? तुम पिघल गये थे ? . 'लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी'.. लजाती हो—मुझ से—अब ? तुम से नहीं तो और किस से लजाऊँगी ? ..'वेट विदाउट होप, फार होप वुड बी होप आफ द राग थिंग'...'देबे कि गो वासा आमाय देबे कि एकटि धारे ?'. "एक अद्भुत भाव उस के मन में भर गया, जिस में वात्सल्य भी था, करुणा भी, एक आतुर उत्कंठा भी और एक बहुत हल्की-सी जुगुप्सा भी। "न, मैं कुछ माँगूँगी नहीं, तुम्हारे जीवन की बाधा नहीं बनूँगी, उलझन भी नहीं बनूँगी। सुन्दर से डरो मत लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना—मेरी यह कुंठित बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर, मुक्त, ऊर्ध्वाकांक्षी . " क्यों नहीं माँगेगी रेखा कुछ भी ? यों सब कुछ दे देगी, और फिर चुपचाप चली जायगी—अपनी सब से अधिक आवश्यकता के समय मूक ? नहीं, इतना बड़ा दान वह नहीं ले सकेगा।

उदार हो कर देना कठिन है, होगा, पर उदार हो कर ले लेना और भी कठिन है .."तुम ने मुझे एक बार भी नहीं बताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय मे क्या भाव है—" ठीक कहा था रेखा ने, उस ने सचमुच कभी कुछ नही बताया, शायद स्वयं ही नही सोचा—और बिना एक प्रश्न तक भी पूछे रेखा ने —नहीं, वह एक पक्षीय व्यापार—वह नही सह सकेगा—टूट जायगा इस के बोझ से.. ऐसा दान वह नही लेगा जो पाने वाले का दम घोट दे, और देने वाले को—देने वाले को भी सकट मे डाल दे. .

लेकिन दान वह नहीं लेगा, यह कहने के अब क्या मानी हैं जब वह दान ले चुका है ? अब वह क्या करेगा, अब, यही उसे सोचना है, और स्पष्ट सोचना है, परिणाम तक ले जा कर सोचना है .

पत्र उसे कालेज मे मिला था। कालेज से लौटने से पहले उस ने रेखा को तार दे दिया कि वह आ रहा है, और छुट्टी का आवेदन भी दे दिया, बल्कि थोड़ी देर बाद स्वयं प्रिंसिपल के पास जा कर स्वीकृति भी ले ली। शाम को वह रवाना हो गया।

मोटर के अड्डे पर रेखा हो भी नही सकती थी, पर भुवन ने उतर कर चारो ओर नजर दौडा कर देख लिया मानो उसे खोज रहा हो · फिर जब वह कही न दीखी तो उसे सन्तोष हुआ। बाहर निकल कर ताँगा लिया, पर पते के लिए दो-एक जगह पूछना पडा। अन्त में जब ठीक पता पा कर ताँगा मिसेज ग्रीव्ज़ के बगीचे की ओर बढ चला, फाटक पर पहुँच कर रुका और भुवन ने उतर कर उस पर लगा हुआ ग्रीव्ज़ नाम का बोर्ड भी देख लिया, तब ताँगे को जल्दी बढने के लिए न कह कर उस ने वहीं रोक दिया "हम अभी पूछ कर आते है, ठीक होने से भीतर बुला लेगे—" कह कर वह गेट खोल कर भीतर बढ़ा, ताँगे वाले की पुकार उस ने अनसुनी कर दी कि "सा' ब, ताँगा भीतर ले चलूँ, सा' ब।"

एक डर-सा उस के मन पर छा गया, पर उस ने उसे साफ़ नाम

ला कर नहीं देखा। प्रार्थना-सी यही बात बार-बार उस के ओठों पर आने लगी कि जब वे मिलें तो रेखा अकेली हो—चाहे कितनी थोड़ी देर के लिए औरों के बीच में न उसे रेखा से साक्षात् करना पड़े . मन में यह भी प्रश्न उठता कि क्या रेखा ठीक वैसी ही होगी, या उस का रूप कुछ बदल गया होगा—पर इस प्रश्न को भी वह दबा देता—कुछ नहीं सोचेगा वह रेखा को देखने तक—और देखे तो वह अकेले में ही देखे

दूर से ही उस ने उसे देख लिया। बरामदे में आराम कुरसी पर वह बैठी थी, सारा शरीर ढलती धूप में, केवल चेहरा छाँह में था और स्पष्ट दीखता नहीं था। रेखा ने वही परिचित मक्खनी सफेद रेशमी साड़ी पहन रखी थी, पहनने का ढंग कुछ अनोखा था और मानो उसे और भी दूर अलग ले जाता था। उस ने भुवन को अभी नहीं देखा था, भुवन कुछ और भी ओट हो कर दबे-पाँव चलने लगा, बिल्कुल बरामदे के पास आ कर जब उस ने बरामदे की काठ की सीढ़ी पर पैर रखा, तभी आहट से वह चौंकी, मुड़ कर उस ने देख कर पहचाना और कहा, "भुवन! अरे, भुवन, तुम—" और उठ बैठी पर उठी नहीं, वहीं से उस ने बाहें बढ़ायीं कि भुवन लपक कर पहुँच गया, एक बाँह से उस ने रेखा को घेर लिया और कुरसी की बाँह पर अध-बैठा होते-होते उसे खींच कर अपने से लगा लिया, उस के माथे पर गाल टेक कर स्तब्ध रह गया, रेखा के दिल की धड़कन उस की जाँघ पर बहुत हल्का ताल देने लगी ..थोड़ी देर बाद उस ने बहुत धीमे भर्राये स्वर में कहा, "रेखा तुम—रेखा. " रेखा ने चेहरा थोड़ा ऊँचा उठाया, उस की नाक भुवन के गाल में धँस गयी, अध-खुले ओठों से साँस का हल्का स्पर्श भुवन के नासा-मूल को गुदगुदाने लगा, तब सहसा भुवन के ओठों ने उस के ओठ ढूँढ लिये...फिर उस ने खड़े होते हुए कहा, "रेखा, मैं अभी आया—बाहर ताँगा है—"

रेखा ने कहा, "तुम नहीं जाओ, यहीं से पुकारो 'सलामा'—वह बुला लायेगा।"

भुवन क्षण-भर उसे ताकता रहा। "कितना अच्छा हुआ कि तुम अकेली थीं जब मैं पहुँचा, रेखा—"

रेखा ने समझ कर धीरे से हाथ उस की ओर उठा दिया, कुछ कहा नहीं, उस की आँखों की गहरी मुस्कराहट ही उसे दुलरा गयी।

भुवन ने बरामदे की ओर बढ़ कर पुकारा, "सलामा!" फिर मुड़ कर रेखा से पूछा, "मिसेज ग्रीव्ज कहाँ रहती हैं—तुम अकेली हो?"

"हाँ। वह श्रीनगर में हैं—मैं निगरानी के लिए यहाँ बैठी हूँ। जब वह आयेंगी तो मैं उधर चली जाऊँगी। पर अभी दो महीने शायद यही व्यवस्था रहे। फिर जब बर्फ पड़ने लगेगी तो यहाँ खाली हो जायगा—मैं भी श्रीनगर उन के साथ रहूँगी।"

"कैसा लगता है, रेखा?"

रेखा ने गहरी दृष्टि से स्थिर भाव से उसे देखा, कुछ बोली नहीं।

सलामा ताँगे वाले को बुला लाया। भुवन ने कुछ झिझकते हुए पूछा, "एम आइ—स्टेइंग विथ यू?—वैसे मैं—"

रेखा ने आँखों से ही उसे घुड़क दिया। सलामा से कहा, "साहब का सामान मेहमान कमरे में लगा दो—"

भुवन ताँगे वाले को विदा करने लगा, सलामा ने सेवा-पटु कश्मीरी लहजे में पूछा, "चाय लाऊँ मेम साब?"

"हाँ, सलामा, शुक्रिया।"

भुवन को रेखा का बोलने का ढंग अतिरिक्त मधुर लगा। यों वह सदा विनय से बात करती थी, पर भुवन ने सोचा, उस के स्वर में न बंगालियों की आदर्श-प्रियता है, न कश्मीरियों की बनावट, एक सहज शालीनता उस में है जिसे न अकड़ना पड़ता है, न झुकना पड़ता है, जिस से अक्षुण्ण रह कर ही वह बड़े-छोटे सब के बराबर हो जाती है ..व्यक्ति का आभिजात्य क्या है, उस की सर्वोपरि सत्ता, उस का अखंड चक्रवर्तित्व, यह रेखा के निकट रह कर और उस का लोक-व्यवहार देख कर समझ में आ जाता है...

चाय के बाद दोनो बरामदे से उतर कर टहलने लगे। रेखा ने कहा, "बगीचा देखोगे ? घूम आयें—"

भुवन ने उस की ओर देखते हुए कहा, "तुम्हे—कष्ट तो नही होगा ?"

"न। मुझे तो अच्छा लगता है—"

"तो चलो।" फिर कुछ रुक कर, "लेकिन—तुम्हारी शाल ले आऊँ—पर तुम्हारा कमरा भी तो नही जानता ?"

"तो पहले वही देखोगे ?" रेखा मधुर मुस्करायी, "नहीं, वह फिर दिखाऊँगी। पर शाल तो अन्दर जाते ही दाहिने को टँगी है—मैंने दिन मे रखी थी—"

भुवन उठा लाया।

रेखा ने कहा, "फल तो लगभग सब उतार लिये गये है, जिधर है उधर ही चले—उधर तो कुछ धूप भी होगी—"

भुवन को याद आया। डूबते सूर्य का उन्होने पीछा किया था, और हार गये थे। नही, आज वह डूबते सूर्य का पीछा नही करेगा, सूर्य को डूब जाने दो, पकते सेब पर उस की धूप की चमक ही इष्ट है—उसी को वह देखेगा, उस की लालिम कान्ति मे सूर्य की धूप पकेगी, सुफला होगी शारदीया साँझ की धूप मे फलो-लदा सेब का पेड़—जीवन के आशीर्वाद का, जीवन-रूप आशीर्वाद का इस से बढ कर और कौन-सा प्रतीक है ? शरदारम्भ अभी नही हुआ, अभी बरसात का अन्त ही है, फलो पर भी अभी वह सूर्यास्त की लाल-सुनहली कान्ति नही आयी, पर उस फले हुए जीवन-तरु को वह देख सकता है—

...देयर इज़ येट फेथ

एण्ड द फेथ एण्ड द लव एण्ड द होप आर आल इनद वेटिंग..

उस ने बढ़ कर रेखा का हाथ थाम लिया, और मानो राह दिखाता हुआ साथ ले चला। सामने पेड के ऊर्ध्व भाग पर धूप पड़ रही थी, उस मे जगमग एक फलो-लदी डाली को दिखा कर भुवन ने कहा, "इस जाति का नाम बता सकती हो ?"

रेखा कहने को थी, "क्विस—" पर भुवन ने इशारे से टोकते हुए कहा, "ये है 'सनसेट ग्लोरी'।"

"सो तो जानती हूँ।" रेखा ने मुग्ध भाव से उस के कोट की आस्तीन से सिर छुआते हुए कहा, "मेरा सारा बगीचा 'सनसेट ग्लोरी' है।"

"देखो हम हारे नही रेखा, ढलते सूर्य को हम ने पकड़ा ही नहीं, उस के बीच मे खडे है।"

रेखा ने फिर वह गहरा अपाग उसे दिया · क्या जाने भुवन, पर तुम कहते हो तो—ऐसा ही हो, ओ मेरे मालिक, ऐसा ही हो .

दोनो खडे देखते रहे। सूर्य की कान्ति फीकी पड़ी, फिर डाली के फूल स्याह हो गये, आलोक का धान्य मानो बादल के एक बहुत बडे तामलोट में बन्द हो गया, तामलोट भी काला पड़ गया, हवा चलने लगी, रेखा सिहर गयी। भुवन ने अपनी बाँह पर पडी शाल रेखा को ठीक से ओढा दी। रेखा ने कहा, "चलो अब, चलें—"

"हाँ, चलो—बैठ कर बात करेंगे—मुझे बहुत-कुछ कहना है—"

"कहना है, भुवन—क्या कहना है?" रेखा उस की ओर घूम गयी। दोनो की आँखे मिलीं। देर तक मिली रहीं। फिर दोनो चुप-चाप चलने लगे। भुवन ने धीरे से कहा, "नहीं, ठीक कहना नहीं है—कहना कुछ नहीं है। लेकिन—" वह सहसा चुप हो गया। पर मन-ही-मन वह कहता रहा, "रेखा, रेखा, रेखा..."

पहले हम्मिलन के क्षण से कभी भी दोनो मे किसी को यह नहीं लगा था कि उन का सम्पर्क कहीं टूट गया है और उसे फिर से स्थापित करना होगा, बराबर ही वे सम्पृक्त थे। पर फिर भी, यद्यपि उन की बातों में घनिष्ट सौहार्द था, प्रणय था—मानो बात करने में दोनो को एक विचित्र झिझक थी, अपनी बात करते हुए भी दोनो यह भी अनुभव करते जा रहे थे कि वे बात नहीं कर रहे हैं, केवल पेतरे कर रहे हैं...

रात को भोजन के बाद—जिस मे रेखा ने लगभग कुछ नही खाया—रेखा उठ कर अपने कमरे मे चली गयी तो भुवन भी अपने कमरे मे गया, कपड़े बदल कर उस ने दो-एक चीजो को इधर-उधर कर के अपनी सुविधा के अनुकूल रख लिया, फिर टेबल लैम्प को बहुत नीची मेज पर रख कर कि प्रकाश कमरे मे बहुत मन्दा हो जाय, एक कुरसी उस ने खीच कर लैम्प के पास कर दी। पलंग के सिरहाने की ओर की खिडकी पर जा कर खड़ा हो गया और एकटक बाहर देखने लगा। बादल घिर आये थे, दूर की बिजली की प्रतिबिम्बित चमक से बादल की चादर रह-रह कर सफेद हो आती थी।

रेखा का स्वर आया—"मै आ सकती हूँ? तुम्हारे कमरे मे बैठ सकती हूँ?"

भुवन ने घूम कर कहा, "यह मै पूछने वाला था। आओ—पर तुम तो मुझे अपना कमरा दिखाने वाली थी—"

"चलो, अब चलो।"

साफ-सुथरा और करीने से सजा तो था ही रेखा का कमरा, पर भुवन को लगा कि उस मे कुछ और भी विशेषता है। क्या, यह सहसा वह नही जान सका, पर थोड़ी देर मे वह स्पष्ट हो गयी—कमरे मे कोई चीज फालतू नही थी: सब-कुछ मित, मानो आवश्यक होने के कारण अनिच्छा रहते भी रखा गया था। अपने कमरे से उस ने तुलना की—वहाँ सब-कुछ अधिक था—अधिकतम आराम के लिए वह सजाया गया था, और यहाँ—अल्पतम आवश्यक सुविधा की ही कसौटी रखी गयी थी. उस ने कहा, "रेखा, तुम तपश्चारिणी होने जा रही हो?"

"क्यो? ओ—यह। नही भुवन, अधिक कुछ भी हो तो मुझे चुभता है—मैं अपने साथ ही जीना चाहती हूँ—बाहर का अनावश्यक लटा-पटा मुझ से सहा नहीं जाता।"

"और मैं मुगल बादशाह हूँ—क्यों।"

"वह तो मेहमान कमरा है, डाक्टर साहब—आप हमारे मेहमान है।"

भुवन ने हाथ बढा कर बिस्तर टटोला—तख्तो का पलग, उस पर गद्दा

नहीं था—दरी, नमदा, चादर; अचानक उस ने तकिया एक ओर को खींचा, उस के नीचे एक कापी थी। उस ने चुप-चाप तकिया वैसे ही रख दिया, मानो कापी न देखी हो।

"यहाँ बैठोगे, भुवन, या उधर चलें?"

"कहना तो यह चाहता हूँ कि मैं इधर रहूँगा, तुम उधर जाओ; पर—चलो, उधर बैठेंगे, क्योंकि मैं मेहमान हूँ।"

"हाँ।"

रेखा को उस ने टेबल लैम्प के पास वाली कुरसी पर बिठाया, स्वयं पलंग पर बैठ गया। थोड़ी देर दोनों एक-दूसरे को देखते रहे।

"तुम—फिर—आ गये, भुवन, मैंने नहीं सोचा था—"

"यह सोच लिया था कि अब नहीं आऊँगा?"

"नहीं भुवन, यह नहीं, पर आओगे, यह कभी नहीं सोचती थी।"

दोनों फिर थोड़ी देर चुप रहे।

सहसा भुवन ने कहा, "अच्छा, रेखा, अब क्या?"

"अब क्या, भुवन?" रेखा ने सहज भाव से कहा, "जीवन अपनी गति से चलता है। उस से बहुत अधिक तो मैं पहले भी नहीं माँगती थी—"

अगर रेखा बात को ऐसे टाल दे तो वह कैसे पूछे? उस ने फिर यत्न किया, "रेखा, तुम अब भी—अब भी क्या—"

"हाँ, भुवन, मैं अब भी वैसी फुलफिल्ड हूँ—और तुम्हारी कृतज्ञ—"

"वह नहीं रेखा—तुम—तुम क्या नौकरी ही—तुम यहाँ से मेरे साथ चलो—"

बिजली चमकी—पहले दूर से प्रतिबिम्बित, फिर कड़कती हुई, कड़क के धीमी पड़ते-न-पड़ते वर्षा होने लगी। उस की पटपटाहट के ऊपर स्वर उठाते हुए भुवन ने कहा, "रेखा, यह क्या सम्भव होगा कि—तुम मुझ से विवाह कर लो?"

रेखा सिहर गयी, उठने को हुई और बैठी रही। बोली नहीं।

वर्षा की पटपटाहट बढ़ती गयी, हवा के साथ जोर की बौछार आयी और

खिडकियाँ खटखटाने लगी, भुवन ने उठ कर खिडकी बन्द कर दी, बाहर का शब्द सहसा कम हो गया, मानो सन्नाटा छा गया हो।

उस भ्रमात्मक सन्नाटे को तोडते हुए रेखा ने स्पष्ट स्वर मे कहा, "नहीं, भुवन, नहीं।"

फिर एक लम्बा मौन रहा। फिर भुवन बोला, "मुझे यही डर था, रेखा। बात भी बहुत जटिल हो गयी है। पर—इतना तुम्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि—यह करुणा नही है, रेखा, न निरी एक नोबल जेस्चर—मैं सचमुच कहता हूँ।" उस के स्वर मे व्यथा थी।

रेखा ने उठते हुए पास आ कर कहा, "हाँ, भुवन। तुम्हे क्लेश पहुँचाना नही चाहती थी—अविश्वास मैंने नही किया। पर—वह असम्भव है। मैंने—तुम से प्यार माँगा था, तुम्हारा भविष्य नही माँगा था, न मैं वह लूँगी।"—

भुवन भी खडा हो गया। "तुम ने नही माँगा, नहीं माँगोगी। तुम्हारे माँगने न माँगने का सवाल भी नही है। मै माँग रहा हूँ रेखा।"

"न भुवन। बात वही है। तुम कुछ कहो, मै नही भूल सकती कि—जो हुआ है वह न हुआ होता तो—तुम न माँगते—न कहते; इसलिए तुम्हारा कहना—परिणाम है। और यह कहना परिणाम नहीं, कारण होना चाहिए, तभी मान्य—तभी उस पर विचार हो सकता है।"

"रेखा!" भुवन ने अपने दोनो हाथ उस के कन्धो पर रख दिये। धीरे-धीरे उसे फिर कुरसी पर बिठा दिया, फिर दो कदम पीछे हट कर मेंटल के सहारे खड़ा हो गया।

"रेखा, और भी बातें सोचनी की हैं—"

रेखा ने एक फीकी मुस्कान के साथ कहा, "है न? इसी लिए यह बात सोचने की नही रही—यह तभी सोची जा सकती है जब एक और अद्वितीय हो, दूसरी किसी बात से असम्बद्ध हो।"

भुवन ने चाहा कि झल्ला उठे। क्यो रेखा उस की बात ठीक नहीं समझती—क्यो उलटे अर्थ लेती है? पर वह जो कहती है, उस मे भी तो

तथ्य है...तथ्य है, यही तो झल्लाहट का कारण है—यह ऐसी गुत्थी है कि बँधी उन चाहने से, पर खुलेगी नही, जितना वे चाहेगे और उलझती जायेगी ..

"रेखा, उस—उस वायलिनिस्ट की बात भी तो सोचो—"

रेखा ने दर्द से आँखे बन्द कर ली, जैसे कोडा पड़ा हो। फिर उस ने पीठ पीछे टेक दी, बड़ी थकी हुई आँखे भुवन की ओर उठायीं, और कहा, "उस की बात सोचने के लिए तुम्हे मुझे नही कहना होगा भुवन ! नहीं, बुरा मत मानो, मैं ताना नहीं दे रही।" वह थोड़ी देर रुक गयी। "पर भुवन, तुम समाज की दृष्टि से देखते हो : वह दृष्टि गलत नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं है; पर निर्णायक भी वह नही है। व्यक्ति को दबा कर इस मामले का जो भी निर्णय होगा—गलत होगा—घृण्य होगा, असह्य होगा।"

फिर थोड़ी देर वह चुप रही। फिर आँखें गिराते हुए कहा, "हो सकता है कि मेरा सोचना शुरू से ही गलत रहा हो—पर शुरू से वह यही रहा है। मेरे कर्म का—सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है; मेरे अन्तरग जीवन का—नही। वह मेरा है। मेरा यानी हर व्यक्ति का निजी।"

"हाँ, मगर दोनों मे क्योकि विरोध है, और अपरिहार्य विरोध है—"

"तो यह भी जीवन की एक न सुलझने वाली गुत्थी रह जायगा। यह तो नही है कि ऐसी गुत्थी कभी हुई न हो—बीसियो पडी रहती है चारों ओर—एक और सही—"

"लेकिन—लेकिन ऐसा मान लेने से तो कोई रास्ता नही निकलता—" कह कर वह झल्लाया-सा मुस्करा दिया क्यों कि वास्तव में यही तो रेखा कह रही थी ! फिर वह चुपचाप टहलने लगा। रेखा बटी रही। वर्षा की टपाटप ही एकमात्र शब्द रह गया।

"तुम थके हो, भुवन ?—सोओगे ?"

"ऊँ, नहीं।" भुवन ने रुक कर रेखा की ओर देखा। "पर तुम—तुम्हें शायद आराम करना चाहिए—"

"मैं ठीक हूँ। अपने आप चली जाऊँगी।"

थोड़ी देर फिर वर्षा की टपाटप। भुवन ने कहा, "यह वर्षा असमय नहीं है?"

"पता नही। हर साल ही असमय हो तो असमय कैसे कहा जाय? प्रायः ही शुरू सितम्बर मे जोर का दौर आता है—और बाढ़ भी जब आती है इन्हीं दिनों—"

फिर केवल वर्षा का स्वर रह गया।

"कॉफी पियोगे?"

भुवन ने अचकचा कर कहा, "अब?"

"हाँ, मेरे कमरे मे स्टोव है—मैं कभी-कभी रात को बनाती हूँ—"

"अब नहीं, रेखा। पर—तुम पियो तो मै बना लाऊँ—"

रेखा ने सिर हिला दिया।

थोड़ी देर बाद बोली, "कैसे हम लोग मानो सात बरस से ब्याहे पति-पत्नी की तरह हो गये है—बातचीत के लिए कोई विषय नहीं मिलता, तकल्लुफ की बाते कर रहे है—"

भुवन ने हँस कर कहा, "तकल्लुफ बाकी है, यही क्या कम है? सात बरस बाद तो रुखाई का वक्त आ जाता है—या बिल्कुल मौन उपेक्षा का!"

रेखा ने कहा, "इसी लिए क्या तुम मुझे कह रहे हो—"

भुवन ने एकाएक पास आ कर उस के दोनो कान पकड़ लिये, धीरे-धीरे उस का मुँह ऊपर को उठते हुए कहा, "पगली, एक तो बात नहीं सुनती, फिर चिढाती है?" और ओठो के कोमल स्पर्श से उस का सीमन्त छू लिया।

रेखा ने अस्पष्ट स्वर मे कहा, "गाड ब्लेस यू . "

भुवन फिर मैंटल के पास चला गया। थोडी देर बाद बोला, "रेखा तुम्हे गाना सुनाने को आज नही कहूँगा—मैं कुछ पढ कर सुनाऊँ?"

"सुनाओ—पर बत्ती वहाँ रख दूँ?"

"नहीं, मैं वही आता हूँ" कह कर भुवन ने दूसरी दीवार से लगी मेज

पर से दो-एक पुस्तकों में से एक उठायी, अभ्यस्त हाथों से पन्ने उलट कर मनचाहा स्थल निकाला और रेखा के पैरों के पास फर्श पर बैठ गया, जहाँ रोशनी पुस्तक पर पड़ रही थी। रेखा ने झुक कर देखा—ब्राउनिंग।

"साथ लाये हो?"

उत्तर दिये बिना ही भुवन पढ़ने लगा :

हाउ वेल आइ नो व्हट आइ मीन टु डू
व्हेन द लांग डार्क आटम ईवनिंग्स कम,
एंड व्हेयर, माई सोल, इज़ दाइ प्लेज़ेंट ह्यू ?
विद द म्यूज़िक आफ ऑल दाइ वायसेज़, डम्ब
इन लाइफ्स नवेम्बर, टू !
आई शैल बी फाउंड बाइ द फायर, सपोज़,
ओवर ए ग्रेट वाइज़ बुक एज़ बेसीमेथ एज़,
व्हाइल द शटर्स फ्लैप एज़ द क्रासविंड ब्लोज़,
एंड आइ टर्न द पेज, एंड आइ टर्न द पेज,
नॉट वर्स नाउ, ओनली प्रोज़ !..

रेखा ने कहा, "सारी बात फिर दुहराओगे, भुवन ? मैं कहती हूँ, यह व्यर्थ की बहस है, निष्परिणाम।" थोड़ी देर चुप हो कर उस ने एक लम्बी साँस ली, फिर बोली—"मैं कहना नहीं चाहती थी, तुम कहला कर छोड़ोगे : तुम्हारे साथ—जीवन का जो-कुछ सुन्दर मैंने जाना है तुम्हारे साथ; जो-कुछ असुन्दर जाना है विवाह में; और तुम कहते हो—"

उस के स्वर में जो थरथराती तीव्रता थी, उस के धक्के से भुवन क्षण भर स्तब्ध रह गया, फिर समझाता हुआ बोला, "लेकिन रेखा, विवाह में जो हुआ वह विवाह के कारण ही हुआ, ऐसा तो नहीं है—एक व्यक्ति का दोष—"

"वह सब मैं जानती हूँ, भुवन—सारी दलीलें मैं अपने को दे चुकी हूँ।

अब जो कहती हूँ, वह उस सब के बाद है।" भुवन के चेहरे का विमूढ़ भाव देख कर वह कहती गयी, "समझ लो कि यह निचोड़ है मेरी सचित की हुई तर्कातीत हठ-धर्मी का।"

भुवन फिर चुपचाप टहलने लगा। दिन मे रेखा से बहुत कम बात हुई थी—जो हुई थी वह वैसी ही, जैसी आतिथेय-अतिथि मे परिजनो के सामने होती है, फिर दिन मे शहर चला गया था। रेखा ने पूछा था कि क्या कुछ काम है जो बारिश मे जायगा? तो कहा था कि नही सैर करेगा, तब रेखा ने भी कहा था कि अच्छा मैं भी लेटी रहूँगी। लेकिन भुवन छाता-बरसाती ले कर निकला था और शहर की बहुत-सी बाते जान आया था; बाजार, तार, डाकघर, अस्पताल, अच्छे डाक्टरो-सर्जनो के जगह-ठिकाने निरुद्देश्य भाव से ही उस ने यह पडताल शुरू की थी, पर निरुद्देश्यता मे भी व्यवस्थितता थी और जब वह लौटा तो श्रीनगर के बारे मे खासा जानकार होकर—यद्यपि सैलानियो के जानने की एक भी बात उस ने नही जानी थी। उधर रेखा भी निगरानी का आवश्यक काम कर के, सब को आवश्यक आदेश दे कर भुवन के कमरे मे गयी थी, चीजो की झाड़-पोछ स्वय कर के उस ने फूलदानो मे नये फूल सजाये थे, उस की इनी-गिनी किताबे देख उन के साथ अपने कमरे से तीन-चार और किताबे ला रखी थीं, बिस्तर ठीक से लगाया था। फिर अपने कमरे मे जा कर थोडी देर सुस्ता कर वह अपनी कापी ले कर भुवन के कमरे मे लौट आयी थी और बैठ कर रुक-रुक कर थोडा-थोड़ा लिखती रही थी। लगभग दो घंटे बाद वह अचकचा कर उठी थी, अपने कमरे में जा कर घड़ी देख आयी थी और फिर वही आ बैठी थी। थोडी देर बाद उस ने भीतर से लकड़ियाँ लाकर अँगीठी मे ऐसे संवार कर चुन दी थी कि झट से आग जलायी जा सके—बारिश अभी हो ही रही थी और काफी सर्दी हो गयी थी। फिर अबेर होती जान वह उठी थी, थोड़ी देर अनिश्चित पलग के पास खड़ी रही थी, तब उस ने अपनी कापी भुवन के सिरहाने तकिये के नीचे दबा कर रख दी थी, ऊपर से सलवटे ठीक कर के दरवाजा उढका कर बाहर चली गयी थी। बाहर आराम कुरसी पर दो-तीन

गद्दियाँ डाल कर, पैरों के लिए चौकी और कम्बल रख कर, वह आराम से बैठ गयी थी, आँखें उस ने बन्द कर ली थीं। ऐसा ही भुवन ने थोड़ी देर बाद उसे पाया था। आते ही बरामदे में बरसाती-छाता टाँगते हुए उस ने पूछा था—"आराम किया?" और रेखा ने कहा था, "देख लो।" और फिर, "एक कुरसी और ले लो—बैठो—या कि पहले कपड़े बदलोगे—भीग आये हो।" भुवन कपड़े बदलने चला गया था।

चाय पी गयी थी। शाम फिर वैसी ही मेहमान-मेजबान के ढंग से बीती थी, खाना भी वैसे ही खाया गया था। भुवन ने बताया था कि वह सारा शहर घूम गया; बन्ध, लालमंडी, अमीरा कदल, वजीर बाग—दो-चार नाम भी उस ने अपनी जानकारी बताने के लिए ले दिये थे। रेखा ने बताया था कि वह थोड़ा पढ़ती-लिखती रही, बाकी उस ने खूब आराम किया.. उस के बाद पूर्ववत् भुवन के कमरे में बात हो रही थी।

"एक बात और है भुवन—और यह बुनियादी बात है. विवाह हो ही कैसे सकता है—मैं तो बंधी हूँ—"सहसा कटु मुस्कान के साथ, केवल दुराचार—।

"चुप।" भुवन ने डपट कर कहा : रेखा ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया, "रेखा, और जो है, अपने को यों सताने की कोई जरूरत नहीं है।"

"आईम सॉरी, भुवन!" रेखा ने सच्चाई से कहा—"पर—बंधी तो हूँ—"

"तो मैं प्रतीक्षा करूँगा—"

रेखा हँस पड़ी। "क्या बच्चों की तरह प्यारा मुँह बना कर कहते हो, प्रतीक्षा करूँगा।" रेखा ने पास जा कर अँगुलियों से उस के ओठ पकड़ कर मींच दिये, जैसे बच्चों के ओठ मींच देते हैं। तब तक आखिर—"और किस लिए?" वह थोड़ा रुक गयी। "जिस लिए—जिस के लिए सोचते हो वह तो..." सकपका कर वह फिर बैठ गयी।

भुवन फिर निरुत्तर होकर टहलने लगा। रेखा चुपचाप उस का मुँह निहारने लगी। उस की चाल में निश्चय और विमूढ़ता का अजब मिश्रण

था, हाथ पीछे गुँथे हुए, सिर कुछ झुका लेकिन ठोड़ी सामने बढ़ी हुई, और भौहों के बीच मे दो खडी रेखाएँ, जिन से बीच का हिस्सा कुछ लाल-लाल जान पडता था ..।

रेखा ने पूछा, "आज तो कॉफी पियोगे : ठड है। मैं लाती हूँ।" भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही उस ने जोड दिया, "मै भी पीयूँगी।"

"तब अच्छा। पर मै बना कर लाता हूँ। मेरी जिद।"

"अच्छा, यही सही। स्टोव ड्रैसिंग रूम मे लगा है, और सब समान उस के पास के ताक मे रखा है। हमेशा तैयार लगा ही रहता है।"

भुवन चला गया। तब रेखा भी उठी, अँगीठी मे आग सुलगायी—अनुभवी हाथो की लगायी हुई लकडियो ने तुरन्त आग पकड ली, आठ-दस मिनट बाद जब भुवन ट्रे मे लगी हुई कॉफी ले कर आया, तब चट-चटाती लाल शिखाओ का असम प्रकाश कमरे मे नाचने लगा था। उस ने कहा, "अरे—जादूगरनी।"

रेखा ने कहा, "हॉ, तुम्हारा जादू मेरे हाथ मे भी चला आया है।"

आग के पास तिपाई उस ने पहले ही रख दी थी। भुवन ने दो कुर-सियॉ खीच कर ठीक जगह रखी, रेखा को आदर से हाथ पकड कर उठाया और तिपाई के पास वाली कुरसी पर बिठा दिया, फिर एक प्रश्नात्मक दृष्टि से उस की ओर देख कर टेबल लैम्प बुझा दिया। आग के प्रकाश मे उन की और कॉफी के बर्तनों की छायाएँ दीवार पर नाचने लगी।

कॉफी पीकर भुवन ने तिपाई हटा दी, अपनी कुरसी खीच कर रेखा की कुरसी के निकट कर ली। फिर टेबुल पर जा कर किताब उठाने लगा तो बोला, "मेरी किताबे बढ़ कैसे गयी ?"

चार-पॉच किताबे लिये वह लौट आया, किताबे जमीन पर रख कर कुछ आगे झुक कर उन के नाम देखने लगा। चार्ल्स मार्गन का 'द फाउं-टेन', आन्द्रेजीद का 'स्ट्रेट इज द गेट', ठाकुर की 'गीताजलि', लुई हेमो का 'मारिया शादलेन', सानुवाद 'कुमार-सम्भव' दो-एक कविता-सकलन, एकाध और पुस्तक।

"ओह, यह मेरे मेजबान की कृपा है।"

एक किताब निकाल कर उस ने खोली, नीचे झुकाकर ऐसे रखी कि रेखा भी देख सके, और स्वर-हीन ढंग से पढ़ने लगा। रेखा भी साथ-साथ पढ़ती रही। कभी बीच मे एक आध पंक्ति वह गुनगुना देती, भुवन जानता था कि दोनो लगभग साथ-ही-साथ पढ़ रहे है। पन्ना पलटने से क्षण-भर रुकता और फिर धीरे-धीरे उलट देता।

> सो लेट मी बी दाइ क्वायर, एंड मेक ए मोन
> अपान द मिडनाइट आवर्स,
> दाइ वाएस, दाइ ल्यूट, दाइ पाइप, दाइ इन्सेन्स स्वीट
> फ्राम स्विंगेड सेंसर टीमिंग
> दाइ श्राइन, दाइ ग्रोव, दाइ आरेकल, दाइ हीट
> आफ वेल-माउथ्ड' प्राफेट ड्रीमिंग।

जलती हुई एक लकड़ी एक ओर गिरी; प्रकाश कुछ मन्दा पड़ गया। आग ठीक करने के लिए रेखा खड़ी हुई तो भुवन ने कहा, "रेखा तुम्हारे कमरे मे तो आग नहीं है।"

"बनी हुई रखी है। जाऊँगी तो जला लूँगी।"

"पर कमरा गर्म होते तो देर लगेगी, मै अभी जला आऊँ।"

उस की कलाई पर हाथ रख कर उसे रोकते हुए रेखा ने आग्रहपूर्वक कहा, "नहीं, तुम बैठो।"

दोनो फिर बैठ गए। किताबे हटा दी गयीं, दोनो चुप-से हो गए।

थोड़ी देर बाद भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हे क्या ज़रूर अभी कमरे में चले जाना है।"

रेखा कुछ बोली नहीं, उस की ओर देख कर रह गयी।

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ पकड़ कर उसे उठाया, और पलंग तक ले आ

लिटाया। स्वयं एक बाही पर बैठ गया, धीरे-धीरे रेखा का कन्धा थप-थपकने लगा।

आग मन्दी पड गयी, अँगारे ही लाल-लाल चमकते रह गये। छायाओं का नाच समाप्त हो गया, एक धुँधली लाल झलक छत पर रह गयी। रेखा का चेहरा मँजे ताँबे-सा दीखने लगा।

वह बोली, "तुम्हे—नौकुछिया याद है?"

भुवन ने सिर हिलाया।

"मैंने—माँगा था—और तुम रोये थे।"

"भुवन ने हाथ झुका कर उस के ओठ ढक दिये। रेखा ने उस का हाथ हटा कर कहा, "तब तुम ने क्या कहा था—याद है?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

"तुम ने कहा था, 'यह इनकार नही है'.. तुम ने कहा था, 'जो सुन्दर है उसे मिटाना नही चाहिए—जोखम मे नही डालना चाहिए' .. कहा था न?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

रेखा थोडी देर चुप रही। फिर उस ने कहा, "तो वह सब मै तुम से कहती हूँ। यह भी प्रत्याख्यान नही है भुवन—मै सचमुच तुम्हारे पैर चूम सकती हूँ—"

वह जैसे उठने को हुई; भुवन ने उसे रोक दिया। वैसे ही थपकता रहा।

थोडी देर बाद रेखा ने फिर कहा, "भुवन, इस विषय को समाप्त मान लिया जाय—क्या इसे फिर उठाना होगा?"

भुवन ने कहना चाहा, "पर मैंने तो फिर जोखम उठाया था—और उस से सुन्दर पुष्ट ही हुआ, नष्ट तो नहीं हुआ—" पर कह नही सका, स्वयं उसे ही लगा कि दोनो बातों मे कुछ अन्तर है। फिर उस ने कहना चाहा, "जोखम तो हर सुन्दर चीज मे है—बल्कि आनुपातिक होता है," पर यह बात भी उस से कहते नहीं बनी। वह केवल रेखा का कन्धा थपकता रहा।

थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा रेखा, तुम्हारी यही इच्छा है तो—यही सही। पर उस से पहले कुछ और कह लेने दो—और उसे याद रखना—भूलना मत कभी।"

रेखा ने उस का थपकता हाथ पकड कर निश्चल कर दिया, और प्रतीक्षा मे चुप पड़ी रही।

"रेखा, जो-कुछ हुआ है, मुझे उस का दुःख नही है, परिताप नहीं है। और जो हुआ है उस से मेरा मतलब केवल अतीत नहीं है, भविष्य भी है—कारण भी, परिणाम भी। और यह नकारात्मक बात लगती है—मैं कहूँ कि मैं प्रसन्न हूँ : एक आनन्द है मेरे भीतर—एक शान्ति—भविष्य के प्रति एक स्वागत-भाव ..यही मै तुम से कहना चाहता हूँ—वह जो आयेगा—आयेगा या आयेगी, वह तो मुहावरा है—वह मेरा है, मेरा वांछित है—उस से मै लजाऊँगा नही, वह तुम मुझे दोगी। भूलना मत—तुम्हें और तुम्हारी देन को मैं वरदान कर के लेता हूँ।..." भुवन का स्वर भर आया, वह चुप हो गया।

रेखा ने बड़ी गहरी साँस ली। भुवन का हाथ खींच कर अपनी पलकों पर कर लिया, वहीं पकडे रही। उँगलियों की अतिरिक्त स्पर्श-संवेदना ने जाना, पलको के भीतर आँखे हिल रही हैं। थोडी देर बाद अपनी मध्यमा भुवन को कुछ ठंडी लगी—आँख की कोर पर होने से वह भीग गयी थी। उस ने दूसरा हाथ बढा कर कर्णमूल छुआ, गीला था। हथेली से उस ने उसे पोछ दिया, कुछ समीप सरक कर बैठ गया।

छत की वह लाल झलक भी बुझ गयी। वर्षा फिर होने लगी थी। भुवन ने रेखा को और अच्छी तरह ओढा दिया, कुछ झुक कर कोहनी टेक कर बहुत हल्की थपकी से रेखा को थपकने लगा।

रेखा सो गयी। थोड़ी देर बाद जागी और कम्बल का आधा हिस्सा खींच कर भुवन पर कर दिया, उस का हाथ पकड लिया और फिर सो गयी।...

भोर के फीकेपन के साथ बारिश का जोर का एक झोंका आया, तो

भुवन जाग गया, उस ने देखा, वह पलग के एक सिरे पर तीन-चौथाई ओढ़े सोया है, रेखा मालूम न कब उठ कर चली गयी है। उस ने बदन ठीक से ढँक लिया, पर एक अजब सूनापन उस मे भरने लगा ..उस ने औंधे हो कर तकिया खींच कर आधा छाती के नीचे कर लिया कि उस के सिरे मे मुँह छिपा लेगा—कि सहसा हड़बड़ा कर कोहनी के सहारे उठ बैठा। तकिये के नीचे कुछ था। टटोल कर देखा—किताब सी, आँखो के पास ला कर देखा, पहचान गया—रेखा की कापी।

आशंका की एक लहर उस के मन मे दौड गयी। रेखा क्यो यह वहाँ छोड गयी है—कब? कहीं...

वह हड़बड़ा कर उठा, दबे पाँव कमरे से बाहर निकला, बरामदे से गैलरी में होता हुआ रेखा के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा गया। झाँक कर देखा, परदे के पार कुछ दिखता नही था पर भीतर के असम प्रकाश की झलक मिलती थी—तो लकडियाँ जल रही हैं, यानी अभी जलायी गयी हैं, रेखा थोडी देर पहले ही आयी होगी। पहले उस ने चाहा, किवाड खोल कर भीतर जाय या कम-से-कम झाँक कर तसल्ली कर ले, फिर न जाने क्यो उसे विश्वास हो गया कि रेखा कमरे मे है और सोयी है या कम-से-कम बिस्तर मे तो है, और वह वैसे ही दबे-पाँव लौट गया। पलग पर लेट कर कापी को एक हाथ मे पकडे हुए वह प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगा—बत्ती जलायी जा सकती थी पर उस ने नहीं जलायी, उतावली उस मे नही थी, कोई उत्कण्ठा नही, केवल एक स्थिर विश्वास-भरी प्रतीक्षा – हर बात का समय है, समय आने दो, वह होगी, कापी मे जो-कुछ है वह भी वह जानेगा समय पर—ठीक समय पर...

जो जानने का कारण है, उसे लोग कितना कम, और जो जानने का कोई कारण नही है उसे कितना अधिक जानते है, इस की पड़ताल की जाय तो कदाचित् यही मान लेना पडेगा कि जानने का कारण न होना ही

जानने के लिए पर्याप्त और वास्तविक कारण है ! वकील से विदा ले कर हेमेन्द्र ने रेखा के बारे मे इधर-उधर जो पूछ-ताछ करनी शुरू की, तो उसे बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें मालूम हुईं। 'रेखा ?' मुस्कराहट। रहस्य। जाने दीजिए—किसी स्त्री की बुराई नहीं करनी चाहिए।' चेहरे पर दर्द का भाव। 'लेकिन आजकल की औरतें भी—कुछ पूछिए मत—हिन्दुस्तान को यूरोप बना दिया है—बल्कि यूरोप में भी ऐसा न होता होगा।' 'कहें कैसे, कहने की बात भी हो ? पर आप उस के हितैषी मालूम होते हैं'. 'वह तो—अपने यारो को ले कर पहाडो की सैरें करती-फिरती है—कभी इस को, कभी उस को—नौकरी का तो सिर्फ बहाना है, कभी किसी के साथ रहती है कभी किसी के'...इस के बाद एक कटु कर्तव्य को साहसपूर्वक कर चुकने का क्लान्त पर आत्म-तुष्ट भाव।

हेमेन्द्र ने सहसा नहीं माना। उसे इस बात का गर्व था कि वह लोगों को पहचानता है। और रेखा ? रेखा तो बरसो तक उस की ब्याहता रही है—साथ सोया नहीं तो क्या, उसे पहचानता तो है.. पर कई जगह से एक-सी बात सुन कर उस का निश्चय कच्चा पड़ गया, और जब यह मालूम हुआ कि रेखा अपने शिकार प्रायः लखनऊ से चुनती रही है, और उन में से एक का नाम भी लिया गया—चन्द्रमाधव—तब उस ने लखनऊ जा कर पता लगाने की ठानी। यों रेखा क्या करती है, उसे क्या—उसे रेखा से कुछ लेना-देना नहीं है, केवल तलाक।—पर जिस के साथ बरसों का सम्बन्ध रहा है (क्या खूब शब्द है सम्बन्ध—साथ बँधना !) इस के बारे में कौतूहल स्वाभाविक ही है न....

चन्द्रमाधव उसे देख कर आश्चर्य-चकित रह गया। "मिस्टर हेमेन्द्र—आप यहाँ—ह्वट ए सर्प्राइज ! मैंने तो आप को पत्र लिखा था—मिला ?"

हेमेन्द्र ने भी आश्चर्य से कहा, "मुझे—पत्र ? मुझे तो नहीं मिला—कब लिखा था ?"

"अभी कुछ दिन पहले—डेढ़-दो महीने—"

"तब हो सकता है पीछे आये—मै भटकता रहा, सिगापुर था, फिर बर्मा होता आया हूँ। कोई खास बात थी ?"

"नही, यो ही। पर चलिए—शैल वी गो ए ड हैव ए ड्रिंक ?"

साथ बैठ कर शराब पीने की एक कला है। हेमेन्द्र बहुत अच्छा साथी था। अवश नहीं होता, लेकिन बातो में गैर-जिम्मेदारी की वह ठीक मात्रा होती है जिस से रस आता है—गैर-जिम्मेदारी की भी, और—अश्लीलता की भी, यद्यपि जो रस देती है, जीवन को उभारती है उसे अश्लीलता नही कहना चाहिए...

हेमेन्द्र को चन्द्रमाधव ने पत्र तो लिखा था, पर रेखा के बारे मे बात-चीत शायद इस रासायनिक सहायता के न कर पाता। पर प्यालो मे वह सहज भाव से बात कर सका, हेमेन्द्र की सुनी बातें उस से खण्डित भी हुईं, पुष्ट भी, निस्सन्देह अगर हेमेन्द्र उसे मुक्त कर दे तो वह शादी करना चाहेगी; क्योंकि अब शादी के सिवा और चारा क्या हो सकता है, और शादी भी जल्दी। इस पर उस ने एक भद्दी कहानी भी सुना दी थी जो किसी मध्य-कालीन फ्रांसीसी किस्से मे उस ने पढी थी—एक औरत शादी के लिए जल्दी मचा रही थी क्यो कि सवाल यह था कि शादी पहले होती है कि बच्चा, किसी तरह शादी हो गयी थी, दूसरे दिन सवेरे बच्चा हुआ था, और लोग नये बाप को बधाई देने आये थे उस के पुरुषार्थ पर—सुहाग रात भर मे वह जादू ! ...

दोनों जोर से हँसे थे, फिर बात रेखा के विषय से कुछ दूर हट गयी थी, चन्द्र अपनी घरवाली की बात करने लगा था, हेमेन्द्र ने उस मलय मेम की कुछ बात बतायी थी, इस पर दोनों सहमत हुए थे कि औरत दुनिया की सब मुसीबतो की जड़ है, लेकिन उस के बग़ैर रहा भी नही जाता—इसी लिए तो वह मुसीबतो की जड़ है ! चन्द्र ने आँख मार कर कहा था, "दोस्त, सुना है तुम्हारा काम तो उस के बग़ैर चल जाता है—" और हेमेन्द्र ने उसी सुर मे जवाब दिया था, "चल जाता था, पर अब यह लत लग गयी !" और दोनो ठहाका मार कर हँसे थे। "तो दोस्त रेखा को वापस ही क्यो नहीं

बुलाते—मजा आ जाये एक बार बुला लो तो !" हेमेन्द्र क्षण भर सोचता रहा था, फिर उसे बात बड़ी मनोरंजन जान पड़ी थी और वह हँसने लगा था। "पति के अधिकार...हाँ, इतने बरसो बाद पति के अधिकारो का दावा करूँ तो—" नही, यह बहुत ज्यादा मजे की बात थी, इतनी कि हँसा भी न जाय, इस पर तो एक दौर और होना चाहिए ..."लेकिन वैसे मैं मज़े में हूँ—उस के जो जी मे आवे करे—कुतिया ! फिरने दो आवारा. "

चन्द्रमाधव ने तय किया कि 'हेमेन्द्र इज़ आल राइट !' हेमेन्द्र ने भी उस समय तय किया कि 'चन्द्र इज़ ए नाइस फेलो !' दूसरे दिन सवेरे अवश्य इस पर उस का निश्चय कुछ दुर्बल हो आया, पर हेमेन्द्र उन लोगो में से नही था जो रात के निश्चयो पर सवेरे कोई गहरी अनुशोचना करते है। रात रात है, दिन दिन, मलय मे रह कर तो वह और भी अच्छी तरह जान पाया है कि दोनो के विचार, दोनो के दर्शन, दोनो का जीवन ही अलग-अलग हैं...

लेकिन, वाकई, रेखा को चिट्ठी तो लिखी जाय, और कुछ नही तो शुगल रहेगा ! वह उस के साथ रह कर उस से बात कर सकता, तो और अच्छा होता; पर अब तो वह नहीं हो सकता—न वह उस के पास जा सकता है, न रेखा उस के पास आयेगी—अब तो चिट्ठी ही है। सहसा जीवन के खोये हुए अवसरो का तीखा बोध उसे हो आया : रेखा भी एक खोया हुआ अवसर था—कितना बड़ा अवसर—कैसे विदग्ध विलास का अवसर...

किसी बेहया ने ठीक कहा है—अन्तिम समय मे मानव को अनुताप होता है, तो अपने किये हुए पाप पर नहीं; पुण्य करने के अवसरों की चूक पर नही, अनुताप होता है किये हुए नीरस पुण्यो पर, रसीले पाप कर सकने के खोये हुए अवसरो पर. .

•

कमरे से रेखा बहुत देर तक नही निकली, नाश्ता भुवन ने अकेले ही किया। उस के बाद ही रेखा ने उसे बुला भेजा।

वह पलग पर तकियो के सहारे लेटी हुई थी, कन्धो पर शाल ओढे और पैरो पर कम्बल, बीच मे उस ने बारीक काली धारियो वाली उन्नाबी रंग की साडी पहन रखी थी जिस से उस के चेहरे का पीलापन कुछ कम खटकने वाला हो गया था।

"मेरी तबीयत ठीक नही हैं भुवन—यही बैठो—"

"क्या बात है, रेखा?"

"कुछ नहीं, चक्कर आते हैं—और मतली होती है—वही सब—" कहती हुई वह थोडा लजा कर मुस्करा दी।

भुवन ने कहा, "डाक्टर को नही बुलाना चाहिए, रेखा?"

"बुलाऊँगी, बुलाऊँगी : अभी मुझे सोच तो लेने दो—"

"इस मे सोचना क्या है, रेखा? कामन सेंस की बात है—"

"सो तो है। पर—सोचना भी तो है। आजकल मे ही बुला लूँगी डाक्टर को भी एक बार—"

"मुझे आज श्रीनगर जाना है—मै बुला लाऊँ?"

"आज फिर?"

भुवन ने बताया कि उसे लौटना है, शीघ्र ही वह फिर छुट्टी लेकर आ जायगा। थोडे दिन बाद ही दसहरे की छुट्टियाँ भी पडती है, उन से लगी हुई छुट्टियाँ लेगा ताकि लगातार काफी दिन तक रह सके। आठ-दस दिन मे ही वापस पहुँच जायगा—हो सका तो और भी जल्दी।

रेखा चुप-चाप उसे देखती रही।

"क्या सोच रही हो, रेखा?"

"कुछ नहीं। ठीक कहते हो तुम..."

भुवन को डाक्टर की बात फिर याद आ गयी। उस के बहुत आग्रह करने पर रेखा ने वचन दिया कि दो-तीन दिन के अन्दर ही वह स्वय डाक्टर के पास जायेगी और उस के आदेशो का पालन भी कडाई के साथ करेगी। फिर उस ने कहा, "श्रीनगर जाओगे तो वक्त हो तो मिसेज ग्रीव्ज से भी

मिल आना—तुम्हे अच्छी लगेगी बुढिया। और उसे यह भी कह आना कि तुम फिर आओगे।"

भुवन ने स्वीकार कर लिया।

दोपहर तक वह रेखा के पास ही बैठा रहा, कभी बातें करता और कभी किसी पुस्तक से कुछ पढ कर सुनाता, बारिश थमी थी पर बादल वैसे ही थे और निश्चय था कि फिर बरसेंगे, भुवन ने फिर आग जलवा दी थी और ढेर-सी लकड़ियाँ भी चुनवा कर रख दी थी कि आग बराबर जलती रखी जा सके। दोपहर के भोजन के बाद, रेखा को भी स्वल्प कुछ खिला कर वह चला गया। शाम को अपना सब प्रबन्ध कर के लौटा, दूसरे दिन तड़के ही ताँगा उसे लेने आयेगा ताकि वह सवेरे की पहली बस पकड सके जो शाम को उसे जम्मू पहुँचा दे, मिसेज ग्रीव्ज से भी वह मिल आया, चाय भी उसी के साथ पी।

जब वह वापस आया तब रेखा सो रही थी। भुवन चुपचाप उस के कमरे मे जा कर बैठ गया, उस मे एक सुखद गरमाई थी, और दयार की लकड़ी की प्रीतिकर गन्ध कमरे की हवा को एक ताजगी दे रही थी। लकड़ी का कभी-कभी चटकना, गाँठों के गन्ध-रसो का कुरफुरा कर जलना, रन्ध्रों मे रुद्ध गैस का सीत्कार के साथ मुक्त होना और शिखाओ की हल्की सुरसुराहट—ये सब एक बड़े मधुर और धीमे सलाप की तरह थे, जो रेखा के साथ उस के मौन संलाप की मानो पीठिका था.. एक तन्द्रा-सी उस पर भी छा गयी।

रेखा ने जाग कर कहा, "तुम आ गये, भुवन?" और उस के कुछ पूछने से पहले ही कहा, "मैं बहुत अच्छी हूँ। सो ली, अब चाय पी जाय—पियोगे?"

भुवन ने उठ कर सलामा को आवाज दे दी।

रात मे फिर हल्की बारिश होने लगी। भुवन के कमरे में भी आग जलायी गयी, पर वह रेखा के पास ही आराम कुरसी लिये बैठा रहा, रेखा लेटी रही। एक मौन-सा उन पर छा गया, रेखा ने कहा, "जाओ सोओ, भुवन, तुम्हे सवेरे जाना है।"

भुवन बोला, "बहुत सवेरे जाना हो तो रात को जागने में ही सुविधा होती है। यह तो आज़माया नुस्खा है।"

रेखा मुस्करा दी। "मैं तो तैयार हूँ—रात को तो ठीक रहती हूँ। कॉफी भी पिलाऊँगी।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "नहीं, भुवन सोओ तुम। अच्छा, ठीक बारह बजे तुम चले जाओगे—हाँ?"

भुवन ने आकर उस के माथे पर अपने ओठ रख दिये, बहुत देर तक उस के बाल सूँघता रहा। फिर पहले-सा बैठ गया, केवल दोनों के हाथ बराबर उलझते-सुलझते, एक-दूसरे को सहलाते खेलते रहे, मानो उन की बातचीत से अलग, अपने ही किसी रहःसलाप में व्यस्त, तल्लीन..।

ठीक बारह बजे भुवन ने उठ कर फिर रेखा का माथा चूमा—फिर क्षण भर उस की आँखों में देख कर उस की पलकें, गाल, कर्णमूल फिर नासापुट, ओठ फिर उस के कण्ठमूल को चूम कर धीरे से कहा, "गॉड ब्लेस यू" और धीरे-धीरे उस के कन्धे से अँगुलियों तक उस की बाँह सहलाता हुआ चला गया।

सवेरे फिर मिलने की बात नहीं थी, पर जब वह तैयार हुआ तो एक ड्रेसिंग गाउन पहने और सिर पर शाल लपेटे, मधुर उनींदी आँखों वाली रेखा दरवाजे पर आ कर खड़ी हो गयी। भुवन ने उसे अन्दर खींच कर किवाड़ उढका दिये। और कहा, "तुम क्यों उठीं रेखा? तुम्हारे उठने की तो बात नहीं थी—"

"तुम चुपके से चोर की तरह चले जाते?"

"नहीं, वह तो नहीं सोचा था—मैं आता और मिल जाता। अब तुम खड़ी रहोगी और मैं जाऊँगा तो—अधिक चुभेगा..।"

"नहीं भुवन, ठीक है, टेक ए गुड लुक एट मी ह्वेन यू गो—मैं भी देखूँगी—"

भुवन ने कुछ सहम कर कहा, "मैं हफ्ते-भर में वापस आ रहा हूँ, रेखा।"

"जानती हूँ। विदा को थियेटर नहीं बना रही, भुवन।" लेकिन सब वेदनाएं अन्तिम होती हैं—चरम कोटि जोखम ..।

"मै छोटा था, तब एक डरावना स्वप्न देखा करता था। दोनो हाथो को अलग करता हूँ, फिर ताली बजाने लगता हूँ तो न जाने क्यो, हाथ टकराते ही नही, एक-दूसरे से छूते नहीं, न मालूम कैसे एक-दूसरे के पार निकल जाते है। और स्वप्न देख कर न जाने क्यो डर लगा करता था, हालाँ कि है हँसी की बात, डर की नही।"

"हाँ। जब भी सम्पर्क टूटता है, तो फिर कभी होगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। आशा ही होती है।"

"पर सम्पर्क तो नहीं टूटता, अलग होना और बात है, सम्पर्क—"

"वह तो दूसरे स्तर की बात है भुवन, उस पर मैंने तुम्हे विदा किया है? उस पर 'तू ही है, मै नहीं हूँ'—हमारा प्रत्येक क्षण हमारे सारे अनुभव का पुंज है उस स्तर पर .."

ताँगा आ गया था। भुवन ने रेखा के दोनो हाथ अपने हाथो में लिये, फिर सहसा मुड़ कर बाहर चला गया। रेखा बरामदे मे आ कर खड़ी रही, ताँगा चला तो दोनो एक-दूसरे की ओर देख कर मुस्कराते रहे जब तक कि चेहरे ओझल न हो गये...

•

सातवे दिन ही भुवन लौट आया। उस ने सोचा था कि शाम तक वह पहुँचेगा, पर पहुँचा देर रात को। बारिश हो रही थी और नदी बहुत चढ आयी थी। दोपहर को उस ने तार दे दिया था: 'शाम को पहुँच रहा हूँ' पर रात को बंगले पर पहुँच कर उसे बाहर से ही न जाने क्यों लगा मानो अब उस के पहुँचने की बात न थी—क्या तार नहीं पहुँचा?

वह ताँगे से उतरा तो सलामा आ गया। सलाम कर के बोला, "मेम सा'ब की तबीयत ठीक नही है—"

"कहाँ है—कमरे में जा सकते है?" कह कर भुवन उत्तर की प्रतीक्षा न कर के रेखा के कमरे की ओर बढ गया, धीरे-से दस्तक दे कर क्षण-भर बाद किवाड़ खोल कर भीतर चला गया।

नीचे टेबल लैम्प का प्रकाश कम था, क्षण-भर वह ठिठक रहा। फिर सहसा उस के मुँह से निकला, "रेखा !"

रेखा पलंग पर सीधी लेटी थी, चेहरा बिल्कुल पीला, निश्चल, माथे पर बल लेकिन वे भी निश्चल, मानो देर से दर्द सहते-सहते जड़ हो गये हो . भुवन ने लाटन उठा कर प्रकाश कुछ बढ़ा दिया, रेखा ने जरा भी हिले बिना क्षीण स्वर मे पूछा, "कौन है ?" और भुवन का स्वर सुन कर वैसे ही निश्चेष्ट भाव से कहा, "तुम आ गये भुवन.. क्यो आ गये तुम !"

भुवन सन्न रह गया। जल्दी से रेखा के पास घुटने टेक कर उस के माथे पर हाथ रख कर बोला, "क्या हुआ है रेखा ?"

रेखा कुछ नही बोली। उस का शरीर काँपने लगा, पहले थोडा-थोडा, फिर जोर से, ओठो की रेखा खिच कर पतली हो आयी, बन्द आँखो की कोरो से आँसू झरने लगे, टप-टप, टप-टप...

भुवन भी जड बैठा रहा, न हिल-डुल सका, न बोल सका।

कई मिनट बाद उसे ध्यान आया कि वह भीगा हुआ है, वह उठ कर अपने कमरे मे कपडे बदलने चला गया। जल्दी से सामान ठीक-ठाक कर, कपड़े बदल वह फिर रेखा के पास कुरसी खीच कर बैठ गया। उस की दर्द से सिकुड़ी भौहो को देखता, फिर मानो साहस जुटा कर धीरे-धीरे उन सलवटो को सहलाने लगा।

उस से भौहे कुछ सीधी हो गयी, जैसे दर्द की खीच कुछ कम हुई। भुवन ने फिर पूछा, "रेखा क्या हुआ है, क्या तकलीफ है ?"

रेखा के आँसू फिर टप-टप ढरने लगे—अब की बार शरीर को कँपाते हुए नहीं, यो ही, मानो अवश शरीर से स्वयं झर रहे हो। भुवन बार-बार उन्हे पोछने लगा।

थोडी देर बाद रेखा के ओठ हिले। वह कुछ कह रही थी। भुवन आगे झुक गया। रेखा ने आँखें खोल कर उसे देखा, फिर आँखे बन्द करते हुए कहा, "भुवन, मेरे भुवन, मुझे माफ कर दो—"

भुवन ने और भी व्याकुल हो कर पूछा, "बात क्या है, रेखा ?"

सहसा उस की ओर करवट फिर कर रेखा बिलख-बिलख कर रो उठी
भुवन सुन्न बैठ रहा।

दरवाजे पर दस्तक हुई।

भुवन उठ कर गया, सलामा था। बोला, "खाना तैयार है हुजूर।" भुवन कहने को था कि नहीं खाऊँगा, पर रुक गया और बोला, "अच्छा, हम अभी आते है।"

द्वार बन्द कर के फिर वह रेखा के पास लौट आया। धीरे धीरे रेखा शान्त होने लगी। थोडी देर बाद वह कोहनी के सहारे उठ बैठी, फिर पलग से पैर नीचे लटका कर उस ने स्लीपर टटोले और खडी हो गयी, ड्रेसिंग रूम की ओर जाने लगी। उस की अटपटी चाल देख कर भुवन सहारा देने लगा, पर उस ने सिर हिला दिया।

दो-तीन मिनट बाद वह मुँह-हाथ धो कर लौटी। चेहरा बिल्कुल पीला, लेकिन स्निग्ध, सलवटें हट गयी थीं। चाल वैसी ही निर्बल, मगर सकल्प-शक्ति के सहारे सीधी। पलंग पर बैठ कर उस ने पैर ऊपर समेट लिये, क्षण-भर आँखे बन्द की मानो इस आने-जाने के श्रम से टूट गयी हो, फिर सहसा उस के चेहरे पर ऐसी दिव्य मुस्कान खिल आयी कि भुवन विमूढ देखता ही रह गया—इतना दुर्बल पीला चेहरा, इतनी दुर्बल, वेदना-जर्जर देह, अभी पहले की वह अवश रुलाई, और—यह मुस्कान।

उस की विमूढता देख कर रेखा ने कहा, "पगले ऐसे स्टेयर नही करते। इस मुस्कान का सम्मान मुस्कान से होता है—समझे?"

भुवन जैसे-तैसे मुस्कारा दिया।

मैं ठीक हूँ अब। तुम जाओ, खाना खा कर जल्दी से आ जाना मेरे पास—"

"पर रेखा, तुम्हे—"

"जाओ न, खाना खा आओ, अच्छे भुवन, राजा भुवन—त्रिभुवन के महाराज—'महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माँझे'—जाओ खाना खा आओ।"

भुवन वैसा ही विमुग्ध खड़ा हो गया। "अच्छा, अभी आया।"

उस ने बाहर निकल कर किवाड़ बन्द किये कि रेखा एक हल्की-सी कराह के साथ मानो टूट कर पीछे गिरी, क्षण-भर के लिए अँधेरा हो गया, फिर उस ने ओठ काट लिये और निश्चल पड़ी रही, दर्द के स्पन्दनों के साथ क्षण गिनती हुई ..

बाधा की सब सम्भावनाओं को काट कर भुवन फिर दबे-पाँव कमरे में आया—कपड़े बदल कर, गर्म चादर ओढ़ कर, पैरों में मोजे पहन कर।

रेखा सो रही थी।

परली दीवार से सटी तिपाई पर दवा की दो-एक शीशियाँ रखी थीं। भुवन दबे पाँव जा कर देखने लगा। दवाएँ पेटेंट थीं, डाक्टर की दी हुई भी हो सकती थीं और स्वयं लायी हुई भी, ऐसी कोई दवा न थी जिस से कुछ पता लगे कि रेखा को तकलीफ क्या है। फिर उस ने देखा, एक खाली डिब्बा पड़ा है जिस के अन्दर शीशी नहीं है: यह दर्द को दबाने और नींद लाने की दवा थी। शीशी क्या हुई? भुवन ने लौट कर रेखा के पलंग के पास की छोटी मेज देखी, ऊपर तो नहीं, पर एक तरफ के खाने में शीशी डली रखी थी, गोलियों को ढकने वाली रुई का गाला भी बाहर रखा था, उस के पास छोटे गिलास में जरा-सा पानी। तो रेखा ने दवा खायी होगी .. भुवन फिर उसे देखता रहा; उस की साँस नियमित चल रही थी—बल्कि कुछ भारी, थोड़ी खरखराहट के साथ जैसी दवा की नींद से उन लोगों में भी होती है जिन की नींद का निश्वास प्रश्वास साधारणतया बिल्कुल अश्रव्य होता है . भुवन ने लैम्प का छादन झुकाया और धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया।

अपने कमरे में जाकर वह टहलने लगा। रेखा सो रही है, इस ज्ञान से उसे कुछ तसल्ली थी, पर उसे हुआ क्या है? कमरे के चक्कर काटते-काटते उसे सहसा लगा, वह बन्दी है—इस कमरे का, इस बेपनाह बारिश का, और अपनी अज्ञता का . ऐसे ही जेल के कैदी अपनी बेबसी में चक्कर काटते होंगे कदम नाप-नाप कर—उस की बेबसी बदतर है क्यों कि उस पर

कोई बन्धन नही है, कोई उसे रोकता नही है..

थोडी देर बाद वह लेट गया और बारिश की टपाटप सुनने लगा। सोचना-अनुक्रमिक चिन्तन—उस ने छोड़ दिया, जो विचार उठता—उठता, फिर स्वय लीन हो जाता; फिर कोई सर्वथा असंगत दूसरा उठता और विलीन हो जाता—मानो बुलबुले, प्रत्येक गोलायित, सम्पूर्ण, अनन्य-सम्बद्ध, नश्वर..

न मालूम कितनी देर ऐसे बीत गयी। फिर बारिश की टपाटप की सम्मोहनी ने उसे भी तन्द्रालस कर दिया। वह भी न मालूम कितनी देर।

सहसा वह हडबडा कर उठ बैठा। क्या हुआ? क्या उस ने कोई पुकार सुनी थी—कोई कराह? वह कान लगा कर सुनने लगा कि बारिश के शब्द के ऊपर कुछ सुन सके। पर नही ..

उठ कर उस ने किवाड खोला और बरामदे से हो कर रेखा के कमरे की खिडकी के पास गया। हॉ, थोडी देर बाद भीतर से स्पष्ट शब्द आया—निस्सन्देह कराह का स्वर। वह लपक कर भीतर गया।

रेखा कराह रही थी। पर वह कुछ अस्पष्ट कह भी रही थी: भुवन ने सुना: "जीवन जान... प्राण "

भुवन ने उसे सभाला। उस ने ऑखो से ड्रेसिंग रूम की ओर इशारा किया, भुवन उस की बॉह कन्धे पर डाल कर सहारा देने से अधिक उसे उठाये हुए बाथरूम के दरवाजे तक ले गया, एक हाथ से दरवाजा उस ने खोला और पूछा, "जा सकोगी?"

रेखा ने सिर हिला दिया, बॉह छुड़ा कर किवाड के सहारे खड़ी हुई और भीतर जाने लगी। जाते-जाते ड्रेसिंग की अलमारी की ओर उस ने इशारा किया: "रुई—"

भुवन ने वहॉ से डाक्टरी रुई का बडल निकाल कर दे दिया। रेखा ने किवाड़ बन्द कर दिया, भुवन खडा रहा।

रेखा लौटी तो किवाड़ के सहारे भी नही खड़ी हो पा रही थी। भुवन ने सँभाल लिया और ले जा कर पलग पर लिटा दिया।

थोड़ी देर रेखा मूर्छित-सी रही, फिर उस ने आँखे खोली और कहा, "मेरे जीवन .." और फिर ओठ काट लिये, दर्द से उठ बैठी। फिर उस ने पहले की भाँति इशारा किया, भुवन अब की बार उसे सीधे उठा कर ही ले गया, एक हाथ से कुरसी खींच कर बाथरूम के दरवाजे के आगे रख दी, और रेखा को बिठा दिया। रेखा अन्दर गयी, लडखड़ाती लौट कर कुरसी पर बैठी, वहाँ से भुवन फिर उठा कर पलग पर ले गया। लेट कर फिर वह अस्पष्ट पुकारने लगी—"जान—जान,—प्राण—"लेकिन भुवन उस के ऊपर झुका है इस का उसे होश नहीं था, और उस के शब्द भी मानो शब्द नही थे, केवल कराह को छिपाने का एक तरीका।

भुवन एकाएक उठ कर ड्रेसिंग रूम मे गया, कुरसी उठा कर बाथरूम में रखने चला, पर एक कदम अन्दर रख कर ठिठक गया।

कटार की कोंध-से तीखे क्षण मे वह सब समझ गया। और एक उन्मत्त फ़ुर्ती से वह काम करने लगा।

रेखा के पलग के पास एक कुरसी उस ने रखी, उस पर एक चिलमिची, तिपाई पर से सामान उठा कर उस पर पानी का भरा जग, रूई और साबुन-तौलिया, दूसरे जग मे पानी भर कर आग के पास गर्म होने के लिए रख दिया, स्टोव पर केतली मे भी, फिर बाथरूम मे जा कर उस ने चिलमिची खाली की, उसे धो कर पलग के पास फर्श पर रख दिया। रेखा इतनी देर अर्ध-मूर्छित थी, अब फिर सचेत हुई और उठने का यत्न करने लगी, भुवन ने कहा, "रेखा, मैंने सब सामान यहीं रख दिया है—मै बाहर जाता हूँ—"

रेखा ने किसी तरह अपने सारे बल को समेट कर कहा, "मुझे माफ कर दो, प्राण मेरे—" और एक दुर्बल हाथ उस की ओर को बढाया। भुवन ने उसे पकडते हुए कहा, "रेखा, यह हुआ क्या—तुम डाक्टर के पास नही गयी थीं—"

"गयी थी—गयी थी मै—" रेखा का उत्तर मानो एक चीख थी, "तभी तो—भुवन मुझे माफ—"

"क्या ?" आश्चर्य के थप्पड से भुवन का स्वर खुरदुरा हो आया था; उसे फिर संयत कर के किसी तरह उस ने कहा, "क्या, रेखा—तुम ने—"

रेखा ने सिर हिलाया। साथ ही कहा, "तुम—जरा बाहर जाओ भुवन—"

वह जल्दी से जाने लगा तो रेखा ने कहा, "मेज पर दो चिट्ठियाँ है, ले जाओ—"

बाहर निकल कर उस ने देखा, एक चिट्ठी अपरिचित अक्षरो मे, दूसरी परिचित—चन्द्रमाधव की, अपरिचित हाथ की चिट्ठी उलट कर उस ने हस्ताक्षर देखे—हेमेन्द्र। चिट्ठियाँ उस ने पूरी नही पढी, यद्यपि छोटी थीं, जल्दी से नजर उन पर दौडा गया, फिर भी जो-जो पद या पदांश उस ने पढा वह नोक-सा धँसता चला गया। वह जल्दी से कमरे की ओर लौटा, रेखा फिर कराह रही थी—चिट्ठियाँ जैसे-तैसे जेब मे ठूँस कर वह अन्दर चला गया। चिलमची ले जा कर धो कर उस ने फिर स्थान पर रख दी।

रेखा ने कहा, "तुम्हे कितना सता रही हूँ—मैं बहुत लज्जित हूँ भुवन—"

"किस डाक्टर के पास गयी थी तुम ?"

भुवन के स्वर मे अविश्वास था, रेखा ने कहा "झूठ नहीं बोलती, भुवन, अच्छे डाक्टर के पास गयी थी—सर्जन के—"

"अच्छा डाक्टर। यह अच्छे डाक्टर का काम है ?" भुवन की वाणी मे अवश रोष उभर आया।

रेखा ने कहा, "भुवन, तुम अभी मुझे छोड़ कर चले जाओगे तो मुझे शिकायत नही होगी। जाओ, मै कहती हूँ—गाड ब्लेस यू, भुवन—प्राण !"

भुवन चुपका हो गया। रेखा थक कर लेट गयी, थोडी देर बाद फिर उठी और भुवन कमरे से बाहर चला गया।

फिर लौटा तो रेखा का चेहरा सुफेद हो रहा था। थोड़ी देर बाद रेखा ने आँखें खोली तो भुवन बोला, "मै डाक्टर बुला कर लाता हूँ—ऐसे नही—"

रेखा ने सहसा चीख कर कहा, "नहीं भुवन, तुम मेरे पास से नहीं जाओगे !" फिर कुछ संयत हो कर "या—जाते हो तो—अच्छा !"

वह फिर मूर्छित-सी हो गयी ।

थोड़ी देर बाद फिर जागी, उस की मुद्रा देख कर भुवन बाहर जाने लगा, पर किवाड पर न जाने क्यों रुक गया । मुड कर देखा तो रेखा फिर पीछे गिर गयी थी । वह लौट आया ।

"नहीं सकती, भुवन—और नहीं सकती—"

भुवन थोडी देर सकुचाया खड़ा रहा । फिर उस ने लैम्प और परे की ओर मोड दी, रुई का बड़ा-सा टुकड़ा ले कर तह जमायी, और रेखा की ओर झुक गया । रेखा ने हाथ रुई की ओर बढाया । पर वह निर्जीव-सा रह गया, रुई को ठीक से पकड़ भी नहीं सका—

हाथ धो कर भुवन फिर लौटा तो उसे लगा, रेखा अभी फिर उठना चाहेगी । उस ने घड़ी देखी, रात के साढे ग्यारह बजे थे । ऐसे तो रात नहीं कट सकती । वह वह सहसा निश्चित कदमों से बाहर निकल गया । क्वार्टर तक जा कर उस ने सलामा को बुलाया, अपने कमरे मे ला कर उसे एक चिट्ठी लिख कर दी, और उसे कहा, "मेम साहब की हालत नाजुक है—दौडे हुए मिशन अस्पताल जाओ और उन को बोलना कि एम्बुलेंस गाड़ी ले कर आये—डाक्टर भी साथ मे, फौरन ! जाओ, शाबाश—"

सलामा गया । भुवन फिर रेखा के कमरे मे लौटा ।

रेखा ने वह इशारा करना भी छोड दिया—वह अर्ध-चेतन अवस्था ही स्थायी हो गयी । भुवन ही थोड़ी देर बाद उठता, एक पट्टी उठा कर दूसरी लगा देता, हाथ धो कर फिर आ जाता.

रेखा का कराहना भी बन्द हो गया था । कभी वह हल्का-सा 'हूँ-हूँ' करती, नहीं तो मौन : एक अजब डरावना सन्नाटा छा गया था । भुवन वर्षा का स्वर सुन रहा था । बीच-बीच मे कभी अचानक कुछ गिरने का 'धप्' स्वर सुनाई देता था—पहले वह समझ न सका कि यह क्या है, फिर सहसा जान गया : पके फल.. रात के सन्नाटे मे फल का यह चू पडना

हैबतनाक था—मानो एक द्रुत कारणहीन मृत्यु आ कर किसी को ग्रस ले. .

अगर सलामा असफल रहा, अगर रात को डाक्टरों ने उस की न सुनी-वह स्वय जाता तो और बात थी —अगर अस्पताल मे एम्बुलेंस न हुई–उस ने लिख तो दिया था, डाक्टर तो आयेगा - पर अगर पैदल आता हुआ तो—ओह रेखा, यह तुम ने क्या किया—

वह फिर उठा। बाथरूम की ओर जाते हुए उस ने अपने हाथो की ओर देखा—सहसा ऐसा सिकुड गया मानो आसन्न वार के आगे कोई सिकुड़ जाय : सर्जन—हुँह हत्यारा। सर्जन-सर्जन—वायलिन बजाने वाला सर्जन हत्यारा कौन ? हत्यारा वह है, वह स्वय—पर रेखा, रेखा, यह तुम ने किया क्या—क्यो .

हाथ धो कर वह फिर लौट आया।

रेखा ने आँखे खोल दी। स्थिर भाव से, मानो दर्द उसे नही है। भुवन अचम्भे से देखने लगा, तो वह बोली, अब दर्द नही है, भुवन।" मैं सुन्न हो गयी हूँ। तुम चले नहीं गये, भुवन 'थैंक यू'।

उस का स्वर बहुत धीमा और दुर्बल था, पर टूटा नही, स्पष्ट। भुवन के मन के निचले किसी स्तर मे प्रश्न उठा—क्या यह अन्त तो नही है। दिये की आखिरी दीप्ति ? पर इस से वह मानो और केन्द्रित हो आया रेखा की बातो पर, अस्पष्ट वही बात भी मानो किसी अपर इन्द्रिय मे स्पष्ट सुनने लगा।

"तुम मरे लिए यह भी करोगे नहीं सोचा था। मैं तुम्हे केवल एक्स्टेसी देना चाहती थी। यह नही . यह गलीज काम—मेरे भुवन. . .।"

भुवन ने घने उलहने स्वर मे कहा, "मुझ से पूछ ही लिया होता, रेखा ? मैं तुम्हें कह गया था कि—'

"भूली नही, भुवन। पर—तुम्हे—उसे—लज्जा नहीं देना चाहती थी, तुम्हारा सिर झुके, यह नहीं चाहती थी—किसी के आगे नहीं, और उस—उस राक्षस के आगे "

हेमेन्द्र की चिट्ठी के फिकरे उस की स्मृति के आगे दौड गये। क्या इसी से—? पर हेमेन्द्र तो स्वय मुक्ति चाहता है—हाँ, ऐसे भी मिल सकती

शायद—और बदला भी—काहे का बदला, वह नहीं जानता .

भुवन ने तौलिया उठा कर पट्टी फिर बदली।

"भुवन—एक बात पूछूँ—न चाहो तो उत्तर न देना, क्या तुम—मुझे—घृणा—मुझे अब भी प्यार कर सकते हो?"

"अब—ज्यादा, रेखा, जितना कभी नहीं किया उतना—"

रेखा ने आँखें बन्द कर लीं। मुस्कराना चाहा। ओठ खुले और जरा-सा खिंच कर रह गये। भुवन ने देखा, ओठ भी सफेद हैं—बल्कि धूमिल; जरा-सा गीलापन लिये, और रेखा ने फिर आँखें खोलीं तो उस ने लक्ष्य किया, कोये भी पीले हैं—पीले और मैले, और पुतलियाँ कान्तिहीन यद्यपि बढ़ी हुई.. वह प्रार्थना करता हुआ झुका, "ईश्वर, रेखा इस स्पर्श को अनुभव कर सके—शरीर से भी, मन से भी—ईश्वर, यह एक सन्देश उस की चेतना तक पहुँच जाय—" और रेखा का नम माथा उस ने चूमा, फिर ओठों से ही उस की पलकें बन्द करते हुए पलकें।

रेखा निश्चल हो गयी। भुवन ने घड़ी फिर देखी। एक। अब तक तो एम्बुलेंस आ जानी चाहिए थी अगर अस्पताल में होती—क्या होगा?

भुवन ने रेखा पर झुक कर कहा, "अब तुम मुझे माफ कर दो, रेखा, अब जो मेरी बुद्धि में समाता है करूँगा।"

उस ने बहुत-सी रुई ले कर पट्टी लगायी, नया तौलिया ले कर कमर पर लपेट दिया, फिर कम्बल अच्छी तरह उढ़ा कर रेखा को करवट घुमा कर नीचे भी दबा दिया। बाहर से एक बरसाती ला कर रेखा के बगल में बिछायी, उसे उठा कर बरसाती पर लिटाया और बरसाती को लपेट दिया। कमरे और बरामदे के किवाड़ खोल दिये, अपने कमरे में जा कर उन्हीं कपड़ों पर ओवरकोट पहना। दूसरी बरसाती सिर पर ओढ़ी और भीतर आ कर रेखा के नीचे दोनों बाहें ऐसे डालीं कि उस की ओढ़ी हुई बरसाती रेखा के सिर और पैरों पर आ जाय। फिर उस ने रेखा को उठा लिया और बाहर चल पड़ा। ऐसे उठाये कितनी दूर जा सकेगा, उस ने नहीं सोचा। कन्धे पर उठा कर जरूर अस्पताल तक के तीन मील जा सकता, पर उस से शायद रक्त-स्राव

अधिक हो इस लिए गोदी मे ही उठाना ठीक था।

अगर एम्बुलेंस आयी ? तो हर्ज नही, रास्ते मे मिलेगा ही। और अगर नहीं आयी ? तो ऐसे भी वह तीन बजे तक अस्पताल पहुँच ही जायगा..

वह तो पहुँच जायगा, पर रेखा भी पहुँचेगी कि नही...

पौने दो.. वह बड़ी सड़क पर आ गया था, कुछ आगे भी चल सका था। एक बार एक पेड़ के नीचे उस ने तीन-चार मिनट रेखा को लिटा कर बाहे सीधी की थी। बाकी चलता रहा था। हाँ, तीन नहीं तो सवा तीन तक वह अवश्य वह अस्पताल पहुँच सकेगा ..

तभी दूर पर रोशनी दीखी—मोटर की ही है—फिर मोटर की घर्र-घर्र सुनायी पड़ी—क्या एम्बुलेंस है ? न भी हो तो क्या ? भुवन ने रुक कर, सडक के किनारे की ढाल पर एक पैर टेक कर रेखा का भार एक घुटने और बाँह पर लिया, दूसरी बाँह खाली कर ली कि हिला कर गाड़ी रोकेगा।

एम्बुलेंस ही थी। उस के पास आ कर रुक गयी, सेवक कूद कर उतरा; भुवन ने चाहा कि रेखा को उठा कर स्ट्रेचर पर लिटा दे, पर बाहें उठी नहीं। सेवक ने खींच कर स्ट्रेचर निकाला और हाथ दे कर रेखा को लिटा दिया, ऊपर से डाक्टर ने स्ट्रेचर को अन्दर खींचा, सेवक सवार हो कर भुवन को भी खींचने लगा तो डाक्टर ने कहा, "आप आगे—मरीज को देखना होगा।" आगे से सलामा उतर रहा था, भुवन ने उसे सवेरे ही अस्पताल पहुँचने को कहा और सवार हो गया। गाड़ी मुड़ने लगी तो डाक्टर ने भीतर से आवाज दी, "ठहरो अभी—इंजेक्शन लगा लें।" एंजिन बन्द हो गया।

फिर वही टपाटप—अब और भी जोर से क्यो कि बूँदें एम्बुलेंस की लकड़ी और कैनवस की छत पर पड़ रही थी। भुवन के कान गाड़ी के भीतर से आने वाले शब्दों पर लगे थे, पर शब्द बहुत कम थे, और जो थे उन से कुछ नही जाना जा सकता था कि क्या हो रहा है।

एकाएक भुवन को लगा कि रेखा कराही है। भीतर से डाक्टर का स्वर आया, "विल यू कम ओवर, प्लीज़ ?"

भुवन उतर कर पीछे गया। पहले कपडे हटा कर रेखा को अस्पताल के चार कम्बल ओढा दिये गये थे, वह सचेत थी और धीरे-धीरे कुछ कह रही थी। "भुवन . जान. . .भुवन .." भुवन ने पास झुक कर कहा, "मै हूँ, रेखा, अब कोई चिन्ता नही—"

रेखा ने कहा, "कहाँ—"

"एम्बुलेंस मे—अभी अस्पताल पहुँच जायेगे—"

उस ने आँखें बन्द कर ली, पर कुछ गुनगुनाती रही। भुवन ने और पास झुक कर सुना : "क्लान्ति—आमार—क्लान्ति—"

वह समझ गया। रेखा ने उस के जाने से पहले जो कापी उसे दी थी, उस मे कहीं यह गीत लिखा था :

क्लान्ति आमार क्षमा करो हे प्रभु
पथे यदि पिछिये-पिछिये पडि कभू !

भुवन ने एक बार डाक्टर की ओर देखा, फिर उतर गया। डाक्टर ने कहा, "मै भी सामने आता हूँ।" पीछे नर्स और सेवक रह गये। एंजिन स्टार्ट हुआ, गाडी घूमी और चल पड़ी। डाक्टर ने कहा, "रक्त रोकने के लिए इंजेक्शन दिया है—"

भुवन ने पूछा, "खतरा है ?"

"हाँ। बहुत टाइम लूज़ हुआ। लेकिन—आई थिंक शी विल पुल थ्रू। अभी आपरेट करना होगा। शायद ब्लड ट्रांसफ्यूजन भी—"

भुवन ने कहना चाहा, "मेरा रक्त अगर ठीक हो तो दे सकता हूँ," पर न जाने कैसी झिझक ने उसे रोक दिया—ऐसी बाते उपन्यासो मे होती है—पर डाक्टर ने कहा, "ब्लड प्लाज़्मा है अस्पताल में—फॉर्चुनेटली।"

फिर अस्पताल में रुकने तक कोई नहीं बोला। उतरते ही डाक्टर ने कहा, "नर्स टॉमस, आपरेशन रूम तैयार कराओ। डाक्टर रेवर्न को खबर करो। इम्मीजिएट आपरेशन।"

स्ट्रेचर उतार कर अन्दर ले जाया गया। भुवन को खोया-सा खड़ा देख कर डाक्टर ने कहा, "आप घर जायेंगे या—" फिर सहसा याद करके कि वह आ रहा था, "आप आ कर वेटिंग रूम में बैठिए—आइ विल ट्राइ एण्ट सेंड यू सम टी। आइ एम सारी देयर्स नथिंग एल्स आइ कैन।"

भुवन ने कहा, "नो थैंक यू, डाक्टर, बट आइ'म मोस्ट ग्रेटफुल—फर्स्ट थिंग्स फर्स्ट।"

डाक्टर ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और फुर्ती से भीतर चला गया।

भुवन ने घडी देखी। ढाई। उस ने कुरसी पर बैठते हुए एक लम्बी साँस ली। अगर उस का बचाया हुआ यह आधा-पौन घटा...विचार उस ने वहीं छोड़ दिया। सहसा कहा, "अब भी, रेखा, अब और ज्यादा—जितना कभी नही किया।"

मानो जवाब में रेखा के अन्तिम शब्द उस के मन में गूँज गये, और उसे जान कर अचम्भा हुआ कि कापी का गीत उसे याद है, वह गुनगुनाने लगा :

क्लान्ति आमार क्षमा करो, क्षमा करो प्रभु...

वह थक गया था। लेकिन थकान उस की पेशियों में नहीं थी, एक जड़ता उस के मन पर छा गयी थी। कारण बँगले से रेखा को उठा कर आने का श्रम नही था, कारण यह था कि बहुत-कुछ समझ चुकने पर भी इस विलायती गोरख-धन्धे के अलग-अलग टुकड़े जुड नहीं रहे थे, पूरा चित्राकार नहीं बन रहा था।

वेटिंग रूम ठंडा था। निश्चल बैठे रहने से ठंड उस के पैर के पंजों से चढ़ती हुई सारे शरीर में छा गयी थी, वह धीरे-धीरे ठिठुर रहा था।

रेखा की कापी से उड़ते हुए वाक्य सामने आते और विलीन हो जाते, फिर दूसरे आते और वे भी विलीन हो जाते, वेदना और अभिप्राय का एक अवदान उसे दे कर : लेकिन ये ही वाक्य कभी दुबारा आ जाते तो नयी

वेदना ले कर, और शायद कुछ नया अर्थ भी ले कर...

एक तन्द्रा उस पर छा गयी। अगर उस के पैर गीले और ठिठुरे हुए न होते तो वह ऊँघ जाता; यों वह एक तन्द्रित अवस्था में बैठा था।

हठात् एक निश्चलता के बोध ने उसे जगाया। बारिश थम गयी थी। उस ने खड़े हो कर अंगडाई ली। स्निग्ध अलसाये शरीर की अगड़ाई सुखद और स्फूर्तिदायक होती है, पर ठिठुरे शरीर की अगडाई मानो और भी जड बना देती है। वह बाहर के मडप मे गया' बादलो की चादर अब भी समान रूप से सारे आकाश मे फैली थी, पर अब उन मे एक फीकापन था—भोर होने वाला है.. भुवन ने फिर घड़ी देखी—छः बजने को थे। वह फिर वेटिंग रूम की ओर मुड़ा।

प्रवेश कर के वह बैठने ही लगा था कि भीतर की ओर से एक नर्स निकली। उस ने कुछ अचम्भे से पूछा, "आप कैसे?" फिर सहसा समझ कर कहा, "वह एमर्जेंसी केस—"

भुवन ने कहा, "हाँ, हाउ इज शी?"

"आपरेशन तो ठीक हो गया। सो गयी है। मैं और पूछ आऊँ?"

भुवन ने निहोरे से कहा, "प्लीज—"

नर्स चली गयी। थोड़ी देर बाद डाक्टर भी साथ आ गया। डाक्टर बोला, "शी इज़ आल राइट नाउ। थैंक गाड। लेकिन—मिनटो की बात थी—शी इज ए वेरी ब्रेव वुमन..." सहसा रुक कर उस ने पूछा, "लेकिन—हाउ डिड इट हैपन—कोई चोट-ओट—"

भुवन क्या कहे? सक्षिप्त हाँ कह देने से तो नही चलेगा, और चोट के बारे में इतनी जल्दी कहानी भी वह नही गढ सकेगा! बोला, "आई डोंट नो—इट् हैपन्ड सडनली—"

डाक्टर ने सिर हिलाया। ऐसा भी होता है...फिर पूछा, "आप उन के—"

भुवन ने कहा, "नही—ओनली ए—रिलेशन।" फिर परिचय देना उचित समझ कर बोला, "भुवन इज माई नेम--डाक्टर भुवन।"

डाक्टर ने हाथ बढाते हुए कहा, "माइन'ज पिनकॉट।" हाथ मिला हुए पूछा, "मेडिकल?"

भुवन ने कहा, "नो, फिज़िक्स। कास्मिक रेज़ एंड थिंग्स।"

डाक्टर ने कहा, "मिल कर खुशी हुई—पर अब मुझे जाना चाहिए मस्ट गेट सम स्लीप—"

"थैंक यू, डाक्टर—"

सहसा कुछ याद कर के डाक्टर ने कहा, "आपरेशन के बाद होश आ ही—शी आस्क्ड फार यू। लेकिन—" कन्धे मिकोड कर उस ने यह आश व्यक्त किया कि भेंट तो, आप समझ सकते हैं, असम्भव थी। फिर कहा "आप शाम को आइये—आई थिंक शी विल बी एब्ल टु सी यू।"

डाक्टर चला गया। भुवन चलने लगा, तो नर्स उस की ओर देख क मुस्करा दी। मुस्कराहट औपचारिक थी, पर उसने मुस्करा कर उसे स्वीकार किया, कहा, "गुड मॉर्निंग—" और बाहर निकल आया। सड़क पर जगह-जगह पानी खड़ा था, लेकिन वह तेज चलने लगा। नदी की ओर—नदी बहुत बढ़ आयी थी और यद्यपि लोग उठे नहीं थे, वह मानो वहीं से उन के सहमे हुए भाव देख सकता था ..उदास, मलिन, गन्दा, बदबूदार श्रीनगर, गँदली मैला ढोने वाली नदी, उदास मैला आकाश, जैसे म्रियमाण आबादी पर पहले से छाया हुआ कफ़न—भुवन ने ऊपर बायें को देखा, शंकराचार्य की पहाड़ी भी उतनी ही उदास, केवल उस धुँधले तोते के पिंजरे मन्दिर के ऊपर की बत्ती टिमटिमा रही थी भोर के तारे की तरह धैर्यपूर्वक...

उस की चाल और तेज़ हो गयी। डाक्टर का कहा हुआ वाक्य उस की स्मृति में गूँज गया—"शी इज़ ए वेरी ब्रेव वुमन।" एक स्निग्धता उस के भीतर फैल गयी, उस ने निःशब्द भाव से भीतर ही भीतर कहा, "रेखा ."

तॉगा ले कर वह वापस पहुँचा तो सलामा दौड़ा हुआ आया। "[illegible] साहेब—

भुवन ने कहा, "ठीक है, सलामा : अब कोई फ़िक्र नहीं है।"

"बहुत तकलीफ हो गया—"

"हाँ, सलामा। खुदा ने रहमत की—"

भीतर जा कर वह कपड़े बदलने लगा। सलामा ने आ कर आग जलाने का उपक्रम किया। सहसा जेब में कागज की खड़खड़ाहट से भुवन को याद आया—वे चिट्ठियाँ। उन्हें निकाल कर वह रेखा के कमरे में रखने चला। जहाँ से उठायी थी, वहीं रखने लगा तो देखा, वहाँ रेखा के हाथ के लिखे और भी दो-एक कागज हैं। थोड़ी देर वह झिझका, फिर उस ने मान लिया कि वे भी उसी के लिए हैं, और खड़ा-खड़ा पढ़ने लगा।

"नहीं जानती कि क्या कहूँ—मेरी सब इन्द्रियाँ जड़ हो गयी हैं। कहना चाहती हूँ बहुत, लिखना नहीं, पर कह सकूँगी नहीं, वह मुझी में रह जायगा—जैसे कितना कुछ अभिव्यक्त रह जायगा।"

"तुम जब आओगे, तब क्या मेरी आँखों में नहीं पढ़ सकोगे कि मेरा यह आहत, चिथड़े-चिथड़े हो गया जीवन क्या कहना चाहता है?..."

"मैं मानती हूँ कि अगर प्यार यह भी परीक्षा नहीं सह सकता तो वह प्यार नाम का पात्र नहीं है। मैं—मैं ने तुम्हारे साथ आकाश छुआ है, उस का व्यास नापा है : उस सेटिंग में यह छोटी-सी बात लगती है—फिर लगता है कि हमें जोड़ने वाले सूक्ष्म सजीव तन्तु ही काट दिये जा रहे हैं. क्या हम टूट कर अलग हो जायेंगे? टूट कर नहीं, बह कर सही, अन-जाने बहते रह कर इतनी दूर भी तो हट जा सकते हैं कि एक-दूसरे को छोड़ दें—मुक्त कर दें ..मैं नहीं जानती क्या होगा—जो हो, अब हो... यही है तो वही हो—जिस सौन्दर्य को लिये हम पास आये थे, उसी को लिये दूर हट जाये—अगर हम और निकट आये तो विधि को धन्यवाद दें, और अपनी आत्मा की सामर्थ्य भर ऊँचे उठें—सुन्दर के आकाश में। इतना छोटा-सा है मानव-जीवन..."

"काश कि मैं कह सकती—एक ही बात जो कहना चाहती हूँ वही कह सकती, पर सिर्फ़ आँसू ही कह सकते हैं। मैं टूट गयी हूँ, भुवन, मेरे

जीवन, जैसी पहले कभी नहीं टूटी थी। लेकिन इतना कह दूँ—मुझे किसी बात का पछतावा नहीं है, और इस से भी दस-गुनी बुरी तरह टूट जाऊँ तो भी तुम्हारे साथ के एक क्षण को, हमारी साझी अनुभूति के एक स्पन्दन को भी छोड़ देने को मै राजी नही हूँ...मेरे महाराज, यह याद रखना, और मुझे क्षमा कर देना ..."

"लेकिन प्यार क्या है? तुम सचमुच प्यार करते हो, करते थे? यह दर्द क्यो है—किस लिए है। जो कुछ हुआ है, हो रहा है, क्यो—किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए?"

"जो जब तक है, सुन्दर हो और हमारे व्यक्तित्वो का प्रस्फुटन हो, एक तुम्हारे और एक मेरे व्यक्तित्व का नही, तुम्हारे अनेक व्यक्तित्वो का, मेरे भी अनेक व्यक्तित्वो का सम्मिलन और विकसन—केवल मेरे उस एक पहलू का नहीं, जिसे मैं तुम्हे नही छूने दूँगी—जिस से मैं तुम्हें असम्पृक्त रखूँगी भुवन, तुम्हीं को नही, उस अपने को भी जिसे तुम ने प्यार किया है—अगर तुम ने किया है, जिस ने तुम्हे प्यार किया है जैसा और किसी को नहीं—प्राणी, वस्तु, विचार, भावना किसी को नही..."

"शिथिल मत होना, महाराज, आत्मा का शैथिल्य ही प्यार की पराजय है, हम दोनो को बराबर सतर्क, सजग रहना है—क्यों कि हम दोनो ऐसे आत्म-निर्भर, स्वतःसम्पूर्ण हैं कि सहज ही बह कर, सिमट कर अलग हो जा सकते है—अपनी-अपनी सीपियो मे बन्द, अंतरग अनुभूति के छोटे-छोटे द्वीप—और इस प्रकार बरसो जीते रह सकते हैं, मौन, शान्त, लेकिन एकाकी..."

"मैं सोचती हूँ और अवाक् रह जाती हूँ: मेरे साथ यह कैसे घटित हुआ—मेरे, जिस मे सब वासना, सब आकांक्षा मर गयी थी—जो स्त्री होना भी नहीं चाहती थी, माँ होना तो दूर..."

"ह्वेन आइ एम डेड, माई डीयरेस्ट
सिंग नो सैड साग्स फार मी—
यह तुम ने पढ़ी है? मुझे पूरी याद नहीं है, पर तुम्हे होगी—"

"मैं नहीं जानती कि यह भूल है या ठीक, भुवन, कर्म को जज करना मैं ने छोड़ दिया है, क्यों कि जब जज करने बैठती हूँ, तो मानना पड़ता है कि न्याय करने वाला विधाता ही गलतियाँ करता है। अब—इतना ही मानती हूँ कि भीतर से जो प्रेरणा है—अगर उस के साथ ही पाप का, अपराध का बोध नहीं जुड़ा हुआ है तो—वही ठीक है, वही नैतिक है। यह नैतिकता अधूरी हो सकती है—पर इस लिए कि उसे देने वाला व्यक्तित्व अधूरा है—उस व्यक्तित्व की तो वह सर्वोच्च रचना है—उसी की कल्याण-कामी, कल्याण-प्रद सम्भावनाओं की सर्व-श्रेष्ठ अभि-व्यक्ति..."

"भुवन, बड़ा कष्ट है भुवन...यहाँ सब कुछ बदल गया है—कमरे में अँधेरा है—कैसा गाढ़ा द्रव अँधेरा जिस में मैं हाथ-पैर मारती हूँ...फिर कभी हवा इतनी हल्की हो जाती है कि मैं हाँपने लगती हूँ, साँस लेती हूँ पर हवा नहीं मिलती—ऊपर लगता है मृत्यु मँडराती है, उस के पंखों की फड़फड़ाहट सुन पड़ती है—मुझे माफ कर दो, भुवन, मुझे..."

"जो सुन्दर है, निरन्तर विकास करता है, रुक नहीं सकता : दूसरों को आनन्द देता है। तो क्या—मैं भूल करती आयी हूँ, क्या मैं बहते पानी को बाँधना चाहती आयी हूँ, क्या मैं ने दूसरों के लिए दु:ख ही की सृष्टि की है ? अगर ऐसा है तो उस का भरपूर दण्ड मुझे मिले—विधि से, और तुम से भी, भुवन। लेकिन मुझ में कुछ कहता है कि नहीं, अपने लिए मैं ने जो किया हो—और हाँ, तुम्हारे लिए भी, मेरे दु:ख के साथी और सह-भोक्ता, सहस्रष्टा,—दूसरों के लिए मैं ने दु:ख नहीं बोया, भुवन—कह दो कि नहीं बोया और ये सब झूठ बोलते हैं—ये खुद असुन्दर को ले कर मुझे भी उस की सड़ाँध में पचा देना चाहते हैं। पर नहीं, मैं नहीं छूने दूँगी उन्हें कुछ जो मूल्यवान् है—इसी में मैं मर जाऊँ तो वह मेरा 'एक्ट आफ फेथ' हो—अभी जो हो भुवन, मैं धीरे बैठी हूँ कि यह दर्द भी आगे आनन्द देगा क्यों कि वह विश्वास के साथ अपनाया गया है, मैं अपने को समर्पित कर के उसे ले रही हूँ..."

"तुम अब जब मुझे देखोगे, पहचानोगे ? अपनाओगे ?"

"नही, तुम चले जाना भुवन, मुझे अकेली छोड कर चले जाना। जीवन के सारे महत्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति अकेले मे करता है, सारे दर्द अकेले भोगता है—और तो और, प्यार के चरम आत्म-समर्पण का सब से बड़ा दर्द भी...मिलने मे जो विरह का परम रस होता है—तुम जानते हो उसे? समर्पण के धधकते क्षण मे जब यह ज्ञान चीत्कार कर उठता है कि हम अलग ही है, देना सम्पूर्ण नही हुआ, कि मिटने मे भी मैं मैं हूँ, तू तू है, मैं तू नही हूँ—और हमारी माँग बाकी है...इतना अभिन्न मिलन क्या हो सकता है कि माँग बाकी न रहे ? सारी सृष्टि मे रमा हुआ ईश्वर भी तो अकेला है, अपनी सर्व-व्याप्ति मे अकेला, अपनी अद्वितीयता मे अयुत, विरही...

"इस लिए, भुवन, तुम चले जाना। 'मै शिकायत नही करूँगी, मन मे भी नहीं। मान लूँगी कि मेरा व्रत पूरा हुआ—कि मैं ने तुम्हे वही दिया जो देय था, स्वच्छ था, और उस से बचा लिया जिस से तुम्हे दूर रखना चाहती थी ."

"ठीकरे ने स्वप्न देखा, वह सोने का अमृत-पात्र है। स्वप्न था, अन्ततः चुक गया। जाग कर उस ने जाना कि वह केवल ठीकरा है। कहने लगा, 'मै देवता के अमृत-पात्र का ठीकरा हूँ।' पर इस लिए क्या वह कम ठीकरा है ? या कि अधिक—क्यो कि वह बृहत्तर सम्भावनाओ का ठीकरा है ?"

"अनाथ, लावारिस धूल..."

"तुम्ही मे मेरी आशा है, तुम्ही मे मेरे सकल द्वन्द्वो का शमन।"..

"वेदो की विवाह की ऋचाएँ है—सुन्दर जानो तो सुन्दर, अश्लील मानो तो अश्लील। मुझे याद आता है—'अस्थि से अस्थियाँ, मज्जा मे मज्जा, त्वचा से त्वचा को युक्त करता हूँ ' ठीक कहती हैं वह, हम ने आँखो से आँखो को वरा था, ओठ से ओठ को, वक्ष से वक्ष को, प्राण से प्राण को; प्यार से प्यार को, और हाँ, वासना से वासना को...

"और यह एक मैला नाखून, एक पार से दूसरे पार तक उस सद्युति को फाड़ता हुआ चला जा रहा है...

"और मैं नहीं जानती कि उत्तरदायी मै नहीं हूँ..

मुझे कभी भी माफ करोगे, भुवन ?"

"नही सहा जाता, भुवन! इस लिए नही कि कष्ट बहुत है, इस लिए कि मैं ऐसी लडाई लड़ते थक गयी हूँ जो व्यर्थ है, और जो अनिवार्यतः व्यर्थता ही मे समाप्त हो सकती है.. मान ही लो कि हम रह सकते—घर होता, सयुक्त जीवन होता, वह सर्जन-बार्यलिनिन्ट भी आता—फिर क्या ? मान लो कि मैं दस वर्ष बाद मरती हूँ—क्या उस से अच्छा नही है कि अभी मर जाऊँ ? या कि दस वर्ष बाद हम उदासीन, अलग हो जाये—उस से हज़ार गुना अच्छा है आज मर जाना।

"मैं विमूढ हो गयी हूँ। भुवन, मेरी कुछ समझ मे नही आता कि क्या हुआ है और हो रहा है। ऐसी ही विमूढ सुन्न अवस्था मे मेरे बरसो बीते है, इतना ही जानती हूँ कि तुम—इसी लिए और भी मर जाना चाहती हूँ—क्यो कि समझती हूँ, मेरे आकस्मिक अचिन्तित हरकतो मे तुम्हे अपार क्लेश होगा। मुझ मे डङ्क नहीं है, फिर भी चोट पहुँचाती हूँ——और तुम चुपचाप सह लेते हो—क्यो इतने चुपचाप सहते हो, भुवन, तुम्हारी चुप्पी तो मुझे और सालती है, मैं चाहती हूँ कि इसी क्षण धरती मे समा जाऊँ......

"हजारो है, जिन मे प्यार मर जाता है लेकिन जो फिर भी जीते है, हँसते है .लेकिन यह मैं क्या लिख रही हूँ—क्या कह रही हूँ ? यही कि मैं जीती हूँ भुवन, 'और तुम्हे प्यार करती हूँ : और सब भाव्य और सम्भाव्य अभी पड़े रहे जब तक मेरी शक्ति फिर लौट आये—"

उस शाम को तो नही, अगली शाम को भुवन की रेखा से भेट हुई। दोनो ही कुछ बोल नही सके, रेखा ने एक दुर्बल मुस्कान मे उस का स्वागत

कर दिया और पड़ी रही : भुवन पास बैठ गया और स्थिर दृष्टि से उसे देखता रहा। दोनो को लग रहा था कि जिस अनुभूति मे से वे गुजरे हैं, उस के बाद शब्दो मे कुछ कहा नहीं जा सकता—शब्द मानो एक खतरनाक औजार हो गये हैं जिस की चोट से जो कुछ बचा है वह सब का सब हरहरा कर गिर पड़ेगा—पहले ही उच्चारित शब्द पर सारा भविष्य टॅगा हुआ है...

फिर रेखा ने इक साथ ही भौहे सिकोड़ते और मुस्कराते हुए पूछा, "भुवन—अब भी ?"

और भुवन ने कहा, "हाँ, रेखा, ज़्यादा—"

मानो हवा मे तनाव कम हो गया। रेखा ने तकिया गले की ओर खींच कर सिर जरा-सा ऊँचा कर लिया, भुवन खिड़की से बाहर का दृश्य देखता रहा।

"कैसी हो, रेखा ?"

"ठीक हूँ। और तुम ? क्या करते हो वहाँ ?"

भुवन ने उत्तर नहीं दिया। "तुम्हारे लिए कुछ लाऊँ—किसी चीज की जरूरत—"

"नही। अच्छा, दो-एक किताबें ले आना, और—एक छोटी कापी और पेंसिल—"

भुवन मुस्करा दिया। "क्या कहना चाहती हो, रेखा ?"

"जो कह नही पाती—"

"अब भी ?"

रेखा ने भी मुस्करा कर कहा, "अब और भी ज्यादा, भुवन !"

थोड़ी देर फिर दोनो चुप रहे। फिर रेखा ने कहा, "वहाँ मेरी कोई—चिट्ठियाँ आवें तो—तुम पढ लेना। जो ठीक समझो कर देना—चाहे उत्तर दे देना। और—चाहो तो—चिट्ठियाँ फाड़ कर फैंक देना।"

"तुम्हारी चिट्ठियाँ !"

"हाँ भुवन—मै स्वयं तो कह रही हूँ। और ज्यादा दिन तो यह बोझ

तुम पर नही डालूँगी—यही पाँच-सात दिन। यहाँ कोई डाक मत लाना—अगर तुम ही जरूरी न समझो।"

भुवन ने विरोध करना चाहा कि यह बडा दायित्व है . फिर चुप रह गया—शायद ऐसी कोई चिट्ठी आये ही नहीं कि उसे सोचना पडे .

दूसरे दिन वह रेखा की माँगी हुई चीजे और कुछ फूल ले कर पहुँचा : फूल सजाने लगा तो रेखा मुस्कराती देखती रही। फूलदान सजा कर वह उसे घुमा-फिरा कर उसे रेखा की दृष्टि से ठीक कोण पर रखने लगा तो वह हँस पड़ी। "हाँ, तुम भी इसी एंगल पर खडे रहो—तुम्हे भी देखती रहूँगी।"

लेकिन भुवन के आशावाद ने काम नही दिया : दो-तीन दिन बाद ही एक बड़े लिफाफे मे वकील की चिट्ठी आयी। हेमेन्द्र धर्म-परिवर्तन की दलील दे कर तलाक की माँग कर रहा था, वकील ने राय दी थी कि रेखा भी दोस्ताना तौर पर मामला तय हो जाने दे, और अच्छा हो कि अपनी आर से मामला किसी वकील को सौप दे, दोनो वकील आपस में बात सुलझा कर ऐसा यत्न करेगे कि सब काम स्मूथली हो जाय। "मेरे मवक्किल का कहना है कि आप भी तलाक चाहती हैं, और किसी तरह के साहाय्य से आप को कोई दिलचस्पी नहीं है—ऐसी सूरत मे यही सब से अच्छा होगा, यो आप को विशेष कुछ कहना हो तो मैं भरसक आप की सुविधा प्राप्त करने की कोशिश करूँगा...अपने मवक्किल के प्रति अपनी जिम्मेदारी तो निबाहूँगा ही, पर तलाक के मामले बहुत डेलिकेट होते है और उस मे सिर्फ पक्ष ले लेना उचित नहीं होता। कानून है, लेकिन जीते-जागते मानवप्राणी से बडा नहीं है...एक वकील के मुँह से ऐसी बात सुन कर आप को अचरज होगा; पर मेरे इस गैररस्मी एप्रोच को आप गुस्ताखी न समझेंगी .."

शाम को भुवन ने और फूल, कुछ फल, बिस्कुट और रेखा के माँगे हुए दो-चार कपडे आदि सब यथा-स्थान रखते हुए कहा, "रेखा, एक चिट्ठी है—"

रेखा बोली, "मैंने तो कहा था—किस की है, हेमेन्द्र की?"

"नहीं। पर—"

"अच्छा, लाओ, दे दो !"

भुवन से ले कर रेखा ने चिट्ठी आद्यन्त पढ़ ली। थोड़ी देर चुप रही, आँखें बन्द कर लीं। एक आँसू कोर से ढरक गया। व्यथित स्वर से उस ने कहा, "यह चिट्ठी—तो...वह चिट्ठी..." और वाक्य अधूरा छोड़ कर चुप हो गयी। थोड़ी देर बाद सँभल कर उस ने कहा, "मेरी ओर से पहुँच और धन्यवाद लिख दोगे—यह भी कि मैं वकील—" और सहसा रुक गयी। एक काली छाया चेहरे पर आ गयी। "नहीं भुवन—मुझ से गलती हुई—यह जिम्मेदारी तुम पर नहीं डालनी चाहिए थी। लाओ मुझे कागज दो—अच्छा रहने दो—मैं कल लिख रखूँगी, तुम शाम को पोस्ट कर देना।"

अगले दिन उस ने भुवन को तीन चिट्ठियाँ दीं। एक वकील के नाम, एक दूसरे वकील के नाम, एक कलकत्ते के किसी पते पर। देते हुए बोली: "यह कलकत्ते में मेरी एक मौसी हैं—यहाँ से उन के पास जाऊँगी।"

भुवन ने चौंक कर कहा, "हूँ? क्यों? कब—"

"हाँ, भुवन। लगता है अब जीवन फिर सिफर से शुरू करना होगा। माता-पिता तो लौट नहीं सकते—पर घर की भावना ही सही—"

थोड़ी देर मौन रहा।

"और तुम भी तो लौटोगे अब—"

"अभी तो मेरी छुट्टियाँ हैं.."

"तो पाँच-सात दिन तो अभी मैं भी यहाँ हूँ—"

"तब तक तो मौसम बहुत अच्छा हो जायगा—और कलकत्ता तो इन दिनों—"

"बेगर्स कॉट बी चूज़र्स, भुवन। और कलकत्ते नहीं, शहर से तो बाहर नदी पर रहूँगी—"

"फिर भी—"

सहसा रेखा ने पूछा, "यहाँ बाढ़ का क्या हाल है?"

"उतर रही है। कीचड़ सूख रहा है—"

"यहाँ ऐसी धूप है कि सोच भी नहीं सकते बाढ की बात, जिस दिन आयी थी—जिस दिन तुम लाये थे उठा कर—" सहसा उस का गला भारी हो आया, "भुवन!" और उस ने भुवन की ओर दोनो हाथ बढा दिये। भुवन, फुर्ती से आगे बढा, दोनो हाथो की उँगलियाँ उस ने अपने हाथों मे लीं और बारी-बारी से उठा कर ओठो मे लगा ली। फिर वह उँगलियो को देखने लगा—ठंडी, पीली नाखून लगभग सफेद और नीचे किंचित् नीलाभ—फिर उस ने धीरे-धीरे हाथ रेखा की बगल मे रख कर ढँक दिये।

रेखा के कहने से भुवन फिर मिसेज ग्रीव्ज से मिल आया था, और वह आ कर रेखा को देख गयी थी। तब से रोज ही आती, प्रायः ही खाने का कुछ सामान लाती—केक मधु, जैम, चाकलेट.. रेखा अस्पताल छोड कर घर जायगी, इस सूचना से वह बहुत खिन्न थी—"मै ने तो सोचा था, और मुझे कभी ढूँढना नहीं पडेगा।" वह प्रायः जल्दी ही आती, भुवन देर से आता, कभी उन की भेट हो जाती, कभी उस के जाने पर ही भुवन पहुँचता।

भुवन ने कुछ डरते-डरते पूछा, "रेखा, अब—यह तो बता दो कि तुम ने किया क्या था—यह कैसे हुआ?"

रेखा थोडी देर चुप पड़ी रही। फिर उस ने कहा, "मै डाक्टर के पास गयी थी। फिर वापस आयी तो—वह चिट्ठी—" उस ने फिर आँखें बन्द कर लीं, थोड़ी देर बाद फिर कहने लगी, "उस मे सब बदल गया। फिर एक दूसरे डाक्टर के पास गयी जो सर्जन भी था,—उसे जो कहा सो तो अब छोडो, पर बहुत अनुनय पर वह मान गया। आपरेशन के लिए उसी के क्लिनिक मे गयी थी।"

"तो—यह—कैसे—"

उस का प्रश्न समझ कर रेखा ने कहा, "उस ने कहा था कि दो-एक दिन बाद हेमरेज होगा। पर ऐसा, यह अनुमान तो नहीं था—"

"वह है कौन सर्जन, रेखा?"

"वह अब जाने दो, भुवन! मैं ने उसे बहुत पर्सुएड किया था—बल्कि धर्म-संकट मे डाला था।" और लापरवाही उस ने नहीं की। यह मत कहना

कि वह प्रोफेशन का कलंक हैं—मैं नहीं मानूँगी।"

भुवन चुप रह गया, केवल एक लम्बी साँस उस ने ली। थोड़ी देर
उस ने कहा, "लेकिन रेखा, वह चिट्ठी तो—"

रेखा ने एक हाथ उठा कर उसे चुप कर दिया। पीड़ित स्वर में बो
"अब वह जो हो, भुवन, इट इज़ टू लेट—"

जिस दिन रेखा अस्पताल से छूटने को थी, उस दिन भुवन दोपहर
टैक्सी ले कर आ गया। डाक्टर-मैट्रन-नर्स को धन्यवाद दे कर वह रेखा
लेने पहुँचा तो वह धूप में आराम कुर्सी पर बैठी थी। भुवन ने ह
बढ़ाते हुए पूछा, "चल सकोगी?"

"हाँ सकूँगी—पर फिर भी सहारा लूँगी—मे आइ?" भुवन
बाँह में उस ने बाँह डाल ली और उस पर झुकती हुई चलने लगी।

भुवन ने उसे कार में बिठाया, फिर लौट कर सामान वगैरह ले
रखा। बख़शीशें दीं, और आ गया। गाडी चल पडी। रेखा ने कह
"कितनी सुन्दर है धूप—और रोशनी—मैं मानो फिर से दुनिया को विि
करने आ रही हूँ—"

अपनी ही बात पर वह उदास हो गयी। "वापस लेकिन कोई क
नहीं आता।"

"न सही वापस—वापस आना कोई चाहे क्यों? दुनिया अनव
अपने को नया करती जाती है—वह नयापन—"

टैक्सी नीची सड़क पर नदी के पास से गुजर रही थी। बेत के वृक्षों
नीचे कीचड की पपड़ियाँ जमी थी और सूखने से चटक गयी थीं, दरारों
कई पैटर्न उन में बने हुए थे।

"यही है वह नयापन—देखो न, दुनिया को नया होते हुए! ठी
है...पर उस का तो सोचो, जो नदी की इस धुलाई में बह गया—न
के वे द्वीप जो मिट्टी के ही सही, कितने सुन्दर थे, पर अब हो गये ये सूख
पपडियाँ!"

भुवन रेखा की ओर देखने लगा।

"हाँ, मैं जानती हूँ, तुम सोच रहे हो, व्यक्ति की भावनाओं—अनुभूतियों का आरोप प्रकृति पर करना बचपन है। मैं भी जानती हूँ। फिर भी भुवन—आखिर मैं फिर से मिट्टी से ही तो शुरू कर रही हूँ। बाढ़ के बाद की सूखती पपड़ों से।"

भुवन धीरे-धीरे उस का हाथ थपथपाने लगा। बोला नहीं। गाडी बड़ी सड़क छोड कर बँगले की ओर चढने लगी।

"लेकिन यह सेल्फ-पिटी नही है भुवन; मैं दीन नही हो रही। जो हमें मिला है, वह बहुमूल्य है—अब भी, बल्कि अब और ज्यादा—" और एक मधुर चितवन से उस ने भुवन को देखा और मुस्करा दी।

गाडी फाटक के अन्दर मुड़ी। दूर से सेबों से लदी हुई शाखें दीखने लगीं।

रेखा ने कहा, "अब तो सेब पक गये होंगे।"

भुवन ने कहा, "हाँ।" फलों पर और पेडों के नीचे की हरियाली पर खेलती धूप अत्यन्त सुन्दर थी, उसे किसी कविता की एक पंक्ति याद आयी— 'द एपल ट्री, द सिंगिंग, एंड द गोल्ड'...सुन्दर, व्यंजना-भरी पंक्ति है—गाल्सवर्दी ने इसी पंक्ति को ले कर एक कहानी लिखी है जो उसे कभी बहुत अच्छी लगी थी...'शरद्, धुन्ध और स्निग्ध सुफलता की ऋतु'—लेकिन सहसा उसे याद आयी रात में चुपचाप टपक पड़ने वाले पके फल की वह लोमहर्ष आवाज, और एक अनिर्वचनीय गहरी उदासी उस पर छा गयी। पका फल—चुपचाप टपक पड़ना—उस के बाद फिर? हाँ, है शरद् की धूप का सोना, पकती दूब का सोना, है वह गिरा हुआ फल भी, पर—क्या है अन्त है?

भुवन दिल्ली तक रेखा के साथ गया।

कलकत्ते की गाड़ी मे बैठ कर रेखा प्लेटफार्म पर खडे भुवन को देखने लगी। क्षण-भर के लिए जैसे सिनेमा मे होता है, एक चित्र घुल कर दूसरे मे

पलट गया : भुवन हाथ से कुछ मसल कर उस की गोली ठोकर से उछाल रहा है—उस का प्लेटफार्म टिकट; फिर पहला दृश्य लौट आया। न, अब वह भुवन से नहीं कहेगी, किसी अनुभव को दुबारा चाहना भूल है और अभी वह वैसी यात्रा पर जा भी नहीं रही : वह चुपचाप पड़ी रहना चाहती है, और—भुवन को भी अकेला छोड़ देना चाहती है। उस अकेले चिन्तन में जो निकले, निकले। वह बुद्धिमती होती, तो भुवन को पास रखना चाहती, उस के पास रहना चाहती, उस से बराबर सम्पर्क रखती कि जानती रहे, उस के मन से क्या गुजर रहा है, पर वह बुद्धिमती नहीं है, न होना चाहती है। उसे कुछ चाहिए नहीं, उसे कुछ सँभालना नहीं है—'हाउ टु होल्ड ए मैन'...

भुवन ने थोड़े फल ले कर उस के पास रख दिये। फिर भीतर आ कर एक नज़र इधर-उधर डाली, फिर बिस्तर खोल कर कुछ बिछा दिया, कुछ लपेट कर ऊपर रख दिया। रेखा ने कहा, "यहीं बैठो न ?"

भुवन कुछ झिझका। जनाना डब्बा था, और भी दो-एक स्त्रियाँ बैठी थीं। उस ने कहा, "नहीं मैं खिड़की पर खड़ा होता हूँ—"

"टहलें—"

"नहीं रेखा, तुम बैठो। थक जाओगी—और अभी कितना सफ़र बाकी है।"

रेखा ने हाथ खिड़की पर रखा था : भुवन ने बाहर से उस पर अपना हाथ रख दिया। धीरे से पूछा, "ठीक हो न, रेखा ?"

"हाँ, बिल्कुल : तुम ?"

"हाँ—"

थोड़ी देर बाद भुवन ने पूछा, "रास्ते पर क्या करोगी—कुछ पढ़ने को ले दूँ ?"

"क्या ? ये स्टेशन वाली किताबें-मगज़ीन ? न इस से तो सोऊँगी।"

"तो मैं कुछ दूँ ? कविता है—ब्राउनिंग—" फिर सहसा रुक कर, "नहीं और एक चीज देता हूँ—मेरी एक कापी—"

रेखा ने खिल कर कहा, "तुम्हारी कापी, भुवन ?"

भुवन जल्दी से बोला, "नहीं, वैसी नहीं, यह दूसरे ढंग की कापी है—एकदम भानमती का पिटारा। जो पढ़ता हूँ उस में जो अच्छा लगता है लिख लेता हूँ—बरसों की पढ़ाई का मुरब्बा है।"

भुवन का सामान प्लेटफार्म पर रखा था : खोल कर उस ने कापी निकाली और रेखा को दे दी। रेखा ने सब पन्ने चुटकी में ले कर फड़फड़ा कर देखे, फिर सहसा कापी उलटती हुई बोली, "दोनों तरफ से लिखी हुई है ?"

भुवन कुछ सकपकाता-सा बोला, "उधर कुछ नहीं है।"

स्त्री-स्वभाव से रेखा ने पहले 'कुछ नहीं' वाला पन्ना देखना शुरू किया।

"वह रहने दो, रेखा, अच्छा रेल में पढ़ती रहना—वह जो मेरे अपने दिमाग में आया लिखता रहा हूँ—"

"ओ—उधर मुरब्बा है, इधर रसायन है," रेखा ने चिढ़ाया। "तो ठीक तो है—पहले रसायन का सेवन, फिर मुरब्बे का—"

"नाटी वुमन!" कह कर भुवन हँसने लगा।

दूसरी तरफ भुवन की गाड़ी भी लग गयी। कुली ने कहा, "साहब सामान रख लीजिए नहीं तो भीड़ हो जायगी।"

"होने दो।" कह कर भुवन कुछ रुका, फिर उस ने कहा, "अच्छा ले चलो।" फिर रेखा की ओर मुड़ कर, "मैं अभी आया।" रेखा के हाथ को उस ने थपथपा दिया।

चार-पाँच मिनट में वह लौट आया। रेखा अपनी कापी में कुछ लिख रही थी, थोड़ा मुस्करा रही थी। भुवन खिड़की पर खड़ा हुआ, तो लिखा हुआ परचा फाड़ कर रेखा ने उसे दिया।

उस ने पढ़ा, "यह जो पड़ोसिन बैठी है, मुझ से पूछ रही थी, ये आप के हजबैंड हैं ? मैंने कहा, हाँ। शादी को कितने बरस हुए हैं ? मैं ने कहा, सात। बोली, बड़ी भाग्यवती हैं आप! क्यों ? कि सात बरस

बाद भी आप के हज़बैंड आप को इतना प्यार करते हैं! भुवन, आकारों हम क्यों इतना बँध जाते हैं कि आत्मा मर जाय?"

रेखा की ओर देख कर वह मुस्करा दिया।

थोड़ी देर बाद गाडी ने सीटी दी। भुवन ने कहा, "पहुचते ही लिखन रेखा! और नियम से लिखती रहना कि कैसी हो—जल्दी से ठीक ह जाओ!"

"लिखूँगी, भुवन। रेल ही मे से नहीं लिखूँगी, यह कैसे जानते हो?" वह मुस्करा दी।

गाडी चल दी। भुवन ने उस के दूर हटती खिड़की पर रखे हाथ क दबा कर कहा, "गाड ब्लैस यू।"

रेखा के ओठो की गति से उस ने समझ लिया वह कह रही है "एंड यू।"

गाड़ी दूर हट गयी। जब उस की गति तेज हुई, तो रेखा के ओझ होते हुए आकार को एक-टक देखते भुवन को एक अजीब अनुभूति हुई उसे लगा कि गाडी उस के सामने से दूर नहीं, उसे भेदती हुई चली ज रही है आर-पार, जहाँ से गुज़र रही है वहाँ एक बहुत बड़ा रिक्त छोड़त हुई, उस रिक्त को एक असह्य गड़गड़ाहट और गर्म फुफकारती भाप भरती हुई ..

एकाएक उस ने अपने हाथ की ओर देखा—उस मे एक कागज था ओ—हाँ .."भुवन, हम क्यो आकारो से इतना बँध जाते है कि आत्म मर जाय?"

दूसरे प्लेटफार्म पर दूसरी गाडी है। उस में भुवन का सामान है। वह उस मे सवार होगा, फिर वह भी चल देगी, उसे आरपार भेदती हुई, एक बड़ा रिक्त बना कर उस मे असह्य गड़गड़ाहट और गर्म भाप भरती हुई। और रेखा ..

अन्तराल

रेखा द्वारा भुवन को :

वहाँ फूल थे, सुहानी शारदीया धूप थी, और तुम थे। और मेरा दर्द था। यहाँ गरम, उद्गन्ध, बौखलायी हुई हरियाली है, धूप से देह चुनचुना उठती है : और तुम नहीं हो। और दर्द की बजाय एक सूनापन है जिसे मैं शान्ति मान लेती हूँ...

नदी यहाँ भी है, किनारे बनी हुई पक्की रौस पर दो-तीन सरुओं की ओट में—जो ऐसे बने-ठने रहते हैं कि नकली मालूम हों (और क्या यह समूचा बगीचा ही नकली नहीं है—नकली इटालियन बगीचे की नकल!)—मैं बैठ कर दिन बिता देती हूँ। सामने दक्षिणेश्वर का मन्दिर दीखता है, और घाट, उस पार और मेरी रौस के बीच में गहरी लाल या कभी काली धारीदार सफेद धोतियाँ पहने बगालिनें आती हैं, नहाने, पानी भरने, कभी झगड़ने, उन के दुबले कमजोर शरीर ऐसे लचकते हुए चलते हैं कि जान पड़ता है, उन्हें आधार के बिना चलने का अभ्यास नहीं है, मालंच पर पली हुई लता जैसे उस से गिर कर डोल भी नहीं सकती, वैसे ही—और सोचती हूँ कि सारा कलकत्ता ऐसी मालच-विहीना लताओं से भरा पड़ा है—क्यों ऐसा है कि जो केवल एक सामाजिक स्तर पर हमें स्वाभाविक लगता या लग

के नीचे छोटे-छोटे टुकडे अलग भटक रहे थे और उन को सूर्य का प्रकाश एक नारंगी सुनहला रंग दे रहा था। भटकते हुए मुझ पर वही गहरी उदासी छा गयी और मैं तुम्हारे लिए छटपटा उठी, यों तो तुम्हारी इस उपेक्षा मे सदैव उदास रहती हूँ और छटपटाती रहती हूँ...फिर मन मे विचार उठा, तुम्हारे मौन से मुझे जो इतना कष्ट होता है, मैं जो तुम्हारे इस व्यवहार मे मर्माहत हो रही हूँ उस का कारण यही है कि जो मुझे मिल चुका है उसी को और पाना चाहती हूँ। और यह लालच कितना अनुचित है.. मै क्यों उदास होऊँ ? मान ही लो कि तुम उदासीन हो रहे हो, कि तुम मुझ से दूर चले जाओगे, तो भी विषाद क्यों—अवसाद क्यो ? जो कुछ भी मैं चाह सकती, वह मै ने तुम्हारे साथ मे पाया है—प्यार भी, वासना भी, दोनों का चरम सुन्दर रूप—तब और लालच क्यो ? तुम्हारा मौन मुझे खलता है क्यो कि मैं अधिकाधिक माँगती हूँ और वह सम्भव नहीं है, वह उचित भी नहीं है, अतीत को कोई भविष्य नही बना सकता ..

इस लिए भुवन मैं पिछले पत्रो में कुछ उल्टा-सीधा लिख गयी होऊँ तो मुझे माफ कर देना। तुम्हारे मौन पर क्लेश मुझे हुआ है, होता है, मेरा स्नायु-तन्त्र ऐसा जर्जर हो गया है कि जरा-सी बात से झनझना उठता है और मैं झल्ला उठती हूँ—पर इस समय मैं शान्त हूँ, और मै अपनी आकुलता के लिए क्षमा मांगती हूँ। तुम मुक्त हो भुवन, बिल्कुल मुक्त, मै चाहती हूँ कि सर्वदा सगर्व कहती रह सकूँ कि तुम मुक्त हो मेरे भुवन, मुझे भूल जाने के लिए उतने ही मुक्त जितने मुझे प्यार करने के लिए थे और हो.. तो भुवन, मेरे प्रिय, मेरे क्लेश की परवाह न करो, अगर चिट्ठी लिखने का मन नही है तो मत लिखना, या जब वैसा जानोगे तो मुझे एक पंक्ति लिख कर सूचित कर देना कि तुम्हारी भावनाएँ बदल गयी हैं। मैं सह लूँगी ..

इधर तीन-चार दिन से मैं सोचती रही हूँ कि क्या हमारा भविष्य एक हो सकता है—क्या उस की कोई भी सम्भावना है। क्या हम फिर कभी मिलेगे ?...मैं ने बहुत ठंडे दिल से सोचा है, भुवन; और अब कभी यह

भी सोचती हूँ कि क्या मुझे जैसे-तैसे वापस हेमेन्द्र के पास ही नहीं चला जाना चाहिए अगर वह राजी हो ? मैं भीतर मर गयी हूँ, भुवन, तुम से कट कर फिर मैं कहीं भी वह जा सकती हूँ—किसी भी बुरे से बुरे नर पशु के साथ भी रह सकती हूँ...एक तुम्हीं ने मेरी जड़ित आत्मा को जगाया था—था।—और उस के बाद उस के फिर जड़ हो जाने पर मैं पहले से बदतर मृत्यु मे सहज ही जा सकती हूँ। इसी लिए सोचती हूँ, क्या वही न ठीक होगा : टूटी हुई रीढ वाली इस देह के लिए एक सहारा—एक छत—आत्मा की बात तो अब कौन करे।

यह बात मैं कैसे लिख गयी—मैं—यह नहीं जानती। पर यह आत्मा की जड़ता की ही एक निशानी है, भुवन। आशा करती हूँ कि यह अधिक नहीं रहेगी—यह आहत पत्नी फिर वैसे ही उड़ सके यह तो असम्भव है, पर—वह अभी नहीं, वह कभी नही...

मेरी सब शुभाशंसाएँ तुम्हारे साथ हैं, भुवन !

तुम्हारी

रेखा

रेखा द्वारा भुवन को :

एक जमाना था जब मै स्त्रियो को ऐसे समय का हिसाब रखते देख कर हँसती कि अमुक घटना 'अमुक बेटे या बेटी के जन्म* से तीन मास पहले' हुई थी, या कि 'जब अमुक एक वर्ष का था' या 'जिस साल अमुक की लड़की की शादी हुई'...और आज मै स्वयं हिसाब लगा रही हूँ, तुम से पहली भेंट से दस महीने बाद, तुलियन से आठ महीने बाद, और तुम्हे अन्तिम बार देखा तब से चार महीने.. कैसे मानव अपने सारे जगत् को अपने छोटे-से जीवन का छोटी-छोटी घटनाओ के आस पास जमा लेता है, और विराट् का समूचा सत्य उस निजी छोटे-से सत्य का सापेक्ष्य हो जाता है। लेकिन वह निजी छोटा सत्य छोटा क्यो है ? विराट् असीम को दिखाने वाली मेरी खिडकी—वह लाख छोटी हो, एक तो मेरी है, दूसरे मेरे लिये विराट् को बाँधे हुए है विराट् का चोखटा है...सोचते-सोचते यह ध्यान

आता है, यह झरोखे से देखना गलत है, यह अपने को विराट् से अलग रख कर देखना है, उसे बाहर मान लेना, मुझे चाहिए कि उस मे लय हो जाऊँ . घर से बाहर निकलूँ, अपनी अनुभूति के पिंजरे से बाहर निकलूँ और विराट् के प्रति अपने को सौंप दूँ, उसी की हो जाऊँ—उस को झरोखे से न देख कर स्वय उस का झरोखा हो जाऊँ . पर क्या यह भी निरा शब्द-जाल नही है, घूम-फिर कर अपने तक लौट आना नही है ?

तुम्हे देखे हुए चार महीने—तुम से बिछुडे हुए चार महीने—तुम्हारी ओर से कोई पत्र, सूचना, सकेत पाये हुए चार महीने...विश्वास नहीं होता। लेकिन फिर सोचती हूँ, शायद अवचेतन मन से मै ने इसे स्वीकार ही कर लिया है, तभी तो मैं काल-गणना इस ढंग से करने लगी हूँ। क्यो कि हम केवल निजी के सहारे नही देखते, उस निजी की अपेक्षा मे देखते हैं जो हमारे जीवन में महत्व का था लेकिन जो था, यानी अब नहीं है, यानी जिस का बीत जाना, बीत गया होना हम ने स्वीकार कर लिया है...'जिस साल मेरा व्याह हुआ', इस गणना का कारण एक तो वह सुख है जिसे प्रकारान्तर से याद किया जा रहा है; दूसरा यह है कि वह सुख आज दूर चला गया है क्यो कि अगर आज भी निकट और सजीव होता तो उस की बात हम न कर सकते...

भुवन, तुम्हे एक खबर देनी है, तीन सुनाइयो के बाद अदालत ने फैसला दे दिया है हमारा विवाह रद्द हो गया है, हेमेन्द्र तो अफ्रीका चला ही गया है और अब मैं भी मुक्त हूँ। मुक्त—किस से मुक्त—किस लिए मुक्त ? मुक्त स्मृतियो को सेने के लिए, मरने के लिए—मुक्त अतीत के बन्धन मे जकडी रहने के लिए...तलाक का विधान अच्छा नहीं है यह कौन कह सकता है, पर कितने अपर्याप्त है मानवीय विधान प्रकृति की समस्याओ के सामने—बल्कि मानव की ही समस्याओ के सामने... यो तो शायद यह विच्छेद अभी वैकल्पिक है, पक्का होने के लिए छः मास का अन्तराल होता है न ? पर वह तो कम-से-कम इस मामले मे कोरी फार्मेलिटी है। आज न सही, पाँच-एक महीने बाद सही...रद्द तो वह हो ही गया।

लेकिन क्या रद्द हो गया? वह दर्द? वह ग्लानि, वह आत्मावसाद, वे मर्माघात—क्या वे रद्द हो सकते हैं? कानून मान ले कि उस ने मुक्ति दे दी है, कि एक अन्याय का निराकरण कर दिया है.

अब आगे, भुवन? मेरा यहाँ जी नहीं लगता, और अब कलकत्ते नहीं रहूँगी। सोचा है कि मौसी को साथ ले कर तीर्थ-यात्रा को निकल जाऊँ। तुम शायद हँसो, क्योंकि तीर्थ-यात्रा के लिये जो श्रद्धा चाहिए वह तुम ने मुझ में न देखी होगी, मौसी भी तितीर्षु हो, तीर्थों के भरोसे नहीं हैं। फिर भी, एक तो घूमने में, निरन्तर दृश्य-परिवर्तन में कुछ शान्ति मिलेगी, दूसरे अपनी श्रद्धा न हो तो श्रद्धावानों की श्रद्धा देख कर ही कुछ सान्त्वना मिलती है या मिल सकती है . दो-तीन दिन में ही हम लोग चल देंगे : पुरी से आरम्भ कर के क्रमशः दक्षिण जहाँ तक जाना हो सके। यह फरवरी है, सोचती हूँ कि गर्मियाँ उधर ही कट जायँगी और बरसात लगते इधर लौट आवेंगे।

तुम पत्र तो लिखोगे नहीं, फिर भी कह दूँ कि पता यही काम देगा, यहाँ से चिट्ठियाँ जहाँ भी हम होंगे चली जाया करेंगी।

अच्छा, भुवन, विदा दो। चाहती हूँ, झुक कर एक बार तुम्हारे चरणों की धूल ले लूँ।

सदैव तुम्हारी
रेखा

चन्द्रमाधव द्वारा भुवन को :

माई डियर भुवन,

तुम्हें चिट्ठी लिखे, तुम से चिट्ठी पाये या तुम्हारे बारे में भी कोई चिट्ठी पाये बहुत दिन हो गये। लेकिन जानता हूँ, तुम उन लोगों में से नहीं हो जो सम्पर्क छूट जाने पर खो जाते हैं, या जिन का कुछ अनिष्ट हो जाता है जिस बोतल में कार्क का बड़ा-सा डाट लगा हो, वह पानी के भीतर छिपी रह कर भी डाट के सहारे डूबती-उतराती रहती है, डूब नहीं जाती। उसी तरह तुम्हारी जाति के लोग होते हैं—स्पिरिट के एक लचकीलेपन

का डाट बाहर के बोझ को सँभाले और भीतर के खोखल को छिपाये रहता है और तुम लोग तिर जाते हो, जब कि मुझ जैसे डूब जाते हैं...मैं मानता था कि मैं हल्का सफर करने वालों मे हूँ, बाहर का बोझ मुझ पर नहीं है, पर मैं पुरानी लकडी की तरह उतराता हूँ और पानी धीरे-धीरे मुझ में बस जाता है, लकडी सड़ जाती है और भारी हो कर डूब जाती है।

तुम कहोगे, यह चन्द्र को क्या हुआ कि ऐसा दर्शन बघारने लगा—और वह भी पराजय का दर्शन! न, पराजय का दर्शन वह नहीं है, थोड़ा आत्मावसाद है, ठीक है, पर चन्द्र हारने वाला नही; मैं अब समझ रहा हूँ कि यह दृष्टान्तो के सहारे जीवन को समझना चाहना ही गलत है, ऊपरी साम्य भीतर के वैषम्य को ओझल कर देता है। लकड़ी गीली हो कर डूबती है, ठीक है, पर वह क्या मैं हूँ? न, मेरी समझ मे आ गया कि वह भी एक साँचा है, केवल क्लास-भावनाओ का एक पुंज, मैं नहीं सड़ता, केवल एक भद्रवर्गीय खोल सड गया है—सड़ जाने दो, सड़ कर वह झर जायगा और मुक्त मै बाहर निकल आऊँगा। फिर मै ही उस गली लकड़ी को पैरो से टुकराऊँगा, उसे स्वय अपनी ठोकर से अनल गर्त मे डुबा दूँगा! मुझे उस का मोह नहीं है—मुझे किसी चीज का मोह नहीं है।

अवसाद का कारण रहा। लखनऊ मैं अकेला नहीं रहता रहा। बीवी-बच्चे आये थे, साथ रहते थे। वह अपने जीवन के साथ समझौता करने की मेरी आखिरी कोशिश थी। कामयाबी नही हुई और अब जानता हूँ कि कोशिश ही गलत थी क्यो कि वह जीवन ही मेरा जीवन नहीं है। मै क्यों इस बूर्जुआ ढाँचे के साथ समझौता करना चाहूँ, क्यो उन मान्यताओ से अपना जीवन बाँधने को राजी होऊँ जिन मान्यताओ को पैदा करने वाले समाज को ही मै नहीं मानता? उन सब को मै ने घर भेज दिया है। मैं भी लखनऊ छोड़ कर बम्बई जा रहा हूँ दो-तीन विदेशी एजेंसियो का प्रतिनिधि बन कर। यहाँ से सम्बन्ध तो रहेगा पर ऐसा नियमित नहीं; सम्वाद भेजा करूँगा। बम्बई में जिन्दगी है—तेज बहती हुई आजाद जिन्दगी, वहाँ काम भी कर सकूँगा, और इस मनहूस ढाँचे को तोड़ गिराने मे भी योग

दे सकूँगा—उस नयी दुनिया को बनाने मे, जिस में मुझ जैसे मेहनतकशो का ही राज होगा, दूसरो के राज के निरीह साधन हम न बनेगे...क्या इस बात को तुम समझोगे ? तुम अपने विज्ञान को ले कर ही डूबे हो—लेकिन मैं कहता हूँ, यह विज्ञान ही तुम्हे ले कर डूबेगा। क्यो कि विज्ञान भी वर्ग-स्वार्थों का ग़ुलाम है—तुम सत्य की शोध नही कर रहे, सत्य कुछ है ही नहीं, वह केवल एक वर्ग के उपयोगी ज्ञान का नाम है, दूसरे वर्ग का विज्ञान भी दूसरा होगा क्यो कि उस की उपयोगिताएँ दूसरी होगी। यह तुम ने कभी सोचा है कि तुम्हारा सारा विज्ञान किस काम का है, किस के काम का है, किस के काम आयेगा ?

जाने दो। ये सब बातें केवल तुम्हे थोड़ा प्रावोक करने को लिख गया कि तुम जवाब जल्दी दो। असल मे पत्र तुम्हे खुशखबरी देने को लिख रहा हूँ। अभी मालूम हुआ कि रेखा देवी का डाइवोर्स हो गया है—जज ने फैसला दे दिया है। हेमेन्द्र यहाँ आया हुआ था, वह तो अफ्रीका गया—वह तो अपनी मलय मेम से शादी करेगा ही, पर रेखा जी भी अब आजाद है। औरत के लिए आजादी सिर्फ एक खतरा है, इस लिये—रेखा जी मे तुम्हारी दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए—तुम्हे दोस्ताना सलाह दे रहा हूँ कि अभी उपयुक्त समय है उन की सेवा का। डिग्री पक्की तो छः महीने बाद होगी, पूरी आज़ादी तो तभी होगी, पर तब तक बैठे रहना तो हिमाक़त है। जो मौसम मे फूल चाहता है, वह वक्त पर क्यारी तैयार करता है न। तुम मेरे पुराने दोस्त हो, इस लिए दुस्साहस कर के यह परामर्श तुम्हे दे रहा हूँ और अपने स्वार्थ त्याग की दुहाई नही दूँगा। नही तो मैं ही एक बार—पर जाने दो, आइ नोह्वन आइ'म लिक्ड ! बेस्ट आफ लक टु यू !

तुम्हारा

चन्द्रमाधव

पुनश्चः

बम्बई का पता वहाँ पहुँचते ही लिखूँगा, तब तक दादर के पोस्ट मास्टर की मारफत लिख सकते हो।

चन्द्रमाधव द्वारा रेखा को,

प्रिय रेखा जी,

उस बार आप दिल्ली से अचानक गायब हो गयी, तब से बहुत दिनों तक कोई पता ही नहीं मिला, फिर मालूम हुआ कि आप कश्मीर में हैं और बहुत बीमार रही है, कुछ आपरेशन की भी बात सुनी पर ठीक पता न लगा कि क्या हुआ, कैसी है, पता लगा तो यही कि कलकत्ते चली गयी है जिस से मैं ने मान लिया कि स्वस्थ ही होगी। यह भी पता लगा था कि भुवन भी शुश्रूषा के लिये गये थे, सोचा था कि उन से ही पूरे हालात पूछूं पर फिर उन्हें कष्ट देने का साहस नहीं हुआ। सुना है कि वह आज कल अपनी खोज में ऐसे डूबे है कि किसी को पत्र-वत्र नहीं लिखते; बल्कि शायद आयी हुई डाक भी नहीं पढते—किसी से कोई मतलब उन्हें नहीं है, बस वह है और कास्मिक रश्मियाँ हैं। वैज्ञानिक में अनासक्ति की यही तो खूबी होती है : न जाने कहाँ से वे कास्मिक रश्मियाँ आती हैं, पृथ्वी के वायु मण्डल की परिसीमा से या सूर्य से, या तारा-लोक से या सर्वत्र फैले शून्य में पदार्थ मात्र के बनने-मिटने में—पर वैज्ञानिक का सारा लगाव उन से है, और अपने आसपास की किसी चीज का होश नहीं, उन का भी नहीं जिन्हें वह प्रिय बताना चाहता है ..ठीक कहते हैं लोग, कि वैज्ञानिक प्रेम कर ही नहीं सकता, क्यों कि उस के लिए स्थूल यथार्थ है ही नहीं, सब-कुछ एक एब्स्ट्रैक्शन है, एक उद्‌भावना...और जहाँ एब्स्ट्रैक्शन है, वहाँ प्यार कहाँ? हम लाल को चाह सकते हैं, हरे को चाह सकते हैं, पर लाल पन या हरे पन की भावना को कैसे? प्रकाश को चाह सकते हैं, प्रकाशित होने के गुण को कैसे!

अभी-अभी दिल्ली की एक चिट्ठी से पता लगा कि आप आजाद हो गयी है। कुछ दिन पहले हेमेन्द्र से भेंट हुई थी—वह लखनऊ आये थे—तब ज्ञात हुआ था कि तलाक की कार्रवाई हो रही है, अभी पता चला कि इसी हफ्ते डिग्री हो गयी है और आप मुक्त हैं। रेखा जी, इस काम के इस प्रकार शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाने पर मैं आप को सच्चे दिल से बधाई

देना चाहता हूँ, बधाई ही नहीं, आप अनुमति दें तो अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करना चाहता हूँ। और कोई होता तो आप को यह याद दिला कर गर्व या सन्तोष महसूस करता कि मैं ने पहले में अनुमान कर लिया था कि ठीक यही होगा और इसी प्रकार होगा, पर वैसे आत्म-सन्तोष के भाव मेरे मन में नहीं हैं, मैं केवल आप की उस शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ जो इस समाचार से आप को मिलेगी—उस शान्ति का, और साथ ही मुक्ति की बात सुन कर उभर आने वाली अनेक स्मृतियों के दुःख का भी.. आपने बहुत दुःख पाया है, रेखा जी, पर उस की ग्लानि को अब मन में न आने दें—पुराने दुःखों की भी नहीं, उस नये दुःख और निराशा की भी नहीं जिस से इधर निस्सन्देह आप गुज़री हैं...अधिक कुछ कहना नहीं चाहूँगा—कह कर आप के रिज़र्व को कुरेदना या आप की सम्वेदना को चोट पहुँचाना बिल्कुल नहीं चाहता...

आप स्वस्थ तो हैं? आशा है कि इस लम्बे विश्राम से आप का स्वास्थ्य सुधार गया होगा। कहता कि और दो-एक महीने विश्राम कर लीजिये, पर जानता हूँ कि अनिश्चित अवधि तक निठल्ले बैठ रहना आप के स्वभाव के विरुद्ध है, और आप कहीं बाहर जाना चाहेंगी ही। आप लखनऊ आवें यह सुझाने की धृष्टता तो नहीं कर सकता : मेरी अपात्रता के अलावा लखनऊ की घटनाओं का भी स्मरण कराया जाना आप नापसन्द करेंगी। पर क्या बम्बई का निमन्त्रण दे सकता हूँ? मेरी अपात्रता तो वहाँ भी उतनी ही रहेगी, पर बम्बई बड़ा शहर है, और वहाँ जीवन है, जागृति है, वह प्राणोद्रेक है जो संघर्षों में पड़ने पर होता है—बम्बई निस्सन्देह आप को अच्छा लगेगा और—मुक्त करेगा अवसादों से, अतीत के बन्धनों से, जर्जर मान्यताओं से, और—आप यह कहने की धृष्टता मुझे करने दें तो कहूँ—स्वयं अपने आप से, क्या कि जिसे हम अपना आप कहते हैं वह वास्तव में है क्या? अपने भीतर की घुटन, जिसे हम अपनी पीड़ा के मोह में एक मूल्यवान् तत्त्व समझ लेते हैं। अपना आप कुछ नहीं है, वह घुटना अयथार्थ है, उस के प्रति हमारा मोह एक धोखा है, तो सामाजिक शक्तियों का खेल और खींचातानी और

संघर्ष है, जिस मे हम या तो सहायक हो सक्ते है, या बाधक...आइये, हम सहायक हो, अतीत के बन्धन न मानें बल्कि वर्त्तमान का, नये भविष्य का निर्माण करे..

लेकिन यह तो मै ने बताया नहीं कि बम्बई मै कैसे बुला रहा हूँ। लखनऊ मै छोड़ रहा हूँ। और लखनऊ कहता हूँ, तो मेरा मतलब है वह सारा ढाँचा जिसे मैं मानता रहा। कौशल्या घर चली गयी है, दोनों बच्चो को ले कर—बल्कि कहूँ कि दोनो को और तीसरे की प्रतीक्षा को ले कर, मैं जब उसे वापस घर लाया था तो किसी शर्त या बन्धन के साथ नही, वापस लाने और गिरस्ती चलाने के सब दायित्वो को स्वीकार कर के ही पर वह चली नही, मेरी पूरी कोशिश के बावजूद भी नही। और अब मैं खुश ही हूँ कि वह चली नहीं, क्यो कि वह झूठ थी। गिरस्ती का आइडिया ही असल मे झूठ है, एक काल-विपर्यय है, उस वर्ग-जीवन का प्रतीक है जो वर्ग ही आज मर रहा है। क्यो हम उस के द्वारा स्वीकृत एक परिपाटी को मानते चले, जब कि स्वयं उस में ही हमारी आस्था नही है?

तो मैं बम्बई जा रहा हूँ। अतीत से नाता तोड़ कर जा रहा हूँ और और उस के कोई बन्धन, कोई दायित्व आगे मानने का मेरा इरादा नहीं है। अपने वर्ग को मै छोडता हूँ, उस मे कुछ और माँगूँगा नही और इस लिये आगे उसे कुछ देने को, उस से विवाहने को भी बाध्य नहीं हूँ।

आशा है यह पत्र आप को समय पर मिल जायगा, और आप उत्तर देने का कष्ट गवारा करेंगी। मै बराबर प्रतीक्षा करूँगा। आप को सर्वदा एक मुक्त व्यक्ति के रूप मे ही मै ने देखा है, आप के पत्र मेरे लिये बड़ा सहारा होंगे।

आप का कृपाकाङ्क्षी
चन्द्रमाधव

चन्द्र द्वारा गौरा को .

प्रिय गौरा जी,

इन दिनों में यह पहली बार नहीं है कि आप को पत्र लिखने बैठा

है, और कोई निश्चय कर के डुलमुल करते रहने वाला स्वभाव भी मेरा नहीं है आप जानती हैं, फिर भी पत्र नहीं लिखा गया इस का कारण यही है कि मैं पाता हूँ, मुझ मे और मेरे परिचितो मे एक अजीब व्यवधान आ गया है—एक दूरी जिस का कारण समझ मे नहीं आता लखनऊ से बनारस कुछ भी दूर नहीं है, लेकिन मैं जब यूरोप मे था और आप मद्रास मे, तब अपने को इतना दूर नही महसूस करता था जितना अब, और कभी जब सोचता हूँ कि स्वयं जा कर मिल आया जा सकता है तब सहसा लगता है कि मैं मानो मगल तारे तक हो आने के मनसूबे बाँध रहा होऊँ।

ऐसा क्यो, सोचता हूँ तो कोई कारण नही पाता। बाह्य कारण तो हो ही क्या सकता है—आखिर लखनऊ से बनारस जितना है सो तो हुई है, न अधिक न कम, सब्जेक्टिव ही कारण हो सकता है—पर क्या? आप तो सदा से ही दूर रहती है, मुझे अधिक से अधिक एक अवहेलना-भरी अनुकम्पा ही मिलती है, उस मे कोई परिवर्तन आने का कारण तो हुआ नही। तब क्या मुझी में कोई बड़ा परिवर्तन आया है? शायद यही हो। आप मुस्करायेगी कि चन्द्रमाधव भी इट्रोस्पेक्शन करने चला—हाँ, यह भीतर देखने की बात मुझे हमेशा नकारेपन की दलील लगती रही है—पर यह देखता हूँ कि मेरे ही अनुभव मुझे अलग ले जा रहे हैं। एक तो इधर का जैसा जीवन रहा—आप कल्पना नहीं कर सकतीं, गौरा जी, कि साधारण जीवन की साधारण मर्यादाओ को निबाहने के लिये मैं ने कितना बड़ा तप किया है, कितना क्लेश भोगा है, और अब मै भी रेखा देवी की कही हुई यह बात मानने लगा हूँ कि गहरा क्लेश एक व्यक्ति को और सब मे पृथक् कर देता है दूसरे इस क्लेश ने मुझे यह सिखा दिया है कि हमारी अधिकतर मान्यताए केवल एक ढकोसला है—हमारे जीवन को, हमारे वर्ग-स्वार्थों को, वर्ग से मिलने वाली सुविधाओ को बनाये रखने के लिये रचा गया भारी प्रपच, और यह देख लेने के बाद उसी प्रपच में फसे रहना कैसे सम्भव है? यह दूसरा कारण है जिसने मुझे औरो से अलग कर दिया है—अपने वर्ग से मैं उच्छिन्न हो गया हूँ। और देख रहा हूँ कि वह कितना सड़ा है, अब उसे भस्म कर देने मे ही अपनी शक्ति

लगाऊँगा...इसी लिए कहूँ कि मै वास्तव मे इ ट्रोस्पेक्शन नही कर रहा हूँ—इ ट्रोस्पेक्शन तो आदमी को निकम्मा बनाता है, कर्म-विमुख करता है, कर्म की प्रेरणा नही देता।

लेकिन क्या सचमुच उतना दूर चला गया हूँ? उस दिन दिल्ली में आप से तबला सुना था, वह मानो कल की बात लगती है और उस के बोल अभी तक कानों मे गूँज जाते है—सगीत मे मेरी पहुँच नहीं है लेकिन उस दिन का अनुभव मानो एक लैंडमार्क बन गया है और उस के सहारे मैं कई चीजो से सम्बन्ध जोड लेता हूँ जिन तक पहुँचने का और कोई सूत्र नही रहता...सेंटिमेंटल बाते मुझे कहनी ही नहीं आती, गौरा जी, सच कहता हूँ कि उस दिन की वह भेंट मेरे लिये एक अकथनीय अनुभव था, और कदाचित् वही से मेरे जीवन मे वह परिवर्तन शुरू हुआ जो आज देख रहा हूँ। मै ने कभी कल्पना नही की थी कि आप इस प्रकार मेरी डेस्टिनी बन जायगी—आप! और आपने तो की ही क्या होगी, आपने तो कभी मुझे इस लायक ही न समझा होगा कि मेरी डेस्टिनी भी कुछ हो!

डा० भुवन से भी बहुत दिन से पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। आप से परिचय उन के द्वारा हुआ था, पर अजब बात है कि उन तक पहुँच आप ही के द्वारा हो। आशा है आप उन के पूरे समाचार देंगी। यो मै ने उन्हें पत्र लिखा है, पर आप से जो जान सकूँगा, वह उन से थोडे ही: वह तो पहले भी एक सीपी मे रहते थे, और पिछले कुछ महीनो के अपने अनुभवों के बाद तो बिलकुल ही पहुँच से परे चले गये है। मै समझता हूँ, कोई भी गहरी अनुभूति जब गोपन रहती है, तब धीरे-धीरे गोप्ता को भी ऐसे बाँध लेती है कि फिर वही अज्ञेय हो जाता है, फिर वह चाह कर भी अपने को अभिव्यक्त नही कर पाता, उस का रहस्य एक ऐसी दीवार बन जाती है जो कि स्वय उसी को छिपा लेती है। कभी सोचता हूँ, क्या डा० भुवन फिर कभी हम से, आप से, हमारे आप के साधारण जगत से साधारण सम्पर्क जोड सकेंगे? इधर आप की उन से भेंट हुई क्या?

रेखा जी की खबर जब-तब मिल जाती है। डाइवोर्स उन का हो गया

है। यह जान कर आप को भी निश्चय ही सन्तोष होगा। विवाहित जीवन उन का अत्यन्त यातनामय रहा, फिर जब उन्हे जीवन मे कुछ ऐसा मिला जो मूल्यवान् हो, जो जीवन को अर्थ दे, तो फिर विवाह का बन्धन ही बाधा बना . अब कदाचित् वह जीवन के बिखरे सूत्र फिर समेट सके, उस के अर्थ को फिर पा सके...मै जब भी सोचता हू तो इसी परिणाम पर पहुचता हूँ कि स्त्री-पुरुष का मिलन सब से बडा सुख नही हो सकता क्यो कि उस मे प्रत्येक को साझीदार की, दूसरे की जरूरत है, वह परापेक्षी सुख है, सच्चा सुख निरपेक्ष और स्वतःसम्पूर्ण होना चाहिए। पर युक्ति एक बात है, और व्यवहार दूसरी, और वासना दोनो से ऊपर : हम सभी उस अनुत्तम सुख को ही चाहते है, और पुरुष से अधिक नारी वह चाहती है रेखा जी को मैं असाधारण स्त्री मानता था, पर अब देखता हूँ, उन का असाधारणत्व इसी मे है कि वह साधारणत्व का चरमोत्कर्ष है, साधारण स्त्री की साधारण वासना अपने चरम रूप मे उन मे विद्यमान है। और इसी लिए आज उन की मुक्ति की सूचना से सन्तोष है : प्रार्थना करना चाहता हूँ कि उन्हे उन का वाछित मिले, तृप्ति मिले, शान्ति मिले.

आप की सगीत-साधना कैसी चल रही है ? ससार की जो गति है, उस मे नही दीखता है कि सगीत का भविष्य क्या है, विशेष कर भारतीय संगीत का जो इतनी साधना मॉगता है, इतनी सूक्ष्मता, जिस का उदय भी रहस्य से होता है और जिस की निष्पत्ति भी रहस्य मे है—भविष्य मे संगीत होगा तो जन का, वह प्रकृत, पुरुष, सहज तेजस्वी स्वर सब बारीकियो को अपने निनाद मे डुबा लेगा . फिर भी, आप की साधना का कायल हूँ, और, और नही तो आप की आनन्द-कामना से ही प्रार्थना करता हूँ कि आप को उस की सुविधा और साधन मिले...

मैं लखनऊ छोड़ कर बम्बई जा रहा हूँ। वहा रहूँगा। पत्र वही दें—देगी न ? पता रहेगा . केयर पोस्टमास्टर, दादर, बम्बई।

आप का ही

चन्द्रमाधव

भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को :

चन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। दूसरे दिन तुम्हारा रेखा देवी के नाम लिखा हुआ पत्र भी उन के द्वारा भेजा हुआ मिला, इस उलाहने के साथ कि मैं तुम्हे पत्र क्यो नहीं लिखता ?

उन्होने कहा है, इस लिए यह पत्र लिखे दे रहा हूँ। पर चन्द्र, कैसा रहे अगर आज से हम मान ले कि हम दोनो अजनबी हैं ? क्योकि हम माने न माने, बात यही है, हम दो विभिन्न दुनियाओ मे रहते है जिन में सम्पर्क के कोई साधन नही है। विज्ञान को तुम मानते नहीं, नही तो उस की भाषा में कहता कि हमारे जीवनो के डाइमेंशन अलग-अलग है, और इस लिये वे एक-दूसरे को काट कर भी छू नही सकते।

और जब हम अजनबी ही हैं, चन्द्र, तो मेरे प्रति किसी मिथ्या लायल्टी का बन्धन तुम न मानो, जिस भी चीज पर तुम्हारा लोभ है, उस के लिये निर्बाध हो कर जुगत करो। और मैं तुम से ज्यादा ईमानदारी से कहता हूँ, बेस्ट आफ लक टु यू।

—भुवन

भुवन द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा,

एक बार फिर तुम्हारी ओर से कोंच के बिना पत्र लिख रहा हूँ बल्कि अब कभी सोचता हूँ तो ख्याल आता है क्या यह तुम्हारा न कोंचना ही कों कर एक नया प्रकार नही है ? पर इस लिखने मे न जाने क्यो, पहले-स पुण्य-सुख नहीं है। लिखने की बात मै ने कई बार सोची है, पर न जा क्यो लिखे बिना रह गया हूँ, आज लिखने बैठा हूँ तो अपने को कारण य बता रहा हूँ कि बार-बार वचन-भ्रष्ट होने के लिये कम से कम माफी तो मॉ लेना आवश्यक है—यद्यपि तुम्हे पत्र लिखने के लिये क्यो कारण ढूंढ निकालना जरूरी है, यह नहीं जानता, न पहले कभी ऐसा प्रश्न मन मे उठा था।

मै ने कहा था, दसहरे मे बनारस आऊँगा। कहा था कि शायद, पर तुम्हे शायद कहता हू तो उस मे अपने लिये छूट नही रखता, शायद इसी लिए होता है कि अगर किसी कारण न हो पाये तो तुम्हे निराशा न हो। पर वह नहीं हो सका—रेखा जी की बीमारी के कारण मुझे श्रीनगर जाना पडा और छुट्टियाँ उसी मे बीत गयीं, फिर सोचा था कि अगली छुट्टियो मे चला जाऊँगा, पर अगली छुट्टियाँ भी आ गयीं बडे दिनो की, और मै यहीं बैठा हूँ। अब की बार कोई बहाना नहीं है, पर जैसे वही सब से बडा कारण है, मै यहाँ बैठा हूँ, यही पड़ा रहूँगा, न जाने का कोई बहाना नही है, इस लिये नहीं जाऊँगा, बिना कोई बहाना बनाये मान लूँगा कि मै नही जाता, नहीं जाता, और इस अपराध को ओढ कर बैठा रहूँगा। अपराध करने की कोई चाहना मन मे नही है, पर यो अपराध ओढ कर बैठ जाने मे न जाने क्यो सान्त्वना का बोध होता है।

देखता हूँ कि यह माँफी माँगने का तो ढग नहीं है। पर गौरा, तुम मुझे क्षमा कर ही देना, और मेरे बारे मे कोई चिन्ता न करना। मैं बिल्कुल ठीक हूँ, चिन्ता की कोई बात नही है, केवल चित्त अव्यवस्थित है, और ऐसी दशा मे कहीं किसी के पास नही जाना चाहिए, अपने अस्तित्व का ही पता न देना चाहिए। मै बिलकुल वैसा करता, पर माफी माँगना तो आवश्यक था, इस लिये सम्पूर्ण लोप तो नहीं हुआ, फिर भी वहाँ आ कर तुम्हें क्लेश न दूँगा। कभी आऊँगा, पर कब इस का अब वायदा नहीं करता।

आशा है तुम स्वस्थ और प्रसन्न हो, आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि तुम उन्नति कर रही होगी। कभी लगातार बैठ कर तुम मे सगीत सुन सकता, तो शायद चित्त को सान्त्वना मिलती—या कौन जाने तब भी न मिलती, अभी यह सोच लेता हू और जैसे उस की दूर सम्भावना भी एक सहारा हो जाता है।

पिता जी को मेरा प्रणाम लिखना। आशा है माता-पिता स्वस्थ है। कहाँ है आजकल ?

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा,

जो पत्र लिखने की मै निरन्तर कोशिश करता रहा हू, वह मुझ से लिखा नही जा रहा है। न जाने कितनी बार मै लिखने बैठा हू, कभी एक-आध पन्ना लिख भी सका हू, लेकिन लिख कर फिर उसे फाड दिया है, फिर दुबारा नहीं लिख सका हू...रेखा, क्या कहूं और कैसे कहू ? मै मानता हू कि जो कहना नहीं आता वह इसी लिए नही आता कि वह मन के सामने ही स्पष्ट नहीं है— हो सकता है कि मै स्वय ठीक नही जानता कि क्या कहना चाहता हू— फिर भी भीतर जो घुमड़न है, उस के सामने जैसे कुछ स्पष्ट है, यद्यपि मैं उसे नही जान पाया, और वही मानो मेरे और विचारों और कामो को निर्दिष्ट करती है भले ही वे निर्देश मे नहीं समझता...

रेखा, तुम अब भी वही दिव्य स्वप्न हो, जो दीखने की तीव्रता से ही मूर्त हो आया था और यथार्थ हो गया था, लेकिन जब कभी मे अपने साझे जीवन के अशो को सामने मूर्त करता हूं, तो वे जैसे मिल कर एक रूपाकार नही बनते, मूर्ति के टुकडे-टुकड़े अलग रहते हैं और फिर मेरे हाथों मे ही मिट्टी हो जाते हैं। जीवन का एक चित्र, एक मूर्ति नहीं बनती, यद्यपि प्रत्येक खंड यथार्थ है—और अत्यन्त यथार्थ है वह व्यथा की टीस जो किसी-किसी खंड की कल्पना-मात्र से देह-मन को झनझना जाती है...

मै ने कहा कि 'जब कभी' यह नही कि वैसा कभी-कभी होता है, मैं बराबर ही वैसे खडित स्वप्न देखता रहता हूँ, जागते हुए, काम के बीच मे, क्लास मे पढ़ाते हुए, लैबोरेटरी मे काम करते हुए, राह चलते सड़क के बीच में, बराबर ही ये स्वप्न-चित्र कौध-कर सामने आते रहते है। मानो आँखों के आगे हर वक्त एक काल्पनिक चौखटा बना रहता है, जिस के भीतर को

चित्र बराबर बदलता रहता है। बल्कि अधिक बदलता भी नहीं, क्यो कि बार-बार एक ही दारुण दृश्य सामने आता है, और मै सुनता हूँ तुम्हारी दर्द-भरी आवाज मुझे पुकारती हुई, 'प्राण, जान, जान' अन्तहीन आवृत्ति करती हुई एक कराह, जिसे वर्षा की वह अनवरत पटपटाहट भी नही डुबा पाती जो कि उस स्मृति का एक अभिन्न अग है। मै ने तब तुम्हे कहा था 'हाँ अब भी, अब और भी अधिक' वह गलत नही कहा था और आज भी अनुभव करता हू कि वे क्षण आत्म-दान के—अपने से मुक्त हो कर अर्पित हो जाने के तीव्रतम क्षण थे, पर आज यह भी देखता हू कि ठीक उन्ही क्षणो मे मेरे भीतर कुछ टूट गया। टूट गया, मर गया। क्या, यह नहीं जानता। प्यार तो नही, प्यार कदापि नहीं, उस से सम्बद्ध कोई जादू, कोई आवेश, जिस से आविष्ट हो कर मै प्यार की मर्यादा भूल गया था, जो प्रेय है उसे स्वायत्त करना चाहने लगा था ऐसे जैसे वह स्वायत्त नही हो सकता ..और मानसिक यन्त्रणा के उस चरम क्षण मे यद्यपि प्यार—प्यार, रेखा, करुणा नही—अपने उत्कर्ष पर था, पर उसी क्षण मे जैसे मै ने तुम्हे दोषी भी मान लिया था एक मूल्यवान वस्तु को नष्ट हो जाने देने का। तुम ने लिखा था कि यदि वैसा न हुआ होता और प्रेम ही मर गया होता या मैं ने तुम्हे छोड दिया होता तब क्या होता, और इस प्रश्न का मेरे पास कोई जवाब नहीं है—"ऐसा हुआ होता तो निस्सन्देह वह भी घोर दुर्घटना हुई होती—और जो बार-बार मेरे आस पास होता रहा है, होता है, इसे मैं किस दर्प से असम्भव करार दे दूँ? वह खतरा तो था ही...भविष्य के बारे में कोई दावा करना बेमानी है, फिर उस भविष्य के जिस की अब कोई सम्भावना नहीं रही। लेकिन आज भी मैं कितना भी कठोर हो कर सोचूँ तो मानता हूँ कि उस अजात के कारण जो भी जिम्मेदारी मुझ पर आती उस से मैं भाग नहीं रहा था, भागने का विचार भी मुझ मे नही था, और उसे स्वीकार करने मे मुझे खुशी ही होती.. मैं ने तुम से कहा था कि मै सुखी होता, आज भी मानता हूँ कि सुखी होता। प्यार मर तो सकता ही है— एक अर्थ मे चिरन्तन हो कर भी वह मर सकता है, पर अगर भविष्य

मे कभी ऐसा होता ही, तो वह कम से कम उस शिशु के कारण न होता—उस के कारण हमीं मे होते।

इस सब से ध्वनि होती है कि मै तुम्हे उलाहना दे रहा हूँ—वैसा नही है। वैसी भावना मन मे कभी आयी भी होती, तो मानना होता कि तुम ने अगर भूल की भी तो उस का भरपूर शोध भी किया—नही रेखा, मैं ने जो पहले कहा कि तुम्हे दोषी माना था वह ठीक नही है, दोषी तुम मुझ से अलग या अधिक कैसे हो?—अपने एक अश को नष्ट होने देने के लिये स्वयं अपने को मर जाने दिया, रेखा, उस अश को, जो स्वय भी मूल्यवान् था, और उस से बढ कर जो एक और मूल्यवान् अनुभूति का फल था—इस सब का अनुभव करते हुए मैं तुम्हारे आगे झुक ही सकता हूँ, समवेदना से भर कर तुम्हारे पास खड़ा हो सकता हूँ, दोष नही दे सकता। और जब यह सोचता हूँ कि यह बहुत बड़ा आत्म-बलिदान भी मुझ पर तुम्हारे स्नेह की अभिव्यक्ति थी—तब तो गड जाने को जी चाहता है।

रेखा, एक बात को तुम समझोगी—तुम नहीं समझोगी तो कोई नहीं समझ सकेगा—प्यार मिलाता है, व्यथा भी मिलाती है, साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलाता है, लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलाती नहीं, अलग कर देती हैं, सदा के लिये और अन्तिम रूप से? अनुभूतियाँ गतिशील है, अतीत हो कर भी निरन्तर बदलती रहती हैं और व्यक्तित्व को विकसाती हुई उस में घुलती रहती हैं, लेकिन यह सीमा लाँघ जाने पर जैसे वे गतिशील नही रहती, स्थिर, जड हो जाती हैं, एक न घुल सकने वाला लोंदा, एक वज्र धातु-पिंड। फिर व्यक्ति मानो इन अनुभूतियो को चौखटे में जड़ कर रख लेता है, जीवन एक चलचित्र न रह कर स्थिर चित्रो का संग्रह हो जाता है, और हर नयी सम्भाव्य अनुभूति के आगे व्यक्ति किसी एक चित्र को प्रतिरोधक दीवार की तरह खड़ा कर लेता है। मेरे पास अधिक चित्र नही है, कह लो कि एक ही है, पर वही—हमारे साझे अनुभवो का सम्पुंजन ही, रेखा!—हमारे बीच मे दीवार-सा खड़ा हो जाता है। हम मिलेगे, लेकिन मानो इस

दीवार के आर-पार, हाथ मिलायेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे के भीतर से, एक दूसरे को देखेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे मे जडे हुए—तुम उधर से, मै इधर से...रेखा, मैं अब भी तुम्हे प्यार करता हूँ, उतना ही, पर...

भुवन द्वारा रेखा को :

रेखा,

तुम्हे पत्र लिखने की कई कोशिशे की, पर अभी तक पत्र न लिखा गया, और अब मैं ने मान लिया है कि जो पत्र लिखना चाहता हूँ, वह कभी नहीं लिखा जायगा। इस लिये लिखने की पिछली अधूरी कोशिश ही अन्तिम कोशिश मान कर वह अधूरा पत्र ही तुम्हे भेज रहा हू। और उसे भी फिर पढूँगा नही, नहीं तो शायद भेजूँगा नही। तुम्हारे सब पत्र मुझे मिलते रहे है, प्रत्येक पर अपने को और अधिक कोसता रहा हू कि तुम्हे क्यों इतना क्लेश पहुँचा रहा हू, फिर भी इस से पहले नहीं लिख पाया हूँ, नहीं पाया हू। अब भी पाया ही हू, यह तो नही है, और कदाचित् यह पत्र भेजना भी उतनी ही क्रूरता है जितना पत्र न लिखना—मैं नहीं जानता, रेखा। तुम मुझे क्षमा कर देना यह सोच कर कि मैं इस समय भ्रान्त हूँ।

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

रेखा,

तुम्हारा पत्र पा कर थोड़ी देर विमूढ-सा सोचता रह गया—क्या सचमुच चार महीने हो गये दिल्ली स्टेशन पर तुम्हे ट्रेन मे बिठाये हुए और उस के बाद तुम्हे पत्र लिखे हुए? पर तुम्हारी गणना ठीक है यो अभी दो-एक दिन पहले मैं ने तुम्हे चिट्ठी डाली है—अब तक तुम्हें मिल गयी होगी।

तो विवाह रद्द हो गया या हो जायगा। यह बात अपने को कहता हूँ, तो सहसा कुछ स्पष्ट नही होता है कि क्या हो गया। क्यो कि किसी चीज के

होने मे, और उस होने के हमारे बोध मे, हमेशा ही एक अन्तराल रहता है, यह इतनी बार लक्ष्य करता हूँ कि किसे वास्तव मे होना माना जाय यहाँ सन्देह हो आता है। फिर तलाक तो एक कानूनी कार्रवाई है और कानून हमारे जीवन की जीवित यथार्थता कभी होता है तो तभी जब हम उसे तोड़ते है या तोडने की सजा पाते है, नही तो उस से हमे कोई सरोकार ही नहीं होता। फिर यह भी ध्यान आता है कि यही अगर पहले हुआ होता—समय पर हुआ होता—तो तुम्हारा जीवन कितना भिन्न होता। सहसा हार्डी की बात याद आती है, कि 'जब पुकार होती है तब आगन्तुक नहीं आता,' और एक तीखा आक्रोश मन मे उमड आता है...

फिर भी, यह मान लेना होगा कि इस प्रकार एक अन्यायपूर्ण, असत्य, अयथार्थ परिस्थिति का अन्त हो गया है—जो तुम हो (या नही हो) और जो तुम कानूनन हो, उस का विपर्यय अब मिट गया है। और इस पर सन्तोष होना ही चाहिए।

तुम यात्रा पर निकल रही हो, दक्षिण जा रही हो। अच्छा ही है। शान्ति की बातें कहने वाला मै कौन होता हूँ, पर इस से तुम्हे सान्त्वना तो मिलेगी ही। क्षण-भर के लिये मन मे उठा था, सागर-तट पर तुम्हारे साथ मै भी खड़ा हो सकता—पर नही, उस से व्यथा ही जागेगी शायद, रेखा, उस विशाल एकाकी को, जो न प्रेम करता है न प्रेम पाता है, तुम अकेली ही देखो—तुम्हें अकेले मे ही वह सान्त्वना मिले जो मेरा साथ तुम्हे न दे सका—मै ने चाहा था देना, पर दे सका केवल नयी व्यथा... 'सी' यू शैडो आफ़ आल थिंग्स, माडमॉक अस टु डेथ विद योर शौडोइंग...

कभी सोचता हूँ, इसी तरह मै भी अकेला सागर पर चला जाऊँ— दर्द तभी तक क्लेशकर होता है जब तक हम उस से लडते हैं, जब तक हम अपने अपनेपन को बनाये रखना चाहते है: विशाल के आगे अपने को समर्पित कर देने के बाद सब क्लेश मानो झर जाते है या डँसते भी है तो

उन का डंक निर्विष होता है.. शायद मैं भी जाऊँगा कहीं—और सागर के पास ही जाऊँगा।

गाड ब्लेस यू, रेखा।

तुम्हारा भुवन

गौरा द्वारा भुवन को .

मेरे भुवन दा,

आप चिट्ठी—चाहे यही चिट्ठी—दो-चार दिन पहले लिख देते, तो मैं ही वहाँ न आ जाती? पर अब छुट्टियाँ खत्म हो चुकीं: अब छुट्टी ले कर आ तो सकती हूँ पर उस में कुछ दिन तो लगेंगे और फिर आप के काम के दिनों में मैं आ धमकूँगी तो आप नाराज होंगे—न भी होंगे तो भी मुझे अनुमति तो लेनी चाहिए।

भुवन दा, मैं ने आप को न आने पर या चिट्ठी न लिखने पर कोई उलाहना दिया है कि आप मुझे ऐसी चिट्ठी लिखें? आप बड़े हैं, यही नहीं, मैं यह भी नहीं भूलती कि स्नेह करते हैं, माफी माँगने का कोई प्रश्न नहीं उठता। मैं अबोध हूँ सही, पर मूर्ख नहीं हूँ, यह भी समझती हूँ कि आप कोई बड़ा क्लेश मन ही मन सह रहे हैं, मेरा कोई दावा होता तो आग्रह कर के पूछती, और जान कर कुछ मदद न कर पाती तो कम से कम कुछ बहला तो सकती ही, पर आप बतायेंगे तो स्वयं बतायेंगे, मेरे पूछने से कुछ न होगा यह मुझे मालूम है। इस लिये अगर मैं कहूँ कि मैं आप के किसी भी काम आ सकूँ तो आप इंगित-भर कर दीजिए, तो मेरी बात रामजी की गिलहरी की बात से अधिक कुछ नहीं हो सकती।

भुवन दा, आप के पत्र से मुझे बेहद क्लेश पहुँचता, पर नहीं पहुँचा तो केवल एक बात के कारण—आप ने लिखा है कि 'अपराध ओढ़ कर बैठे रहेंगे, और उस में आप को सान्त्वना मिलती है।' मुझे शायद इस की ओर इशारा नहीं करना चाहिए, चुपचाप वरदान मान कर इसे ले लेना चाहिए—पर इस में जो वात्सल्य बोल रहा है, उस के सहारे शायद मैं आप तक पहुँच सकूँगी, और—गर्व नहीं करती—आप की कुछ सहायता भी कर

विश्वास नहीं होता। लेकिन क्या अब भी हम कम खोये हुए हैं किसी अज्ञात द्वीप पर—कम असहाय हैं? इस से क्या कि आसपास जो जल-राशि है वह स्थिर सागर नहीं है, वह एक ओर-छोर-हीन भीम-प्रवाहिनी महानदी है—द्वीप तो फिर भी द्वीप है, और सब से सम्पर्क छूट जाने पर उत्पन्न होने वाला करुण आत्म-विश्वास, फिर भी करुण।

रेखा, मैं देश छोड़ कर जा रहा हूँ। एक और एक्सपेडीशन डच इंडीज मे जा रहा है, उसी मे जा रहा हूँ। एक वैज्ञानिक अमरीका से जावा पहुँच रहे है—वह भी भारतवासी ही है वैसे—और मैं यहाँ से जावा जाऊँगा। वह तो अप्रैल में पहुँचेगे, पर मै पहले ही जा रहा हूँ कि वहाँ कुछ आरम्भिक प्रबन्ध कर रखूँ। कालेज से अभी एक वर्ष की छुट्टी ले ली है और होली की छुट्टी लगते ही चल दूँगा—सात-आठ दिन तैयारी के लिए काफी है। परीक्षार्थियो की पढ़ाई तो तब तक लगभग पूरी हो ही जाती है इस लिये कालेज के काम मे कोई व्यतिक्रम नहीं होगा।

जहाज कलकत्ते से पकड़ूँगा। पहले सोचा था कोलम्बो जाऊँ—रामेश्वरम् होते हुए जाने का मोह था—पर क्या होगा उस से रेखा ..

तुम्हे क्या कहूँ, रेखा? तुम्हारे जीवन की खोज पूरी हो—उसे सार्थकता मिले...

भुवन

पुनश्च: फागुन की अष्टमी का धूमिल चाँद देख कर न जाने क्यो लारेंस की कविताएँ निकाल लाया, उस मे से एक कविता यह भेज रहा हूँ:
हाइ एंड स्मालर ग्रोज द मून: शी इज स्माल एंड वेरी फार फ्राम मी, विस्टफुल एंड कैंडिड, वाचिंग मी विस्टफुली फ्राम हर डिस्टैंस, एंड आइ सी ट्रेम्बिलग व्हल इन हर पेलर ए टीयर दैट शोर्ली आइ हैव सीन बिफोर, ए टीयर व्हिच आइ हैड होप्ड ईवन हेल हेल्ड नाट अगेन इन स्टार।

गौरा द्वारा भुवन को:

भुवन दा, यह क्या सुनती हूँ—आप जावा जा रहे है—और आप ने मुझे खबर भी नही दी? आज स्टाफ रूम मे ही सहसा सुना—बात आप

की नहीं थी, यही थी कि एक दल जावा जा रहा है कास्मिक रश्मियो की खोज के सिलसिले मे जिस मे दो भारतीय वैज्ञानिक होगे : इस से सहसा कान खडे हुए तो सुना कि एक आप हैं और एक कोई और .. कब जा रहे है भुवन दा ? मुझ से मिले बिना आप नही जा सकेगे—मुझे फौरन पता दीजिए या तो आप बनारस होते हुए जायेगे या मै आऊँगी जहाँ आप कहे। चिट्ठी फौरन लिखिएगा, फौरन।

आप की ही
गौरा

गौरा द्वारा भुवन को :

आप को चिट्ठी भेज चुकी तब आप की यह सूचना मिली है। आप मुझ से मिल कर नही जायेगे, मुझे भी नही आने देगे.. आप की इच्छा, भुवन दा, मैं क्या कहूँ ? आप बनारस के पास से गुज़रते हुए चले जायेगे—बल्कि अब तक तो चले गये होगे और मै न मिल सकूँगी ..फिर भी, मेरे भुवन दा, इसे मैं आप का अतिरिक्त स्नेह ही मानती हूँ कि आप ने मुझे इस विशेष अन्याय के लिये चुना—लेकिन क्यो, भुवन दा, क्यो, क्यो, मेरी कुछ समझ मे नही आता, क्यो आप मुझ से दूर भागे जा रहे है जो आप को अपने पथ का प्रकाश मान कर जी रही है—क्यो ?..

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा,

अभी एक चिट्ठी आप को डाल आयी हूँ। उसे वापस तो नहीं लेती, पर उस मे एक बात कहना आवेश मे भूल गयी थी। आप की यात्रा निर्विघ्न और सफल हो, आप शीघ्र ही स्वदेश लौटे...और इस से आगे अपनी प्रार्थना मे यह भी जोड़ दूँ, भुवन दा, कि आप स्वदेश ही नहीं, मेरे पास लौटे, तो क्या मेरी प्रार्थना आप की किसी इच्छा के प्रतिकूल चली जायगी ? वैसा हो, तो कहूँगी, तो आप ही की इच्छा जयी हो, वही पूर्ण

हो—मेरी प्रार्थना यही हो कि मेरी प्रार्थना भी आप की इच्छा के अनुकूल हो, उस की अनुगता हो।

प्रणत

गौरा

पुनश्च: यह चिट्ठी कलकत्ते भेज रही हूँ कि चलने तक मिल जाय।

रेखा द्वारा भुवन को, कुछ पत्र और कुछ पत्र-खंड :

भुवन,

मेरा प्याला भरने मे यही शायद कसर थी—तुम भी मुझे दोषी ठहराओगे। यही सही, भुवन, यह भी सही। मै टूट चुकी हूँ, मुझ मे न शक्ति बाकी है, न धैर्य, न युयुत्सा, शायद और व्यथा पाने का भी सामर्थ्य अब नही है, तुम जो चाहे कह लो, मुझे कुछ नहीं होगा। और क्यो हो, किस लिये हो—कौन-सी वह आशा है जिस के कारण कोई निराशा, कोई चोट, मुझे खले ? लेकिन भुवन, तुम क्या नही समझते कि मेरे लिये मानवी प्यार की आखिरी अभिव्यक्ति तुम थे—थे नहीं, हो, रहोगे—और इसी लिये मैं मर गयी और अब नहीं जियूँगी ? अगर मै रो सकती, तो रोती—अतीत के लिये नही, अपने लिये नही, उस सब के लिये नहीं जो अब नहीं रहा, रोती इस तुम्हारे अभियोग के लिये—क्यो कि यदि यह अभियोग है तो फिर मुक्ति न मेरे लिये है, न तुम्हारे लिये—मै जो सोचती थी कि जो भी हुआ, मै जो टूट गयी, उस की बडी व्यथा हमारे चरित्र में फलेगी, मेरे से अधिक तुम्हारे मे, वह सब झूठ होगा, वह व्यथा एक अर्थहीन ट्रेजेडी हो जायगी क्यो कि उस मे अभियोग होगा, और उस की अर्थहीनता हम दोनो को ले डूबेगी। मेरा तो कुछ नहीं, मैं तो डूबी ही हूँ—पर तुम, भुवन, तुम ! मेरी सारी आशाओ का केन्द्र तुम हो—मेरे अन्तरतम की सारी व्यथा को इस तरह व्यर्थ न कर दो, भुवन ! व्यथा सृजन करती है, मेरी व्यथा बाँझ रह गयी, मुझे भी झुलसा गयी, पर मै ने मनना चाहा था कि वह तुम्हीं को बनायेगी, और मै अपनी व्यर्थता तुम्हे अर्पित कर के सार्थक हो जाऊँगी। वह सान्त्वना भी मुझे नही मिलेगी..

जाने दो। न मिले। अब और कोई सान्त्वना मुझे नही चाहिए, मुझे मर जाने दो, भुवन।

भुवन,

तुम्हारी अधूरी चिट्ठी का जवाब मै तुरत लिख गयी थी, वह तुम्हे अब तक न मिला हो तो फिर उसे मत पढ़ना—पढ चुके हो तो क्षमा कर देना। तुम्हारी चिट्ठी मैं ने फिर पढी है, कई बार फिर, शायद दोष तुम ने नही दिया—तुम्हारे पत्र मे परिताप ही है जिसे मै ने अभियोग माना। पर नहीं मेरे सहभोक्ता, अभियोग वह नहीं है, मै समझती हूँ, और जो आघात मै ने पाया था उस का घाव भर गया है—अपना आक्रोश मै वापस लेती हूँ और क्षमा माँगती हूँ। तुम्हारी चिट्ठी पा कर जानूँगी कि तुम ने माफ कर दिया—यद्यपि मेरे आग्रह से तुम लिखोगे नही यह जानती हूँ।

तुम्हारी

रेखा

.. आज एक वर्ष होता है जब हम पहले-पहल लखनऊ मे मिले थे—चन्द्रमाधव के यहाँ तुम ने मुझे बाद मे बताया था, तुमने मुझे क्लान्त और अपनी शक्तियो को समेटती हुई देखा था—वह क्लान्ति आज और बढ गयी है और समेटने की शक्ति ही अब मुझ मे नहीं रही। मैं केवल स्मरण करती हूँ, और बिखर जाती हूँ—मुझे याद आती है काफी हाउस की, हमारी पहली ही बहस—और यह भी आज जैसे विधि का संकेत लगता है कि उस बहस मे हम सत्य की वेदनामयता की बात करने लगे थे, और तुम ने एक सन्दर्भ दिया था 'द पेन आफ लविंग यू इज़ आलमोस्ट मोर दैन आइ कैन बेयर'.. उस दिन पहली पंक्ति मे से तुम डीयरेस्ट शब्द छोड़ गये थे, चाहूँ तो मान सकती हूँ कि वह छूट जाना भी विधि का संकेत था, पर नहीं, वह नहीं, इतना जरूर है कि आज मै एक शब्द और छोड़ जाऊँ 'आल्मोस्ट'—क्यो कि सचमुच यह दर्द मेरी सहन-शक्ति से परे है, मै उसे नही सँभाल सकती.. कोई भी नहीं सँभाल सकता शायद प्यार का दर्द, इसी लिये शायद प्यार रहता नही, दर्द रह जाता है—केवल ईश्वर सँभाल सकता है अगर वह है—या कहूँ कि जो

सँभाल सकता है वही ईश्वर है...*'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्'* कितनी सार्थक वन्दना है यह ईश्वर की, वही सह सकता है, वही एक, और कोई नहीं...

भुवन,

तुम्हारी दो चिट्ठियाँ एक साथ मिली है—बहुत भटकती हुई कोई छः सप्ताह बाद तो तुम जावा जा रहे हो—जा क्या रहे हो, अब तक तो पहुँच भी गये होगे। ठीक है भुवन, जाओ, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो।

हाँ, मै हूँ सागर के ही किनारे—कदाचित् तुम भी सागर के किनारे होगे, पर ये किनारे दूसरे-दूसरे हैं—और क्या सागर भी दूसरे-दूसरे हैं भुवन? मै दिन-भर बैठी लहरें देखती हूँ लेकिन उन की दौड़ मानो गति-हीन, प्रेत दौड़ है, उन का टकराना सुनती हूँ पर वह भी मानो शब्द हीन, प्रेत टकराहट है—केवल दौड़ की, टकराहट की अन्तहीनता ही सजीव है, प्रेत नही है।...

एक और वर्ष-गाँठ—आज हम तुलियन पहुँचे थे, और मैं ने गाया था 'लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी', और .इस प्रेत कैलेंडर की वर्ष गाँठ गिनते-गिनते मै भी प्रेतिनी हो गयी शायद—जी चाहता है कि ठठा कर हँसूँ—कैसी जिप्सी बनाया प्रेम ने। पिछले वर्ष आज उत्तर मेरु पर थी, आज दक्षिण मेरु पर हूँ, उस दिन दुनिया की छत पर थी, आज—इस से गहरा और कौन-सा पाताल होगा जिस मे मैं आज हूँ। और आगे सागर हहराता है आदिहीन और अन्तहीन, और सहसा स्वयं अपनी अन्तहीनता एक भयावना स्वप्न बन कर मेरे सामने आ जाती है—भुवन, यह अन्तहीन जिप्सी प्रेतिनी जायगी कहाँ।

तुम ने एक बार मुझे लारेंस की कविता भेजी थी। लो, आज मैं तुम्हें एक का अंश भेजती हूँ। कोई सिर-पैर इस का नहीं है, फिर भी कुछ प्रासंगिकता मानो उस में है।

> *समथिंग इन मी रिमेम्बर्स एंड विल नाट*
> *फार्गेट;*

द स्ट्रीम आफ माइ लाइफ इन द डार्कनेस
डेथवार्ड सेट।

एंड समथिंग इन मी हैज फार्गाटन,
हैज सीज्ड टु केयर,
डिजायर कम्स अप एंड कटेंटमेंट
इज डिबानेयर

आइ हू एम बोर्न एंड केयरफुल
हाउ मच डू आइ केयर ?
हाउ इज इट आइ ग्रिन देन, एंड चक्ल
ओवर डिस्पेयर ?

ग्रीफ, ग्रीफ, आइ सपोज एंड सफीशेंट
ग्रीफ मेक्स अस फ्री
टु बी फेथलेस एंड फेथफुल टुगेदर
एज वी आल हैव टु बी।

प्रिय भुवन,

मौसी अब यात्रा से ऊबने लगी हैं, मै भी ऊब गयी होती अगर पहले अपने से ही न ऊबी हुई होती, और हम लोग लौट रहे है। इस बीच मे दो-तीन सप्ताह बीमार भी रही, उस ने मौसी को और उबा दिया। लौटते हुए हम लोग श्री अरविन्द आश्रम भी और श्री रमण महर्षि के आश्रम भी होते आये। कोई आध्यात्मिक अनुभव मुझे हुआ हो, ऐसा तो नहीं, पर आश्रमो का वातावरण अच्छा लगा—यद्यपि था दोनो मे कितना अन्तर ! रमण महर्षि के दर्शन भी हुए, मौसी ने उन से कई प्रश्न भी पूछे। उन्होने क्या क्या कहा यह न तो याद है न लिखने मे कोई तुक है, पर चलते समय मुझ से जो दो-एक बात उन्होने कही उस से उन की मानवी सवेदना का गहरा प्रभाव मुझ पर पड़ा।

अध्यात्म की ओर मेरी रुचि नही है, भुवन, उधर सान्त्वना खोजने की कोई

प्रेरणा भीतर से नहीं है। पर सोचा है कि लौट कर फिर कुछ काम करूँगी–और अब आर्थिक आजादी की प्रेरणा से नहीं, आत्म-निर्भरता की प्रेरणा से नहीं, एक डिसिप्लिन के रूप में ..दर्द है तो है, अपना जीवन मैंने उसे दे दिया, अब कहाँ तक उसे सँजोये फिरूँगी? इस कथन मे कुछ विद्रोह का-सा स्वर है, विद्रोह मुझ मे नहीं है, सम्पूर्ण नैराश्य ही है; इतना सम्पूर्ण कि अब उस की दुहाई कभी नहीं दूँगी...

तुम अब पत्र लिखोगे, भुवन? तुम्हे गये चार महीने हो चले, तुम ने अभी पहुँच की भी खबर नहीं दी! वैसे अखबार में मैंने पढा था, तुम्हें नौ-सेना और वायु-सेना से भी मदद मिली है—गनबोट मे तुम लोग माप लेने गये थे...भुवन, तुम्हारे समाचार अखबारो से मिला करेंगे, यह नहीं सोचा था। अखबारों मे भी निकलेंगे, यह तो विश्वास था, पर मैं भी उन्हीं पर निर्भर करूँगी, यह नहीं!

गाड ब्लैस यू

तुम्हारी

रेखा

भुवन,

अभी वकील की चिट्ठी आयी है कि तलाक़ की कार्रवाई सम्पूर्ण हो गयी—डिग्री को छः महीने हो गये और अब मैं मुक्त हूँ, सर्वथा मुक्त—और उन्होंने मुझे बधाई दी है। और हेमेन्द्र के वकील की भी इसी आशय की चिट्ठी आयी है। उन्होंने यह भी सूचना दी है कि हेमेन्द्र का विवाह अगले महीने हो रहा है, और मुझे सलाह दी है कि मैं उसे अपनी शुभ-कामनाएँ भेजूँ, कड़ुवाहट बनाये रखने से कोई लाभ नहीं होता। इस सलाह की मुझे आवश्यकता नहीं थी—मुझे हेमेन्द्र से अब कोई शिकायत नहीं है, और उस के विवाह पर मैं बिना मन मे कुछ रखे उस की कल्याण-कामना करूँगी—पर वकील ने अनिवार्य कर्तव्य से आगे जा कर यह सब मुझे लिखा है इस के लिए मैं उस की कृतज्ञ ही हूँ। उन्होंने मेरे लिए भी आशा प्रकट की है कि मै पुराने आघातो को ही न सहलाती रह कर भविष्य का निर्माण करूँगी—उन्हे मेरे भविष्य मे विश्वास है, और उन

का अनुरोध है कि जब भी कुछ महत्वपूर्ण मेरे जीवन मे घटे तो उन्हे सूचित करूँ। इस का क्या उत्तर दूँ, भुवन ? हँस दूँ ? लिख दूँ कि आप का आवेदन देर से आया—महत्वपूर्ण तो सब घट चुका ?

वह सब मैं सोच लूँगी, भुवन ! अभी मेरे मन मे तुम्हारे भविष्य का विश्वास उमड़ आया है, और मैं तुम्हे आशीर्वाद दे रही हू। तुम्हारे पिछले पत्रो मे जो गहरी निराशा थी, उसे मैं नहीं स्वीकारती, तुम उस मे से निकल आओगे। जिस चौखटे की, जिस दीवार की बात तुमने कही है, उस से भी तुम ऊँचे उठोगे। मुझे छूने के लिए नहीं—आई डोंट काउंट—अपनी बाहों मे दुनिया को घेर ने के लिए। निराश मत होओ, भुवन, अपने जीवन को परास्त-भाव से नहीं, स्रष्टा-भाव से ग्रहण करो, एक विशाल पैटर्न है जो तुम्हे बुनना है; तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उस का एक अंग है, प्रत्येक व्यथा एक-एक तार – लाल, सुनहला नीला...मैं—मैं भी उसी ताने-बाने के तारो का एक पुंज हूँ—तुम्हारे जीवन-पट का एक छोटा-सा फूल। मेरे बिना वह पैटर्न पूरा न होता, लेकिन मै उस पैटर्न का अन्त नही हूँ—मैं इस मे सुखी हूँ कि मैंने भी उस मे थोड़ा-सा रंग दिया है—शायद थोडे-थोडे कई रग... सब उज्ज्वल नही हैं, लेकिन कुल मिला कर यह फूल कभी अप्रीतिकर या तुम्हारे पेटर्न मे बेमेल नही होगा यही मनाती हूँ। मेरा आशीर्वाद लो, भुवन, और आगे बढो, जहाँ भी तुम जाओ, जो भी करो, मेरा प्यार और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मेरा विश्वास तुम मे अडिग है।

और मैं ? मेरी चिन्ता मत करो। काल के पास एक अमोघ मरहम है। मैं भी काम कर रही हूँ। दो महीने से स्वयसेविका नर्स का काम मैंने लिया है, साथ काम सीख भी रही हूँ, पूरा नर्सिंग सीखने मे तो अधिक समय लगता पर प्रबन्ध का काम भी मैं करती हूँ, मेरे लिए वह आसान है पर नर्सों मे प्रबन्ध कुशल कम मिलती हैं और इस लिए वह काम मुश्किल समझा जाता है—या उस काम के लिए कार्यकर्ता पाना मुश्किल समझा जाता है। फलतः मेरा काम बराबर बढता जाता है, और सोचने के लिए मुझे कम अवकाश मिलता है ..कुछ सोचती हूँ तो कभी जब बीमार होती

हूँ—और बीमार बीच-बीच मे हो जाती हूँ—मेरी वाइटेलिटी बहुत कम हो गयी है। और भुवन, श्रीनगर मे मै मर कर भी नही मरी, पर तब से अधूरी मृत्यु कई बार हो चुकी है, अब डाक्टर ने कहा है कि एक आपरेशन फिर करना पडेगा नही तो इस तरह घुल कर मर जाऊँगी। मरने मे और नया कुछ होगा यह तो नही लगता, पर घुल कर घिसट कर मरना नहीं चाहती...लेकिन आवृत्ति भी नहीं चाहती—नही, आवृत्ति तो नहीं हो सकती, पर आज कल बडे जोरो की बारिश होती रहती है, यह जरा थम ले तो...वैसे भी बारिश का मौसम अच्छा नही होता। डाक्टर का कहना है, अगले महीने या अक्टूबर मे आपरेशन हो जाय—और अगर दार्जिलिंग जा सकूँ तो और अच्छा, या कहीं पहाड पर। देखे...

भुवन द्वारा गौरा को :

गौरा,

आज छः महीने बाद तुम्हे फिर पत्र लिखने बैठा हूँ। इन छः महीन मे तुम्हारा भी कोई पत्र नही आया है। तुम्हारा पत्र क्यो नही आया, इस का एक कारण तो यही है कि मैने पता नहीं दिया। न देने पर भी तुम पता लगा कर चिट्ठी भेज सकती थी यह मैं जानता हूँ, पर यह भी जानता हूँ कि फिर भी तुम चुप रही तो यह मान कर ही चुप रही होगी कि मैंने वैसा चाहा है—या कि उस मे मेरा हित है। तुम्हारा जो पिछला पत्र मुझे मिला था—कलकत्ते नही, सिंगापुर मिला वह—उस से भी यह स्पष्ट होता है। यह सब जान कर भी, मैं अपने को समझा लेना चाहता हूँ कि तुम मुझे भूल गयी। क्योकि, क्यो कोई मेरे हित को ले कर इतना चिन्तित हो, क्यो कोई मेरे अन्याय, मेरे आघात सहे? यह सब स्नेह, करुणा, वात्सल्य—सब मानो एक बोझ-सा मुझे दबाये डालता है एक नये बोझ-सा, क्यों कि एक तो बोझ पहले ही मेरे कन्धो पर है—मानो एक सजीव बोझ, एक सजीव शाप का बोझ, सिन्दबाद के कन्धो पर सवार सागर के बूढे-सा, जो विवश न मालूम किधर ले जा रहा है। कई महीनो से जानता हूँ कि मेरा जीवन किसी नयी अज्ञात, अकल्पित दिशा मे बहा जा रहा है,

और शायद एक ट्रैजेडी की ओर। ठीक क्या यह नहीं सोच पाता, और न काम में अपने को सोचने का मौका ही देता हूँ। पर कभी-कभी बहुत वृष्टि में काम बन्द हो जाता है, अपने बॉस और लकड़ी के घर में बन्दी हो कर केवल वर्षा की टपाटप सुनता रहता हूँ जैसे आज तीन दिन से सुन रहा हूँ, सब कपड़े, कागज़, खुली हुई कोई भी चीज़ सील जाती है, तब खाली बैठ कर सोचने को बाध्य हो जाता हूँ. तब लगता है, इस सागर-यात्रा के साथ जिस जीवन से निकला, उस में अब लौटना नहीं है, कुछ मेरे भीतर बराबर मरता जा रहा है और कुछ नया उस के स्थान पर भरता जाता है जो स्वयं भी मरा है या जीता है नहीं मालूम यहाँ काम समाप्त होगा तो शायद लौटना ही होगा, पर मानो लौटने का, लौट कर किसी से भी मिलने का मुझे डर है। जैसे मैं स्वय अपना प्रेत हो गया हूँ, और डरता हूँ कि लौट कर जब लोगों से मिलूँगा तो पाऊँगा कि मैं तो अब सच नहीं हूँ, केवल प्रेत हूँ—और वैसा पाना मैं नहीं चाहता, नहीं चाहता!

लेकिन न जाने क्यों तुम से मिलने को, तुम से बात करने को, तुम्हें न जाने क्या कुछ बताने को मन होता है. मुझे लगता है कि मैं खड़े-खड़े बहुमूल्य वस्तुओं को नष्ट होते, मरते देखा किया हूँ, अकेले देखा किया हूँ और इस लिए साथ ही स्वयं भी मरता रहा हूँ, अगर उस अकेलेपन से निकल सकता, जो देखा है वह कह सकता, तो शायद उस मृत्यु से भी उबर सकता...

नहीं, गौरा! ये सब बातें लिखने की नहीं है। मैं अच्छी तरह हूँ, काम रुचिकर है और शायद कुछ उपयोगी भी। कास्मिक रश्मियों के साथ-साथ रेडियो का भी काम हम लोग कर रहे है। वैसे यहाँ अशान्ति है और बढ़ रही है, पर हमारा काम ऐसा है कि हमें सब कुछ से अलग ले जाता है। तुम क्या कर रही हो? आशा है कि अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बना सकी हो, और अपने काम में तृप्ति पा रही हो—काम से अभिप्राय सिर्फ सिखाने का नहीं है, उस की बात कह रहा हूँ जिसे तुम अपना

काम जानती हो, जिस मे तुम्हारी अभिव्यक्ति है। लिखना जरूर। माता-पिता का भी हाल लिखना।

तुम्हारा

भुवन

गौरा,

नहीं, मेरा मन यहाँ से उचट चला—चला नही, एकदम असह्य रूप से उच्चाट हो गया...जगह बहुत सुन्दर है, लोग बड़े हँस-मुख, स्त्रियाँ रूपवती—उन के खुले कन्धो और बाहो मे ऐसी एक कान्ति है कि कही नहीं जाती, जैसे अखरोट की लकडी की पुरानी और पालिशदार मूर्ति पर कोई पारदर्शी ओप चढा हो—पर नही, लकड़ी कैसे उस जीवित त्वचा की बराबरी कर सकती है? नृत्य भी मैने देखे है, मन्दिरो मे चर्मवाद्यो का सगीत भी—पर नही, नहीं, नही। सहसा भीतर कुछ उभर आया है कि नही, यह तुम्हारा स्थान नही है, यहाँ के तुम नहीं हो, चलो। और यह निरी 'होम सिकनेस' नही है—यहाँ का न होने मे देश की भावना बिल्कुल नहीं है, सारी परिस्थिति से असन्तोष है। मै जैसे किसी सुदूर पोत-भग का एक टूटा, बह कर आया हुआ विपन्न तख्ता हूँ—फ्लाटसम—लहरो के थपेड़े खाता लुढ़कता-पुढकता कही लगा हूँ और जाता हूँ कि नहीं, वह ठिकाना नही है, और वह पोत तो अब हुई नही जिस का मै अश हूँ—था। अपने को ऐसे बहते देखा जा सकता है एक प्रकार की तटस्थता से, और निरन्तर देखते रहने से एक मोहावस्था भी हो जाती है, पर सहसा वह टूटती है तो...

तुम सोचोगी कि इस उच्चाटन की सूचना देने का क्या अर्थ हुआ अगर साथ यह नहीं कह रहा हूँ कि मै वापस आ रहा हूँ। पर नहीं। वापस तो नही आ रहा। और 'वापस' शब्द ही समझ मे नहीं आता—वापस कोई कभी गया है? फिर भी मन हुआ कि इस मन:स्थिति की सूचना तुम्हे देनी

चाहिए, वह दे दी...अगर इसे तुम उद्भ्रान्ति समझो, तो ठीक है, उद्-भ्रान्त तो मैं हूँ...

तुम्हारा स्नेही

भुवन

मेरी प्रिय गौरा,

इस स्थान के तीन ओर पानी है—समुद्र तो नही, पर समुद्र से लगी हुई खारी झील का—मै चार महाकाय सागौन वृक्षो और छः-सात ताल-वृक्षो की ओट मे से उसे देखता हूँ, और यह ओट उसे और भी विस्तार दे देती है। पीछे एक छोटी हरी पहाडी है। पेडो की आड में पानी के दूसरी पार की नीची पहाड़ियो की शृंखला है, और सागौन के बडे-बडे पत्तो के गवाक्ष में से दीख जाती हैं थिरकती हुई पालदार नौकाएँ। और मैं 'होम-सिक—हूँ मान लेता हूँ कि होम-सिक हूँ—यद्यपि यह मेरे लिए एक शब्द ही है, मैं तो निर्गृह ही हूँ और यह केवल ऊब का दूसरा नाम है। पर नहीं, सच कहूँ तो तुम्हारी स्मृति से भर गया हूँ। मेरा शरीर आज ठीक नहीं है, मै दोपहर से ही आराम-कुर्सी पर बैठा हूँ, अब रात हो गयी है, इन छः-सात घण्टो मे मैंने कुछ नही किया है सिवा तुम्हारी बात सोचने के, एक-टक तुम्हे देखते रहने के। तुम्हारी पलको की एक-एक झपक देखता रहा हूँ, और वेणी को किरीटाकार पहने हुए तुम्हारे सिर के—क्योंकि जिसे देखता रहा हूँ, वह आज की संगीत-शिक्षिका नही, कई बरस पहले की विद्यार्थिनी है।—एक-एक उड़ते ढीठ बाल को मेरी आशीर्वाद-भरी दृष्टि ने गिन डाला है। तुमने नहीं जाना—मेरा यह अवलोकन बिल्कुल नीरव, निराग्रह, निःसम्पर्क है—मैं दूर, बहुत दूर वन की साँस हूँ, स्पर्शातीत...

पश्चिम धीरे-धीरे रंजित हुआ, फिर लाल फिर और लाल, फिर उस लाली मे उदासी आने लगी...मैने कहा, गौरा, एक दिन तुम्हे मै अपनी कहानी सुनाऊँगा, लाल और उदास.. फिर धीरे-धीरे अँधेरा हो चला, आकार ओझल होने लगे और एक हल्की-सी हवा झील की ओर से बह निकली। मैंने कहा, नहीं गौरा, कुछ नही सुनाऊँगा, सुनाने को है ही क्या, चुपचाप सिर

झुका लूँगा और प्रतीक्षा करूँगा कि तुम्हारे क्षमा-भरे, करुणा-भरे हाथ मेरे माथे को छू दें...क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हवा के झोंके से तरंगायित यह झील एकाएक सूख जाय, लुप्त हो जाय, कि उसे निरन्तर भागते हुए वाष्पयानों के धक्के न सहने पड़े, समुद्र में मिल कर खारा न होना पड़े, खारे-पन में अपने को खो देते हुए भी समुद्र के बेदर्द थपेड़े न खाने पड़े—इस दुर्गति को आत्म-समर्पण न करना पड़े ! फिर ध्यान आया, ये सब रूपक व्यर्थ हैं, यह सब सुनने-समझने की फुरसत किसे है.. कोई भविष्य नहीं है, कोई अतीत नहीं है, अतीत से अपने को उच्छिन्न कर लिया है इस लिए और भी कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि भविष्य होता क्या है ? अतीत का स्फुरण ...केवल वर्तमान जीता है और उस वर्तमान को चाहे समझ लो—तीन ओर पानी, सामने सागौन के पेड़, दूर पहाड़ियाँ, तिरती पालदार नावें, सान्ध्य आकाश, अर्थात् सौन्दर्य और शान्ति—बाह्य वर्तमान, चाहे समझ लो एकाकीपन, ऊब, सूना, उच्चाटन, उत्कंठा, अर्थात् आन्तरिक वर्तमान; दोनों एक ही है, एक ही वर्तमान, आगे अपनी-अपनी पसन्द है...

सवेरे । रात में दो-तीन बजे वर्षा शुरु हो गयी बड़े जोरों से; अब कुछ ठंड है । मेरा शरीर भी कुछ ठीक है । कल से शायद काम करने लायक हो जाऊँ, आज अभी और आलस करने का जी है । पत्र भी लिखता रह सकता हूँ—पर सोचता हूँ, इसे इतना ही छोड़ दूँ । और लिखा तो अलग भेज दूँगा ।

तुम्हारा

भुवन

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा, मेरे भुवन दा ! आज मेरी साधना फली है, और जी होता है, आप की चिट्ठी सामने रख कर गा उठूँ, कोई वाद्य ले कर—सितार, नहीं वीणा ले कर बजाने बैठूँ मोहन रागिनी, और बरसों बजाती रहूँ, जब तक कि हाथ सन्न न हो जायें—हाथ ही, मेरा उत्साह नहीं, मेरे प्राणों की वह

हँसी नहीं जो किसी तरह आप तक पहुँच कर आप के पैरों से लिपट जाना चाहती है।

लेकिन फिर दुबारा आप की चिट्ठी पढ़ती हूँ, और मेरी मोहन रागिनी सहसा धीमी पड़ कर नीलाम्बरी में बदल जाती है। भुवन दा, यह सब क्या है, आप क्या सोचते हैं, क्या वह कष्ट है जो आप इस तरह छिपाये बैठे हैं? छिपाए भी नहीं, कष्ट है यह तो दीखता ही है, और कष्ट के कारण आप इतना अन्याय भी कर जाते हैं कि अगर कष्ट दीखता न होता तो आप का पत्र पाने वाला मर्माहत हो कर बैठ जाता—क्या है यह कष्ट कि आप उस से ऐसे हो गये? मैं बार-बार पत्र पढ़ती हूँ, और सोचती रह जाती हूँ कि क्या यह भुवन दा का ही पत्र है, मेरे भुवन दा का...आप मुझे लिखिए—बताइये कि क्या बात है—क्या मैं किसी काम नहीं आ सकती? एक बार आप ने कहा था, 'गौरा, अब से तुम से बराबर-बराबर बात करूँगा', बराबर तो मैं कभी नहीं हो सकती पर अगर आप बिलकुल छोटी ही नहीं मानते तो क्या मुझे अपना पूरा विश्वास देंगे?

ऐसी बुरी-बुरी बातें मत सोचिए, भुवन दा। मैं तो कहती हूँ, आप आइये, आ कर आप पाएँगे कि आप का डर बिलकुल निर्मूल है। यह नहीं कि आप सच नहीं हैं, जैसा आप ने लिखा है, बल्कि आप ही सच हैं—क्यों कि आप दूसरों को भी जीवन देते हैं। सच भुवन दा, आप कब तक जावा में बैठे रहेंगे? अब आ जाइये न।

पिताजी मसूरी ही हैं, माँ भी। अब वहीं रहेंगे—वहाँ अपना मकान ले लिया है। अब की बार मैं जाऊँगी तो उस को ठीक-ठाक सजा दूँगी। और आप अब जब आवेंगे तो आप को पहले सीधे वहीं आना होगा—मैं हुई तो भी, और न हुई तो भी क्यों कि तब खबर मिलते ही आ जाऊँगी—फिर चाहे जहाँ आप जावें। पिताजी आप को बहुत याद करते हैं। आप जो ऐसे चुपके से चले गये, उस का उन्हें खेद भी है—यद्यपि कभी कहेंगे नहीं।

मैं बहुत परिश्रम कर रही हूँ, सोचती हूँ, अगले साल फिर दक्षिण चली

जाऊँ, कम-से-कम एक वर्ष के लिए और हो सका तो दो के, पर अभी कुछ स्पष्ट नहीं सोच पायी हूँ। आप का परामर्श चाहती—पर आप आवेंगे तभी पूछूँगी। कब आवेंगे आप? मैं दिन गिनती रहूँगी।

आप की ही
गौरा

भुवन दा,

बस अब आप आ जाइये वापस—मै पापा को लिख रही हूँ कि आप आ कर मसूरी रहेंगे, और एक कमरा आप के लिए तैयार कर दिया जाय—वह आप के लिए तैयार ही रहेगा, आप जब भी आवें! वह आप ही का कमरा रहेगा, भूलिएगा नहीं।

गौरा

भुवन दा,

आप फिर चुप लगा जायेंगे? जब से आप को जाना, तब से कभी नहीं सोचा कि ऐसा होगा—यों आप चिट्ठी नहीं लिखते थे पर वह इस लिए नहीं होता था कि आप कुछ नहीं बताना चाहते, वह इसी लिए होता था कि बताने की जरूरत नहीं, मुझे मालूम है। पर अब? आहत हो कर मैंने सीख लिया कि नहीं, ऐसा भी हो सकता है कि आप मुझे बहुत सी बातों से दूर रखना चाहें—और सीख कर फिर मैंने उसे भी स्वीकार कर लिया; आप ही ने दूर हटा दिया तो मैं कौन-सा मुँह ले कर पास आने या बुलाये जाने का आग्रह करूँ? अब फिर—आप ने मुझे माफ़ कर दिया है, मूर्छा से जगा दिया है—अब फिर आप दूर ठेल कर डूब दे जायेंगे? जैसे कोई दुःस्वप्न देख कर जब जागता है तो आँख खोलते डरता है—कि न जाने क्या दीख जाय, न जाने कहीं सपने के भयावने आकार सचमुच न सामने आ जाएँ यद्यपि आँख खोलने में ही उन से निस्तार है—स्वप्न की मोहावस्था से छुटकारा है—वैसी ही मैं हो रही हूँ; दुःस्वप्न से डर गयी हूँ, पर प्रकाश में आँख खोलते डर रही हूँ; धीरे-धीरे आँख खोल रही हूँ, कि प्रकाश की अभ्यस्त हो जाऊँ, फिर चारों ओर नजर डालूँ—भुवन दा, मुझे

फिर डरा न दीजिएगा, प्रकाश मे मै फिर वे भयावने आकार न देखूँ...मै तो यह भी कर सकती हूँ कि अब आँखें मीचे ही पड़ी रहूँ, जब तक आप ही आ कर न जगाएँ और कहे कि उठो, कहीं कोई डर नहीं है, देखो मैं हूँ ..आप कहेंगे कि यह वयस्क दृष्टि नहीं है, बच्चो की-सी बात है—कह लीजिए, आप के सामने बच्चा बनते भी मुझे डर नही है। आप ने कन्धों चढाया था, सिर चढ़ाया था, मैं उसी की आदी हो गयी हूँ। आप पटक दीजिए पटक दीजिए, तब बिना रोये चल भी लूँगी, तब तक अपने आप तो अपनी जगह से हटती नही।

आप कहेगे इतरा रही है—रही हूँ न? नही भुवन दा, आप कहेगे तो तुरत हट जाऊँगी, नही भी कहेगे, तो जभी जानूँगी कि आप वैसा चाहते हैं, चाह सकते है, या उस मे आप का ही हित या सुख या शान्ति है, तो भी हट जाऊँगी।

आप बिलकुल स्वस्थ है न? मुझे शीघ्र पता दीजिए।

आप की
गौरा

भुवन दा, आप बड़े अच्छे हैं। पिता जी का पत्र आया है कि आप की चिट्ठी उन्हे मिली है, चलिए आप ने मुझे न लिख कर उन्हे तो लिखा, अच्छा ही किया। पर उन्होने यह भी लिखा है कि आप फिर और कहीं दूर जाने की सोच रहे है—यह क्या मामला है? क्या इसी लिए मुझे पत्र नही लिखा—कि मै दुःखी हूँगी? पर भुवन दा, मेरे लिए कितनी भी दुःखद खबर क्यो न हो, आप सीधे मुझे लिखिए। खबर कैसी भी हो, उस से मुझे जितना क्लेश होगा। उस से ज्यादा इस बात से कि वह मुझे सीधे आप से नही मिली, औरों के जरिये मिली. मैने तो सोचा था—पर जाने दीजिए जो सोचा था।

आज तक किस का हुआ सच स्वप्न जिस ने स्वप्न देखा?
कल्पना के मृदुल कर से मिटी किस की भाग्य-रेखा?

भुवन दा, मुझे आशीर्वाद दीजिए, बल दीजिए कि आप दूर हो चाहे

पास, आप के स्नेह से मँज कर शुद्ध हो कर मैं चमकती रहूँ, असफलता और निराशा मुझे कड़ुआ न बना सकें...

आप की ही

गौरा

रेखा द्वारा भुवन को :

भुवन,

यह पत्र तुम्हें अस्पताल से लिख रही हूँ—नहीं, तुम घबराना नहीं, यह नर्सिंग होम है, और मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। और शुश्रूषा पा रही हूँ। मौसी भी साथ है, और कलकत्ते से डाक्टर भी साथ आये थे वह भी यहीं है। बीच में चले गये थे, अब मुझे लिवाने फिर आये हैं—दीवाली के दिन मैं कलकत्ते पहुँच जाऊँगी और दीवाली घर पर ही होगी। तुम उस समय कहाँ होगे? दिये जलाओगे? और नहीं तो एक आकाश-दीप जला देना—मैं प्रेतात्मा तो नहीं हूँ—या कि हूँ, भुवन?—पर मेरी शुभाशंसा तुम्हारे चारों ओर मँडरायेगी और तुम पथ दिखा दोगे तो तुम्हें छू जायगी...

हेमरेज फिर हुआ था—बहुत—उस का तात्कालिक उपचार कर के डाक्टर रमेशचन्द्र मुझे यहाँ ले आये थे। कुछ ग्रंथि थी भीतर। यहाँ आपरेशन हो गया, अधिक कष्ट नहीं हुआ और तब से मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। दार्जिलिंग का जलवायु और यह शरद् ऋतु की धूप—एक अलस, ताप-स्निग्ध तन्द्रा देह पर छायी रहती है, पर उस अलसानेपन में भी शरीर का पुनर्निर्माण हो रहा है, और बहुत दिनों के बाद उसे स्वस्थता का बोध हो रहा है—जैसे अब जब वह हिले-डुलेगा, कर्म-रत होगा, तो कर्तव्य भावना के कारण नहीं, शून्यता के भय के कारण नहीं, कुछ करने की माँग के कारण, स्फूर्ति के कारण, प्रवृत्ति के कारण...कैसी अद्भुत लगती है यह भूल गयी-सी भावना! और इस का श्रेय बहुत-कुछ डाक्टर रमेशचन्द्र को है। आपरेशन उन्होंने नहीं किया—मैंने ही उन्हें नहीं करने दिया—पर शुश्रूषा-चिकित्सा सब उन की रही; चिकित्सा में भी बढ़ कर उन्होंने एक गहरी संवेदना मुझे दी जिस में मेरी गाँठ बँधी हुई कचोट मानों द्रव हो कर धीरे-धीरे बह गयी..

वह भी तुम्हारी तरह धुनी और कार्य-व्यस्त जीव हैं, तुम्हारी तरह कम बोलते है, पर जिस से भी मिलते है, उस पर उन का गहरा असर होता है—थकी, झुकी, अवसन्न चेतना को जैसे उन की सवेदना तुरत सहारा दे कर सीधा कर देती है। *"राइज अप एंड वाक"*, और *"वेरिली ही थ्रू अवे हिज क्रचेज एंड वाक्ड, एंड द पीपल मार्वेल्ड"*...तुम न मालूम स्वदेश कब लौटोगे, नही तो तुम से कहती, उन से मिलना—तुम्हे उन से मिल कर खुशी होती मुझे पूरा विश्वास है।

तुम कैसे हो भुवन ? तुम ने पिछले पत्र मे मुझे लारेंस की जो कविता भेजी थी, उसी से अनुमान लगाऊँ तुम्हारी मनस्थिति का, तो वह स्वीकार नही होता—नही, भुवन, दर्द को, परिताप को जी से चिपटा कर मत बैठो—देखो, यह तुम से मै कहती हूँ, मै। एक निग्रो कविता है :

आइ रिटर्न द बिटरनेस
ह्विच यू गेव टु मी;
ह्वेन आइ वांटेड लवलिनेस
टैंटेलैट एंड फ्री।
आइ रिटर्न द बिटरनेस
इट इज वाश्ड बाइ टीअर्स
नाउ इट इज लवलिनेस
गार्निश्ड थ्रू द यीअर्स।
आइ रिटर्न इट विद लवलिनेस
हैविंग मेड इट सो :
फार आइ वोर द बिटरनेस
फ्राम इट लाग एगो।

इस के पहले पद को उलहना न समझना, सार की बात अन्तिम पद मे है : हम अपने भीतर पका कर व्यथा को सौन्दर्य बनाते हैं—यही सृष्टि का रहस्य है, बल्कि यह तुम ने मुझे बताया था। पकाने मे समय बीत जाता है, हम बूढे भी हो जा सकते हैं, परास्त भी हो सकते है, हमारी आकाक्षाएँ

अधूरी भी रह जा सकती हैं—पर उस सब का कोई महत्व नहीं है, बूढ़े होने का नहीं, हारने का नही—महत्व है उस आन्तरिक शान्ति का जो पकने मे मिलती है, उस तन्मयता का.. मैं तो यही अनुभव करती हूँ, तुम मालूम नही ऐसा करते हो कि नहीं, पर उस गम्भीर शान्ति का बीज मुझ मे तुम्हीं ने बोया था, और उस की जड़े निरन्तर गहरी होती जा रही हैं। मै शान्त हूँ, जो भावनाएँ मुझे तोड़ती-मरोडती, चिथड़े कर के रख देती थीं, अब मुझे छूती भी नही। और यह नही कि मैं हृदय-हीन हो गयी हूँ, सवेदना-शून्य हो गयी हूँ—नही, मै अधिक सवेदनशील भी हूँ, पर अधिक अनासक्त भी...

लेकिन मै बहुत बक रही हूँ—अपने बारे मे बहुत बाते कर रही हूँ! भुवन, एक बार जड़ता की सीमा को छू आ कर ही जीवन वास्तव मे शुरू होता है, मुझे लगता है कि तुम भी उस अवस्था मे से गुजर रहे हो.. एक बार अपने को मर जाने दो—अपनी ही राख में से फिर तुम उदित होगे—परिशुद्ध हो कर, कान्तिवान् ..

यह सब तुम्हे दम्भोक्ति या प्रलाप लगे तो ध्यान कर लेना कि मैं नर्सिंग होम की आराम कुर्सी से लिख रही हूँ—ए जैबरिंग ओल्ड सिक हैग!

मेरा हार्दिक स्नेह लो।

तुम्हारी

रेखा

भुवन,

तुम्हारी चिट्ठी मिली है। मै कृतज्ञ हूँ। शायद सात महीने बाद तुम्हारी यह चिट्ठी है, लेकिन इसे पढ़ कर मुझे लगा कि हम दोनों की मानसिक प्रगति लगभग समान्तर होती रही है। फिर मैने तुम्हारे पिछले दो-चार पत्र भी निकाल कर पढ़े, और उस से यह भावना और भी पुष्ट हो गयी। समान सोचते है तो दूर नहीं है; इतना ही नहीं, मुझ मे जो परिवर्तन—ठीक परिवर्तन वह नहीं है, विकास, प्रस्फुटन, भीतरी और घटना-जन्य सम्भा-

वनाओं का स्फुरण—हो रहा है उसे लक्ष्य कर के तुम्हारे बारे मे आश्वस्त भी हो सकती हूँ.. मैने एक बार प्रतिज्ञा करनी चाही थी कि अपने कारण तुम्हारा कोई अहित नही होने दूँगी, फिर सहसा इस डर से रुक गयी थी कि क्या जाने, चाह कर भी इसे निभा पाऊँगी कि नही, इस लिए यही शपथ ली थी कि जहाँ तक हो सकेगा नहीं होने दूँगी ..अब जानती हूँ कि वह प्रतिज्ञा शायद टूटी नहीं—अहित बिल्कुल नहीं हुआ यह तो नहीं कह सकती, पर जहाँ तक सकी—नहीं, जितना हुआ, उसे घातक होने से शायद बचा सकी हूँ, और मेरी आशाएँ तुम मे जी सकेंगी, सुफल हो सकेंगी...

तुम भटक रहे हो, भटकोगे, और भटकना चाहते हो, यायावर हो जाना चाहते हो। चाहते हो तो क्यो नही हो जाते, भुवन? मै तो स्त्री हूँ, और मेरा स्वास्थ्य भी चौपट ही है, लेकिन मैने भी कई बार चाहा है यायावर हो कर बन्धन-हीन विचरना। पर जहाँ, जैसे, जैसी हूँ, मै जान गयी हूँ कि वह नहीं है मेरे लिए, कि कभी न-कभी—और शायद जल्दी ही—मुझे कहीं टिक जाना होगा, स्थिर हो जाना होगा, मान लेना होगा कि पड़ाव आ गया—इस लिए नहीं कि मेरी आकांक्षा की दौड़ वहीं तक थी, इस लिए कि मेरी सकत की दौड़ आगे नही है . पर तुम, तुम घूमो, महाराज, मुक्त विचरण करो, प्यार दो और पाओ, सौन्दर्य का सर्जन करो, सुखी होओ, तुम्हारा कल्याण हो ..

मै बिल्कुल ठीक हूँ, काम मैने फिर आरम्भ कर दिया है। डा० रमेशचन्द्र के आग्रह और प्रयत्न से मै अस्पताल से हट कर केवल व्यवस्था के काम मे लग गयी हूँ : उन का आग्रह था कि मै रोग और रोगियो के वातावरण मे न रहूँ। और मै अब अनुभव कर रही हूँ कि ठीक ही था—उस का मेरे मन पर निरन्तर बोझ रहता था, और इस व्यवस्था के काम मे बढते हुए उत्तरदायित्व से कुछ प्रेरणा भी मिलती है, कुछ सान्त्वना भी।

उधर युद्ध के बादल घिर रहे हैं। तुम कब तक उधर रहोगे, भुवन? अब तो फिर जाड़े आने लगे! कभी पढ़ा था, जाड़े आते है तो वसन्त भी

दूर नहीं है—पर अब मालूम होता है कि यह बात भी किसी 'इनफीरियर फिलासफर' की कही हुई है, जिस से बचना चाहिए।

तुम्हारी
रेखा

भुवन द्वारा गौरा को :

गौरा,

खबर तुम ने सुनी ? जरूर सुनी होगी। बड़े धड़ल्ले के साथ जापान युद्ध में कूद आया। और एक ही चोट में उस ने अमरीका को कितना बड़ा आघात पहुँचाया है। देश में बहुत होंगे जो इस पर खुश हो रहे होंगे—चालीस-एक बरस पहले जब जापान ने रूस को हरा दिया था और यूरोप चकित हो कर देखता रह गया था कि एक छोटे-से एशियाई द्वीप राज्य ने एक यूरोपीय साम्राज्य-शक्ति को पछाड़ दिया, तब जो एशियाई गर्व जागा था, उसे आज नया प्रोत्साहन मिलेगा। पर उस में और इस में जो अन्तर है, उस की उपेक्षा लोग कर जायेंगे : तब गर्व करना उचित था, क्योंकि एक दबी हुई जाति ने सिर उठाया था और उस में दूसरी उत्पीड़ित जातियों के लिए आशा का संकेत था; पर अब ? अब जापान भी एक उत्पीडक शक्ति है, साम्राज्य भी और साम्राज्यवादी भी—और आज उस को बढ़ावा देना एक नयी दासता का अभिनन्दन इस आधार पर करना है कि वह दासता यूरोपीय की नहीं, एशियायी प्रभु की होगी। कितना घातक हो सकता है यह तर्क। परदेशी गुलामी से स्वदेशी अत्याचार अच्छा है, यह एक बात है, यह मानी जा सकती है; पर क्या एशियाई नाम जापान को यूरोप की अपेक्षा भारत के अधिक निकट ले आता है, जापानी को यूरोपीय की अपेक्षा अधिक अपना बना देता है ? जाति की भावना गलत है, श्रेष्ठत्व-भावना हो तो और भी गलत—हिटलर का आर्यत्व का दावा दम्भ ही नहीं, मानवता के साथ विश्वास-घात है; पर अपनापे या सम्पर्क की बात करनी हो तो मानना होगा कि यूरोप ही हमारे अधिक निकट है, आर्यत्व के नाते नहीं, सांस्कृतिक परम्परता और विनिमय के कारण, आचार-विचार, आदर्श-

साधना और जीवन-परिपाटी की आधारभूत एकता के कारण यह हमारे भारत के एक स्थानीय प्रश्न (विश्व की भूमिका मे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को स्थानीय ही माना होगा) से उत्पन्न कटुता के कारण है कि हम नही देख सकते कि न केवल यूरोप के बल्कि निकटतर मुस्लिम देशो के—'मध्य-पूर्व' के—साथ हमारा कितना घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध न केवल रहा है बल्कि आज भी है, और चीन से, और चीन की मारफत जापान से सास्कृतिक आदान-प्रदान का नाता जोड़ते है। फाह्यान और यूवान च्वाग थे, ठीक है; पर अतीत का ऐतिहासिक सम्बन्ध आज का सजीव सम्बन्ध नही भी हो सकता है, और केवल मूर्ति-कला को ले कर हम कहाॅ तक दौड़े जायेगे धर्म और दर्शन, गणित और विज्ञान, आचार और विचार के सम्बन्धो की अन-देखी कर के? और हाॅ, अत्याचार और उत्पीड़न, दास-दासियो के क्रय-विक्रय, लूट और व्यापार और घर्षण और विवाह के सम्बन्धो की, रक्त के, रीति-रस्म के, कला और साहित्य के, भोजन-वसन के, भाषा के, नामो के मिश्रण की अनदेखी कर के? हम किसी देश का, किसी देश की जनता का, अहित नही चाहते, पर एशियाई नाम को ले कर जापानी साम्राज्य सत्ता का अनुमोदन करना या उस के प्रसार को उदासीन भाव से देखना, खंड के नाम पर सम्पूर्ण को डुबा देना है, अॅग्रेजी कहावत के अनुसार अपने मुॅह से लड़ कर अपनी नाक काट लेना है, मानवता के साथ उतना ही बड़ा विश्वासघात करना है जितना उन्होने किया था जो मुसोलीनी द्वारा अबीसीनिया या हिटलर द्वारा चेकोस्लोवाकिया के ग्रास के प्रति उदासीन थे

पर यह सब मै क्या लिख रहा हूॅ? कहना यह चाहता हूॅ कि इस खबर ने मुझे झकझोर दिया है। यहाॅ काम भी अब आगे नही हो सकता—बड़ी तेजी से फौजी संगठन हो रहा है और और सब काम रुक गया है। हम तुरत यहाॅ से जा रहे है—आजकल मे शायद वायुयान से सब सामान समेत सिंगापुर ले जाये जायेगे, वहाॅ से आगे जैसा हो। मै भारतवर्ष लौट रहा हूॅ। क्रिसमस से पहले नहीं तो मासान्त तक अवश्य पहुॅच जाऊॅगा। यह नहीं कह सकता अभी कि कलकत्ते पहुॅचूॅगा, या कोलम्बो, या कहाॅ—

जैसा प्रबन्ध हो जाय। पक्का पता लगते ही तार से तुम्हें सूचित करूँगा। मेरे मन मे अनेक विचार उठ रहे है—अनेक प्रकार के इरादे—पर अभी कुछ स्पष्ट नहीं है, उस बारे मे अभी नहीं लिखूँगा, पर सोचता हूँ, तुम से मिल कर बात-चीत करूँ, तो विचार भी कुछ स्पष्ट हो, और आगे का मार्ग भी कुछ दीखे। गौरा, अगर मै सीधा तुम्हारे पास न आ सका, और तुम्हे मैने मिलने के लिये बुलाया, तो आ सकोगी न—आओगी न? या कि रूठ जाओगी? तुम ने एक पत्र मे लिखा था, "आप बुलावे, उतना मान मेरा नही है,"—तुम क्या जानो कि कितना है। पर वह जो हो, उस की बात मिलने पर, अभी इतना ही कि शायद बुलाऊँ ही—तो आना, क्षमामयी गौरा।

जल्दी मे—महसा बहुत-सा काम करने को हो गया है।

तुम्हारा

भुवन

गौरा के नाम भुवन का केबल :

सुरक्षित हूँ लौट रहा हूँ सब को सूचित कर दो निश्चित स्थान तारीख अनन्तर सूचित करूँगा।

भुवन

गौरा के नाम भुवन का केबल :

सिंगापुर सकुशल पहुँचा आशा है कल कलकत्ता प्रस्थान पहुँचने की अनुमानित तिथि २३ दिसम्बर सको तो मिलो पता मारफत कुक या टम एयरलाइन।

भुवन

गौरा का जवाबी तार, एक प्रति टामस कुक, नकल के० एल० एम० डच लाइन कलकत्ता :

सन्देश डा० भुवन के लिए अनुमानित पहुँच २३ दिसम्बर कृपया पहुँचा दीजिए सन्देश आरम्भ मसूरी प्रतीक्षा करती हूँ सीधे आइये असम्भव हो तो तार दे कहाँ मिलूँ आऊँगी मिलना आवश्यकीय स्नेह पिताजी के आशी-

वॉट गौरा सन्देश समाप्त पहुँचाने पर या देरी होने पर तार से सूचित कीजिए

मिस नाथ सुकेत मसूरी

गौरा का पत्र, भुवन के नाम, उपयुक्त दोनो पतो पर :

तो आप आ रहे है, भुवन दा मैने तार दिया है कि आप मसूरी आ जाइये पापा का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही है और मै उन के पास हूँ। फिर भी आती ही—चिन्ता की कोई बात नही है—पर आप २३ दिसम्बर को पहुँचते है तो कालेज तो तुरत जाना नही होगा, इस लिए यहाँ आ सकेंगे यह मैंने मान लिया है। यहाँ आप को भी अच्छा लगेगा, पापा को भी, और मै भी आप की सेवा कर सकूँगी—कलकत्ता तो कैसी जगह है.. न जाने। पर अगर कोई कठिनाई हुई तो मै तुरत आऊँगी—कलकत्ते या और जहाँ आप कहे। मै तैयार बैठूँगी—आप का तार आते ही चल दूँगी। भुवन दा, आप आ रहे है, सोच कर मैं पागल हुई जा रही हूँ—इतनी कि उस दुर्घटना को ही धन्य कह देती जिस के कारण आप को जावा छोड़ना पड़ा—पर नही, इतना अविवेक नही!

'ओ मेरे सुख धीरे-धीरे गा अपना मधुराग,
ऊँचे स्वर से सोयी पीड़ा जावे कहीं न जाग...'

आप की, आप ही की

गौरा

गौरा को कमरे मे प्रवेश करते हुए भुवन ने न देखा था, न सुना था, उस की उपस्थिति को उस ने सहसा चौक कर जाना तो बैठा-का-बैठा रह गया, गौरा ने उस के कोट के बटन-होल मे नरगिस का एक डॉंठा लगा दिया और उँगलियो के हल्के स्पर्श से पल्ला सहलाती हट गयी तो भुवन ने पूछा, "ये कहॉ से—इस वक्त ?"

रात का भोजन कर के भुवन अपने कमरे मे आ कर बैठा था। सहसा लम्बी यात्रा का अवसाद और दिन-भर के अनुभवो की थकान उस पर छा गयी थी तो कुरसी खिडकी की ओर खींच कर, बदली से घने हो रहे आकाश की पृष्ठिका पर खिंचे हुए पत्रहीन गुडहल के आकार पर एक नजर डाल कर उस ने हथेलियो से आँखे ढक ली थी और स्पष्ट आकार-विहीन किसी विचार मे डूब गया था। तनी हुई थकान ढीली पड़ कर मीठी-मीठी फैलने लगी थी।

सुकेत छोटा-सा अच्छा बगला था, ढाल पर बना हुआ, दुमजिला, निचली मजिल सामने को खुली थी, ऊपर की मज़िल से सामने से सीढ़ी उतरती थी, पर पिछवाड़े भी उतरने का रास्ता था—ढाल के कारण पिछ-वाडे दो-तीन सीढियॉ ही उतरनी पडती थी, फिर एक रास्ता धीरे-धीरे उत-रता हुआ सामने की सडक मे आ मिलता था। ड्राईंग रूम और एक बडा

बरामदा ऊपर था, उस के साथ गौरा के पिता का अध्ययन-कक्ष और फिर सोने का कमरा और एक और छोटा कमरा; निचली मंजिल में भी एक ड्राइंग डाइनिंग रूम था और तीन सोने के कमरे, पर निचला ड्राइंग-रूम प्रायः काम मे नही आता था—या किसी बहुत ही औपचारिक ढंग की भेंट के लिए ही सुरक्षित था, और भोजन भी प्रायः ऊपर के बरामदे मे होता था। गौरा के माता-पिता ऊपर की ही मंज़िल मे रहते थे और पिछवाड़े के रास्ते हो उतर कर टहलने जाते थे, सामने की सीढी शायद ही कभी काम मे आती थी—गौरा ही उस से आती-जाती थी। नीचे वाला एक शयन-कक्ष उस का था, दूसरा प्राय: खाली रहता था और उस मे गौरा ने पुस्तकालय और वाद्य-यन्त्र रखने का स्थान बना रखा था, वही वह संगीत का अभ्यास करती थी। तीसरा कुछ अलग था और उस के बाहर एक बहुत छोटा-सा अलग बाड़ा भी था—यह मेहमान कमरा था और इसी मे भुवन को ठहराया गया था।

"मै अपने कमरे से लायी हूँ।"

भुवन ने लक्ष्य किया कि उस के पल्ले पर लगी हुई चार फूलो वाली एक डॉठी ही नहीं, गौरा एक गहरे ऊदे रंग का फूलदान ले कर आयी है जिस मे नरगिस भरे है। उस ने ग्रीवा एक ओर को झुका कर गहरी सॉस से कोट मे लगे वृन्त की सुवास लेते हुए कहा, "सारे ले आयीं—वहॉ नहीं रखे?"

गौरा ने उत्तर नही दिया। चुपचाप थोड़ी देर उसे देखती रही। एक बहुत हल्की मुस्कान—मुस्कान भी नहीं, एक खिलापन—उस के चेहरे पर था। फिर बोली, "आप को सर्दी तो नही लगेगी? रात को बारिश हुई थी—आज फिर हो सकती है।"

"नहीं, गौरा इतनी ठण्ड तो नहीं है।"

गौरा ने चारो ओर नजर डाली। "मैंने दो कम्बल और भी रख दिये है—और ॲगीठी मे लकड़ियॉ भी चिनी रखी हैं—कहिए तो आग जला दूँ—"

यह भुवन ने नहीं लक्ष्य किया था—क्योंकि कोर्निस के आगे लकड़ी

की एक छोटी तिरस्करणी रखी थी जिस से अँगीठी छिपी हुई थी।

"और डोल में चीड़ की कुकड़ियाँ भी रखी है—जलती भी अच्छी है और सुगन्ध भी देती है—"

भुवन ने कुछ अधिक तत्परता से कहा, "नहीं गौरा, नहीं—मुझे आग जला कर सोने की आदत नहीं—"

एक सन्नाटा-सा छा गया। गौरा कोर्निस के सहारे खड़ी हो गयी। दोनों अनमने से एक-दूसरे की ओर देखते रहे। फिर सहसा गौरा ने कहा, "आप थके है—मै जाती हूँ—किसी चीज़ की जरूरत हो तो आवाज़ दे दीजिएगा—"

भुवन ने भी मानो अपने को समेटते से कहा, "नहीं, गौरा, तुम ने किसी जरूरत की गुञ्जाइश कहाँ छोड़ी—", फिर गौरा की पीठ को देखते हुए उसे मानो ध्यान आया कि वह उस की कुछ अवज्ञा कर गया है—गौरा बात करने आयी थी—उस ने कहा, "बैठो—अभी क्या वक्त हुआ है ?"

गौरा क्षण-भर ठिठकी। फिर मुड़े बिना ही उस ने कहा, "नहीं, आप सो जाइये। सुबह—अगर आप बुलायेंगे तो घूमने चल सकती हूँ।"

भुवन ने कहा, "सुबह ?" कुछ ऐसे ढंग से जो न प्रश्न था न उत्तर, न इन्कार और न स्वीकृति, गौरा भी बात को वहीं छोड़ कर पीछे आहिस्ता से किवाड़ बन्द करती हुई चली गयी।

भुवन ने उठ कर बत्ती बुझा दी, और फिर पूर्ववत् बैठ गया। उस का शिथिल हुआ-हुआ मन धीरे-धीरे मानो एक-एक कदम बढ़ता हुआ प्रत्य-वलोकन करने लगा।

गौरा के पिता ने सरल और खुले आनन्द से उस का स्वागत किया था, वह प्रणाम करने झुका था तो हाथ बढ़ा कर हाथ मिलाया था दूसरे हाथ से भी कलाई पकड़ते हुए, फिर खींच कर गले-सा लगा लिया था। "तुम आ गये भुवन—गौरा तो चिन्ता कर के सूख गयी थी।"

भुवन को पहुँच जाना चाहिए था बारह बजे, वह साढ़े चार बजे पहुँचा था, पर किसी ने उस से पूछा नहीं कि इतनी देर कहाँ लगी। बात यह

हुई थी कि कलकत्ते से उसने दूसरा तार दिया था अपने पहुँचने के दिन का, देहरादून स्टेशन पर वह उतरा तो गौरा प्लेटफार्म पर खड़ी थी—वह सुबह की सर्विस से चली आयी थी। भुवन को देखते ही वह लपकी हुई दोनो हाथ बढ़ा कर उस की ओर दौड़ी थी, भुवन ने उस के दोनो हाथ अपने हाथों मे पकड़ लिये थे और कुछ बोल नहीं सका था; थोडी देर बाद गौरा ने धीमे से कहा था, "आप आ गये . " और फिर धीरे-धीरे उस के हाथ छोड दिये थे। लेकिन जब सामान वगैरह सम्भाल कर भुवन ने पूछा था, "अभी अड्डे पर चलना होगा—या मैं मुँह-हाथ धो लूँ वेटिंग रूम मे ?" तो गौरा स्वयं अपने को विस्मित करती कह गयी थी, "धो लीजिए—इस सर्विस से नही जायेंगे मसूरी।"

भुवन ने बिना कुछ कहे मान लिया था। मान ही नहीं लिया था, मानो उस क्षण से बागडोर गौरा को सौप दी थी कि जैसा वह कहेगी वैसा ही चलता जायगा। केवल जब मुँह-हाथ धो कर वह निकला था और गौरा ने पूछा था, "नाश्ता करेंगे ?" तो उस ने पहले पूछा था, "तुम्हारा क्या हुक्म है ?" लेकिन फिर गौरा के कुछ कहने से पहले ही कहा था, "नही, चलो स्टेशन से बाहर निकलें।"

ताँगा लेकर वे मैदान तक गये थे, वहाँ से पैदल टहलते हुए डालनवाला की ओर निकल कर रिसपना के किनारे पहुँच गये थे, नीचे सूखी नदी के पाट मे उतर कर पत्थरों में वे चलते रहे थे, फिर एक ऊँचे कगारे पर एक पेड़ देख कर उस के नीचे बैठ गये थे। चलते हुए दोनो बहुत थोडा बोले थे, गौरा ने छोटे-छोटे प्रश्न पूछे थे—कब चले, कैसे आये, कहाँ कितना ठहरे, यात्रा कैसे हुई, इत्यादि—और भुवन ने वैसे ही छोटे-छोटे जवाब दे दिये थे; पर बैठ कर दोनो बिल्कुल ही चुप हो गये। भुवन सामने पडे हुए कंकड़ो मे से एक-एक उठा कर निरुद्देश्य-सा नीचे फेंकने लगा गौरा देखती रही। थोडी देर बाद वह भी यन्त्रवत् एक-एक कंकड़ उठा कर भुवन को देने लगी, भुवन अन्यमनस्क-सा कंकड ले लेता और मानो पड़ने फके हुए पत्थर का निशाना बाँधता हुआ-सा फेंक देता। इस

प्रकार एक-एक कंकड से समय का एक-एक अन्तराल लाँघते हुए वे काल की या अस्तित्व की ही किसी अज्ञात दिशा मे बढते रहे।

सहसा गौरा ने कहा, "चले अब।"

इतनी देर तक नीरवता अलक्षित थी, अब इन शब्दो से वह मानो दोनो की चेतना में घनी उभर आयी। भुवन ने कहा, "गौरा, तुम्हे कुछ कहना नही है?"

"और तुम्हे?" सहसा गौरा कह गयी। फिर कुछ सकपका कर सम्भलती हुई, "आप ने तो लिखा था बहुत कुछ बताना है—सलाह करनी है—" वह खड़ी हो गयी।

भुवन ने हाथ बढा कर उस का हाथ सहारे के लिए पकड कर उठते हुए कहा, "और तुम्हे तो और भी अधिक सलाह करनी थी।"

गौरा हँस पड़ी। "चलिए, मसूरी चल कर सलाह ही सलाह होगी—अभी थोड़ी देर मे आप तो बुजुर्ग हो जायेंगे—बुजुर्गी आने से पहले—मै—थोडी देर चुपचाप आप के पास बैठना चाहती थी।"

भुवन ने मुस्करा कर कहा, "बुजुर्गी तो गयी गौरा, सदा के लिए।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "लेकिन हम सीधे तुरत मसूरी नही गये—इस के लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। मुझे डर था—"

"क्या डर था?"

"कि कही—कहीं हम अजनबी न हो—कही मुझे बेयरिंग्स न खोजनी पड़े—"

गौरा ने उमड़ कर हाथ उस की ओर बढाया और कुछ घनी आवाज मे कहा, "भुवन दा!" फिर तुरत सयत होती हुई बोली, "तो आप साल-भर से कम मे ही इतने साहब हो गये कि देश की बेयरिंग्स भूल गये? और जावा तो ऐसा साहब भी नही है—"

भुवन हँस दिया।

धीरे-धीरे वे लौटे थे और अगली सर्विस उन्होने पकड़ ली थी, रास्ते मे फिर बहुत कम बात हुई थी, गौरा सुकेत का नकशा उसे

समझाती रही थी, बस। बीच-बीच मे भुवन उस की ओर देखता था, वह मुस्करा देती थी और वह भी मुस्करा देता था। किनक्रेग उतर कर वे पैदल चढाई चढने लगे तो बात हो ही नहीं सकती थी, बँगले पर पहुँच कर गेट के भीतर घुस कर गौरा दौडती हुई छोटे रास्ते से ऊपर चढ गयी थी पुकारती हुई कि "पापा, पापा, भुवन दा आ गये!" भुवन जब तक गेट से प्रविष्ट हो कर भीतर पहुँचे, तब तक पापा बाहर आ कर सामने की सीढी से उतरने लगे थे, सीढी के नीचे ही दोनो की भेंट हुई थी। गौरा कहीं अदृश्य हो गयी थी, और फिर लगभग घटे भर बाद तक नज़र नहीं आयी थी, आयी थी तो सूचना देने कि चाय तैयार है। पिता ने पूछा था, "बेटी चाय ही है कि कुछ खाने को भी?" और मुड कर भुवन से, "खाना खा कर चले थे?"

भुवन ने कहा था, "जी, मोटर-यात्रा से पहले कम ही खाता हूँ—" और गौरा ने साथ ही उत्तर दिया था, "जी, खाने को भी रखा है पर ये तो कुछ खाते ही नहीं, और अब तो जावा से पूरे साहब हो कर आये होंगे—"

भुवन ने आँख बचा कर इशारे से ही उसे झिड़क दिया था।

तीसरे पहर थोडी देर उसने आराम किया था, फिर चाय पी थी और फिर गौरा के पिता के साथ घूमने गया था, इस बीच गौरा ने उस का कमरा सजा दिया था। लेकिन शाम को भी गौरा से विशेष बात नहीं हुई थी, खाने पर तो होती ही क्या।

और अब . भुवन ने फिर अपने को हिलाया। इस समय निस्सन्देह गौरा बात करने आयी थी—और फूल ले कर.. और उसने पूछा ही नहीं .. कदाचित् वह आहत हो कर चली गयी। क्यो नहीं उसे ध्यान आया? बाद मे उस ने कहा था, अवश्य, पर बाद मे कहने से क्या फायदा।

सबेरे? शायद। गौरा ने तो स्पष्ट घूमने का निमन्त्रण दिया था। शायद वही अच्छा है; सबेरे टहलते हुए बात होगी तो और ढग की होगी, रात को कमरे मे बैठे-बैठे शायद बहुत उदास हो जाती.. यह नहीं-कि वह वैसा चाहता. पर मन जैसा है सो तो है ही, फिर रात का अपना असर

होता है.. और सवेरे का अपना, टहलने का अपना...

भुवन उठ कर अँधेरे मे ही कपड़े बदलने लगा। बदल चुका, तो क्षण-भर जा कर खिडकी पर खड़ा रहा, बदली अभी थी, कहीं-कहीं एक-आध तारा दीखता था, यहाँ की रात, यहाँ की हवा, यहाँ की नीरवता मे जावा की रात और हवा और नीरवता से कितनी भिन्नता थी—मात्रा की नही, प्रकार की, स्वभाव की...

वह धीरे-धीरे जा कर लेट गया। थोड़ी देर बाद सहसा उठा, कोट टटोल कर उस ने उस मे लगा हुआ नरगिस का डॉठा निकाला और सिरहाने रख कर फिर लेट गया। फूलदान के नरगिसो की भारी, सालस, स्तब्ध गन्ध सारे कमरे मे फैल गयी थी, सिरहाने रखे एक वृन्त की गन्ध अलग नही पहचानी जाती—पर वह एक वृन्त उपयोगिता के विचार से थोड़े ही वहाँ रखा गय है.. क्या यह वृन्त भी बात करना चाहता है? अच्छा, तो अब की उस से चूक नही होगी, वह सुनेगा, और वृन्त को कान के पास रख कर सुनेगा निहोरे कर के—उस के तन्द्रिल मन मे एक अधूरा पद तैर आया : 'लपितु'-किमपि श्रुतिमूले'—श्रुतिमूल मे कुछ धीरे से कहने को—कौन? क्या? वह ऊँघ गया ..

गौरा जाग कर उठ बैठी। किसी अनवरत शब्द ने उसे जगाया था। उसने सुना : पैरो की चाप, पॉच-सात पगो के बाद एक अन्तराल, फिर पॉच-सात पद। भुवन के कमरे से आ रही है आवाज, तो भुवन कमरे मे चक्कर काट रहा है—लेकिन चाल भी समान नही है, क्या गौरा कल्पना कर रही है, कि सचमुच वह पद-चाप उद्वेग की सूचक है? उस ने घडी देखी : साढे बारह, फिर उसने एक चादर कन्धो पर और अपने खुले बालो पर डाली और दबे पॉव कमरे से बाहर हो गयी।

भुवन के द्वार पर वह ठिठकी। पैरो की चाप और भी असम हुई, फिर सहसा रुक गयी।

गौरा ने सावधानी से किवाड खोला, वह जरा-सा चरमराया और फिर चुपचाप खुल गया। भीतर हो कर किवाड फिर धीरे से उढका कर गौरा वहीं खड़ी रही, आगे नही बढी; इधर-उधर हटे हुए पर्दों मे से एक को हाथ से पकडे हुए, आधी पर्दों की ओट। कमरे के फीके अन्धकार मे खोजती हुई उस की ऑखो ने देखा, भुवन खिड़की के पास फर्श पर बिछे गलीचे पर बैठ गया है, कुछ वैसी मुद्रा मे जैसी चित्रो मे धनुष पर चिल्ला चढाते हुए कुमार राम की होती है—लेकिन वैसी कसी हुई नहीं, परास्त, एक घुटना भूमि पर, दूसरे पर कोहनी टिकी हुई, उठा हुआ हाथ धीरे-धीरे माथे पर आ टिका और माथे को पकड़े रहा...

कहाँ है भुवन? किस चिन्ता मे है—नहीं, चिन्ता तो निरी विचार की अवस्था होती है, किस गहरी अनुभूति मे है?

लेकिन—यह भुवन का निजी क्षण है, निजी अनुभूति है, ऐसे उसे देखते रहना चोरी है। बड़े कोमल स्वर मे गौरा ने कहा, "भुवन दा, क्या बात है, नींद नही आती? बत्ती जला दूॅ?"

भुवन बडे जोर से चोका। खडा हो गया। थोड़ी देर हक्का-बक्का-सा उसे देखता रहा। "गौरा, तुम—तुम!"

गौरा ने फिर कहा, "थोड़ी देर आप के पास बैठूॅ? आप कुरसी पर बैठिए।" और वह स्वय ॲगीठी के आगे से तिरस्करिणी हटा कर, ॲगीठी के लकड़ी के चौखटे पर बैठ गयी, कुरसी के सामने।

भुवन कुछ अतत्पर भाव से बैठ गया। फिर जैसे शून्य को भरने के लिए कुछ कहना ही है, ऐसे बोला, "मै सो गया था, फिर—चौंक गया।"

"क्यो—कोई सपना देखा था?"

"शायद। नहीं—कोई रोया था!"

"रोया था? नहीं भुवन दा—रोने की आवाज कहॉ से आ सकती है—"

"हॉ," भुवन ने साग्रह कहा, "चिड़िया का बच्चा रोया था।"

गौरा ने विस्मय को दबा कर क्षण-भर बाद फिर कहा, "बत्ती जला दूॅ?"

"न। अच्छा, जला दो।"

गौरा ने टेबल लैम्प जला दी। लचकीले तार के स्टैंड वाली लैम्प थी, उसे दबा कर उस ने नीचा कर दिया, प्रकाश दीवार पर पड़ने लगा और वहाँ से प्रतिबिम्बित हो कर कमरे मे फैला।

भुवन ने हाथो से आँखे ढक ली, जैसे चौंध लगती हो। उस का शरीर एक बार सिहर गया।

गौरा ने कहा, "मै आग जला देती हूँ, सर्दी बहुत है। और आप कुछ ओढ़ लीजिए।"

भुवन ने तड़प कर कहा, "नही गौरा, आग नही।"

गौरा बिस्तर पर से कम्बल उठाने मुड़ी थी, ठिठक गयी। फिर उस ने कम्बल उठा कर धीरे से भुवन के कन्धों पर डालते हुए कहा, "क्या बात है भुवन दा—जाड़ की आग तो बडी स्निग्ध होती है—आप को अच्छी लगेगी—"

"नहीं, नही, मुझे आग मे चेहरे दीखते हैं।"

गौरा ने पीछे खड़े-खड़े ही दोनो हाथ भुवन के कन्धो पर रखते हुए कोमल स्वर से पूछा, "किस के चेहरे, भुवन दा?"

"चेहरे—मृत चेहरे—बच्चो के चेहरे।" गौरा के हाथो के नीचे उस का शरीर एक बार फिर सिहर गया।

गौरा क्षण भर अनिश्चित खड़ी रही। फिर उस ने सहसा भुवन के सामने जा कर कहा, "भुवन दा, अब और नही मानूँगी। बताइये क्या बात है।" जैसे साहस बटोर कर उस ने दोनो हाथ भुवन के कानो पर रखे, उन के हल्के दबाव से भुवन का मुँह ऊपर उठाते हुए कहा, "देखिए मेरी तरफ देखिए—आप को बताना होगा!"

उन की आँखे मिली, दोनो स्थिर एक-दूसरे को देखते रहे। गौरा ने लगभग अश्रव्य स्वर मे कहा, "मै पूछती हूँ, भुवन, नहीं बताओगे तुम?"

भुवन ने उत्तर नही दिया, दोनो वैसे ही देखते रहे। फिर गौरा के हाथ धीरे-धीरे शिथिल होने लगे—वह हार गयी है—और भुवन नहीं बोलेगा,

कि भुवन ने कहा, "अच्छा, गौरा, बताता हूँ। अच्छा, तुम बैठ जाओ।"

गौरा उस के सामने की ओर, अँगीठी के सामने बिछे गलीचे पर बैठ लगी। अध-बैठी ही थी कि भुवन ने जल्दी से और एक अजब रुखाई साथ कहा, "रेखा को तुम जानती हो—आइ लव्ड हर।"

गौरा बैठती-बैठती रुक गयी। धीरे से बोली, "जानती हूँ।" थोड़ा-रुक कर, "आइ लव हर टू।"

भुवन ने चकित भाव से कहा, "गौरा!" फिर रुकते-से, "लेकि तुमने तो उसे देखा ही नहीं—"

"मैं—मिली थी। लेकिन—यह—मिलने से अलग बात भी है।"

भुवन ने बात काटते हुए पूछा था, "कब?" पर वह प्रश्न-बीच ही मे डूब गया, दोनों चुप बैठे रह गये।

कई मिनट बाद भुवन ने कहा, "कहानी लम्बी है गौरा। पर—बहुत छोटी भी है।" सहसा एक कठोर, निष्करुण भाव से, "आइ लव्ड हर। वी वेयर टु हैव ए चाइल्ड। आइ किल्ड हिम।"

"ओ—" गौरा के मुँह से निकला, दोनों की आँखें मिलीं तो भुवन ने देखा, गौरा की आँखों में व्यथा है, विमूढ़ता है, और—अविश्वास है। गौरा धीरे-धीरे बोली, "झूठ मत बोलिए, भुवन दा; अपने को ऐसे क्यों कोस रहे हैं?"

भुवन ने सहसा उबल कर कहा, "कोसूँ भी नहीं गौरा—तुम नहीं जानती कि मैंने क्या किया है।"

"एक रूखी बात कहूँ, भुवन दा? आप कहना चाहते हो तो—बात कहें, जजमेंट आप मुझे न दें—वह करना होगा तो मैं स्वयं करूँगी।" सायास मुस्करा कर गौरा बोली, "उतनी कठोर भी हो सकती हूँ—आप की शिष्या हूँ आखिर!"

फिर एक लम्बा सन्नाटा रहा। फिर भुवन ने कहा, "अच्छा गौरा, आग जला दो। मैं कहता हूँ।"

गौरा ने कहा, "सच, भुवन दा? आप नही चाहते तो कोई जरूरत तो नहीं है—"

"नहीं, जला दो। अगर दीखेगा ही तो देखता जाऊँगा और कहता जाऊँगा।"

गौरा ने आग जला दी। क्षण ही भर मे चीड की कुकडियो ने आग पकड़ ली, प्रकाश जहाँ-तहाँ नाचने लगा, चीड़ के सोंधे, उदार, हृद्य गन्ध-धूम ने वातावरण को छा लिया, जैसे खुले वनाकाश की साँस वहाँ आ कर बस गयी हो।

"गौरा, मैं भाग गया था—तुम से भागा था—पर तुम से भागने के लिए ही नहीं—एक बोझ मुझे दबाता लिये जा रहा था—मेरे कन्धो पर सवार सागर का बूढा—" भुवन कुरसी से उतर कर नीचे गलीचे पर बैठ गया, आग के निकट आ कर आगे झुका हुआ बड़ी-बडी अपलक आँखो से आग की लपटो को देखता हुआ। गौरा भी अपलक उसे देखने लगी, भुवन की आँखो मे ऐसा आविष्ट, मन्त्र-मुग्ध भाव उसने कभी देखा नही था—मानो भुवन उसे भूल गया है, देश-काल-परिस्थिति सब भूल गया है, केवल लपटो मे ही उस का अस्तित्व केन्द्रित हो गया है, उसी मे से वह प्राण खींच रहा है ..

एक अद्भुत भाव गौरा के भीतर उमड़ आया : कुछ डर, कुछ आशका, कुछ जुगुप्सा, कुछ श्रद्धा, और सब के ऊपर एक आप्लवनकारी स्नेह . कुछ बहुत निजी उस के सामने है—बहुत निजी, बहुत पवित्र, जिसे उघड़ा नहीं देखते, बहुत निकट से नहीं देखते,—ऐसे भाव से भर कर वह उठी और भुवन के पीछे जा कर कुरसी पर बैठ गयी। भुवन मानो अकेला हो कर, कुछ और भी आगे झुक कर, धीरे-धीरे बोलने लगा।

"तुम उस के बारे मे बुरा नही सोचोगी, गौरा; वह—वैसे लोग दुर्लभ होते है दुनिया मे—और—उसने मुझे बहुत प्यार किया था, जितना—" वह तनिक रुका और फिर कह गया, "जितना किसी ने नही किया। और अब भी करती है। और ..."

गौरा सुनती रही। भुवन का स्वर पहले असम था, धीरे-धीरे सम, सधा हुआ होने लगा, और उसी अनुपात में दूर, निर्व्यक्तिक, रागमुक्त, असम्पृक्त, मानो गौरा के आगे एक सजीव व्यक्ति नहीं, शब्द का एक झरना हो, जो अजस्र भाव से बहता जा रहा हो, कौन पास है, कौन उन के झरझर बहते हुए अभिप्रायों को सुनता है या नहीं सुनता, उस की संवेदना की झिलमिल छायित-द्योतित पन-चादर को देखता है या नहीं देखता, इस से सर्वथा असंलग्न.

और कमरे मे चीड़ की आग के आलोक की शिखाएँ नाचती रहीं, लकड़ी की और चीड की कुकड़ियो की हल्की चटपट और विस्फूर्जित वाष्पों की फुरफुराहट जैसे स्वर-पृष्ठिका बन कर भुवन की बात को अतिरिक्त बल देती रही...

" ..मै उसे वहीं छोड़ कर चला आया, चलते वक्त उस ने एक कापी और अपनी नीली साड़ी पैकेट बना कर मुझे दी थी जो मैंने बाद में देखी, कापी में बहुत-सी बातें थीं और बाइबल के 'साग आफ साग्स' के बहुत से अंश—'*माई बिलवेड स्पेक एंड सेड अटु मी, राइज अप, माइ लव, माइ फेयर वन, एंड कम अवे; फार लो, द विंटर इज पास्ट, द रेन इज ओवर एंड गान, द फ्लावर्स एपीयर,*' वगैरह, फिर श्रीनगर चला गया—"

गौरा ने दबे-पाँव उठ कर आग मे चीड़ की कुकड़ियाँ और डाल दीं, भुवन की ओर एक बार भी नहीं देखा, फिर पूर्ववत् उस के पीछे आ कर बैठ गयी।

"...तुलियन मे हम चार दिन रहे; फिर मैं उसे पहुँचाने पहलगाँव आया, रास्ते में नदी के आर-पार पड़े एक तख्ते के बीच में खड़े हो कर उसने कहा—उसने मुझे कहा—मुझ से पूछा कि जीवन में मेरी आकांक्षा क्या थी? मैंने बताया, सर्जन होने की, वह स्वयं वायलिनिस्ट होना चाहती थी—फिर उसने कहा, 'उसे मैं वायलिन भी सिखाऊँगी, और सर्जन

भी बनाऊँगी'—फिर वह चली गयी और मैं तूलियन लौट गया काम करने— . ''

आग लपकती और गिरती, कभी एक अध-जली लकड़ी बीच में से टूट कर गिरती और आग का एक भाग दब कर अधेरा या नीलाभ हो जाता, फिर फुरफुरा कर एक छोटी-सी शिखा उस मे से उमग आती और बढ जाती। उसी प्रकार भुवन का स्वर कभी मद्धिम पड जाता, कभी धीरे-धीरे ऊँचा उठ जाता, कभी उस की वाणी क्षण-भर अटक कर फिर कई-एक द्रुत चिनगारियाँ फेक देती—यद्यपि साधारण रूप से उस की बात फुलझडी-सी नहीं थी, न उस मे तारा-फूलो की लड़ियाँ थी, न घटती-बढती कलाओ का आकर्षण, न वह चटचटाहट जो स्फूर्ति देती है, न वह रग-विरग चमक जो लुभा लेती है .. वह थी महताबी की तरह, जिस के भीतर से अगारे बूँद-बूँद टपकते है, पिघली हुई आग के आँसुओं की तरह, जो हवा मे भी झरते है, पानी के नीचे भी झरते है, चुप-चाप, बेरोक झरते जाते है, जलते जाते है...

" .लेकिन दुबारा जब मै गया तब—वह बदल गयी थी—मेरी सात-आठ दिन की अनुपस्थिति में उसे ऐसी चिट्ठियाँ आयी थीं कि—मेरी बात उसे आश्वस्त नहीं रख सकी थी और उसने—उसने आपरेशन करा लिया था। यह बात मेरे ध्यान मे भी न आयी थी—पर मुझे उसे छोड़ कर नही जाना चाहिए था क्योकि तब शायद उस का विश्वास न टूट जाता—मैं..."

भुवन का स्वर धीरे-धीरे बदलने लगा। गला भर्रा आया, क्रमश वाक्तन्त्रों की झकृति कम, और केवल वायु का स्वर बढता चला, यहाँ तक कि बात केवल एक तीखी फुसफुसाहट हो गयी जो कभी-कभी टूट कर स्वनित हो जाती थी, बस . गौरा के रोगटे खड़े हो गये—वह आवाज मानो मानवीय ही नही थी, मानो वातावरण मे भटकती हुई कोई प्रेत-व्यथा वहाँ पुजीभूत हो कर स्वरित हो रही हो। वह निश्चल सुनती न रह सकी, पर भुवन को रोक भी न सकी, दबे-पाँव उठ कर उसने टेबल लैम्प बुझा दी और फिर वही आ कर बैठ गयी, भुवन आग को देख रहा था, उसे मालूम ही नहीं

हुआ कि पीछे प्रकाश कम हो गया है, वह वैसे ही अमानुषी ढंग से बोलता रहा..

"वह कलकत्ते चली गयी। दिल्ली तक मैं साथ आया था, वहाँ रेल में बिठाया था। रेल में एक और सवारी ने उस से पूछा था, ये कौन है? तो उसने कह दिया मेरे—हज़बैंड, सात साल हुए शादी हुई थी। पड़ोसिन उसे बधाई देने लगी—"

सहसा स्वर बन्द हो गया।

निस्तब्ध निश्चलता—आग की जीभें भी उठ रही थीं तो मानो इसी लिए कि पहले से उठ गयी है और अब रुकना ही गति होगा, उठते रहना तो अगति है, वैसी ही साँसें—उठती और गिरती क्योंकि सदा से गिरती आयी हैं, वैसी ही क्षणों की धारा बहती क्योंकि अजस्र बहती आयी है..

न जाने कितनी देर बाद, भुवन की एक शब्द-हीन विरस हँसी—"यह सब मैं क्या कह रहा हूँ।" फिर एक लम्बा मौन; फिर भुवन का रुकता-सा, सोचता-सा स्वर: "यही है मेरी कहनी, गौरा—और तब से मैं आग में देखता हूँ चेहरे—मृत बच्चों के चेहरे—स्वयं अपना चेहरा क्योंकि मैं भी तो मर गया हूँ उस के साथ।"

फिर मौन। फिर भुवन सहसा सिहरता है, एक काला बादल-सा उस के सिर-माथे पर छा गया है और चारों ओर से बहता हुआ-सा उसे डुबाये जा रहा है—वह लड़खड़ा जायगा और धँस जायगा—आँखों के आगे अँधेरा हो रहा है—टटोलते-से हाथ वह अपने सिर की ओर, सिर के ऊपर उठाता है—

ऊपर गौरा का झुका हुआ सिर है, उस के खुले बाल आगे ढरक आये है और भुवन के चेहरे पर छा गये हैं—भुवन का हाथ स्तब्ध रुका रह जाता है, वह बादल भी स्थिर रुका रह जाता है—फिर, टप से एक बूँद उस के माथे पर बरस जाती है—

भुवन के दोनों हाथों की उँगलियों ने ढरके हुए बालों की एक-एक लट पकड़ ली। फिर एक हाथ उस ने छोड़ दिया, हाथ बढ़ा कर गौरा के माथे

को धीरे-धीरे थपकने लगा।

"राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूँगा कि मेरे पीछे कोई है और मुड़ कर नहीं देखूँगा, और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखों के आगे डाल देगी, उस दिन मैं जान लूँगा कि मेरी खोज—मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया।"

यह किसने कहा था? मानो किसी पुस्तक में पढ़ी हुई भविष्यवाणी है यह—

सहसा भुवन ने कहा, "गौरा, अब तुम इस सारी बात को भूल जाओ—शायद मुझे तुम्हें कहनी ही न चाहिए थी, व्यर्थ.. "

गौरा ने दोनों हाथ भुवन के कन्धों पर रख दिये, और धीरे-धीरे सीधी खड़ी हो गयी। पीछे खड़ी-खड़ी ही बहुत धीमे, खोये-से स्वर में बोली, "तुम—तुम कभी पछताओगे तो नहीं मुझे यह सब बता देने पर? मैं—"

भुवन ने कहा, "नहीं गौरा, यह तो नहीं लगता। मुझे तो लगता है, वह जो बोझ मुझ पर था—वह सागर का बूढ़ा जो मेरे कन्धों पर सवार था, वह उतर गया। सोचता हूँ, पहले ही तुम से कहा होता . पर—शायद कहने का समय नहीं आया था—"

"अब—तुम भागोगे तो नहीं? बोझ उतर गया तो—बताओ, फिर चले तो नहीं जाओगे?"

भुवन थोड़ी देर नहीं बोला। फिर उसने एकाएक कहा, "गौरा, बत्ती कैसे बुझ गयी।

गौरा ने हटते हुए सिर ज़ोर से झटक कर बाल पीछे कर लिये, मेज़ की ओर बढ़ कर टेबल लैम्प उसने जला दी, कुछ बोली नहीं। भुवन भी नीचे से उठ कर अँगीठी के जंगले पर बैठ गया, ढेर सी कुकड़ियाँ उस ने आग में डाल दीं। आग भड़क उठी तो उसने पूछा, "गौरा, कुछ कहोगी नहीं?"

गौरा चुपचाप उस के पास नीचे बैठ गयी। भुवन का एक हाथ नीचे लटक रहा था, उसे अपने हाथों में ले कर धीरे-धीरे सहलाने लगी।

भुवन ने फिर कहा, "गौरा, तुम्हे कुछ कहना नही है ?"

गौरा फिर भी चुप रही।

भुवन ने अपना हाथ खींचते हुए धीमे, कुछ हताश स्वर से कहा, "समझ गया, गौरा। लेकिन एक बार मुँह उठा कर वैसा ही कह दो—"

गौरा ने मुँह उठा कर थरथराते मर्माहत स्वर में कहा, "आप इतने—तुम इतने अबूझ कैसे हो सकते हो ?" फिर तत्काल सयत, "आप—रेखा दीदी से नही मिलेंगे ?"

भुवन ने कुछ विस्मित स्वर से कहा, "मै कलकत्ते मे मिलता आया हूँ।"

तीन बजे के लगभग गौरा अपने कमरे मे चली गयी।

रेखा से भेंट की बात बताते हुए भुवन खड़ा हो गया था, फिर धीरे-धीरे न जाने कैसे दोनो खिड़की के पास जा खड़े हुए थे। भुवन रेखा की बात कह कर चुप हो गया, फिर थोड़ी देर बाद उसने हठात् पूछा, "गौरा, तुम रेखा से कब मिली थीं, यह तो तुमने बताया नहीं ?"

"वह मिलने आयी थीं—पिछली गर्मियो में।" कुछ रुक कर, "तूलियन से लौटने के बाद। चन्द्रमाधव जी मिलाने लाये थे।"

"ओह।" कह कर भुवन चुप हो गया। आगे कुछ पूछने का उस का मन नहीं हुआ।

"आप चन्द्रमाधव जी से नाराज हैं, भुवन दा ?"

भुवन सहसा कुछ नहीं बोला, बाहर रात की ओर देखता रहा।

"क्यो नाराज हैं, भुवन दा ? वह आप के मित्र रहे—"

"मित्र !" भुवन ने कड़वे स्वर से कहा। फिर, जैसे इस प्रसंग को यहीं छोड़ देना चाहिए, वह चुप लगा गया।

गौरा ने उस के बात काटने की उपेक्षा करते हुए अपना वाक्य पूरा किया, "और—इतने बड़े भी नहीं हैं कि आप उन के ऊपर गुस्से का भार ढोते चलें—छोड़िए गुस्सा।"

भुवन थोड़ा-सा मुस्करा दिया। फिर धीरे-धीरे बोला, "तुम ठीक कहती

हो—उस पर गुस्सा व्यर्थ है। और अब है भी नही। पर मैंने चिट्ठी-पत्री बन्द कर दी थी—" फिर सहसा नये विचार से, "तुम्हे उस की चिट्ठी-विट्ठी आती है ? कहाँ है ?"

"नियमित आती हो, ऐसा तो नही है, हाँ, बन्द नहीं हुई। पिछले महीने आयी थी एक बम्बई से। आप क्यो नहीं उन्हे एक चिट्ठी लिख देते—यही से ?" तनिक रुक कर वह फिर बोली, "सुना है, वह फिर शादी कर रहे हैं—"

"अच्छा ?"

फिर थोड़ी देर मौन रहा, दोनों सूनी रात को देखते रहे। लोग एक ही आकाश को, एक ही बादल को, एक ही टमकते तारे को देखते हैं, और उन के विचार बिल्कुल अलग-अलग लीकों पर चलते जाते हैं, पर ऐसा भी होता है कि वे लीकें समानान्तर हों, और कभी ऐसा भी होता है कि थोड़ी देर के लिए वे मिल कर एक हो जायें; एक विचार, एक स्पन्दन जिस में साझेपन की अनुभूति भी मिली हो। असम्भव यह नहीं है, और यह भी आवश्यक नहीं है कि जब ऐसा हो तो उसे अचरज मान कर स्पष्ट किया ही जाय, प्रचारित किया ही जाय—यह भी हो सकता है कि वह स्पन्दन फिर द्विभाजित हो जाय, विचार फिर समान्तर लीकें पकड़ ले...

गौरा ने कहा, "यह बड़ा दिन है, भुवन दा। 'आास पीस आन अर्थ, गुडविल टु मेन।' सोचती हूँ, तो ख्याल आता है कि कितनी सुन्दर भावना है यह—और लगता है कि सचमुच इसे कोई सम्पूर्णतया अनुभव कर सके तो—शिशु ईसा के साथ उस का भी नया जन्म हो जाता होगा।"

भुवन ने सोचते हुए-से कहा, "बिना पीडा के जन्म नहीं होता, गौरा—देव शिशु का भी नहीं। शान्ति की भावना से शान्ति नहीं मिलती—"

"मैं कब कहती हूँ ? बल्कि बिना पीड़ा के यह व्यापक कल्याण-भावना भी तो नही जागती—'आल पीस आन अर्थ' कह ही वह सकता है जो पीड़ा से गुजरा है, नहीं तो इस भावना के ही कोई अर्थ नहीं होते।"

फिर एक मौन हो गया। भुवन ने पूछा, "क्या सोच रही हो, गौरा ?"

"बहुत कुछ।"

"क्या?"

"पर कह नहीं सकती"

"नहीं सकती, या नहीं चाहती?"

"ठीक चाहती ही नहीं, ऐसा तो नहीं कह सकती—पर—सकती नहीं।"

"मेरे गुरु कहा करते थे, 'जो विचार स्पष्ट कहना नहीं आता, वह असल मे मन ही मे स्पष्ट नही है। स्पष्ट चिन्तन हो तो स्पष्ट कथन अनिवार्य है।'" भुवन ने कुछ गम्भीरता से, कुछ चिढ़ाते हुए कहा।

"चिढ़ा लीजिए। पर मैं जो सोच रही हूँ, वह मेरे आगे बिल्कुल स्पष्ट है। कह नहीं सकती तो—इस लिए कि सोचना चित्रों से, प्रतीकों से होता है, कहना शब्दों से; और—शब्द—अधूरे है।"

"ऊँहुक्! विचार शब्दों के साथ है—शब्द अधूरे हैं तो विचार ही अधूरा है!" भुवन ने जिद की।

गौरा ने सहसा घूम कर, दोनों कोहनियाँ खिड़की पर टेक कर उस की ओर मुँह कर के कहा, "आप—मुझे चैलेंज कर रहे है?"

"वैसा समझो तो—" गौरा एकदम गम्भीर हो गयी है, यह उस ने लक्ष्य किया, पर वह खिलवाड कर रहा है ऐसा उसे नहीं लगा, उस का ढग चिढ़ाने का था पर नीचे गम्भीरता थी। "तो—अच्छा, वही सही।"

"तो सुनिए। शब्द अधूरे है—क्यों कि उच्चारण माँगते हैं। मैं कह नही सकती थी, पर लिख सकती थी चाहती तो। लेकिन आप कहलाना चाहते हैं—लीजिए: मै सोच रही थी—किसी तरह, कुछ भी कर के, अपने को उत्सर्ग कर के आप के ये घाव भर सकती—तो अपने जीवन सफल मानती—"

भुवन ने स्तब्ध भाव से कहा, "यह मत कहो गौरा—मैं और नहीं सुन सकता, और अब आगे—हल्का ही चलना चाहता हूँ—"

"मैं—तुम्हे कुछ दे नहीं रही, वह मेरी ही साधना होती, मैंने इस से

चढ कर कभी कुछ नहीं मागा कि—तुम्हारे काम आ सकूँ और आज भी नहीं मागती।"

भुवन उस के और पास आ गया। क्षण-भर उस की उठी हुई ठोडी के नीचे कंठ की नाड़ी का स्पन्दन देखता रहा, फिर उस की ओर सिर झुकाता हुआ बोला, "तुम मेरी कृतज्ञता लो, गौरा, तुम जो कह रही हो —जो मैने कहला लिया वही बहुत है—और—आइ एम आलरेडी हील्ड, नही तो तुम से कह पाता ?"

गौरा ने एक हाथ से उस के बाल उलझाते हुए कहा, "न—भुवन— मुझे कृतज्ञता से डर लगता है—उस की ओट मे तुम—फिर दूर चले जाओगे न ?"

भुवन सीधा हो गया। "क्या करूँगा, गौरा, यह तो नहीं जानता, यह जानता हूँ कि विधि ने मुझे मेरी पात्रता से अधिक दिया है। और यह अच्छा नहीं लगता। लोगो से—अपने स्नेहियो से—अधिक ले सकता हूँ उन का कृतज्ञ हो सकता हूँ, विधि से नही, क्योंकि उस के प्रति कृतज्ञता का कोई मतलब नहीं होता।"

गौरा के सामने से हट कर वह कमरे मे टहलने लगा। गौरा वहीं खडी उसे देखती रही।

"गौरा, रात बहुत हो गयी—बल्कि यह तो भोर है—जाओ, सोओ अब। सबेरे उठोगी ?"

"हाँ—घूमने चलेगे ? पर अभी जाने को जी नहीं है। आग बडी सुन्दर जल रही है।"

"तुम तो इतनी दूर खड़ी हो आग से—"भुवन ने सहसा कोर्निस की ओर देख कर कहा, "और ये तुम्हारे नरगिस तो इस गर्मी मे मुरझा गये— मैंने पहले ध्यान नहीं दिया—" उस ने बढ कर कोर्निस से फूलदान उठाया और कमरे के पार मेज की ओर ले चला। गौरा ने रास्ते में आगे बढ कर उस से फूलदान ले लिया, बोली, "सूँघिए इन को।" भुवन ने फूलो मे मुँह छिपा कर लम्बी साँस खीची।

"बस, अब मुरझा जायें।" कहती हुई गौरा ने फूलदान मेज़ पर रख दिया। "और बहुत हैं—रोज लाऊँगी।"

भुवन ने स्नेहपूर्ण आग्रह से कहा, "अच्छा, अब सोने जाओ।"

"मै तो सोयी ही थी। तुम्ही सो नहीं तो पाये—अकेले डर लगता है।" गौरा ने चिढाया।

भुवन ने मुस्करा कर स्वीकार किया कि वह दोषी है।

"अच्छा, अब तो नहीं डरोगे?" कुछ रुक कर, कोमलतर स्वर से, "आग से तो नहीं डरोगे अब—"

"नहीं। अब नहीं। यह आग तो तुम्हारी आग है।"

गौरा ने एक क्षण चारो ओर देखा। फिर आगे जा कर बहुत-सी कुक-ड़ियाँ आग मे डाल दीं। बोली, "हाँ, यह मामूली आग थोड़े ही है—आप की नींद के लिए खास सुगन्धित आग जलायी गयी है—हाँ।"

भुवन खड़ा मुस्कराता रहा। गौरा ने पास आ कर आँख भर कर उसे देखा, फिर बोली, "अच्छा मैं जाती हूँ—तुम सो जाना अभी, हाँ?"

भुवन ने धीरे से सिर हिलाया, "हाँ।"

गौरा ने सहसा खिल कर कहा, "बच्चे हो तुम भी—बिल्कुल शिशु! अच्छा, अब से तुम्हे यही कहूँगी—बड़े-बड़े वैज्ञानिक नामो से डर लगता है।"

वह चल पड़ी। किवाड़ खोल कर आधी बाहर जाते-जाते मुड़ कर शरारत से बोली, "शिशु?" और चली गयी, पीछे उस ने भुवन का स्वर सुना, "जुगनू।"

भुवन सो कर देर से उठा, नींद खुलने के साथ ही एक वाक्य उस के मन मे गूँज गया: "शब्द अधूरे है—क्योकि उच्चारण माँगते हैं, मैं कह नही सकती थी, पर लिख सकती थी चाहती तो।" और सहसा उस की सब इन्द्रियो की चेतना सजग हो आयी, सब से दीर्घसूत्री घ्राणेन्द्रिय की भी, उस के नासा-पुटों में चीड़ के धुएँ और नरगिस के फूलों की मिश्रित गन्ध भर गयी और उसने जैसे उस मे दोनो गन्धो को अलग-अलग पहचान लिया।

"यह आग तो तुम्हारी आग है।" और यह गन्ध? यह गन्ध? भुवन अकुलाया-सा उठा, जल्दी से उसने मुँह-हाथ धोया और ड्रेसिंग गाउन लपेट कर फिर पलंग के सिरे पर बैठ गया।

क्यों उस ने गौरा को बाध्य किया था बोलने को? अपनी बात वह कहना चाहता था, उसे कहनी चाहिए थी, उस से वह भार-मुक्त भी हुआ, वह ठीक था—पर गौरा से क्यों उसने कहलवाया जो कहलवा कर छोड़ नहीं दिया जा सकता—कुछ कर्म माँगता है?

यह नहीं कि गौरा ने कहा नहीं था। जब वह—अपनी कहानी कह रहा था तब गौरा जिस प्रकार से अदृश्यप्राय हो गयी थी—फिर सहसा उस ने अपने केशों से उसे छा लिया था—उसे जिस ने गौरा को कहा था कि जब वैसा होगा तब वह जान लेगा कि खोज पूरी हो गयी—फिर उस का अधिकार-पूर्वक चन्द्रमाधव की ओर से पैरवी करना, ये सब क्या है अगर नहीं हैं एक आत्म-विश्वास के सूचक, ऐसे आत्म विश्वास के, जो किसी गहरे भावैक्य से, सम्पर्क से पैदा होता है? शब्द अधूरे हैं—उच्चारण माँगते हैं, गौरा अनुच्चारित सम्पूर्ण बात कह गयी है।

भुवन खड़ा हो कर इधर-उधर टहलने लगा। नहीं, यह असम्भव स्थिति है ऐसा नहीं चल सकता। वह भी अधूरा है, बल्कि पंगु है, क्या हुआ वह पंगुता घाव नहीं है तो—सम्पूर्ण को वह कैसे स्वीकार कर सकता है? कुछ भी कैसे स्वीकार कर सकता है जो केवल स्वीकार है, दान नहीं है? 'दो, दो, दो, जब तक कि तुम्हारे हाथ और तुम्हारा हृदय मुक्त न हो जाय!'—देने में ही मुक्ति है, स्वास्थ्य है—यह तो किसी ने नहीं कहा कि ले लो, सब स्वीकार करते चलो—दुर्भाग्य हो, व्यथा हो, हाँ, तब स्वीकार है: 'आमार भार लाघव करि नाइ वा दिले सान्त्वना, वहन जेन करिते पारि',—पर यह.. यहाँ स्वीकार से पहले बहुत सोचने की जरूरत है. उसे याद आयी रेखा की बात, "और भी बातें सोचने को हैं न, इसी लिए यह बात सोचने की नहीं रही—यह तभी सोची जा सकती है जब एक और अद्वितीय हो, दूसरी किसी बात से असम्बद्ध हो।.." वह प्रसंग दूसरा था, और तब वह

झल्लाया था, पर रेखा की बात ठीक थी—रेखा की सब बातें ठीक थीं, क्या हुआ वह फिर भी हारी तो—बल्कि इसी लिए तो हारी वह, मानव का विवेक सम्पूर्ण नहीं है, पर या तो वह बिलकुल अमान्य है, या वह अनिवार्यतः सर्वदा मान्य है...नहीं, वह गौरा से कह देगा, आज ही कह देगा।

वह उद्विग्न-सा बाहर जाने लगा। किवाड उस ने खोले, फिर क्षण-भर वहीं ठिठका रहा : दिन तो बहुत चढ गया है, क्या इसी रूप में बाहर घूमना उचित होगा, या वह कपडे पहन ले?

दूसरी ओर किवाड खुला। उनींदी आँखों को झपकती हुई गौरा निकली। उसे किवाड़ में खड़ा देख कर बोली, "अरे, तो आप अभी उठे है—मैं समझी अकेले घूमने चले गये होंगे—मैं तो घबरा गयी थी—मैं अभी मुँह-हाथ धो कर आयी, आज तो बड़ा दिन है—मेरा बडा दिन—" सहसा रुक कर उसने आँखें बड़ी कर के देखा, क्योंकि भुवन तब तक कुछ बोला ही नहीं था, भुवन के चेहरे का गूढ भाव देख कर फिर बोली, "क्या सोच रहे हो सबेरे-सबेरे, शिशु?" उस की मुस्कराहट के उत्तर में भुवन भी सायास मुस्कराया, वह लौट कर फिर कमरे में लौट गयी।

भुवन भी किवाड़ खुला छोड़ कर कमरे में लौट गया, और मेज़ के पास लगी कुरसी पर बैठ गया, एकाएक असहाय। वह कहेगा—कह देगा, पर अभी नहीं—आज नहीं, आज के बड़े दिन नहीं...

सामने मेज पर पडे नरगिस अपनी अनझिप आँखों से उस की ओर देखते हुए फीके-से मुस्करा दिये।

हाँ, यह गन्ध भी तुम्हारी गन्ध है—आग की भी, फूल की भी...

गौरा अपने कमरे में जा कर तुरन्त सोयी नहीं।

उस के कमरे की दो खिडकियों में से छोटी खुली थी, बड़ी नहीं, क्योंकि उस ओर हवा का रुख था, अब उस ने बडी खिड़की भी खोल दी। हवा के झोंके ने एक हल्की सिहरन उस की देह में दौड़ा दी, वह उसे अच्छा

लगा। वह खिड़की मे जा कर खडी हो गयी। इस खिडकी के नीचे गेंदे के चार-पाँच बडे-बड़े पौधे थे, बिजली की रोशनी मे उन के बडे-बडे पीले और कत्थई फूल चमक गये। क्या बेतुका फूल है गेंदे का भी, यूरोपियन मेमो को जब भारत आते ही एकाएक साडी पहनने का शौक सवार होता है तब वे जो, जैसी, जिन चटक रगो की साड़ियाँ—और जैसे।—पहनती है, उस पर मानो नीरव अन्योक्ति है गेंदे का फूल! इस तुलना पर गौरा तनिक-सी मुस्करा दी, फिर वह बत्ती बुझाने को मुडी कि इन फूहड मेमसाहबो की उपस्थिति से छुट्टी पा जाय, पर इरादा बदल कर वही लौट आयी। गेंदो की ओर उस ने फिर देखा, स्थिर दृष्टि से, कल्पना की जा सकती है कि ये झाडियाँ जल रही है—झाडियो के भीतर छिपायी गयी आग फूट कर बाहर निकाल रही है.. भुवन के कमरे मे बडी स्निग्ध गरमाई थी—भुवन शीघ्र सो जायगा शायद, उसे अभी नींद नही आ रही है और इस कमरे मे आ कर तो और भी नही, यह ठड शरीर को नयी स्फूर्ति दे रही।

उसने कल्पना की भुवन की उस मुद्रा की, जिस मे वह उसे छोड आयी थी कमरे के बीच मे खड़ा हुआ, और भुवन की आवाज उस के कानो गूँज गयी, "जुगनू!" न जाने क्यो, बचपन मे वह इस नाम से इतना क्यो चिढती थी; अब भी भुवन ने उसे चिढाने या पुरानी चिढ़ की याद दिलाने के लिए ही इस नाम से पुकारा था, पर वह उसे अच्छा लगा था और लग रहा था वह नाम मानो एक सेतु था इतने दिनो के व्यवधान और दुराव के पार उस के बचपन के सुखमय दिनो तक, जब वे एक-दूसरे की बात नहीं सोचते थे पर एक-दूसरे को जानते थे, सहज भाव से ..वह सहज भाव अब नहीं है, अब वे सोचते है, कहते है, दूर हटते है और फिर दूरी को उलाँघते है: बचपन के साथी पास होते हैं, यौवन के साथी पास आते है—लेकिन आने की अवस्था ही क्या होने की श्रेष्ठ अनुभूति नहीं है?

वह भुवन से क्या कह आयी है—कितना कह आयी है? कुछ भी कह आयी हो, वह कुछ भी कह नही पायी है यह वह जानती है, और भुवन सुन कर भी क्या सुनता है वह नही जानती।

"आप मुझे चैलैंज कर रहे है? तो सुनिए—" किस दुस्साहस से वह कह गयी थी... लेकिन उसे अच्छा लगा कि वहाँ वह साहस कर आयी—सच-मुच वह भुवन का दर्द धो देने के लिए कुछ भी कर सके तो सहर्ष तैयार है। भुवन के लिए नहीं, अपने लिए, क्योंकि सुखी भुवन उस के जीवन के लिए आवश्यक है—उस के आधार पर उसने अपने जीवन का दर्शन खड़ा किया है... "मै कह नही सकती थी, लिख सकती थी अगर चाहती तो,"—अगर भुवन उसे फिर चुनौती देता कि अच्छा देखूँ, लिखो—तो.. क्या वह लिखती? शब्द अधूरे हैं, उच्चारण माँगते हैं, लेकिन शब्दो के अन्तराल, पदो-वाक्याशो की यति मे, उस यति के मौन मे एक शक्ति है जो उच्चारण के अधूरेपन को ढक देती है, सम्पूर्णता देती है; और लिखने मे वह नहीं है, लिखना बहुत पड़ता है...जैसे स्पर्श मे—हल्के-से-हल्के भी स्पर्श मे—कहने की जो शक्ति है वह किसी दूसरी इन्द्रिय में नहा है—स्पर्श-सवेदना सब से पुरानी सवेदना जो है, और बाकी सब उस के विस्तार

गौरा धीरे-धीरे खिड़की से हट कर बिछौने पर बैठ गयी, पास की छोटी मेज के निचले ताक से उस ने पैड और कलम उठाया और गोद में रख लिया। नही, वह कुछ लिखना नहीं चाहती है, लिख कर कहना तो और भी नहीं; पर केवल एक आत्मानुशासन के रूप में—केवल अपने को स्थिर-चित्त करने के लिए वह दो-चार वाक्य लिखेगी—और नहीं तो इस प्रकार अपना प्रतिबिम्ब देखने के लिए—उस के भीतर जो है, वह कितना खरा है? कितना अच्छा है? कितना गहरा, सच्चा, अर्थाविष्ट है! या नहीं है...

वह रुक-रुक कर बारीक अक्षरो मे एक-एक, दो-दो पंक्ति लिखने लगी।

"सचमुच मेरे जीवन का सब से बड़ा इष्ट यही है कि तुम्हे सुखी देख सकूँ—तुम्हारे व्रण ठीक कर सकूँ। मेरे स्नेह-शिशु, मैं तुम्हारे ही लिए जीती हूँ, क्योंकि तुम में जीती हूँ ...

"मेरा सहज बोध मुझे बताता था—पर तुम दूर थे, तुम और दूर

भागते रहे; और मै विश्वास नही जुटा पाती थी मै अन्तर्यामी तो नही हूँ। मैंने मान लिया, भक्त कवि ही ठीक कहते हैं, प्रिय को पाना ही निष्पत्ति नही है, विरह का भी रस है, और वह रस भी एक मार्ग है .

"मेरे शिशु, स्नेह-शिशु। भक्तो ने जो कृष्ण के बाल-रूप की कल्पना की है, वह बहुत बड़ी कल्पना है...जिसे मैं गोद खिलाती हूँ, वह अवतार भी है, भगवान भी है—यशोदा जिसे पालने झुलाती है, वात्सल्य देती है, उसी को अपार श्रद्धा भी देती है, राधा जिस दही-चोर को धमकाती है, उसी के पैर भी पूजती है—कोई भी प्यार नहीं है जो वत्सल नही है, कोई भी दान नहीं है जो विनीत नहीं है .

"तुम मेरा भविष्य हो, इस लिए मैं तुम्हे बनाती हूँ।

"तुम ने मुझे विश्वास दिया है, मैं तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ। मुझे लगता है, मैंने बहुत बड़ी निधि पायी है, ऐश्वर्य पाया है। और तुम से। मेरे जीवन के सारे तन्तु तुम्हारे चारो ओर लिपट गये हैं। वे बहुत सूक्ष्म है, तुम्हे बाँधेंगे नही, पर तुम उन्हे छुड़ा नहीं सकोगे, तोड़ ही सकोगे—और सब नष्ट कर के ही। उन का कोई बोझ तुम पर नहीं होगा ..

"आग से तुम नही डरोगे अब—किसी चीज से नहीं डरोगे। आग को मै सुगन्धित कर दूँगी, शिशु, जरूरत होगी तो स्वय उस मे होम हो जाऊँगी पर तुम नहीं डरोगे, मुझे वचन दो, अपने को नही सताओगे—डर से नहीं, परिताप से नहीं...और हाँ, प्यार से भी नही—वह तुम्हें क्लेश दे तो उसे भी हटा देना। तुम देवत्व की साँस हो, देवत्व की शिखा हो जिसे मै अन्तःकरण मे पालूँगी .."

पन्ना उलट कर गौरा रुक गयी। पिछले तीन घटो का दृश्य उस के मन मे फिर उभर आया। उसे ध्यान आया, उस ने जब-जब पूछा था कि तुम भाग तो नही जाओगे, तब-तब भुवन ने बात पलट दी थी, उत्तर नहीं दिया था। तो क्या वह उसे छोड़ कर चला जायगा—क्या वैसा इरादा उसने कर रखा है ?

गौरा इसे अभी नहीं सोचेगी। वैसा ही है, तो वैसा हो हो। वह

साँस, वह शिखा, छोड कर चली जाय तो चली जाय। उस साँस से वंशी वंशी है, जिस मे समूचे वन-प्रान्तर की आकांक्षा बोलती है, नहीं तो केवल बाँस की एक पोर; फिर भी...

फिर उसने लिखना आरम्भ किया।

"वचन दो कि तुम अपने को अनावश्यक सकट मे नहीं डालोगे... जो आवश्यक है, उस से मेरी होड नहीं, वह तुम्हे पुकारे, उसे तुम वरो; पर जो अनावश्यक है, उसे तुम नही पुकारोगे।"

पैड को थोडा परे सरका कर, उस ने निःस्वन ओठो से पुकारा, "भुवन .." फिर वैसे ही दुबारा, "भुवन..."

"मै तुम्हे पुकारती हूँ। बार-बार पुकारती हूँ, यहाँ तक कि मेरी पुकार ही सम्मोहनी बन कर मुझे शान्त कर देती है, मेरी माँग को सुला देती है।"

उठ कर उसने कमरे के दो-तीन चक्कर लगाये। फिर धीरे से बाहर निकल कर वह भुवन के कमरे तक गयी, किवाड से कान लगा कर उसने सुना, कोई शब्द नही था। किवाड़ो के बीच की दरार से झाँका, भीतर अँधेरा था; आग की बहुत हलकी-सी लोहित आभा थी, बस। लौटती हुई क्षण-भर वह बीच के कमरे के आगे ठिठकी, उस का मन हुआ कि भीतर से सितार निकाल कर बजाने बैठे; पर फिर वह आगे बढ कर अपने कमरे मे चली गयी। किवाड बन्द कर के बत्ती बुझा कर लेट गयी।

दूर बहुत हल्के चार खड़के, पर गौरा ने नहीं सुना।

बडा दिन...गौरा भुवन को नाश्ते के लिए ऊपर ले गयी, नाश्ते के बाद सब लोग टहलने निकले। अधिक नहीं घूमे, शाम को दुबारा घूमने जाने की ठहरी; लौट कर गौरा के पिता बरामदे मे आराम-कुरसी पर लेट गये और भुवन उन के पास बैठा बाते करता रहा। दोपहर का भोजन हुआ, उस के बाद पिता फिर उसी कुरसी पर बैठ कर तिपाई पर पैर फैला कर ऊँघते रहे; गौरा से यह सकेत पा कर कि 'लन्च के बाद पापा आराम करेंगे, भुवन अपने कमरे में चला गया। बड़े दिन को कभी विशेष महत्व उस ने

नहीं दिया था, पर गौरा की बात का असर उस पर था, बैठ कर उस ने चन्द्रमाधव को एक छोटी-सी चिट्ठी लिख डाली; फिर रेखा को भी एक और अपने कालेज को भी दो एक, फिर रात के जागरण के कारण उसे भी ऊँघ आने लगी और वह सो गया। दो-ढाई घंटे की नींद के बाद कोई पाँच बजे जब वह उठा, तो गौरा के कमरे से सितार के बहुत हल्के स्वर आ रहे थे। उस का मन हुआ, अगर वह गा सकता... पर नहीं, गाता तो शायद कुछ उदास गान ही गाता, और गान को उदास होना हो तो मौन ही क्या बुरा है? वह अलसाया-सा लेटा सुनता रहा, सितार के तार झनझना भी देते है, पर विचलित भी नहीं करते, जैसे किसी सोये का कोई थपकी दे-दे कर उद्बोधन करे ..

सितार बन्द हो गया, उस के दो-चार मिनट बाद गौरा चाय का ट्रे लिये उस के कमरे मे प्रविष्ट हुई। ट्रे रखते हुए बोली, "सोये?"

"हाँ, खूब। तुम?"

"थोड़ा। दिन मे सो नही पाती—जाड़ो मे।"

"रात तो सोथी थीं—जा कर क्या करती रही?"

"और रतजगा थोड़े ही करती?" गौरा ने टाला।

भुवन ने ताडते हुए पूछा, "क्या करती रही?"

"आवृत्ति।"

"क्या—काहे की?"

गौरा ने एक बार नकली झल्लाहट की अर्थ-भरी दृष्टि से उस की ओर देखा, और सहसा मुस्करा कर बोली, "शिशु, शिशु, शिशु।"

भुवन ने भी मुस्करा कर उस की नकल करते हुए कहा, "जुगनू, जुगनू," और क्षण भर की अवधि दे कर, खिल कर, "हिडिम्बा!"

चाय पीते-पीते भुवन ने पूछा, "घूमने की पक्की है न—मैं तैयार हो जाऊँ?"

"आप को शर्म नहीं आयेगी माल पर एक हिडिम्बा के साथ घूमते?"

भुवन ने अप्रस्तुत भाव से कहा, "धत्!" फिर सँभल कर, "पर मै तो

साँस, वह शिखा, छोड कर चली जाय तो चली जाय। उस साँस से वशी वशी है, जिस मे समूचे वन-प्रान्तर की आकाक्षा बोलती है, नहीं तो केवल बाँस की एक पोर, फिर भी...

फिर उसने लिखना आरम्भ किया।

"वचन दो कि तुम अपने को अनावश्यक सकट मे नही डालोगे... जो आवश्यक है, उस से मेरी होड नहीं, वह तुम्हे पुकारे, उसे तुम वरो; पर जो अनावश्यक है, उसे तुम नही पुकारोगे !"

पैड को थोडा परे सरका कर, उस ने निःस्वन ओठो से पुकारा, "भुवन ..." फिर वैसे ही दुबारा, "भुवन..."

"मैं तुम्हे पुकारती हूँ। बार-बार पुकारती हूँ, यहाँ तक कि मेरी पुकार ही सम्मोहनी बन कर मुझे शान्त कर देती है, मेरी माँग को सुला देती है।"

उठ कर उसने कमरे के दो-तीन चक्कर लगाये। फिर धीरे से बाहर निकल कर वह भुवन के कमरे तक गयी, किवाड़ से कान लगा कर उसने सुना, कोई शब्द नही था। किवाडो के बीच की दरार से झाँका, भीतर अँधेरा था; आग की बहुत हलकी-सी लोहित आभा थी, बस। लौटती हुई क्षण-भर वह बीच के कमरे के आगे ठिठकी, उस का मन हुआ कि भीतर से सितार निकाल कर बजाने बैठे; पर फिर वह आगे बढ कर अपने कमरे मे चली गयी। किवाड बन्द कर के बत्ती बुझा कर लेट गयी।

दूर बहुत हलके चार खडके, पर गौरा ने नहीं सुना।

बड़ा दिन...गौरा भुवन को नाश्ते के लिए ऊपर ले गयी; नाश्ते के बाद सब लोग टहलने निकले। अधिक नहीं घूमे, शाम को दुबारा घूमने जाने की ठहरी, लौट कर गौरा के पिता बरामदे मे आराम-कुरसी पर लेट गये और भुवन उन के पास बैठा बातें करता रहा। दोपहर का भोजन हुआ, उस के बाद पिता फिर उसी कुरसी पर बैठ कर तिपाई पर पैर फैला कर ऊँघते रहे; गौरा से यह संकेत पा कर कि 'लच के बाद पापा आराम करेंगे, भुवन अपने कमरे मे चला गया। बड़े दिन को कभी विशेष महत्त्व उस ने

नहीं दिया था, पर गौरा की बात का असर उस पर था, बैठ कर उस ने चन्द्रमाधव को एक छोटी-सी चिट्ठी लिख डाली, फिर रेखा को भी एक और अपने कालेज को भी दो एक, फिर रात के जागरण के कारण उसे भी ऊँघ आने लगी और वह सो गया। दो-ढाई घंटे की नींद के बाद कोई पाँच बजे जब वह उठा, तो गौरा के कमरे से सितार के बहुत हल्के स्वर आ रहे थे। उस का मन हुआ, अगर वह गा सकता .. पर नहीं, गाता तो शायद कुछ उदास गान ही गाता, और गान को उदास होना हो तो मौन ही क्या बुरा है? वह अलसाया-सा लेटा सुनता रहा, सितार के तार झनझना भी देते हैं, पर विचलित भी नहीं करते, जैसे किसी सोये का कोई थपकी दे-दे कर उद्बोधन करे..

सितार बन्द हो गया, उस के दो-चार मिनट बाद गौरा चाय का ट्रे लिये उस के कमरे में प्रविष्ट हुई। ट्रे रखते हुए बोली, "सोये?"

"हाँ, खूब। तुम?"

"थोड़ा। दिन में सो नहीं पाती—जाड़ों में।"

"रात तो सोयी थीं—जा कर क्या करती रहीं?"

"और रतजगा थोड़े ही करती?" गौरा ने टाला।

भुवन ने ताड़ते हुए पूछा, "क्या करती रही?"

"आवृत्ति।"

"क्या—काहे की?"

गौरा ने एक बार नकली झल्लाहट की अर्थ-भरी दृष्टि से उस की ओर देखा, और सहसा मुस्करा कर बोली, "शिशु, शिशु, शिशु!"

भुवन ने भी मुस्करा कर उस की नकल करते हुए कहा, "जुगनू, जुगनू," और क्षण भर की अवधि दे कर, खिल कर, "हिडिम्बा!"

चाय पीते-पीते भुवन ने पूछा, "घूमने की पक्की है न—मैं तैयार हो जाऊँ?"

"आप को शर्म नहीं आयेगी माल पर एक हिडिम्बा के साथ घूमते?"

भुवन ने अप्रस्तुत भाव से कहा, "धत्!" फिर सँभल कर, "पर मैं तो

पिताजी के साथ जाऊँगा न"—

"वह तो चले गये पहले—आप सो रहे थे तब। ज्यादा ठंड में वह नहीं रहना चाहते न!"

गौरा जब तैयार हो कर आयी तो भुवन ने कहा, "ओ, यह हिडिम्बा का माया-रूप है न, इतना सुन्दर!"

गौरा तनिक-सी झेंप गयी, पर उस के चेहरे की कान्ति ढलती धूप में और भी दमक उठी। भुवन अचम्भे मे भरा उसे देखता रहा, जैसे पहले-पहल उसे देखा हो।

सप्ताह बहुत छोटा होता है—बहुत जल्दी बीत गया। उस मे कुछ लम्बा था तो उन की बहसे, लेकिन वे भी किसी परिणाम पर नहीं पहुँचीं; प्रायः ही बात-चीत के बाद परिणाम निकलता कि घूम आया जाय—या कभी-कभी गौरा सितार बजाने बैठ जाती, कभी भुवन अकेला सुनता, कभी गौरा के माता-पिता भी रहते।

नये साल के दिन भुवन भी सवेरे जा कर बहुत से फूल खरीद कर लाया, गौरा भी। गौरा पहले लौटी थी और फूल सजा रही थी जब भुवन पहुँचा, भुवन की 'अरे!' सुन कर वह उठी, भुवन के हाथो मे बड़ी-बड़ी फूल देख कर उस 'अरे' का अर्थ तुरत समझती हुई उसने भुवन के हाथ से सारे फूल ले लिये और बोली, "ये सब मै अपने कमरे मे रखूँगी। आप चल कर सजा दीजिए न—"

भुवन ने कहा, "गौरा, नया वर्ष शुभ हो तुम्हारे लिए—"

"और आप के—"

गौरा के कमरे मे पहुँच कर भुवन ने एक नजर चारो तरफ डाली, गौरा ने फूल उसे पकड़ाते हुए कहा, "जरा इन्हे लीजिए, मैं फूलदान ले आऊँ।" पानी-भरे फूलदान ला कर उस ने खिड़की मे रख दिये और बोली, "लीजिए, अब अपने मन से इन्हे सजा दीजिए।"

भुवन सजाने लगा। गौरा ने कहा, "मैं अभी आयी," और बाहर

चली गयी, भुवन के कमरे मे फूल रख कर वह लौटी तो वह एकाग्र चित्त से फूल सजा रहा था, एक फूलदान उस ने पलग के सिरहाने रख दिया था, दो और सजा रहा था। गौरा का आना उस ने लक्ष्य नही किया। वह क्षण-भर उसे निहारती रही, फिर एकाएक आगे बढ कर उसने भुवन के पैरो मे झुकते हुए धीरे से कहा, "मेरा प्रणाम लो, शिशु—"

भुवन ने बिलकुल अचकचा कर कहा, "यह क्या गौरा—शिशुओ को प्रणाम करते है?" उस के हाथ का फूल छूट कर गौरा की पीठ पर गिर गया।

"हॉ—देव-शिशु को प्रणाम ही करते है।" गौरा धीरे-धीरे उठी, उठते-उठते उस ने एक हाथ पीछे मोड़ कर पीठ पर गिरा फूल पकड लिया कि नीचे न गिरे, फिर उसे बालो मे खोस लिया।

तीसरे पहर की सर्विस से, पूर्व-निश्चय के अनुसार, भुवन नीचे चला गया, दूसरी तारीख को उसे कालेज पहुँचना था।

सगीत-शिक्षिका गौरा अपने कालेज मे सर्वप्रिय थी, पर मसूरी से लौट कर कालेज जाने पर मानो लोगो ने उसे नयी दृष्टि से देखा। "मसूरी आप को बहुत माफिक आयी है।" "मिस नाथ, आप कोई कम्प्लेक्शन क्रीम लगाती है—हमे भी बता दीजिए।" "मसूरी की हवा मे कुछ जादू मालूम होता है।" इस प्रकार के बीसियो वाक्य उसे रोज़ सुनने पडते—अन्य अध्यापिकाओ से भी, छात्राओ से भी, कभी वह मन-ही-मन झल्ला उठती, पर चेहरे पर एक सूक्ष्म अन्तर्मुखीन मुस्कराहट लिये वह अपने काम मे लीन घूमती रहती, कुछ कहती नही, कभी इन बातो से वह थोड़ा-सा झेंप जाती और धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगती, कभी एकान्त मे बैठ कर देर तक सितार या तबला भी बजाती रहती, उस की यो ही ढीली रहने वाली कबरी खुल जाती और बाल कन्धे पर झूल जाते, एक-आध उड कर माथे पर आ जाता या आँखो के नीचे कुण्डल बना देता और उस की छवि और

भी मनोहारिणी हो आती.. अध्यापिकाओं में गौरा का कबरी-बन्धन पहले ही एक मजाक था : अध्यापिका, फिर युक्त प्रान्त की—बालों को कस कर, चिपका कर बाँधने का उन के निकट बहुत महत्त्व था और गौरा की इस महत्त्वपूर्ण विषय मे इतनी उपेक्षा को वे सहज भाव से न ले पाती थीं। दो-एक मलाबारिने भी ढीले बाल बाँधती थीं, पर वह दूर द्राविड देश है, और रामायण पढने वाली महिलाओं के मन मे अवचेतन रूप से यह बात तो रहती ही है कि विन्ध्य के पार सब जंगल है—और दूर दक्षिण मे तो वनौकस रहते हैं, जानी बात है। लेकिन गौरा दक्षिणी नहीं है.. पर छात्राओं को यह प्रकृत रूप अच्छा लगता, वे कभी मजाक भी करतीं तो प्रीति-भाव से।

महीने के अन्त मे—जनवरी १६४२—गौरा और भुवन के एक-दूसरे को लिखे गये पत्र दोनों को लगभग साथ-साथ मिले। भुवन ने गौरा को वसन्त की शुभ-कामनाएँ भेजी थीं, और यह सूचना दी थी कि वह फिर बाहर जा रहा है—ठीक विदेश नहीं, पर सागर-पार, हिन्द महासागर मे कहीं—कदाचित् अंडमान मे—रेडियो के नये प्रयोगों के लिए एक छोटा सा केन्द्र बन रहा है, उसी मे। केन्द्र सैनिक नियन्त्रण मे होगा और इस अन्वेषण का इस समय सामरिक महत्त्व ही अधिक है यद्यपि आगे वह अत्यन्त उपयोगी होने वाला है। अधिक दिन के लिए नहीं जा रहा है, नये सेशन से पहले ही लौट आयेगा शायद। गर्मियों की छुट्टियों मे गौरा तो दक्षिण होगी शायद, हो सकता है कि लौट कर वह उधर आवे...अन्त में एक वाक्य और था, "मैं असुखी नहीं हूँ गौरा, न—उन पिछली बातों से तप रहा हूँ, तुम चिन्ता न करना, और अपनी देख-भाल करना।"

गौरा की चिट्ठी भी मुख्यतया सूचना के लिए थी। गर्मियों का अवकाश वह दक्षिण में ही बितायेगी—मद्रास या बंगलोर मे किसी संगीताचार्य के पास—और तभी वहाँ निश्चय कर लेगी कि और एक वर्ष भी उधर ही रह जाय या वापस बनारस आवे। पत्र के साथ उस ने बम्बई के अखबार की एक कतरन भेजी थी : "इस कटिंग मे अवश्य तुम्हें दिलचस्पी होगी : मैं तो

अवाक् हो कर सोचती हूँ कि चन्द्रमाधव कैसे कम्युनिस्ट हो सकते हैं—मनसा भी, और उन के इधर के काम तो बिल्कुल इस के विरुद्ध जाते हैं, और यह विवाह . फिर भी आशा है तुम उन्हे शुभ-कामनाओ का एक पत्र लिख दोगे। मै भी लिख रही हूँ। बधाई का भाव तो मन मे नही उठता—झूठ क्यो बोलूँगी—पर सत्कामनाएँ भेजूँगी।" अन्त मे उस ने भी अधिक निजीपन से लिखा था, "मै 'तुम' लिख गयी हूँ—बिना इजाजत लिये ही—बुरा तो न मानोगे? बोलने मे, लगता है अब भी मिलूँगी तो 'आप' ही कहूँगी, पर चिट्ठी मे 'तुम' लिखना ही आसान भी और ठीक भी जान पड़ रहा है, बल्कि सोचती हूँ, 'आप' अब कैसे लिखूँ? आप नाराज तो न हो जाइयेगा, देव-शिशु?"

इस के साथ जो कतरन थी उस मे चन्द्रमाधव के विवाह का समाचार और विवरण था। उस का साराश यह था कि बम्बई में २७ जनवरी सन् १६४२ को सुप्रसिद्ध जर्नलिस्ट कामरेड चन्द्रमाधव का विवाह आर्यसमाजी पद्धति से मिस चन्द्रलेखा से हुआ। मिस चन्द्रलेखा प्रसिद्ध अभिनेत्री हैं। विवाह के पूर्व शुद्धि-सस्कार का उल्लेख था जिस से विदित होता था कि मिस चन्द्रलेखा अहिन्दू रहीं। विवाह के बाद पार्टी हुई जिस में सिनेमा-जगत् के अनेक सितारे उपस्थित थे, और बम्बई के भद्र-समाज के कई अग्रणी व्यक्ति—इन की सूची भी थी। कामरेड चन्द्रमाधव स्थानीय 'प्रोग्रेसिव जर्नलिस्ट बिरादरी' के उप-प्रधान और प्रमुख प्रोग्रेसिव बौद्धिक और लेखक थे; अनेक जर्नलिस्ट और प्रोग्रेसिव लेखको तथा कम्युनिस्ट केन्द्रीय समिति के कुछ सदस्यो ने भी उत्सव मे भाग लिया था और कामरेड चन्द्रमाधव को बधाई दी थी।

भुवन का उत्तर गौरा को एक महीने बाद मिला। किसी सैनिक डाक-घर की उस पर मुहर थी; गौरा ने अनुमान से जान लिया कि अंडमान से आया होगा। चन्द्रमाधव को भुवन ने शुभ-कामनाएँ भेज दी थीं, गौरा के दक्षिण जाने का निश्चय पक्का हो गया यह जान कर उसे प्रसन्नता हुई थी और उसे आशा थी कि वह उसे शीघ्र मिलेगा—जहाँ वह था वहाँ काम तो

बहुत था पर इस की सम्भावना कम थी कि अधिक दिन रहना पड़े। (इस से गौरा ने अनुमान लगाया कि कदाचित् वहाँ संकट आने की सम्भावना है।) और चन्द्रमाधव के विषय में गौरा ने पूछा था, उस का उत्तर देते हुए लिखा था : "राजनीति के बारे में मेरा कुछ कहना अनधिकार है—मेरा वह क्षेत्र बिल्कुल नहीं है। पर जैसा मैं देखता हूँ, हमारे देश में कम्युनिस्ट दो प्रकार के हैं—एक तो जो वास्तव में मज़दूर हैं, दूसरे मध्य या उच्च वर्ग के कुछ लोग जो अपनी परिस्थितियों के उत्तरदायित्व से भागते हैं—या भाग गये हैं। यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि ऐसे आदमी कैसे कम्युनिस्ट हो सकते हैं, मेरा ख्याल है कि ऐसे सम्पन्न साम्यवादी, साम्यवादी क्षेत्र में भी उतने ही अविश्वसनीय होते हैं जितने उस क्षेत्र में जिस से वे भागते हैं—यानी जिन के उत्तरदायित्व से भागते हैं पर जिस की सहूलियतों और विशेषाधिकार नहीं छोड़ना चाहते। और मैं समझता हूँ कि वे तब तक अविश्वसनीय रहते हैं, जब तक कि कोई बड़ी कुण्ठा उन्हें सदा के लिए पंगु नहीं बना देती—कुण्ठित व्यक्ति ही विश्वास्य वर्गवादी बन सकता है.. मज़दूर वर्ग के जो हैं, उन्हें तो सामाजिक वर्गीकरण का और वर्ग-स्वार्थों का उत्पीड़न कुण्ठित किये ही रहता है, जो वर्ग-समाज में ऊँचे पर होते हैं वे किसी दूसरे प्रकार से कुण्ठित हो कर पक्के हो जाते हैं। चन्द्रमाधव भी अत्यन्त कुण्ठित व्यक्ति है—जब तक नहीं था, तब तक उस में असन्तोष बहुत था पर यह रूप उस ने नहीं लिया था : अब—अब वह कुण्ठित हो चुका है और उस का असन्तोष युक्ति से परे हो गया है—कुण्ठित होना अब उस के जीवन की एक आवश्यकता बन गया है, उस की कुण्ठा और उस का वाद परस्पर-पोषी हैं, और एक-दूसरे को और गहरा पहुँचाते हैं। किसी पर दया करना पाप है, नहीं तो मैं चन्द्र को दया का पात्र मान लेता। अब इतना ही कहूँ कि वह भी '*वन मोर ट्रायम्फ फार डेविल्स एण्ड सारो फार एंजेल्स है*'...

पत्र में अन्तरंग बात कुछ नहीं थी। गौरा को कुछ निराशा तो हुई, पर अधिक नहीं; उसे इसी में स्वाभाविकता दीखी, कुछ यह भी लगा कि यही उस की वर्तमान स्थिति को सहनीय बनाता है, नहीं तो वह व्याकुल हो

उठती । पत्र में कुछ औपचारिक आत्मीयता की बात होती तो अधिक क्लेशकर होती, आत्मीयता की कोई बात ही न होना उदासीनता का नहीं, अनुशासन का द्योतक था, और आत्मानुशासन अगर भुवन के लिए सहल है तो उस के लिए और भी सहल होना चाहिए—सहल और हाँ, उपयोगी भी, क्योंकि वह जीवन को माँजेगा और एक नयी कान्ति, नयी गहराई भी देगा ..

गौरा के जीवन की एक लीक बनने लगी—न बहुत गहरी कि उस से उबरा न जा सके, न बहुत कड़ी कि उसे मिटा कर नयी लीक न डाली जा सके, फिर भी एक लीक। प्राणी जब शरीर को बाँध कर रखता है, तब उस का विद्रोह मिट्टी को खूँदने के रूप में प्रकट होता है, जब मन को बाँधता है, तब वह विद्रोह एक पटरी पर निरन्तर आती-जाती गति के रूप में प्रकट होता है—जब तक कि वह विद्रोह है, यह दूसरी बात है कि धीरे-धीरे भीतर वह विद्रोह मर जाय, पटरी क्रमशः फौलादी लीक बन जाय जिस से इधर-उधर हटना सुविध नहीं, पटरी से गिर जाना हो, उलट जाना हो ..

रेखा को भी उस ने एक-आध पत्र लिखा, रेखा का उत्तर भी आया। उत्तर में अपनापा भी था, पर एक तटस्थता भी, कुछ यह भाव कि मेरी तरफ से कोई यन्त्र या सीमा नहीं बनायी गयी है, पर मैं स्वयं अपने भीतर के अन्वेषण में खोयी हुई हूँ और बाहर से मेरा सम्बन्ध उदार दृष्टि का ही है, बाहर की ओर बहने का नहीं...इतना उसे ज्ञात हुआ कि रेखा फिर अस्वस्थ है, अस्वस्थ ही रहती है, और यत्न कर रही है कि उस का काम उसे विदेश ले जाय—कदाचित् पश्चिम की ओर वह चली भी जायगी।

होली पर उस ने भुवन को एक लिफ़ाफ़े में भर कर थोड़ा अबीर और अभ्रक का चूर भेजा, साथ यह आग्रह कर के कि इसे वह गौरा की ओर से अपने मुँह पर मल ले, कुछ दिन बाद उत्तर आ गया, और अगली डाक से एक पैकेट में कुछ सूखे फूल। पत्र में भुवन ने लिखा था कि होली उस ने खेल ली, दो-एक फोटो भी रंगे मुँह के लिये गये थे जो वह शायद बाद में भेज सके, अलग डाक से वह कुछ फूल भेज रहा है जो स्थानीय श्रेष्ठ

उपहार है—एक केवड़े का, और कुछ नागकेशर के: केवड़ा तो ख़ैर परिचित है, पर नागकेशर उसने पहले नहीं देखा था और गौरा ने भी कदाचित् न देखा होगा—इस का भव्य वृन्त और इकहरे सफेद जंगली गुलाब-सा फूल दोनों ही दर्शनीय है। और गन्ध—गन्धमादन पर्वत जहाँ भी रहा हो, उस का नाम जरूर नागकेशर की गन्ध के कारण ही पड़ा होगा.

फिर उस ने लिखना आरम्भ किया था कि "ये फूल तुम पहन लेना"—लेकिन इस वाक्य को काट कर लिखा था, "तुम तक पहुँचते फूल तो सूख जायेंगे—पर गन्ध शायद बनी रहे, उसे सूँघो तो स्मरण कर लेना कि मेरे स्नेह की साँसे भी तुम्हारी स्मृति को घेरे है।"

लेकिन जो सूखे फूल गौरा तक पहुँचे उन मे गन्ध भी नही थी। यह सूचना उस ने भुवन को दे दी—"तुम्हारे भेजे हुए फूल मिले—पर उन की गन्ध तो उड़ गयी। काश! मैं भी ऐसे ही उड़ जा सकती—उड़-कर शून्य मे विलीन होने को नहीं, उन पेड़ो तक पहुँचने को, जिन के नीचे बैठ कर तुम उन की सुगन्ध नासा-पुटो मे भरते होगे, जिन के नीचे तुम्हें मेरी याद आयी। तुम्हारी साँसे मेरी स्मृति को घेरती है—(?)—पर मुझे, भुवन मुझे? मुझे से तुम दूर-ही-दूर जाते हो और जाते रहे हो। अच्छा, जाओ, जहाँ भी जाओ, मुक्त रहो, जो दूर रहना चाहता है, उस के पास जाने की कोशिश क्यो—और तुम्हारी वैसी साधना है तो उसे मैं क्यों विफल करने लगी। मैं ने सोचना चाहा था कि तुम जा नही सकोगे, पर नहीं सकी, और अब यत्न भी नहीं करती। तुम पहले भी चले गये थे, 'धागा-मनका तोड़ कर' चले गये थे, फिर तुम वापस आये—पर कहाँ आये, मैं ने समझ लिया क्योंकि वैसा ही मैं मानना चाहती थी। पर उन बातों को छोड़ो; प्रतीक्षा करना भी अच्छा है—आशापूर्वक भी, निराशापूर्वक भी, क्योंकि आशा और निराशा दोनों प्रतीक्षा में ही सार्थक है।"

जिन अध्यापिकाओं और मुँह-लगी छात्राओं ने मिस नाथ के कन्सेशन और मसूरी के जलवायु के प्रताप की चर्चा की थी, वे अब जब-तब कहने लगीं, "मिस नाथ; आप को यहाँ अच्छा नही लगता? आप फिर

मसूरी हो आइये न—आप का चेहरा न जाने कैसा हो रहा है? नहीं, अस्वस्थ नहीं, पर न जाने कैसा एक कठोर भाव उस पर आता जाता है।" ऐसी बात सुन कर गौरा को सहसा स्वयं बोध हो आता, हाँ, उस के चेहरे पर एक तनाव है जो नहीं होना चाहिए, क्षण-भर आयासपूर्वक वह चेहरे के स्नायु-तन्तुओं को ढीला कर के हँस कर कहती, "कुछ नहीं, शायद मास्टरनियों वाला चेहरा हुआ जा रहा होगा—मास्टरनी का चेहरा एक अलग किस्म का होता है—जिस तरह आदमी और सिख दो अलग-अलग जातियाँ होती हैं, उस तरह औरत और मास्टरनी भी दो अलग जातियाँ होती हैं।" बात हँसी में उड़ जाती, पर पीछे गौरा सोचने लगती, क्या सचमुच ऐसे उस का चेहरा कठोर हो जायगा—क्यों? अनुशासन की रेखाएँ होती हैं अवश्य, पर अप्रीतिकर रेखाएँ तो उस की होनी चाहिएँ, जो अनुशासन बाहर से आरोपित किया गया हो, जो भीतरी है, जो साधना है, और जो आनन्ददायिनी भी है, वह क्यों कठोर रेखाएँ लाये—उस की रेखाएँ तो मृदु होनी चाहिएँ—पुस्तकों में तो यही लिखा है कि साधना से चेहरे पर एक कान्ति आती है, शरीर भले ही कृश हो जाय। उसे 'कुमार-सम्भव' की तपस्या-रत हिमालय-सुता की याद आ जाती, कालिदास की पंक्तियाँ वह धीरे-धीरे दुहरा जाती :

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि
प्रवेपमानाधरपत्रशोभिता ।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदा
सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम् ॥

फिर सहसा इस में निहित तुलना की अहम्मन्यता पर वह लज्जित हो जाती और कोई वाद्य ले कर बजाने बैठ जाती कि उस में लज्जा और उस समूची विचार-परम्परा को डुबा दे .. और वास्तव में वह बजाते-बजाते विभोर हो उठती, तब वे सब रेखाएँ मिट जातीं और सचमुच एक अद्भुत कान्ति उस के चेहरे पर छा जाती—मसूरी के जलवायु में पायी कान्ति से भी अधिक आभायुत—लेकिन वह स्वयं उसे न जान पाती, वादन समाप्त कर के वह उठती,

तो उस के चेहरे पर एक मृदुल स्थिरता का भाव होता जैसा सद्यः सो कर उठे स्वस्थ शिशु के चेहरे पर होता है।

इसी प्रकार सेशन पूरा हो गया, छुट्टियाँ लगीं, गौरा तीन-चार दिन के लिए मसूरी हो कर, भुवन को अपने दक्षिण जाने की सूचना दे कर मद्रास चली गयी।

९ अप्रैल सन् १९४२ को भारत में पहला जापानी बम गिरा। गौरा उस दिन मसूरी में थी, समाचार मिलते ही उस ने रेखा को पत्र लिखा, उस का कुशल-समाचार पूछा, और यह सम्भावना प्रकट की कि रेखा का काम अब बहुत बढ़ जायगा—क्या वह इतना परिश्रम कर सकेगी, और क्या उस का विदेश जाने का विचार अभी है कि बदल जायगा? भुवन के बारे में भी उस ने चिन्ता प्रकट की—भुवन न जाने कहाँ है, कैसी स्थिति में और कब लौटेगा या आगे क्या करेगा ... पत्र उस ने डाल दिया; फिर भुवन के बारे में चिन्ता ने सहसा उसे जकड़ लिया, उस ने कुशल पूछने का तार लिखा और भेजने चली, पर न जाने क्या सोच कर उस ने तार नहीं दिया, एक-दो लाइन का पत्र ही लिख कर डाल दिया।

मद्रास पहुँच कर उसे मसूरी से लौटा हुआ भुवन का पत्र मिला। पत्र बहुत छोटा था, पर अभिप्राय-भरा, उसे पढ़ कर गौरा बहुत देर तक सन्न बैठी रही, फिर उस ने पत्र से ही आँखें ढक कर दोनों हथेलियों से उसे आँखों और माथे पर दबा लिया।

भुवन ने सूचित किया था कि भारतीय भूमि पर जापानी बम पड़ने के बाद वह अपना कर्तव्य स्पष्ट देख रहा है, उसी दिन वह सेना में भरती हो रहा है। युद्ध घृण्य है, और कोरी देश-भक्ति भी उस के निकट कोई माने नहीं रखती बल्कि घृणा और युद्ध की जननी है, पर इस संकट से भारत की रक्षा करना देश-भक्ति से बड़े कर्तव्य की माँग है—वह मानव की बर्बरता से मानव के विवेक की रक्षा की माँग है; बर्बरता के सब साधन विज्ञान ने ही

जुटाये हैं, अत: विज्ञान को यह सब बड़ी ललकार है : या तो वह अपनी शिवता, कल्याणमयता को प्रमाणित करे—या सदा के लिए नष्ट हो जाय। विज्ञान एक ओर ज्ञान-दर्शन है, दूसरी ओर यन्त्र-कौशल, बर्बरता ने दूसरे पक्ष को लिया है पहले का खंडन करते हुए, सभ्यता अगर कुछ है तो वह पहले का उद्धार करने को बाध्य है—उद्धार कर के उसी के द्वारा दूसरे को अनुशासित रखने को। "मै नही सोच सकता कि मै कैसे किसी भी प्रकार की हिंसा कर सकता हूँ, या उस मे योग दे सकता हूँ—पर अगर कोई काम मै आवश्यक मानता हूँ, तो कैसे उसे इस लिए दूसरो पर छोड़ दूँ कि मेरे लिए वह घृण्य है? मुझे मानना चाहिए कि वह सभी के लिए—सभी सभ्य लोगो के लिए—एक-सा घृण्य है, और इस लिए सभी का समान कर्तव्य "

पत्र के अन्त मे 'पुनश्च' कर के दूसरे दिन जोडी हुई सूचना थी कि वह बर्मा भेजा जा रहा है।

इस के बाद तीन महीने तक गौरा को भुवन का कोई समाचार नही मिला। कालेज से उस ने अवेतन छुट्टी ले ली और सगीत के अभ्यास मे भी अपने को डुबा दिया। उस के चेहरे की रेखाएँ फिर कभी कठोर, कभी मृदु होने लगी, और कभी सगीत के आलबन मे बिल्कुल लुप्त, कभी उस के चेहरे की आत्म-विस्मृत मुग्ध स्थिरता को कॉपते हुए से दो ऑसू उस की ऑखो मे चमक आते—ऑसू वैसे ही अकारण, बेमेल, अपदस्थ, जैसे कमल के पत्ते पर पानी की बूँदे फिर जब समाचार उसे मिला, तो भुवन के पत्र से नही, रेखा द्वारा भेजे गये एक तार से।

और अनन्तर भुवन की एक कापी से।

रेखा को भुवन के सेना मे भरती हो जाने की सूचना समाचारपत्र से ही मिली थी। फिर यह पता, उस ने स्वय पूछताछ कर के लगाया था कि वह बर्मा मे कही भेजा गया है। इस समाचार के बाद कुछ दिन तक तो

उस ने कुछ नहीं किया, फिर भुवन को एक पत्र लिखा :

भुवन,

मुझे पता लगा कि तुम सेना मे भरती हो कर बर्मा गये हो; यह भी पता लगा कि वहाँ भेजा जाना तुम ने स्वयं चाहा था—नहीं तो तुम से वैज्ञानिक को शायद पश्चिम भेजा जाता—या लका मे। कई दिन तक मैं इस समाचार को ग्रहण न कर सकी, पर अब मै ने उसे स्वीकार कर लिया है, तुम्हारे भीतर की अनिवार्य प्रेरणा को कुछ-कुछ समझ भी लिया है, और जैसे पाती हूँ कि इस मे मेरे लिए मार्ग का भी संकेत है। बीच मे एक दिन तुम्हारी निकट उपस्थिति की एक तीव्र व्यथा मन मे उठी थी, सम्भव है तुम उस दिन कलकत्ते रहे होगे या कलकत्ते से गुजरे होओ—यद्यपि आये होते तो मुझे सूचना दी होती ऐसा मै अब भी मानती रहना चाहती हूँ... फिर एक दिन स्वप्न में तुम्हे देखा था—देखा कि तुम हमारे घर आये हो—हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति मे, और सब से मिले हो, पिता तुम्हे बाहर नदी के किनारे की रौस पर मेरे पास बिठा गये है, फिर हम लोग कागज की नावे बना कर नदी मे डालते है और उन का बह जाना देखते है। नावे कभी दूर-दूर तक चली जाती हैं, कभी पास आ जाती है, कभी टकरा भी जाती हैं, कभी नदी मे बहते हुए शैवाल से उलझ जाता है। सहसा देखती हूँ कि उन्हीं हमारी कागज की नावो मे हम भी बैठे है—रौस पर बैठे देख भी रहे हैं, पर नावों में भी हैं, फिर नावें एक बालू के द्वीप मे जा लगती है जहाँ हम उतर कर नावो को खीचने लगते है—पर नावो मे बैठे भी रहते है। अब हम रौस पर से देखते भी हैं, नावो मे बैठे भी हैं, नावों को खींच भी रहे है। फिर देखती हूँ, बहुत से द्वीप है, हर एक पर हम नाव मे भी बैठे, नाव को खींच भी रहे हैं—और रौस पर बैठे देख तो रहे ही है। सहसा नदी का पानी बहती हुई सूखी बालू हो जाती है, और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नहीं; कोई और चेहरा है, तुम मुस्कराते हो तो वह चेहरा तुम्हारा भी है, पर नहीं भी है; मै कहती हूँ, यह सपना है, जागेगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा हो जायगा, तुम

कहते हो, सपना थोड़ी देर और देखो न, फिर चेहरा बदल नहीं सकेगा। फिर मै तुम्हारी मुस्कान देखती रही, थोड़ी देर में जाग गयी। सपनो के सिर पैर नहीं होते—होते हो जैसा मनोविश्लेषक जताते है तो उन का अर्थ जानने की जरूरत नही होती—पर मै जागी एक मधुर भाव ले कर, फिर ध्यान आया कि तुम तो बर्मा मे कही होगे...

भुवन, तुम्हे एक समाचार देना चाहती हूँ। नहीं जानती कि तुम्हे कैसा लगेगा, पर—जानती हूँ तुम प्रसन्न ही होगे। मुझे आशीर्वाद दो, भुवन। डाक्टर रमेशचन्द्र ने मुझ से विवाह का प्रस्ताव किया था, मै ने उन्हे स्वीकृति दे दी है। इसी महीने के अन्तिम सप्ताह में विवाह हो जायगा। सम्भव है कि विवाह के दो-एक महीने बाद वह 'मिडल ईस्ट' की तरफ कहीं जावें—मैं भी साथ ही जाऊँगी शायद। काम मै ने अभी नहीं छोड़ा है, पर आठ-दस दिन बाद छोड दूँगी।

विवाह के लिए हम दार्जिलिंग जावेंगे—रमेश का आग्रह है। कोई समारोह नही होगा—लेकिन क्योंकि 'कानूनी आधार' आवश्यक है—यह लीगेलिटी, भुवन!—इस लिए रेजिस्ट्रेशन तो होगा ही।

यह क्या है, भुवन? बरसो मै श्रीमती हेमेन्द्र कहलायी, उस के क्या अर्थ थे? अब अगले महीने से श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊँगी—उस के भी क्या अर्थ हैं? कुछ अर्थ तो होगे, अपने से कहती हूँ, पर क्या, यह नहीं सोच पाती.. मैं इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि मै तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी, तुम्हारी ही हुई हूँ, और किसी की कभी नही, न कभी हो सकूँगी.. ये पार्थिवता के बन्धन, ये आकार ये सूने ककाल.. महाराज, मेरे त्रिभुवन के महाराज, किस साज मे तुम आये मेरे हृदय-पुर मे—और कैसे तुम चले गये, मेरा गर्व तोड कर, भूमि मे लुटाकर—पर नही भुवन, तोड़ कर नही, तुम्हीं मेरे गर्व हो, तुम्हारे ही स्पर्श से 'सकल मम देह-मन वीणा-सम बाजे'...

रमेश को मैं धोखा नही दे रही। मै ने उन्हे बताया है। पर क्या बताया है, क्या मै बता सकती हूँ, भुवन? उन मे बडी उदारता है, गहरी

संवेदना है, वह समझते है। तुम उन्हे जानते, तो बहुत अच्छा होता—तुम्हे निश्चय ही वह अच्छे लगते। मै कल्पना करती हूँ, मै तुम दोनों को समीप ला सकती—मिला सकती—दोनो को जिन से मै ने बहुत कुछ पाया है, जिन्हें मै ने बहुत कुछ दिया है .. शायद भविष्य मे वह कभी हो सके, मैं नही मानना चाहती कि यह सम्भव नही है क्योंकि वैसा मानना, मुझे लगता है, दोनो के प्रति विश्वासघात होगा...

भुवन, अपनी बात तो मै कह चुकी। तुम्हारी बात जानना चाहती हूँ। तुम भटक रहे हो, भटक ही नही रहे, मुझे लगता है कि भाग रहे हो। पहले अपने को कोसती थी कि मुझ से—यद्यपि मेरे कारण तुम्हारे मन पर बोझ न आये इस की पूरी कोशिश करती रही हूँ, देवता साक्षी है, सफल कहाँ तक हुई वह दूसरी बात है... पर अब नही कोसती, वह कोसना भी अहंकार ही था क्योंकि अब लगता है, नहीं मुझ से नही, कुछ और है जिस से तुम भागते हो, क्योंकि उस से तुम बँधे हो, जिस से तुम्हारी नियति गुँथी है, और यह मानना केवल अन्तःशक्तियो का वह कर्ष-विकर्ष है जो अन्ततोगत्वा अनुकूल स्थिति लावेगा .. मैंने एक बार तुम से कहा था, हम जीवन की नदी के अलग-अलग द्वीप हैं—ऐसे द्वीप स्थिर नही होते, नदी निरन्तर उन का भाग्य गढ़ती चलती है, द्वीप अलग-अलग हो कर भी निरन्तर घुलते और पुनः बनते रहते है—नया घोल, नये अणुओ का मिश्रण, नयी तलछट, एक स्थान से मिट कर दूसरे स्थान पर जमते हुए नये द्वीप .

मेरी इन बातो को अनधिकार प्रवेश न समझना, भुवन, मुझ से पृथक् जो भी तुम्हारा निजी है, निज के लिए अर्थवान् है, उस से मुझे ईर्ष्या नहीं, न कोई अनुचित कौतूहल उस के विषय में है . वह अर्थवान् है तो और अधिक अर्थवान् हो, यही मेरी प्रार्थना है।

भुवन, तुम्हारे पत्र की, तुम्हारे आशीर्वाद की, तुम्हारे समाचार की उत्कट प्रतीक्षा करूँगी। तुम्हारी शुभ-कामनाएँ पा कर रमेश भी प्रसन्न होंगे।

तुम्हारी ही
रेखा

भुवन का उत्तर तार से आया, हार्दिक शुभकामनाएँ और आशीर्वाद, और पत्र वह लिख रहा है। एक सप्ताह बाद पत्र भी आया—एक पार्सल मे बन्द, पार्सल मे किसी प्रचीन बर्मी ग्रन्थ का चित्र-लिखित वेष्टन, और ताल-पत्र पर खिंचे हुए चित्र थे, ग्रन्थ पूरा नही था। "यह ग्रन्थ क्या है मै नहीं जानता, लिपि भी मैं नहीं पढ सकता न तुम पढ सकोगी, पर चित्र सुन्दर है और वेष्टन भी मुझे सुन्दर लगा—मैंने सोचा कि ऐसे अवसर पर जो उपहार भेजूँ उस का सुन्दर होना ही आवश्यक है, बोधगम्य होना उतना नहीं—वैसे आज मेरी प्रर्थना है कि विधि का विधान सुन्दर हो, आज हम उसे जाने भले ही न, उस का क्रमिक प्रस्फुटन सुन्दर से सुन्दरतर दीखता चले . "

दार्जिलिंग से एक पत्र रेखा ने भुवन को और लिखा :

भुवन,

आज अभी थोड़ी देर पहले मै रजिस्टर मे पहले-पहल 'रेखा रमेशचन्द्र' नाम से हस्ताक्षर कर के आयी हूँ। उस के बाद न जाने क्यो भीतर कुछ कहता है कि मेरा पहला काम होना चाहिए तुम्हे सूचना देना, तुम्हें पत्र लिखना। भुवन, कभी सौ वर्षो मे भी मेरी कल्पना मे यह बात न आती कि अन्त मे मेरा ठिकाना यह होगा—इस घाट आकर मैं किनारे लगूँगी ..जीवन की अजस्र तीव्र धारा कैसे सब को खींचती ठेलती बहाती लिये जाती है, कैसा भौंचक कर देने वाला है उस का प्रवाह—जिस मे तसल्ली के लिए यही है कि हमी नही, दूसरे भी उतने ही भौंचक बहे जा रहे है। यह उद्यम की अवहेलना नही, उद्यम तो अपने स्थान पर है ही, पर कैसा दुर्निवार, बेरोक, विवशकारी है यह प्रवाह .

तुम्हारा पत्र मिला था, भुवन, तुम्हारा वह दर्द-भरा, पर मधुर, सुन्दर आशीर्वाद, और तुम्हारा उपहार भी। उस आशीर्वाद के लिए मै कितनी कृतज्ञ हूँ, भुवन, क्या मै कह सकती हूँ कभी? और तुम्हारा उपहार भी सुन्दर है—हाँ, दुर्बोध तो है ही विधि, और शायद उसे जान लेना चाहना भी मानव की दु:स्पर्धा है, वह स्वतः स्फुट होती चले. लेकिन तुम्हे मैं

जानती हूँ, भुवन, तुम्हे मैने जाना है और तुम मे जो जाना है वह जीवन-मरण से परे है—पाने और खोने से परे है।

इसके बाद दो महीने तक रेखा को भी भुवन की ओर से कोई समाचार नही मिला, जब मिला तो भुवन का पत्र नही, फौजी अस्पताल मे एक नर्स का टेलीफोन मिला कि वह अस्पताल आ कर मेजर भुवन को देख जावे।

क्षण-भर के लिए रेखा को लगा कि सारी स्थिति मे कही कुछ विपर्यय है, कोई विरोधाभास—कि अस्पताल के लोहे के पलग पर उस बरसाती दिन मे लाल कम्बल ओढे भुवन नही, वही पड़ी है, और भुवन उसे देख रहा है, और वह असहाय भाव से धीरे-धीरे रही है, 'जान, प्राण, जान...' एक ज्वार-सा उस के भीतर उमड़ आया, इतनी व्यथा, इतने गहरे मे पर इतनी सहज आह्वेय, उस मे सचित है, इस के तात्कालिक अनुभव से वह लड़खडा-सी गयी। फिर तुरन्त सँभल कर उस ने धीरे से पुकारा, "भुवन!" लेकिन भुवन ने पहले ही उसे पहचान लिया था; उस के चेहरे पर एक मुस्कान थी और वह कोशिश कर रहा था कि कम्बल के भीतर से एक हाथ निकाल कर रेखा की ओर बढाये।

रेखा ने दोनो हाथ उस के गालो पर रख कर आग्रह से पूछा, "यह क्या कर आये भुवन? तुम्हे मै ऐसे देखूँगी, ऐसी सम्भावना ही कभी मन मे न आयी थी।"

"कुछ नही, रेखा!" और भुवन के दुर्बल स्वर मे एक नयी गहराई थी जो रेखा को दहला गयी—मानो कोई व्यक्ति नही, कोई दूर पहाड़ी जगह बोल रही हो—कोई कन्दरा, या किसी बडी-सी चट्टान के नीचे की छाया, "मलेरिया है। अंडमान से शुरू हुआ था शायद—बर्मा के जगलो ने बढा दिया, और पेचिश साथ जोड़ दी। वैसे मै ठीक हूँ—बिल्कुल ठीक।"

"जी हाँ, ठीक है, सो तो शक्ल ही बता रही है। दुष्ट मलेरिया और पेचिश, वैसे ठीक है—और क्या ले आते वहाँ से?"

"क्यो—"

"रहने दीजिए, लगेगे सम्भाव्य बीमारियो के नाम गिनाने, यही न! बताया भी नही।"

"जब बताने से कुछ फायदा होता, तब बता तो दिया—"

रेखा बात करते-करते पलंग की बाही पर बैठ गयी थी। अब उठ कर एक स्टूल पर बैठती हुई बोली, "लो अब बाकायदा विजिट करूँगी। पहले तुम्हारा हाल पूछूँ।"

"फिर शुरू से बीमारी का इतिहास, फिर पथ्य, फिर—" भुवन मुस्कराया, फिर सहसा बात बदल कर बोला, "तुम—अकेली आयी हो रेखा?"

प्रश्न समझ कर रेखा ने कहा, "हाँ, भुवन। रमेश यहाँ नहीं हैं। बम्बई गये है। हफ्ते-भर मे लौट आयेंगे, तब लाऊँगी। हम लोग जा रहे हैं विदेश—"

"अच्छा—कब? मैं हफ्ता-भर नहीं रहूँगा शायद—हम सब दक्षिण भेजे जा रहे है—बगलोर—स्वास्थ्य-लाभ के लिए। यहाँ तो प्रबन्ध के लिए रुके हैं—जहाज से आये थे, अब रेल से जाना होगा—"

रेखाने कुछ उदास हो कर कहा, "ओ।" फिर कुछ देर बाद, "बगलोर—गौरा तो मद्रास मे है, उसे खबर दे दूँ, वह बगलोर जरूर जा सकेगी—"

भुवन ने संक्षिप्त भाव से कहा, "हाँ।" फिर काफी देर बाद, "तुम से उस का पत्र-व्यवहार रहा है?"

"हाँ—तुम जो नही लिखते, तो मै गौरा से ही पत्र-व्यवहार कर लेती हूँ।"

भुवन ने फिर संक्षिप्त ढग से कहा, "हूँ।" थोड़ी देर बाद बात को निश्चित रूप से नयी दशा देने के लिए उस ने कहा, "रेखा, विवाह कर के—कैसा लगता है—हाउ डू यू फील? या कि—न पूछूँ?"

"नहीं, पूछो। आइ डोंट फील एट आल। वन डजंट फील, वन जस्ट इज। मै भी हूँ, होना ही काफी है, अनुभूति क्यो जरूरी है?" रेखा थोड़ा रुकी। "लेकिन—भुवन, रमेश मे यथेष्ट अंडरस्टैंडिंग है, नही तो..."

भुवन ने कहा, "आइ एम सो ग्लैड, रेखा।" उसने हाथ रेखा की ओर बढ़ाया। रेखा ने उस का हाथ अपने दोनों हाथों से ले लिया और धीरे-धीरे सहलाने लगी।

"भुवन, मेरा तो हुआ, पर तुम? तुम भविष्य की ओर नहीं देखते? जरूर देखते होगे—बल्कि मैं चाहे न देखूँ, तुम तो रह नहीं सकते, तुम्हारे मन का सगठन ही ऐसा है—"

भुवन हँसा। अब की बार रेखा ने लक्ष्य किया, उस के स्वर में जो गहराई है, वह एक हद तक शायद इस लिए भी है कि कहीं कुछ खोखला है, शून्य है—ऐसी सूनी थी वह हँसी, जैसे उन के नीचे अनुभूति या आनन्द की कोई पेंदी न हो, अधर मे ही वह फूट पड़ी हो। "मै! शायद सोचता भी—पर अभी तो जरूरत ही नहीं मालूम होती। वहाँ—भविष्य का भरोसा ले कर कौन बैठता है जहाँ जीवन का ही भरोसा नही—"

"वह तो कहीं भी नही है—यहीं क्या भरोसा है? रोज सुबह होती है, सूरज निकलता है; हम आदी हो जाते हैं और मान लेते है कि न केवल सूरज कल निकलेगा बल्कि हम भी उसे कल देखेंगे। प्रकृति का स्थायित्व देख कर ही मानव अपने लिए स्थायित्व माँगता है, प्रकृति के रूपान्तर देख कर ही वह अपने रूपान्तरो की कल्पना करता है या उन के द्वारा अमरत्व की आशा—"

"हाँ, लेकिन वह सब यहाँ होता है। वहाँ—वहाँ चीजे उलट जाती हैं, आदमी अपने को देख कर ही प्रकृति के बारे मे निर्णय करता है। और—मेरा क्या भरोसा, कल रहूँ या न रहूँ: यह सोच कर वह सब विचार स्थगित कर देता है। बल्कि इस विचार का सहारा आवश्यक भी हो जाता है।"

रेखा ने विरोध करते हुए कहा, "लेकिन यह तो पलायन है, भुवन!"

"पलायन!" भुवन वही खोखली हँसी हँसा, "तो फिर?"

रेखा अचकचायी-सी उसे देखती रही। भुवन कहता है कि 'तो फिर?' पलायन है, तो फिर?...

भुवन ही फिर बोला, "सुनो रेखा, बात यह है कि युद्ध बुरी चीज है,

घृण्य है, व्यक्तित्व के लिए घातक है—सब-कुछ है। पर जब लडे ही, तब जो कुछ रक्षणीय है उसे बचाने के लिए आवश्यक है कि युद्ध की मशीन ठीक से चले, सब कल-पुर्जे ठीक काम करते रहे, हर व्यक्ति—हर पुर्जा या कुछ एक काम लेता है और आवश्यक है कि उसे वह ठीक से करे। और ठीक से काम करने के लिए आवश्यक होता है कि विचारो को स्थगित कर दिया जाय—चाहे जैसे भी। कोई शराब पी कर करते हैं, कोई और भी भयानक तरीकों से—कोई इतना ही मान कर कि जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है और उस के बारे मे सोचना व्यर्थ है—कम-से-कम अभी व्यर्थ है, अभी जो अनुभव-सचय हो जाय, उस के आधार पर बाद मे भी सोचा जा सकता है।"

"पर भुवन, तुम—तुम ? तुम्हारा तो सारा काम ही सोचने का है, तुम्हे तो मार-काट नही करनी—तुम कैसे सोच स्थगित कर सकते हो ?"

"वह तो है, सोच तो नहीं स्थगित करता, पर सोचने की शक्ति की लीकें बाँधता हूँ—सिर्फ काम के बारे मे सोचता हूँ—मशीन को चलाने के बारे मे सोचता हूँ, मशीन के बाहर जो जीवन है, वह—वह तो जीवन है, इस लिए उस का भरोसा क्या ? मेरी बात समझी—?"

रेखा चुपचाप देखती रही। भुवन की युक्ति ठीक थी, पर कुछ था जो उसे स्वीकार्य नही हो रहा था, वह कुछ क्या है इसे वह पकड़ नही पा रही थी..

रात-भर यह असमजस उसे कोचता रहा। रात को उस ने गौरा को एक छोटा-सा पत्र लिख कर भुवन के वहाँ होने की सूचना दी और यह भी लिखा कि उस के मन की दशा अजब है, रेखा की समझ मे नही आ रही। वह और भी कुछ लिखने जा रही थी पर रुक गयी, फिर उस ने लिखा कि भुवन कदाचित् बगलोर जायेगा, गौरा उसे मिले और हो सके तो उस के पास रहे—उस का मन स्वास्थ्य यह माँगता है कि गौरा उस की देख-भाल करे। दूसरे दिन वह रजनीगन्धा के बीस-एक डंठो का गुच्छा ले कर फिर अस्पताल पहुँची। फूल सजा कर वह थोड़ी देर भुवन की ओर देखती रही। फिर जैसे एक बड़ा दुस्साहस कर ही डालने का निश्चय कर के बोली,

"भुवन, मैंने एक डिस्कवरी की है। यू आर इन लव। और मैं जानती हूँ कि किस से।"

भुवन अपने चेहरे पर हँसी फैलाता हुआ बोला, "सच? हाउ इंटरेस्टिंग, लेकिन तुम्हें बड़ी निराशा होगी, रेखा, मेरी कोई भी नर्स ऐसी रूपवती नहीं है।"

और भी दुस्साहस भर कर, लेकिन मुस्कराते हुए ही रेखा ने कहा, "टालो मत भुवन, मैं नर्सों की बात नहीं कर रही हालाँ कि नर्सें सब रूपवती है या होंगी।" साहसा उसे बोध हुआ कि उस का दिल धक्-धक् कर रहा है, पर वह रुकी नहीं, "मेरा मतलब है गौरा।"

भुवन चमक गया। उस का चेहरा तमतमा आया, ओठों का धनु एक तीखी रेखा बन गया, वह बोला नहीं।

रेखा ने भी थोड़ी देर बाद कुछ सँभल कर कहा, "मैं माफी चाहती हूँ, भुवन—है यह मेरा दुस्साहस, पर अगर उस से मेरा अपराध कुछ कम होता हो तो कहूँ, मैंने मजाक नहीं किया, बहुत सीरियसली कह रही हूँ, क्यों कि मुझे लगा कि तुम इसी बात से पलायन कर रहे हो, और वह पलायन गलत है।"

भुवन ने सतर्क स्वर से, किसी तरफ से भी रेखा की बात को न मानते हुए, न काटते हुए, पूछा, "तुम क्या कहना चाहती हो?"

"गौरा से मैं मिली थी, भुवन; उस से मैंने एक वायदा भी किया था जो—पूरा न निभा सकी। गौरा के मन को मैं जानती हूँ।"

भुवन ने न कुछ कहा न कुछ पूछा, चुपचाप उस की ओर देखता रहा मानो कहता हो, तुम कहती चलो, मैं सुन रहा हूँ।

रेखा ने फिर कहा, "और मैं कहती हूँ, वह पलायन गलत है, भुवन!" सहसा नये निश्चय के साथ, "गलत है, अकरुण है और व्यर्थ है।"

भुवन ने वैसे ही दूर से, पकड़ाई न देते हुए कहा, "तुम मुझे क्या करने को कह रही हो?"

"मैं? करने को?" रेखा क्षण-भर सोचती रही। "कुछ नहीं। केवल

यही: तुम मे जो सत्य है, उस के प्रति अपने को बन्द मत करो—उस के प्रति खुलो। तुम ने मुझे सुनाया था—भुवन, तुम ने। 'द पेन आफ लविंग यू'—उस व्यथा के प्रति अपने को खोल दो—और मुझ मे कुछ कहता है कि वह तुम्हारे लिए कल्याणप्रद होगा, भुवन। गौरा के मन को मै जानती हूँ क्यो कि स्त्री हूँ, और तुम्हारे मन को बिल्कुल न जानती होऊँ, ऐसा जो तुम नही मानोगे, आखिर स्त्री हूँ।"

रेखा जैसे हाँप गयी थी। चुप हो गयी, लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी। थोडी देर बाद, जैसे पहले के किसी अधूरे वाक्य को पूरा करते हुए, उसने फिर कहा, "वह वरदान है, भुवन, उसे स्वीकार करो, चाहे कल—चाहे कल जीवन न रहे, तुम न रहो, भुवन, फिर भी।"

भुवन भी चुप पडा रहा। काफी देर बाद बोला, "रेखा, मै तो समझता था तुम्हारा औचित्य का ज्ञान बहुत बडा है, पर देखता हूँ, तुम्हे इतना भी नहीं आता है कि बीमार से कैसी बाते करनी चाहिएँ। तुम स्वय हाँप गयीं—और एक्साइटमेट से रोगी का क्या होगा? और तुम तो नर्सिंग—।"

"हाँ, एक श्लथ रोग होता है—रोगी का दिमाग नही चलता। उस का यही इलाज है, मैं जानती हूँ।"

फिर एक मौन रहा, उस मे न जाने क्यो अपने दुस्साहस पर रेखा स्वयं आतंकित हो आयी, क्या कह गयी वह, कैसे कह गयी वह, ऐसा हस्तक्षेप कैसे कर सकी वह ..उस का मन हुआ, भुवन के पास से उठ कर भाग जाय, और फिर कभी उसे मुँह न दिखाये—कैसे अब वह मुँह दिखा सकेगी... लेकिन वह उठ भी नही सकी, उठना मानो फिर अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करना है और वह वही धँस जाना चाहती है, लुप्त हो जाना चाहती है...एक झेंपी-सी हँसी हँस कर उस ने कहा, "देखा, भुवन!—दिस इस व्हट मैरेज डज टु ए वुमन—आज अपनी शादी हो, कल से सारी दुनिया के नर-नारियो की जीवन-व्यवस्था करने मे लग जाये, यह स्त्री-स्वभाव ही है कि पुरुष के जीवन के लिए वह निरन्तर साँचे बनाती चले।"

भुवन का मन भटक रहा था। उस ने खोये-से भाव से कहा, "हूँ।"

निरे मास्टर साहब ही—जो सिखाते हैं, स्वय नहीं सीखते—दूसरो की बात आप कभी नहीं सोचते ?"

भुवन ने सोचते-से कहा, "दूसरो की!" और धीरे-धीरे आवृत्ति की, "दूसरो की.. " थोडी देर बाद बोला, "गौरा, अब तक दूसरा मै अपने को ही मानता आया, तुम्हारी शिकायत असल मे यही है कि तुम्हे पहला और अपने को दूसरा क्यो माना मैंने, और मेरी मुश्किल यह है कि मैं वैसा मानने को गलत नहीं समझ पाता—अब भी नहीं !"

गौरा ने कहा, "ऐसा नही हो सकता कि कोई बात—गलत न हो, लेकिन—" तनिक रुक कर, "बुरा न मानना—लेकिन अहंकार हो ? मैं जजमेंट नही दे रही, पर बात कहने का साहस कर रही हूँ क्यो कि तुम ने सिखाया है, यह भी तो एक पक्ष हो सकता है ?"

भुवन सोचता-सा काफी देर तक चुप रहा, फिर खोया-सा बोला, "शायद तुम ठीक कहती हो, गौरा : गलत नहीं है, पर अहंकार हो सकता है। मैंने तुम्हे बहुत कष्ट दिया है न, गौरा ?"

गौरा बोली नहीं, भुवन के स्वर मे सहसा जो कोमलता आ गयी थी उस से उस की आँखो मे कुछ चमका, उस ने चेहरा भुवन की ओर उठाया और उस की दृष्टि भुवन के चेहरे को दुलरा गयी।

दिन छिप गया था, पर गौरा ज्यों-की-त्यो बैठी थी, बत्ती जलाने का उसे ध्यान नहीं आया था। वह भी वैसी ही कैनवस की आरामकुर्सी पर बैठी थी जैसी पर भुवन को उस ने देखा था, उस की भी गोद मे पुस्तक नहीं तो कापी पड़ी थी—भुवन की कापी। कैसा अद्भुत था यो बैठ कर दोहरा जीवन जीना : वह गौरा भी थी, जो अपने को भुवन के प्रतिबिम्ब के रूप मे देख रही थी, भुवन की बातो को समझ रही थी, उन पर होने वाली अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओ की सूक्ष्मतम छाप ले रही थी और ले कर मानो एक निधि मे जमा करती जा रही थी, जो मसूरी मे लिखे गये अपने उन विचारों

को याद कर रही थी जो भुवन के प्रति निवेदित हो कर भी भुवन को दिये नहीं गये, और वह भुवन भी थी—आरामकुरसी पर बैठा हुआ भुवन, गोद मे पुस्तक या कापी लिये बैठा और सोचता भुवन, उस के लिए कापी मे एक-एक दो-दो वाक्य लिखता और लिख कर उन पर और उन के हेतु गौरा पर विचार करता हुआ भुवन ..

"स्नेह-शिशु, तुम्हे छोड़ कर नहीं भागा। भागा जरूर, पर सच कहूँ कि जब भागा तो कुछ अगर साथ लिया तो तुम्हारी प्रतिच्छवि—और मेरे विक्षत मन के कसैले विराग को एकदम कटु हो जाने से बचाया तो उसी ने.. अब पीछे देखता हूँ तो लगता है, मुझे यह पहले देखना चाहिए था—जिस उथल-पुथल ने मुझे पकड लिया, (जिस की बात तुम से कर चुका) उस से पहले देखना चाहिए था...वह मुझे छोड कर चली गयी 'ए वाइज़र बट ए सैडर मैन'—उस दुःखमय विवेक ने मुझे बताया कि क्या चीज है जो अब भी जीवन मे आस्था नहीं मिटने देती.. फिर भी तुम से दूर क्यो गया—क्यो जाना चाहा? इस लिए कि सीखा, स्नेह मे जब मोह भी होता है तब आघात मिलता है—मिलता ही नही, तब व्यक्ति स्वय उसी को आहत करता है जिस के प्रति स्नेह है। इसी लिए सोचा, तुम जानो, उस से पहले ही दूर चला जाऊँ। स्नेह से दूर नही, स्नेह के लिए दूर...

"तुम ने मेरी बात नही समझी थी। तुम आहत हुई। शायद अब भी न समझो। और शायद न समझना ही अच्छा है, 'समझना सब मानो मेघाच्छन्न होना है, और वह मुझ-जैसो के लिए ही अच्छा है जो बीत गये हैं, जिन का जीवन आन्तरिक हो गया है, जो अपनी समझ की मेघ-छाया मे रहने के आदी हो गये है। तुम्हारे लिए नहीं, जिस का भविष्य आगे है, भविष्य जो सुनहला हो, जिस मे हँसी हो, बालारुण की आभा हो, आलोक हो...मै जैसे तमिस्रा का पोष्य पुत्र हूँ—इसी लिए आलोक को पूजता आया हूँ, कभी दूर से, जैसा कि ठीक है, कभी निकट से, जैसा कि विपज्जनक है, कभी छूने को ललचाया हूँ, जो महान् मूर्खता है क्योकि छूने से आलोक बुझ जाता है!"

"रवि ठाकुर ने कहीं लिखा है : 'मैं उस विशाल मरु की तरह हूँ जो घास की एक हरी पत्ती को पकड़ लेने के लिए हाथ बढ़ाता है'—मैं कहूँ कि मैंने इस की विडम्बना जान ली है, घास की पत्ती को निकट लाने के लिए मरु फैलता नहीं, सिमटता है, सिमट कर, अकिंचन हो कर ही वह पत्ती को पकड़ तो नहीं, लगभग छू सकता है।"

"स्नेह-शिशु तुम ने मुझे कहा था : मैं किसी तरह नहीं सोच पाता कि यह नाम मैंने नहीं ढूँढा था, कि मैंने नहीं तुम्हें दिया था। तुम्हारी ही चीज़ तुम्हें लौटाता हूँ, लेकिन शतगुण स्नेह से, गौरा!"

"तुम ने मुझ से वचन माँगा था, अपने को अनावश्यक संकट में न डालूँगा। क्या यह अनावश्यक संकट है? संकट भी है? या कि यहाँ न आना ही संकट होता—वहाँ रहना ही संकट होता?"

"जंगल, घने बादल, तीन बजे दिन में अँधेरा-सा, हाथियों के झुंड से बादल—गड्ड-मड्ड होते हुए हज़ारों हाथियों के महायूथ-से . एक आकृति दूसरी में घुल जाती है, लेकिन क्लौंस ज़रा भी कम नहीं होती, भीतर न जाने क्या-क्या माँगें उठती है और उतनी ही नीरवता में, उतनी ही निष्पत्ति-हीन विलीन हो जाती हैं . मैं सोच नहीं सकता, ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता, एक ही स्पन्दन जैसे हर बात में गूँज जाता है और उस को सुनने के सिवा चारा नहीं है...पर साथ ही उसे सुन कर भी काम नहीं चलता उधर ध्यान दूँ तो वह ऐसा अभिभूत कर लेगा कि बस..."

"आज से छः महीने पहले तुम्हारे साथ आग के पास बैठा था—आगे के डर मुक्त हो कर...और आज—! वह बड़ा दिन था। यों आज वास्तव में बड़ा दिन है—उत्तरायण के एक-आध दिन ही इधर-उधर—और वह दिन के हिसाब तो छोटा ही दिन था। मैं देखता हूँ वह आग : हम दोनों से एक-दूसरे की ओर झरती हुई सान्त्वना और आश्वासन की धारा—यह मेरा अहंकार तो नहीं है कि 'एक दूसरे की ओर' कह रहा हूँ?

"मैंने कहा था, यह तुम्हारी आग है। तुम ने कहा था, आग से डरना मत। तब से मैं मानो उसे लिये-लिये कहाँ-कहाँ फिर रहा हूँ..."

"मै लेटा था, किमी ने आ कर पूछा, रेडियो सुनोगे ? और लगाया : सहसा शून्य मे से क्या आवाज आयी जानती हो ? *'मोर वीणा उठे कौन सुरे बाजि—कौन नव चचल छन्दे ! ए अम्बर प्रागण माझे नि स्व मजीर गुंजे,*—आकाश ही मेरा घर है, जिस मे वह छन्द गूँजता है. "

"मैने तुम्हे खबर नहीं दी। अब कभी-कभी विचार उठता है—क्य भूल की ? क्यो कि अब यह जरा-जरा-सा लिखना भी कठिन होता जात है—मेजर भुवन मास्टर साहब का एक काला, धुँधला खोल भर है, शक्ति हीन, लगभग निर्जीव.. लेकिन यही ठीक है गौरा—यही ठीक है...ज तक मुझे होश रहेगा, तुम्हे आशीर्वाद देता रहूँगा—अगर न रहेगा—तो भी वह आशीर्वाद रह जायगा। इस जीवन से आगे कुछ नहीं है गौरा यही सम्पूर्ण है, यही अन्त है। लोग ऐसा मानने से डरते है, मुझे लगत है, यही तो जीवन को अर्थ देता है। इस जीवन का दर्द इस लिए मूल्य वान् नही है कि किसी दूसरे जीवन मे उस का पुरस्कार मिलेगा, इस लिए मूल्यवान् है कि इस जीवन से आगे और कुछ नहीं है। क्यो कि मूल्य किसी पडतालिये के लिए नही होता जो रोकड़ मिला कर तय करे कि क्य हाथ आया, मूल्य है तो उस व्यक्तित्व के लिए जो उस दर्द मे से गुजर रहा है और मूल्य उसी अवस्था मे है..."

"भुवन केजुएल्टी हो गया। उसे देश वापस भेजा जा रहा है ठीक होने के लिए। क्यो जी, ठीक होगे तुम ?

"अपने से ही प्रथम पुरुष मे बात करने लगे कोई . सुना है, जेलो में फाँसी के कैदी ऐसा करने लगते हैं। लेकिन अपने से उबरने के दूसरे भी तरीके हो सकने चाहिए।

"अपने से उबरने के। अपना क्या ? क्या कोई अपनी भावनाओ से, अपने रागो से उबरना चाहता है ? या कि केवल एकातिरिक्त सब रागो से ही ? क्यो जी, तुम्हारी क्या राय है ?"

"न, गौरा, लगता है यह तुम से विश्वासघात होगा—यद्यपि वचन

मैंने नही दिया था। मैं ठीक हो जाऊँगा। ज़रूर हो जाऊँगा—और तुम से मिलूँगा भी...”

“देश का आकाश...तुम कहाँ हो, गौरा? मै लिखना चाहता हूँ—”

“नहीं। मैं वापस ही जाऊँगा। आगे नहीं देखूँगा। भविष्य नहीं सोचूँगा, क्योकि वह नही है, वह वर्तमान का ही स्फुरण है। सोचता हूँ, बीच मे विचार क्यो बदल गये थे, तो रैबेलेस की बात याद आती है: शैतान बीमार हुआ तो उसने साधू होना चाहा:

द डेविल वाज सिक, द डेविल ए मंक वुड बी:

द डेविल ग्र्यू वेल, द डविल ए मंक वाज ही!

पर यहाँ शायद साधू ही बीमार हो कर शैतान होना चाह रहा है।”

“बहुत सुन्दर है लताओं-पत्तियों की झॉझरी यह

पर मुझे आकाश प्यारा है...”

कापी गौरा पढ चुकी थी। उस के वाक्य आगे-पीछे उस के अन्तः क्षितिज से उठते और विलीन होते जाते थे। क्या भुवन का यह कहना ठीक है कि जो कुछ है, यही जीवन है, आगे कुछ नहीं है, परलोक नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है? वह मान सकती है कि पुनर्जन्म नही है, परलोक भी नही है—इस जीवन का कर्म-फल भोगने के लिए पुनः जन्म लेने की कोई आवश्यकता उसे नहीं दीखती क्यो कि भोग सब इसी जीवन मे भुगता दिये जाते हैं, देना-पावना सब राई-रत्ती यहीं चुक जाता है ऐसा वह मान ले सकती है। पर क्या यह जीवन ही सब कुछ है—यह हमारा हमारी चेतना की मर्यादाओ से मर्यादित देश-काल से बँधा जीवन? क्या हम एक के बाद एक नही, एक साथ ही एकाधिक जीवन नहीं जीते, एकाधिक लोको मे नहीं रहते—और हाँ, एकाधिक चेतना द्वारा उस के या उन के प्रभावो को ग्रहण नही करते? सदा न करते रहते सही, जीवन-शक्ति की उत्तेजना के क्षणो मे ही सही, पर कभी भी अगर हम दूसरे स्तर पर, दूसरे लोक मे, दूसरे जीवन में प्रविष्ट हो सकते हैं, तो वह है ..वही अभी गौरा भी है, भुवन भी है, आज की गौरा भी है, पुरानी भी, आज का भुवन भी है, पुराना भी, कापी

पढ़ने वाली भी है, लिखने वाला भी, लिखने वाले की अनुभूति के कई स्तर भी, कई काल भी—और सब परात्पर नही, सब एक साथ, एक क्षण मे ..

और नहीं, वह कही—वह कही पृष्ठभूमि मै रेखा भी है, रेखा की व्यथा भी और विशालता भी, अकिंचनता भी और दानशीलता भी—वह व्यक्ति का जीवन नही, निरपेक्ष जीवन है, सर्वस्पर्शी, सर्वत्र स्पन्दित..

वह उत्तेजित हो कर खड़ी हो गयी। कापी उस की गोद से फिसल कर गिरी, उस के शब्द ने उसे चौंका दिया। गौरा ने आगे बढ कर बत्ती जलायी, और रेखा को तार लिखने लगी कि भुवन वहाँ है, ठीक है, कि उसे बाहर निकलने की इजाजत भी मिल रही है कल से।

"गौरा, आज फिर मै तुम्हारा अतिथि हो कर तुम्हारे कमरे मे बैठा हूँ।"

"ऐसा क्यो कहते हो, भुवन ?" गौरा ने उस की बात का अभिप्राय न समझते हुए कुछ आहत स्वर मे कहा।

"मुझे याद आता है मसूरी का वह पहला दिन—वह रात जो चलते-चलते बड़ा दिन हो गयी थी—तब भी तो तुम्हारा मेहमान हो कर बैठा था।"

"वह तो तुम्हारा कमरा था—मेहमान कमरा ही था वह। मेरे कमरे मे तो—मेरे कमरे मे तुम कब आये थे तुम्हे याद है ?"

भुवन ने उठ कर एक कोने की ओर बढते हुए कहा, "खूब याद है—नये वर्ष के दिन मैं तुम्हारा कमरा सजाने गया था—" उसने तिपाई पर रखे फूलदान से एक फूल निकाल लिया था, उसे लिये हुए गौरा की ओर मुडते हुए बोला, "और मेरे हाथ से एक फूल तुम्हारे ऊपर गिर गया था।" कहते-कहते उस ने वह फूल गौरा के कबरी-बन्ध मे अटका दिया।

"ऐसे नही गिरा था, ऐसे गिरा था—" कहते-कहते गौरा उस के पैरो की ओर झुक गयी। "मेरा प्रणाम लो, शिशु।"

भुवन ने जल्दी से झुक कर उस के दोनो हाथ पकडे और उसे खीच कर उठा लिया, हाथ छोडे नही और एक-टक उसे देखता रहा।

देर बाद उस ने धीरे-धीरे कहा, "गौरा, अब मै फिर जल्दी ही चला जाऊँगा—पर अब भागूँगा नहीं। और—" कहते-कहते वह एक घुटने पर झुका, "प्रणाम मुझे करना चाहिए, क्यो कि तुम—"

हड़बडा कर गौरा ने कहा, "नहीं, नहीं भुवन, नही!" और उस के हाथ खीचने लगी, भुवन रुक गया पर उठा नही। उसे खीचने के लिए गौरा तनिक निकट बढ आयी थी, भुवन ने धीरे-से अपना सिर उस के पार्श्व मे टेक दिया, गौरा ने एक-एक हाथ छुड़ा कर उस के सिर पर रखा और धीरे-धीरे बाल सहलाने लगी।

दो-चार दिन भुवन अस्पताल के अहाते में टहला था, फिर उसे बाहर जाने की अनुमति मिली तो गौरा उसे टैक्सी मे घुमा लायी थी। दूसरे-तीसरे दिन एक संगीत-गोष्ठी मे भी ले गयी थी। पर अपने यहाँ ले जाने की बात उस ने तब तक नहीं की जब तक भुवन को अनुमति नहीं मिल गयी कि वह चाहे जहाँ जा सकता है, केवल अपने को थकायेगा नहीं, सावधानी से खायेगा, और रात के भोजन के समय वापस लौट जायगा। तब गौरा फिर उसे लिवाने आयी, अस्पताल से वे टहलते हुए निकले; कुछ देर बाद गौरा ने पूछा, "भुवन, मेरे यहाँ चलोगे?"

भुवन ने एक बार उस की ओर देखा और बिना उत्तर दिये ही उस के साथ मुड़ गया।

"मुड़ तो गये, यह भी जानते हो कि किधर जाना है?"

भुवन ने भोलेपन से कहा, "न, तुम ले जा रही हो, मैं जा रहा हूँ। दैट इज आल आइ नो एंड आल आइ नीड टु नो!"

"मेरा यहाँ तो क्या है, होटल का कमरा है एक। पहले भी वहाँ रह चुकी हूँ। पर थक तो नहीं जाओगे—टैक्सी ले?"

"बहुत दूर है? नहीं तो पैदल ही चलें—लौटते समय चाहे टैक्सी ले लूँगा। चलना अच्छा लगता है—नये सिरे से सीख रहा हूँ।"

कमरा साफ-सुथरा था, होटल के कमरों से उस में अन्तर इतना था कि फर्नीचर कम था, एक तरफ एक तख्त पड़ा था जिसे गौरा ने अपने ढंग से सजा रखा था। इसी पर गौरा ने भुवन को बिठाया था।

गौरा की उँगलियाँ भुवन के बालों में से तिरती हुई पार निकल जातीं और फिर लौट आतीं, फिर उसने सहसा बाल हिला कर उलझा दिये और मधुर स्वर में पूछा, "भुवन, अब वचन दोगे?"

"हाँ, गौरा। अब वचन देता हूँ।"

गौरा फिर धीरे-धीरे बाल सहलाने लगी।

"अब नहीं भागूँगा। पहले बहुत भागा। पहले जानने से भागा; पिछली बार—मसूरी में जब वह सम्भव न रहा तो स्वीकृति से भागा। मसूरी में—मैंने सहसा देखा कि मेरे आगे एक मेघ है और वह तुम्हारे बालों का है—तो मैंने जान लिया—जान क्या लिया, तुम ने कह दिया और मुझे लगा कि जान कर ही तुम ने कहा है, नहीं तो तुम भी कैसे कह पातीं? मैंने तुम्हें कहा था—कुछ हँसी में ही सही, कहा तो था—कि जिस दिन ऐसा होगा जान लूँगा कि मेरी खोज—मेरे लिए खोज—समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया। पर—" वह चुप हो गया। फिर सहसा उठ कर उस ने पूछा, "गौरा, तुम सोचा करोगी न कि मैं कितना बुद्धू हूँ?"

गौरा खोयी-सी मुस्करा दी। "सोचा करूँगी। क्यों, भविष्य की क्यों—शिशु तो तुम हो ही, अब भी हो, हमेशा ही थे—"

"और तू बड़ी सयानी आयी है कहीं से चल के!" भुवन ने हलका-सा चपत उस के गाल पर लगा दिया। फिर तख्त पर बैठते हुए, बदले स्वर में बोला, "गौरा, तुम्हारा संगीत तो मैं ने सुना ही नहीं कभी—मसूरी में चोरी से ही सुना था सितार—"

"सुनाऊँगी—"

"कब? अभी नहीं?"

"न! अभी गा सकती, पर तुम्हारे सामने गाऊँगी नहीं, और यहाँ पर तो नहीं ही। फिर एक दिन—"

"फिर एक दिन !" भुवन का स्वर थोड़ा उदास हो आया। "थोड़े-से तो दिन और हैं, फिर मैं वापस जो चला जाऊँगा—"

"थोड़े से ? ऐसा मत कहो, शिशु, देखो, मैं भी नहीं कहती—बहुत दिन आयेंगे आगे। नहीं तो मैं तो यहीं बैठी रहूँगी, फ्रंट पर तुम जाओगे, दिनों की लघुता मैं जानती कि तुम।"

भुवन अचम्भे में उसे देखने लगा। देखता रहा। गौरा ने पूछा, "क्या ताक रहे हो !"

"मसूरी में तुम्हारे चेहरे पर एक कान्ति देखी थी, जो पहले नहीं देखी थी। वही देख रहा था। चाहता हूँ, हमेशा उसे देख सकूँ—"

गौरा ने रुकते-रुकते कहा, "मेरी कान्ति तो तुम हो, पगले !"

बंगलोर से भुवन मद्रास गया, छुट्टी से लौट कर वहीं रिपोर्ट करने का आदेश उसे मिला था, वहीं से जहाज में वह फिर फ्रंट पर जायेगा। तीसरे पहर उसे बन्दर पर हाजिर होना था, दोपहर को वह गौरा के साथ समुद्र की ओर गया—वहीं विदा ले कर वह चला जायगा, गौरा बन्दर पर नहीं जायेगी...ऐसा ही उस ने चाहा था, और गौरा ने उस की बात समझ कर मान ली थी।

भुवन ने कहा, "गौरा, कुछ आदिम जातियों का विश्वास है कि आत्मा शरीर से अलग रखी जा सकती है—उन के वीर जब युद्ध करने जाते हैं तो आत्मा किसी चीज में घर रख जाते हैं—पोटली बाँध कर खूँटी पर भी टाँग जाते हैं।"

गौरा ने अविश्वास से कहा, "नहीं !"

"हाँ, सच। और अब की—मैं अपनी आत्मा तुम्हारे पास रखे जा रहा हूँ—उसे सँभाल रखोगी न ?"

गौरा ने उस की ओर देख-भर दिया। उस की साँस जल्दी चलने लगी, वह बोल नहीं सकी।

"और पोटली बाँध कर नही रखूँगा—तुम्ही मे है वह—"

"मैं जानती हूँ भुवन, मेरी साँस है वह—"

"मैं लौटूँगा, गौरा। काम वहाँ बहुत है, बहुत कडा है, तुम्हारा भी काम है—पर—काम अपने-आप से टूट नहीं है—" वाक्य उस ने अधूरा छोड़ दिया, मानो भूल गया है कि वह क्या कह कर रहा है।

वर्दी की जेब से एक पुस्तक उस ने निकाल कर गौरा को दी।

"यह लो गौरा, कुछ कविताएँ हैं, लारेंस की। अस्पताल में तुम आयी थीं तब यही पढ रहा था। एक कविता है—" कहते-कहते उस ने पुस्तक खोली, 'ए मैनिफेस्टो'। वही तब पढ रहा था। आज बता देता हूँ। तुम पढना—तुम्हे अचम्भा होगा। पढ इस लिए रहा था कि उस के अंश मैं अपनी कापी में लिखना चाहता था, पर मेरे शब्द अधूरे थे, लारेंस कह गया था . " वह रुक गया। फिर बोला, "वह तो तुम अपने-आप पढ़ना, एक दूसरी है जिस की तीन-चार पंक्तियाँ तुम्हे सुना देता हूँ—मुझे याद है।"

क्षण भर वह सोचने को रुका, गौरा प्रतीक्षा मे नीचे बालू की ओर देखने लगी।

"*आइ एम नाट एट आल, एक्सेप्ट ए फ्लेम—*" भुवन ने सहसा रुक कर कहा, "नहीं गौरा, मेरी ओर देखो—" और आँखो से उस की आँखें पकडे हुए वह बोलने लगा :

"आइ एम नाट एट आल, एक्सेप्ट ए फ्लेम देट माउट्स आफ यू.
ह्वेयर आइ टच यू, आइ फ्लेम इटु वीइंग; वट इज इट मी, आर यू ?

हाउ फुल एंड विग लाइक ए रोवस्ट फ्लेम
ह्वेन आइ एनफोल्ड यू, एंड यू क्रीप इटु मी,
एंड माइ लाइफ इज फीयर्स एट इट्स क्विक
ह्वेयर इट कम्स आफ यू !"

सहसा आगे झुक कर उस ने गौरा का माथा सूँघा और बोला, "अच्छा, गौरा—"

तीन-चार पग की दूरी से उस ने मुड़ कर देखा और कहा, "वह कान्ति, गौरा—मेरी जुगनू—"

और गौरा कोहनी से दोनो हाथ उठाये निःस्वर शब्दो मे इतना कह पायी, "हाँ, मेरे शिशु, हाँ, शिशु—"

गौरा को एक पार्सल मिला।

उस में रेखा का एक पत्र था, और एक छोटी-सी डिबिया; डिबिया उस ने खोली, उस मे एक अंगूठी थी। गौरा ने अंगूठी पहचान ली, कुछ चकित-सी वह पत्र पढ़ने लगी :

गौरा,

यह मै उसी दिन तुम्हे दे ही देती, पर तुम ने कहा था कि मैं इसे तुम्हारी ओर से रख छोड़ूँ, तुम फिर कभी माँग लोगी। मैं अधिक आग्रह नहीं कर सकी थी—तुम ने पूछा था कि माँ ने यह मुझे कब दी थी, और उस से मुझे बहुत-सी बाते याद आ गयी थीं जिन्हे मैं याद नहीं करती और जिन की प्रतिध्वनियो से भरा हुआ मन ले कर यह नहीं देना चाहती थी...

गौरा, तुम तो कभी माँगोगी नहीं, पर अब मै स्वयं भेज रही हूँ, मुझे बार-बार तुम्हारी याद आती है और भीतर कुछ कहता है कि यह जो तुम ने मेरे पास रखी कि फिर कभी भेज दूँ, वह इसी समय के लिए था। मेरा आशीर्वाद लो, गौरा, और मेरा स्नेह; माँ ने आशीर्वादो के साथ यह अँगूठी मुझे दी थी, मुझे आशीर्वाद नही फला अपनी अपात्रता के कारण (पर जीवन के प्रति अकृतज्ञ मैं नहीं हूँ, न कभी हूँगी, गौरा; और इस के लिए ऋणी हूँ तुम्हारे 'मास्टर साहब' की); पर तुम पात्र हो, और मै गर्व कर के यह भी कह जाऊँ कि मेरा आशीर्वाद भी अधिक सार्थक है, क्यो कि उस के पीछे वह है जो माँ ने नहीं जाना था...

गोरा, जीवन में आनन्द सब-कुछ नहीं है, पर बहुत बड़ी चीज़ है, और है वह सुखों में नहीं, है वह मन की एक प्रवृत्ति। मैं बहुत लालची थी, मैंने एक-साथ ही सारे तारों-भरे आकाश को बाँहों में घेर लेना चाहा था। तुम में अधिक धैर्य है · तुम आकाश की छत को छू सकोगी। और एक-एक तारा तुम्हारी एक-एक सीढ़ी होगा ..जीवन की चरम एक्स्टैसी तुम जानो, गौरा, उसे जाने बिना व्यक्ति अधूरा है, पर यह फिर भी कहूँ: आनन्द अनुभूति में नहीं है, किसी भी अनुभूति में नहीं, आनन्द मन की एक प्रवृत्ति है, जो सभी अनुभूतियों के बीच में भी बनी रह सकती है।

तुम्हें सीख नहीं दे रही, गौरा, हर व्यक्ति एक अद्वितीय इकाई है, और हर कोई जीवन का अन्तिम दर्शन अपने जीवन में पाता है, किसी की सीख में नहीं। पर दूसरों के अनुभव वह खाद हो सकते हैं जिस से अपने अनुभव की भूमि उर्वरा हो...

उस समान आनन्द की कामना तुम्हारे लिए करती हूँ, गौरा—तुम्हारे लिए, और भुवन के लिए।

तुम्हारी

रेखा दीदी

गौरा ने अँगूठी हाथ में ले कर पत्र और डिबिया सँभाल कर रख दी, फिर अँगूठी को देखती हुई टहलने लगी। कटहला उस ने कभी पहना नहीं था—और यही मानती आयी थी कि वह कुछ साँवले रंग पर सुहाता है। रेखा के हाथ पर वह अच्छा लगता था.. एकाएक वह देख सकी : रेखा के दोनों हाथ वैसे बढ़े हुए जैसे उसे अँगूठी पहनाने के लिए दिल्ली में बढ़े थे—विशेष सुन्दर नहीं थे वे हाथ, पर अत्यन्त संवेदना-प्रवण, और अँगूठी बढ़ाये हुए उन की वह मुद्रा स्वयं एक इतिहास थी...गौरा ने अँगूठी पहन ली, और एक विचित्र भाव उस के मन में उमड़ आया। आलमारी तक जा कर उस ने एक पुस्तक निकाली—वही पुस्तक जो भुवन उसे जाते वक्त दे गया था—और वह कविता पढ़ने लगी जो भुवन अस्पताल की पहली भेंट के समय पढ़ रहा था —'ए मैनिफेस्टो'।

'ए वुमन हैज गिवन मी स्ट्रेंग्थ एड ऐफ्लुएस—ऐडमिटेड !'

दो-चार पंक्तियाँ उस ने और पढ़ी, लेकिन फिर पहली पंक्ति की ओर लौट आयी—*'ए वुमन हैज गिवन मी स्ट्रेंग्थ एड ऐफ्लुएंस—ऐडमिटेड!'* —एक नारी ने मुझे शक्ति और ऋद्धि दी है . मै स्वीकार करता हूँ !

गौरा ठिठक गयी। भुवन चाहे जैसे वह पुस्तक पढ़ता रहा हो, अस्पताल मे बैठे-बैठे उस का चाहे जो अर्थ लगाता रहा हो, लेकिन वह पक्ति ठीक कहती है : एक नारी ने—नारी ने ही...सहसा वह कागज़ लेने के लिए बढ़ी : वह रेखा को पत्र लिखेगी और यह पुस्तक रेखा को भेज देगी। पत्र मे क्या लिखेगी, उस के वाक्य अभी ही उस के मन में स्पष्ट तिरने लगे थे..."तुम्हारी वह मूल्यवान् भेंट लौटाऊँगी नही, रेखा दीदी, लौटायी तब भी नहीं थी। अँगूठी मैंने पहन ली है, तुम्हारे आशीर्वाद के आगे नत-मस्तक हूँ,—पात्रता की बात मै नहीं जानती, पर आशीर्वाद के लिए पात्रता क्या, वह तो पात्रता के प्रश्न के परे जो स्नेह दिया जाता है वह है।... रेखा दीदी, भेंट के बदले मे नहीं, अपने ट्रिब्यूट के रूप में एक चीज भेज रही हूँ। यह भुवन की पुस्तक है जो वह जाते समय मुझे दे गये है। मैंने उन से पूछा नहीं, न पूछूँगी; वह अवश्य समझ सकेंगे।...इस पुस्तक मे एक कविता है, 'ए मैनिफेस्टो'—इसी कविता के लिए यह पुस्तक उन्होंने मुझे दी थी—उस की पहली पक्ति है : *'ए वुमन हैज गिवन मी स्ट्रेंग्थ एंड एफ्लुएस—एडमिटेड !'* मेरा विश्वास है कि इस पक्ति को वह आप से छिपाना न चाहेंगे, न मैं ही चाहूँगी, वह आप ही की है और इसी लिए यह पुस्तक भी।...रेखा दीदी, मेरे पास दर्शन अभी कुछ नहीं है, एक आस्था है, और कुछ श्रद्धा, और सीखने की, सहने की, और यत्किंचित् दे सकने की लगन है; इन के और आप के स्नेह के सहारे मुझे लगता है कि मैं चारो ओर बहते अजस्र प्रवाह मे खड़ी रह सकूँगी; एक नगण्य व्यक्ति-पुंज, अस्तित्व का एक छोटा-सा द्वीप, लेकिन जो फूलना चाहता है, फूल झरा कर नदी के बहते जल को सुवासित कर देना चाहता है—फिर नदी चाहे जो करे, उन फूलो की गन्ध ही पहुँच जाय दूर, दूर, दूर.. "

'वहाँ', 'बर्मा फ्रंट में कहीं पर', भौगोलिक अनिश्चितता की धुन्ध में खो कर भुवन जब-तब गौरा को छोटे-छोटे पत्र लिखता रहा था। लेकिन क्रमशः भौगोलिक अनिश्चितता के कृत्रिम वातावरण ने उसे छा लिया था, यह जानते हुए भी कि वह कहाँ है, वह मानो कहीं नहीं रहा था। फिर दो महीने तक उस ने कोई पत्र नहीं लिखा।

लेकिन अक्टूबर १९४२ में सहसा उस ने पाया कि अपने बाँस के घर में वह बिलकुल अकेला है। बाँस के उन घरों का वह आदी था—कीचड़ में खड़ी बाँस की चटाई की दीवारें, कीचड़ पर बिछी बाँस की चटाई का फ़र्श, बाँस की चटाई की टट्टियों से ढकी खिड़कियाँ, बाँस की खाट पर बाँस की चटाइयों के पलंग, बाँस की चटाई से ढके चौखटे की मेज़ें.. और जंगल में अकेलापन भी कोई नया अनुभव नहीं था—यों तो उस भीड़ में रह कर सभी अपने भीतर के अकेलेपन में खिंच जाने के आदी थे, पर उस के अलावा शारीरिक अकेलापन भी बहुधा हो जाता था। पर इस अकेलेपन में कुछ विशेष था। उस का घर जो उस का दफ़्तर भी था, वास्तव में तीन अफ़सरों का संयुक्त घर-दफ़्तर था, जंगल में औरों से अलग और कँटीले तारों से घिरा हुआ: वहाँ पर नाना प्रकार के रेडियो और विद्युत् यन्त्रों से

घिरे हुए वे तीनों निरन्तर प्रयोग करते थे, अनुलेखों का संग्रह करते थे, और केन्द्रित रेडियो-रश्मियों द्वारा अदृश्य चीज़ों को पहचानने के नये आविष्कार को सम्पूर्ण सफल और व्यावहारिक बनाने के काम मे योग देते थे। पर उस दिन सवेरे उस के दोनो साथी शिविर मे गये थे और अब तक लौटे नहीं थे, उधर लडाई की आवाज़ भी उस ने सुनी थी, निकट ही कहीं जापानी हैं यह ज्ञात था और आक्रमण की सम्भावना भी की जा रही थी। क्या हुआ ? वह नहीं जानता था। क्या होगा, यह भी नहीं। सम्भव है, रात मे उठ कर उसे और कुछ दूर पर बने दूसरे बासे मे रहने वाले आर्डरली-अफसर को एकाएक सब यन्त्र वगैरह विस्फोटक से उड़ा कर जंगल मे निकल जाना पड़े, अकेले-अकेले; सम्भव है वह भी अवसर न मिले, पकड़े ही जायें, और—यह भी सम्भव है कि शाम को उस के साथी कुछ अच्छा समाचार ले कर लौट आवें, अखबार और डाक ले आवें—अजब होता है युद्ध-मुख का भाई-चारा, जिसमे अजनबी भी एक-दूसरे को अपने अन्तरग पत्र सुनाते है...

भुवन की इच्छा हुई कि पत्र लिखे। पर वह बैठा नहीं, उसे टालने के लिए इधर-उधर यन्त्रों को देखता हुआ घूमने लगा। पर नहीं, कहीं कुछ करने को नहीं था। सहसा उस ने एक यन्त्र के सामने पड़ी हुई कापी निकाली, क्षण-भर उस के चार-खाने पन्नों को देखता रहा, फिर पेंसिल से द्रुत गति से उन्हे रंगने लगा।

गौरा,

फिर दो महीने से मैंने तुम्हे पत्र नहीं लिखा। जहाँ हूँ, वहाँ पत्र भी अवास्तव लगते हैं—केवल मन के भीतर जो है वही वास्तव लगता है। तुम ने एक बार शब्द को अधूरा बताया था उच्चारण की मर्यादा के कारण; पर सभी कुछ अधूरा है जिस के साथ गोचर होने की शर्त है—सम्पूर्ण वही है जो बिना इन्द्रियों के माध्यम के ज्ञात है...

आज भी पत्र लिखने लगा हूँ तो यथार्थता कुछ अधिक नहीं है, कदाचित् और भी कम है, क्योंकि आज बिलकुल भरोसा नहीं है कि यह चिट्ठी

डाक मे पडेगी या नहीं, कभी जायेगी या नही। फिर भी लिख रहा हूँ, यह एक तो मानव की सहज प्रतिकूलता है, दूसरे इस का एक तात्कालिक कारण है। मुझे तुम से कुछ कहना है—कुछ पूछना है। और जब पूछ लूँगा तब तुम यह भी जान लोगी कि दो महीने मैं चुप क्यो रहा।

गौरा, मै लौट कर आऊँगा या नहीं, क्या पता, कब आऊँगा यह भी कौन जाने। पर अगर आया—आने के साथ यह 'अगर' न होता तो शायद अब भी मैं यह पत्र न लिख पाता।—अगर आया तो क्या तुम मुझ से विवाह करोगी? तुम्हे जानते हुए मैं जानता हूँ कि तुम स्वतन्त्र निर्णय करने के योग्य होते हुए भी चाहोगी कि मै तुम्हारे पिता से पूछूँ, वह मैं पूछूँगा जब पूछने का समय होगा, अभी तुम्हीं से जानना चाहता हूँ कि उन से पूछूँगा भी या नही..."

लिखते-लिखते भुवन रुक गया। गौरा के पिता का चित्र उस के सामने आ गया, फिर मसूरी के घर का, फिर गौरा के साथ बिताये हुए उस एक सप्ताह का, अपनी आत्म-स्वीकृति का, क्षण-भर के लिए वह केशो का मेघ उस की आँखो के आगे छा गया, फिर उस मे झलकती हुई चीड़ की सुगन्धित आग :'गौरा यह आग तो तुम्हारी है'...वह फिर लिखने लग गया और भी द्रुत गति से, चार पाँच पृष्ठ लिख कर वह फिर रुका, पैंसिल घिस कर उस की नोक निकाली, और उसे हाथ मे साधे हुए फिर चित्र देखने लगा।

व्यक्ति के सभी कर्मों का बीज सभी दूसरे कर्मों मे निहित है; कार्य-कारण सम्बन्धो की खोज और उन का निरूपण एक वैज्ञानिक समय है, नही तो सभी कार्य कारण हैं और उन की यह परस्परता व्यक्ति के जीवन-वृत्त मे ही बँधी नहीं है, बाहर तक फैली है। सब कुछ है, क्यो कि और सब कुछ है.. फिर भी, हम लोग काल के बिन्दु चुनते हैं जहाँ से घटनाओ का आरम्भ मानते हैं—वह भी एक ऐतिहासिक समय है.. गौरा के प्रति उस के जो भाव हैं, जो भाव थे—क्या वे अलग हैं?

"समर्पण है तो वह न बाँधता है, न अपने को बद्ध अनुभव करता है,

केवल एक व्यापक कृतज्ञता मन मे भर जाती है कि तुम हो, कि मैं हूँ। एक-दूसरे को पहचानने के बाद आश्चर्य यह नहीं है कि प्रेम है, कि हम प्यार करते हैं; आश्चर्य यही है कि हम हैं, होना ही एक नये प्रकार का सयुक्त होना है। मैं पहले भी था, अब भी हूँ; पर क्या दोनो 'होने' एक है? हाँ, पर नहीं.. सोचता हूँ, यह परिवर्तन कब से हुआ, तो नहीं जानता, लगता है कि जो हुआ, वह पहले भी था, नहीं तो हुआ कैसे? पर वह परिवर्त्तन चेतना मे कब आया, यह जानता हूँ...तुम कह सकती हो कब? तुम्हे अचम्भा होगा। एक वर्ष पहले, जब लम्बी चुप्पी के बाद मैं जावा से तुम्हे दो तीन पत्र लिखे थे, तब जब मैं अस्वस्थ था और तु 'होम-सिक' होने की बात लिखी थी...तभी मैंने जाना था कि मै तुम भाग कर वहाँ गया था, तुम्हीं से, और यह जान कर आसपास फैली विश लता मे खो गया था और फिर मैंने जाना था कि वह विशालता भी तु हो। तुम ने मुझे घेर लिया था, छिपा लिया था, और उस मे एक सान्त्व थी, एक मरहम था...सहसा मुझे लगा कि उसी विशालता के आगे हथि यार डाल कर—अपने सब कवच-बन्धन-रक्षण छोड़ कर मैं स्वस्थ हो जाऊँग मेरे क्षत भर जायेंगे...मै कहता हूँ तभी, पर 'तभी' का कोई मतलब न है, क्यो कि अगर मै पहले नहीं जानता था, तो भागा क्यो था? 'शब्द शब्द, शब्द'—शब्द अधूरे है, सभी कुछ अधूरा है.. और इतिहास बिलकुल ही अधूरा है..."

भुवन उठ कर टहलने लगा। सब कुछ अधूरा है, और ज्यो ज्यो वह आगे पूरेपन की ओर बढ़ता है, नयी अपूर्णताएँ भी उस के आगे स्पष्ट हो जाती है...कितना बड़ा है जीवन, कितना विस्तृत, कितना गहरा, कितना प्रवहमान, और उस मे व्यक्ति की ये छोटी-छोटी इकाइयाँ—प्रवाह से अलग जो कोई अस्तित्व नही रखतीं, कोई अर्थ नहीं रखतीं, फिर भी सम्पूर्ण है, स्वायत्त है, अद्वितीय है, और स्वत.प्रमाण है, क्यो कि अन्ततोगत्वा आत्मा-नुशासित है, अपने आगे उत्तरदायी है; स्वर्ग और नरक, पुण्य और पाप,